श्रीशिवपुराण-माहात्म्य

भवाब्धिमग्नं दीनं मां समुद्धर भवार्णवात्। कर्मग्राहगृहीताङ्गं दासोऽहं तव शंकर ॥

शौनकजीके साधनविषयक प्रश्न करनेपर सूतजीका उन्हें शिवपुराणकी उत्कृष्ट महिमा सुनाना

श्रीशौनकजीने पूछा—महाज्ञानी सूतजी! आप सम्पूर्ण सिद्धान्तोंके ज्ञाता हैं। प्रभो! मुझसे पुराणोंकी कथाओंके सारतत्त्वका विशेषरूपसे वर्णन कीजिये। ज्ञान और वैराग्य-सहित भक्तिसे प्राप्त होनेवाले विवेककी वृद्धि कैसे होती है? तथा साधुपुरुष किस प्रकार अपने काम-क्रोध आदि मानसिक विकारोंका निवारण करते हैं? इस घोर कलिकालमें जीव प्रायः आसुर स्वभावके हो गये हैं, उस जीवसमुदायको शुद्ध (दैवी सम्पत्तिसे युक्त) बनानेके लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है? आप इस समय मुझे ऐसा कोई शाश्वत साधन बताइये, जो कल्याणकारी वस्तुओंमें भी सबसे उत्कृष्ट एवं परम मङ्गलकारी हो तथा पवित्र करनेवाले उपायोंमें भी सर्वोत्तम पवित्रकारक उपाय हो। तात! वह साधन ऐसा हो, जिसके अनुष्ठानसे शीघ्र ही अन्तःकरणकी विशेष शुद्धि हो जाय तथा उससे निर्मल चित्तवाले पुरुषको सदाके लिये शिवकी प्राप्ति हो जाय।

श्रीसूतजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ शौनक! तुम धन्य हो; क्योंकि तुम्हारे हृदयमें पुराण-कथा सुननेका विशेष प्रेम एवं लालसा है। इसलिये मैं शुद्ध बुद्धिसे विचारकर तुमसे परम उत्तम शास्त्रका वर्णन करता हूँ। वत्स! वह सम्पूर्ण शास्त्रोंके सिद्धान्तसे सम्पन्न, भक्ति आदिको बढ़ानेवाला तथा भगवान् शिवको संतुष्ट करनेवाला है। कानोंके लिये रसायन—अमृतस्वरूप तथा दिव्य है, तुम उसे श्रवण करो। मुने! वह परम उत्तम शास्त्र है—शिवपुराण, जिसका पूर्वकालमें भगवान् शिवने ही प्रवचन किया था। यह कालरूपी सर्पसे प्राप्त होनेवाले महान् त्रासका विनाश करनेवाला उत्तम साधन है। गुरुदेव व्यासने सनत्कुमार मुनिका उपदेश पाकर बड़े आदरसे संक्षेपमें ही इस पुराणका प्रतिपादन किया है। इस पुराणके प्रणयनका उद्देश्य है—कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंके

परम हितका साधन।

यह शिवपुराण परम उत्तम शास्त्र है। इसे इस भूतलपर भगवान् शिवका वाङ्मय स्वरूप समझना चाहिये और सब प्रकारसे इसका सेवन करना चाहिये। इसका पठन और श्रवण सर्वसाधनरूप है। इससे शिव-भक्ति पाकर श्रेष्ठतम स्थितिमें पहुँचा हुआ मनुष्य शीघ्र ही शिवपदको प्राप्त कर लेता है। इसीलिये सम्पूर्ण यत्न करके मनुष्योंने इस पुराणको पढ़नेकी इच्छा की है—अथवा इसके अध्ययनको अभीष्ट साधन माना है। इसी तरह इसका प्रेमपूर्वक श्रवण भी सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है। भगवान् शिवके इस पुराणको सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा इस जीवनमें बड़े-बड़े उत्कृष्ट भोगोंका उपभोग करके अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है।

यह शिवपुराण नामक ग्रन्थ चौबीस हजार श्लोकोंसे युक्त है। इसकी सात संहिताएँ हैं। मनुष्यको चाहिये कि वह भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न हो बड़े आदरसे इसका श्रवण करे। सात संहिताओंसे युक्त यह दिव्य शिवपुराण परब्रह्म परमात्माके समान विराजमान है और सबसे उत्कृष्ट गति प्रदान करनेवाला है।

जो निरन्तर अनुसंधानपूर्वक इस शिवपुराणको बाँचता है अथवा नित्य प्रेमपूर्वक इसका पाठमात्र करता है, वह पुण्यात्मा है—इसमें संशय नहीं है। जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष अन्तकालमें भक्तिपूर्वक इस पुराणको सुनता है, उसपर अत्यन्त प्रसन्न हुए भगवान् महेश्वर उसे अपना पद (धाम) प्रदान करते हैं। जो प्रतिदिन आदरपूर्वक इस शिवपुराणका पूजन करता है, वह इस संसारमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें भगवान् शिवके पदको प्राप्त कर लेता है। जो प्रतिदिन आलस्यरहित हो रेशमी वस्त्र आदिके वेष्टनसे इस शिवपुराणका सत्कार करता है, वह सदा सुखी होता है। यह शिवपुराण निर्मल तथा भगवान् शिवका सर्वस्व है; जो इहलोक और परलोकमें भी सुख चाहता हो, उसे आदरके साथ प्रयत्नपूर्वक इसका सेवन करना चाहिये। यह निर्मल एवं उत्तम शिवपुराण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। अतः सदा प्रेमपूर्वक इसका श्रवण एवं विशेष पाठ करना चाहिये।

(अध्याय १)

☆

शिवपुराणके श्रवणसे देवराजको शिवलोककी प्राप्ति तथा चञ्चुलाका पापसे भय एवं संसारसे वैराग्य

श्रीशौनकजीने कहा—महाभाग सूतजी! आप धन्य हैं, परमार्थ-तत्त्वके ज्ञाता हैं, आपने कृपा करके हमलोगोंको यह बड़ी अद्भुत एवं दिव्य कथा सुनायी है। भूतलपर इस कथाके समान कल्याणका सर्वश्रेष्ठ साधन दूसरा कोई नहीं है, यह बात हमने आज आपकी कृपासे निश्चयपूर्वक समझ ली। सूतजी! कलियुगमें इस कथाके द्वारा कौन-कौन-से पापी शुद्ध होते हैं? उन्हें कृपापूर्वक बताइये और इस

जगत्‌को कृतार्थ कीजिये।

सूतजी बोले—मुने! जो मनुष्य पापी, दुराचारी, खल तथा काम-क्रोध आदिमें निरन्तर डूबे रहनेवाले हैं, वे भी इस पुराणके श्रवण-पठनसे अवश्य ही शुद्ध हो जाते हैं। इसी विषयमें जानकार मुनि इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंका पूर्णतया नाश हो जाता है।

पहलेकी बात है, कहीं किरातोंके नगरमें एक ब्राह्मण रहता था, जो ज्ञानमें अत्यन्त दुर्बल, दरिद्र, रस बेचनेवाला तथा वैदिक धर्मसे विमुख था। वह स्नान-संध्या आदि कर्मोंसे भ्रष्ट हो गया था और वैश्यवृत्तिमें तत्पर रहता था। उसका नाम था देवराज। वह अपने ऊपर विश्वास करनेवाले लोगोंको ठगा करता था। उसने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों तथा दूसरोंको भी अनेक बहानोंसे मारकर उन-उनका धन हड़प लिया था। परंतु उस पापीका थोड़ा-सा भी धन कभी धर्मके काममें नहीं लगा था। वह वेश्यागामी तथा सब प्रकारसे आचार-भ्रष्ट था।

एक दिन घूमता-घामता वह दैवयोगसे प्रतिष्ठानपुर (झूसी-प्रयाग) में जा पहुँचा। वहाँ उसने एक शिवालय देखा, जहाँ बहुत-से साधु-महात्मा एकत्र हुए थे। देवराज उस शिवालयमें ठहर गया, किंतु वहाँ उस ब्राह्मणको ज्वर आ गया। उस ज्वरसे उसको बड़ी पीड़ा होने लगी। वहाँ एक ब्राह्मणदेवता शिवपुराणकी कथा सुना रहे थे। ज्वरमें पड़ा हुआ देवराज ब्राह्मणके मुखारविन्दसे निकली हुई उस शिवकथाको निरन्तर सुनता रहा। एक मासके बाद वह ज्वरसे अत्यन्त पीड़ित होकर चल बसा। यमराजके दूत आये और उसे पाशोंसे बाँधकर बलपूर्वक यमपुरीमें ले गये। इतनेमें ही शिवलोकसे भगवान् शिवके पार्षदगण आ गये। उनके गौर अङ्ग कर्पूरके समान उज्ज्वल थे, हाथ त्रिशूलसे सुशोभित हो रहे थे, उनके सम्पूर्ण अङ्ग भस्मसे उद्भासित थे और रुद्राक्षकी मालाएँ उनके शरीरकी शोभा बढ़ा रही थीं।

वे सब-के-सब क्रोधपूर्वक यमपुरीमें गये और यमराजके दूतोंको मार-पीटकर, बारंबार धमकाकर उन्होंने देवराजको उनके चंगुलसे छुड़ा लिया और अत्यन्त अद्भुत विमानपर बिठाकर जब वे शिवदूत कैलास जानेको उद्यत हुए, उस समय यमपुरीमें बड़ा भारी कोलाहल मच गया। उस कोलाहल-को सुनकर धर्मराज अपने भवनसे बाहर

आये। साक्षात् दूसरे रुद्रोंके समान प्रतीत होनेवाले उन चारों दूतोंको देखकर धर्मज्ञ धर्मराजने उनका विधिपूर्वक पूजन किया और ज्ञानदृष्टिसे देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया। उन्होंने भयके कारण भगवान् शिवके उन महात्मा दूतोंसे कोई बात नहीं पूछी, उलटे उन सबकी पूजा एवं प्रार्थना की। तत्पश्चात् वे शिवदूत कैलासको चले गये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस ब्राह्मणको दयासागर साम्ब शिवके हाथोंमें दे दिया।

शौनकजीने कहा—महाभाग सूतजी! आप सर्वज्ञ हैं। महामते! आपके कृपाप्रसादसे मैं बारंबार कृतार्थ हुआ। इस इतिहासको सुनकर मेरा मन अत्यन्त आनन्दमें निमग्न हो रहा है। अतः अब भगवान् शिवमें प्रेम बढ़ानेवाली शिवसम्बन्धिनी दूसरी कथाको भी कहिये।

श्रीसूतजी बोले—शौनक! सुनो, मैं तुम्हारे सामने गोपनीय कथावस्तुका भी वर्णन करूँगा; क्योंकि तुम शिव-भक्तोंमें अग्रगण्य तथा वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो। समुद्रके निकटवर्ती प्रदेशमें एक बाष्कल नामक ग्राम है, जहाँ वैदिक धर्मसे विमुख महापापी द्विज निवास करते हैं। वे सब-के-सब बड़े दुष्ट हैं, उनका मन दूषित विषय-भोगोंमें ही लगा रहता है। वे न देवताओंपर विश्वास करते हैं न भाग्यपर; वे सभी कुटिल वृत्तिवाले हैं। किसानी करते और भाँति-भाँतिके घातक अस्त्र-शस्त्र रखते हैं। वे व्यभिचारी और खल हैं। ज्ञान, वैराग्य तथा सद्धर्मका सेवन ही मनुष्यके लिये परम पुरुषार्थ है—इस बातको वे बिलकुल नहीं जानते हैं। वे सभी पशुबुद्धिवाले हैं। (जहाँके द्विज ऐसे हों, वहाँके अन्य वर्णोंके विषयमें क्या कहा जाय।) अन्य वर्णोंके लोग भी उन्हींकी भाँति कुत्सित विचार रखनेवाले, स्वधर्मविमुख एवं खल हैं; वे सदा कुकर्ममें लगे रहते और नित्य विषयभोगोंमें ही डूबे रहते हैं। वहाँकी सब स्त्रियाँ भी कुटिल स्वभावकी, स्वेच्छाचारिणी, पापासक्त, कुत्सित विचारवाली और व्यभिचारिणी हैं। वे सद्व्यवहार तथा सदाचारसे सर्वथा शून्य हैं। इस प्रकार वहाँ दुष्टोंका ही निवास है।

उस बाष्कल नामक ग्राममें किसी समय एक बिन्दुग नामधारी ब्राह्मण रहता था, वह बड़ा अधम था। दुरात्मा और महापापी था। यद्यपि उसकी स्त्री बड़ी सुन्दरी थी, तो भी वह कुमार्गपर ही चलता था। उसकी पत्नीका नाम चञ्चुला था; वह सदा उत्तम धर्मके पालनमें लगी रहती थी, तो भी उसे छोड़कर वह दुष्ट ब्राह्मण वेश्यागामी हो गया था। इस तरह कुकर्ममें लगे हुए उस बिन्दुगके बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। उसकी स्त्री चञ्चुला कामसे पीड़ित होनेपर भी स्वधर्मनाशके भयसे क्लेश सहकर भी दीर्घकालतक धर्मसे भ्रष्ट नहीं हुई। परंतु दुराचारी पतिके आचरणसे प्रभावित हो आगे चलकर वह स्त्री भी दुराचारिणी हो गयी।

इस तरह दुराचारमें डूबे हुए उन मूढ़ चित्तवाले पति-पत्नीका बहुत-सा समय व्यर्थ बीत गया। तदनन्तर शूद्रजातीय वेश्याका पति बना हुआ वह दूषित बुद्धिवाला दुष्ट ब्राह्मण बिन्दुग समयानुसार मृत्युको प्राप्त हो नरकमें जा पड़ा। बहुत दिनोंतक नरकके दुःख भोगकर वह मूढ़-

बुद्धि पापी विन्ध्यपर्वतपर भयंकर पिशाच हुआ। इधर, उस दुराचारी पति बिन्दुगके मर जानेपर वह मूढ़हृदया चञ्चुला बहुत समयतक पुत्रोंके साथ अपने घरमें ही रही।

एक दिन दैवयोगसे किसी पुण्य पर्वके आनेपर वह स्त्री भाई-बन्धुओंके साथ गोकर्ण-क्षेत्रमें गयी। तीर्थयात्रियोंके सङ्गसे उसने भी उस समय जाकर किसी तीर्थके जलमें स्नान किया। फिर वह साधारणतया (मेला देखनेकी दृष्टिसे) बन्धुजनोंके साथ यत्र-तत्र घूमने लगी। घूमती-घामती किसी देवमन्दिरमें गयी और वहाँ उसने एक दैवज्ञ ब्राह्मणके मुखसे भगवान् शिवकी परम पवित्र एवं मङ्गलकारिणी उत्तम पौराणिक कथा सुनी। कथावाचक ब्राह्मण कह रहे थे कि 'जो स्त्रियाँ परपुरुषोंके साथ व्यभिचार

करती हैं, वे मरनेके बाद जब यमलोकमें जाती हैं, तब यमराजके दूत उनकी योनिमें तपे हुए लोहेका परिघ डालते हैं।' पौराणिक ब्राह्मणके मुखसे यह वैराग्य बढ़ानेवाली कथा सुनकर चञ्चुला भयसे व्याकुल हो वहाँ काँपने लगी। जब कथा समाप्त हुई और सुननेवाले सब लोग वहाँसे बाहर चले गये, तब वह भयभीत नारी एकान्तमें शिवपुराणकी कथा बाँचनेवाले उन ब्राह्मण देवतासे बोली।

चञ्चुलाने कहा—ब्रह्मन्! मैं अपने धर्मको नहीं जानती थी। इसलिये मेरे द्वारा बड़ा दुराचार हुआ है। स्वामिन्! मेरे ऊपर अनुपम कृपा करके आप मेरा उद्धार कीजिये। आज आपके वैराग्य-रससे ओतप्रोत इस प्रवचनको सुनकर मुझे बड़ा भय लग रहा है। मैं काँप उठी हूँ और मुझे इस संसारसे वैराग्य हो गया है। मुझ मूढ़ चित्तवाली पापिनीको धिक्कार है। मैं सर्वथा निन्दाके योग्य हूँ। कुत्सित विषयोंमें फँसी हुई हूँ और अपने धर्मसे विमुख हो गयी हूँ। हाय! न जाने किस-किस घोर कष्टदायक दुर्गतिमें मुझे पड़ना पड़ेगा और वहाँ कौन बुद्धिमान् पुरुष कुमार्गमें मन लगानेवाली मुझ पापिनीका साथ देगा। मृत्युकालमें उन भयंकर यमदूतोंको मैं कैसे देखूँगी? जब वे बलपूर्वक मेरे गलेमें फंदे डालकर मुझे बाँधेंगे, तब मैं कैसे धीरज धारण कर सकूँगी। नरकमें जब मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े किये जायँगे, उस समय विशेष दुःख देनेवाली उस महायातनाको मैं वहाँ कैसे सहूँगी? हाय! मैं मारी गयी! मैं जल गयी! मेरा हृदय विदीर्ण हो गया और मैं सब प्रकारसे नष्ट हो गयी; क्योंकि मैं हर तरहसे पापमें ही डूबी रही हूँ। ब्रह्मन्! आप

ही मेरे गुरु, आप ही माता और आप ही पिता हैं। आपकी शरणमें आयी हुई मुझ दीन अबलाका आप ही उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये।

सूतजी कहते हैं—शौनक! इस प्रकार खेद और वैराग्यसे युक्त हुई चञ्चुला ब्राह्मण-देवताके दोनों चरणोंमें गिर पड़ी। तब उन बुद्धिमान् ब्राह्मणने कृपापूर्वक उसे उठाया और इस प्रकार कहा।

(अध्याय २-३)

☆

चञ्चुलाकी प्रार्थनासे ब्राह्मणका उसे पूरा शिवपुराण सुनाना और समयानुसार शरीर छोड़कर शिवलोकमें जा चञ्चुलाका पार्वतीजीकी सखी एवं सुखी होना

ब्राह्मण बोले—नारी! सौभाग्यकी बात है कि भगवान् शंकरकी कृपासे शिवपुराणकी इस वैराग्ययुक्त कथाको सुनकर तुम्हें समयपर चेत हो गया है। ब्राह्मणपत्नी! तुम डरो मत। भगवान् शिवकी शरणमें जाओ। शिवकी कृपासे सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। मैं तुमसे भगवान् शिवकी कीर्तिकथासे युक्त उस परम वस्तुका वर्णन करूँगा, जिससे तुम्हें सदा सुख देनेवाली उत्तम गति प्राप्त होगी। शिवकी उत्तम कथा सुननेसे ही तुम्हारी बुद्धि इस तरह पश्चात्तापसे युक्त एवं शुद्ध हो गयी है। साथ ही तुम्हारे मनमें विषयोंके प्रति वैराग्य हो गया है। पश्चात्ताप ही पाप करनेवाले पापियोंके लिये सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है। सत्पुरुषोंने सबके लिये पश्चात्तापको ही समस्त पापोंका शोधक बताया है, पश्चात्तापसे ही पापोंकी शुद्धि होती है। जो पश्चात्ताप करता है, वही वास्तवमें पापोंका प्रायश्चित्त करता है; क्योंकि सत्पुरुषोंने समस्त पापोंकी शुद्धिके लिये जैसे प्रायश्चित्तका उपदेश किया है, वह सब पश्चात्तापसे सम्पन्न हो जाता है।* जो पुरुष विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करके निर्भय हो जाता है, पर अपने कुकर्मके लिये पश्चात्ताप नहीं करता, उसे प्रायः उत्तम गति नहीं प्राप्त होती। परंतु जिसे अपने कुकृत्यपर हार्दिक पश्चात्ताप होता है, वह अवश्य उत्तम गतिका भागी होता है, इसमें संशय नहीं। इस शिवपुराणकी कथा सुननेसे जैसी चित्तशुद्धि होती है, वैसी दूसरे उपायोंसे नहीं होती। जैसे दर्पण साफ करनेपर निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार इस शिवपुराणकी कथासे चित्त अत्यन्त शुद्ध हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। मनुष्योंके शुद्धचित्तमें जगदम्बा पार्वती-सहित भगवान् शिव विराजमान रहते हैं। इससे वह विशुद्धात्मा पुरुष श्रीसाम्ब सदाशिवके पदको प्राप्त होता है। इस उत्तम कथाका श्रवण समस्त मनुष्योंके लिये कल्याणका बीज है। अतः यथोचित

---

* पश्चात्तापः पापकृतां पापानां निष्कृतिः परा। सर्वेषां वर्णितं सद्भिः सर्वपापविशोधनम्॥
पश्चात्तापेनैव शुद्धिः प्रायश्चित्तं करोति सः। यथोपदिष्टं सद्भिर्हि सर्वपापविशोधनम्॥
(शिवपुराण-माहात्म्य अ० ३ श्लोक ५-६)

(शास्त्रोक्त) मार्गसे इसकी आराधना अथवा सेवा करनी चाहिये। यह भव-बन्धनरूपी रोगका नाश करनेवाली है। भगवान् शिवकी कथाको सुनकर फिर अपने हृदयमें उसका मनन एवं निदिध्यासन करना चाहिये। इससे पूर्णतया चित्तशुद्धि हो जाती है। चित्तशुद्धि होनेसे महेश्वरकी भक्ति अपने दोनों पुत्रों (ज्ञान और वैराग्य) के साथ निश्चय ही प्रकट होती है। तत्पश्चात् महेश्वरके अनुग्रहसे दिव्य मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है। जो मुक्तिसे वञ्चित है, उसे पशु समझना चाहिये; क्योंकि उसका चित्त मायाके बन्धनमें आसक्त है। वह निश्चय ही संसारबन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता।

ब्राह्मणपत्नी! इसलिये तुम विषयोंसे मनको हटा लो और भक्तिभावसे भगवान् शंकरकी इस परम पावन कथाको सुनो—परमात्मा शंकरकी इस कथाको सुननेसे तुम्हारे चित्तकी शुद्धि होगी और इससे तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। जो निर्मल चित्तसे भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करता है, उसकी एक ही जन्ममें मुक्ति हो जाती है—यह मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ।

सूतजी कहते हैं—शौनक! इतना कहकर वे श्रेष्ठ शिवभक्त ब्राह्मण चुप हो गये। उनका हृदय करुणासे आर्द्र हो गया था। वे शुद्धचित्त महात्मा भगवान् शिवके ध्यानमें मग्न हो गये। तदनन्तर बिन्दुगकी पत्नी चञ्चुला मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी। ब्राह्मणका उक्त उपदेश सुनकर उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये थे। वह ब्राह्मणपत्नी चञ्चुला हर्षभरे हृदयसे उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके दोनों चरणोंमें गिर पड़ी और हाथ जोड़कर बोली—'मैं कृतार्थ हो गयी।' तत्पश्चात् उठकर वैराग्ययुक्त उत्तम बुद्धिवाली वह स्त्री, जो अपने पापोंके कारण आतङ्कित थी, उन महान् शिव-भक्त ब्राह्मणसे हाथ जोड़कर गद्गद वाणीमें बोली।

चञ्चुलाने कहा—ब्रह्मन्! शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! स्वामिन्! आप धन्य हैं, परमार्थदर्शी हैं और सदा परोपकारमें लगे रहते हैं। इसलिये श्रेष्ठ साधु पुरुषोंमें प्रशंसाके योग्य हैं। साधो! मैं नरकके समुद्रमें गिर रही हूँ। आप मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये। पौराणिक अर्थतत्त्वसे सम्पन्न जिस सुन्दर शिवपुराणकी कथाको सुनकर मेरे मनमें सम्पूर्ण विषयोंसे वैराग्य उत्पन्न हो गया, उसी इस शिवपुराणको सुननेके लिये इस समय मेरे मनमें बड़ी श्रद्धा हो रही है।

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर हाथ जोड़ उनका अनुग्रह पाकर चञ्चुला उस शिवपुराणकी कथाको सुननेकी इच्छा मनमें लिये उन ब्राह्मणदेवताकी सेवामें तत्पर हो वहाँ रहने लगी। तदनन्तर शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ और शुद्ध बुद्धिवाले उन ब्राह्मणदेवने उसी स्थानपर उस स्त्रीको शिवपुराणकी उत्तम कथा सुनायी। इस प्रकार उस गोकर्ण नामक महाक्षेत्रमें उन्हीं श्रेष्ठ ब्राह्मणसे उसने शिवपुराणकी वह परम उत्तम कथा सुनी, जो भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बढ़ानेवाली तथा मुक्ति देनेवाली है। उस परम उत्तम कथाको सुनकर वह ब्राह्मणपत्नी अत्यन्त कृतार्थ हो गयी। उसका चित्त शीघ्र ही शुद्ध हो गया। फिर भगवान् शिवके अनुग्रहसे उसके हृदयमें शिवके सगुणरूपका चिन्तन होने लगा। इस प्रकार उसने भगवान् शिवमें

लगी रहनेवाली उत्तम बुद्धि पाकर शिवके सच्चिदानन्दमय स्वरूपका बारंबार चिन्तन आरम्भ किया। तत्पश्चात् समयके पूरे होनेपर भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे युक्त हुई चञ्चुलाने अपने शरीरको बिना किसी कष्टके त्याग दिया! इतनेमें ही त्रिपुरशत्रु भगवान् शिवका भेजा हुआ एक दिव्य विमान द्रुत गतिसे वहाँ पहुँचा, जो उनके अपने गणोंसे संयुक्त और भाँति-भाँतिके शोभा-साधनोंसे सम्पन्न था। चञ्चुला उस विमानपर आरूढ़ हुई और भगवान् शिवके श्रेष्ठ पार्षदोंने उसे तत्काल शिवपुरीमें पहुँचा दिया। उसके सारे मल धुल गये थे। वह दिव्यरूपधारिणी दिव्याङ्गना हो गयी थी। उसके दिव्य अवयव उसकी शोभा बढ़ाते थे। मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण किये वह गौराङ्गी देवी शोभाशाली दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थी। शिवपुरीमें पहुँचकर उसने सनातन देवता त्रिनेत्रधारी महादेवजीको देखा। सभी मुख्य-मुख्य देवता उनकी सेवामें खड़े थे। गणेश, भृङ्गी, नन्दीश्वर तथा वीरभद्रेश्वर आदि उनकी सेवामें उत्तम भक्तिभावसे उपस्थित थे। उनकी अङ्गकान्ति करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रही थी। कण्ठमें नील चिह्न शोभा पाता था। पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। मस्तकपर अर्द्धचन्द्राकार मुकुट शोभा देता था। उन्होंने अपने वामाङ्ग भागमें गौरी देवीको बिठा रखा था, जो विद्युत्-पुञ्जके समान प्रकाशित थीं। गौरीपति महादेवजीकी कान्ति कपूरके समान गौर थी। उनका सारा शरीर श्वेत भस्मसे भासित था। शरीरपर श्वेत वस्त्र शोभा पा रहे थे। इस प्रकार परम उज्ज्वल भगवान् शंकरका दर्शन करके वह ब्राह्मणपत्नी चञ्चुला बहुत प्रसन्न हुई। अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर उसने बड़ी उतावलीके साथ भगवान्‌को बारंबार प्रणाम किया। फिर

हाथ जोड़कर वह बड़े प्रेम, आनन्द और संतोषसे युक्त हो विनीतभावसे खड़ी हो गयी। उसके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुओंकी अविरल धारा बहने लगी तथा सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो गया। उस समय भगवती पार्वती और भगवान् शंकरने उसे बड़ी करुणाके साथ अपने पास बुलाया और सौम्य दृष्टिसे उसकी ओर देखा। पार्वतीजीने तो दिव्यरूपधारिणी बिन्दुगप्रिया चञ्चुलाको प्रेमपूर्वक अपनी सखी बना लिया। वह उस परमानन्दघन ज्योतिःस्वरूप सनातन-धाममें अविचल निवास पाकर दिव्य सौख्यसे सम्पन्न हो अक्षय सुखका अनुभव करने लगी।

(अध्याय ४)

चञ्चुलाके प्रयत्नसे पार्वतीजीकी आज्ञा पाकर तुम्बुरुका विन्ध्यपर्वतपर शिवपुराणकी कथा सुनाकर बिन्दुगका पिशाचयोनिसे उद्धार करना तथा उन दोनों दम्पतिका शिवधाममें सुखी होना

सूतजी बोले—शौनक ! एक दिन परमानन्दमें निमग्न हुई चञ्चुलाने उमादेवीके पास जाकर प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर वह उनकी स्तुति करने लगी।

चञ्चुला बोली—गिरिराजनन्दिनी ! स्कन्दमाता उमे ! मनुष्योंने सदा आपका सेवन किया है। समस्त सुखोंको देनेवाली शम्भुप्रिये ! आप ब्रह्मस्वरूपिणी हैं। विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा सेव्य हैं। आप ही सगुणा और निर्गुणा हैं तथा आप ही सूक्ष्मा सच्चिदानन्दस्वरूपिणी आद्या प्रकृति हैं। आप ही संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली हैं। तीनों गुणोंका आश्रय भी आप ही हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीनों देवताओंका आवास-स्थान तथा उनकी उत्तम प्रतिष्ठा करनेवाली पराशक्ति आप ही हैं।

सूतजी कहते हैं—शौनक ! जिसे सद्गति प्राप्त हो चुकी थी, वह चञ्चुला इस प्रकार महेश्वरपत्नी उमाकी स्तुति करके सिर झुकाये चुप हो गयी। उसके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू उमड़ आये थे। तब करुणासे भरी हुई शंकरप्रिया भक्तवत्सला पार्वतीदेवीने चञ्चुलाको सम्बोधित करके बड़े प्रेमसे इस प्रकार कहा—

पार्वती बोलीं—सखी चञ्चुले ! सुन्दरि ! मैं तुम्हारी की हुई इस स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ। बोलो, क्या वर माँगती हो ? तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।

चञ्चुला बोली—निष्पाप गिरिराज-कुमारी ! मेरे पति बिन्दुग इस समय कहाँ हैं, उनकी कैसी गति हुई है—यह मैं नहीं जानती ! कल्याणमयी दीनवत्सले ! मैं अपने उन पतिदेवसे जिस प्रकार संयुक्त हो सकूँ, वैसा ही उपाय कीजिये। महेश्वरि ! महादेवि ! मेरे पति एक शूद्रजातीय वेश्याके प्रति आसक्त थे और पापमें ही डूबे रहते थे। उनकी मृत्यु मुझसे पहले ही हो गयी थी। न जाने वे किस गतिको प्राप्त हुए।

गिरिजा बोलीं—बेटी ! तुम्हारा बिन्दुग नामवाला पति बड़ा पापी था। उसका अन्तःकरण बड़ा ही दूषित था। वेश्याका उपभोग करनेवाला वह महामूढ़ मरनेके बाद नरकमें पड़ा अगणित वर्षोंतक नरकमें नाना प्रकारके दुःख भोगकर वह पापात्मा अपने शेष पापको भोगनेके लिये विन्ध्यपर्वतपर पिशाच हुआ है। इस समय वह पिशाच-अवस्थामें ही है और नाना प्रकारके क्लेश उठा रहा है। वह दुष्ट वहीं वायु पीकर रहता और सदा सब प्रकारके कष्ट सहता है।

सूतजी कहते हैं—शौनक ! गौरी-देवीकी यह बात सुनकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली चञ्चुला उस समय पतिके महान् दुःखसे दुःखी हो गयी। फिर मनको स्थिर करके उस ब्राह्मणपत्नीने व्यथित हृदयसे महेश्वरीको प्रणाम करके पुनः पूछा।

चञ्चुला बोली—महेश्वरि ! महादेवि ! मुझपर कृपा कीजिये और दूषित कर्म करनेवाले मेरे उस दुष्ट पतिका अब उद्धार कर दीजिये। देवि ! कुत्सित बुद्धिवाले मेरे

उस पापात्मा पतिको किस उपायसे उत्तम गति प्राप्त हो सकती है, यह शीघ्र बताइये। आपको नमस्कार है।

पार्वतीने कहा—तुम्हारा पति यदि शिव-पुराणकी पुण्यमयी उत्तम कथा सुने तो सारी दुर्गतिको पार करके वह उत्तम गतिका भागी हो सकता है।

अमृतके समान मधुर अक्षरोंसे युक्त गौरीदेवीका यह वचन आदरपूर्वक सुनकर चञ्चुलाने हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया और अपने पतिके समस्त पापोंकी शुद्धि तथा उत्तम गतिकी प्राप्तिके लिये पार्वतीदेवीसे यह प्रार्थना की कि 'मेरे पतिको शिवपुराण सुनानेकी व्यवस्था होनी चाहिये' उस ब्राह्मणपत्नीके बारंबार प्रार्थना करनेपर शिवप्रिया गौरीदेवीको बड़ी दया आयी। उन भक्तवत्सला महेश्वरी गिरिराजकुमारीने भगवान् शिवकी उत्तम कीर्तिका गान करनेवाले गन्धर्वराज तुम्बुरुको बुलाकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार कहा—'तुम्बुरो ! तुम्हारी भगवान् शिवमें प्रीति है। तुम मेरे मनकी बातोंको जानकर मेरे अभीष्ट कार्योंको सिद्ध करनेवाले हो। इसलिये मैं तुमसे एक बात कहती हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी इस सखीके साथ शीघ्र ही विन्ध्यपर्वतपर जाओ। वहाँ एक महाघोर और भयंकर पिशाच रहता है। उसका वृत्तान्त तुम आरम्भसे ही सुनो। मैं तुमसे प्रसन्नतापूर्वक सब कुछ बताती हूँ। पूर्व जन्ममें वह पिशाच बिन्दुग नामक ब्राह्मण था। मेरी इस सखी चञ्चुलाका पति था। परंतु वह दुष्ट वेश्यागामी हो गया। स्नान-संध्या आदि नित्यकर्म छोड़कर

अपवित्र रहने लगा। क्रोधके कारण उसकी बुद्धिपर मूढ़ता छा गयी थी—वह कर्तव्याकर्तव्यका विवेक नहीं कर पाता था। अभक्ष्यभक्षण, सज्जनोंसे द्वेष और दूषित वस्तुओंका दान लेना—यही उसका स्वाभाविक कर्म बन गया था। वह अस्त्र-शस्त्र लेकर हिंसा करता, बायें हाथसे खाता, दीनोंको सताता और क्रूरतापूर्वक पराये घरोंमें आग लगा देता था। चाण्डालोंसे प्रेम करता और प्रतिदिन वेश्याके सम्पर्कमें रहता था। बड़ा दुष्ट था। वह पापी अपनी पत्नीका परित्याग करके दुष्टोंके सङ्गमें ही आनन्द मानता था। वह मृत्युपर्यन्त दुराचारमें ही फँसा रहा। फिर अन्तकाल आनेपर उसकी मृत्यु हो गयी। वह पापियोंके भोगस्थान घोर यमपुरमें गया और वहाँ बहुत-से नरकोंका उपभोग करके वह दुष्टात्मा जीव इस समय विन्ध्यपर्वतपर पिशाच बना हुआ है। वहीं

वह दुष्ट पिशाच अपने पापोंका फल भोग रहा है। तुम उसके आगे यत्नपूर्वक शिवपुराणकी उस दिव्य कथाका प्रवचन करो, जो परम पुण्यमयी तथा समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। शिवपुराणकी कथाका श्रवण सबसे उत्कृष्ट पुण्यकर्म है। उससे उसका हृदय शीघ्र ही समस्त पापोंसे शुद्ध हो जायगा और वह प्रेतयोनिका परित्याग कर देगा। उस दुर्गतिसे मुक्त होनेपर बिन्दुग नामक पिशाचको मेरी आज्ञासे विमानपर बिठाकर तुम भगवान् शिवके समीप ले आओ।'

सूतजी कहते हैं—शौनक! महेश्वरी उमाके इस प्रकार आदेश देनेपर गन्धर्वराज तुम्बुरु मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने भाग्यकी सराहना की। तत्पश्चात् उस पिशाचकी सती-साध्वी पत्नी चञ्चुलाके साथ विमानपर बैठकर नारदके प्रिय मित्र तुम्बुरु वेगपूर्वक विन्ध्याचल पर्वतपर गये, जहाँ वह पिशाच रहता था। वहाँ उन्होंने उस पिशाचको देखा। उसका शरीर विशाल था। ठोढ़ी बहुत बड़ी थी। वह कभी हँसता, कभी रोता और कभी उछलता था। उसकी आकृति बड़ी विकराल थी। भगवान् शिवकी उत्तम कीर्तिका गान करनेवाले महाबली तुम्बुरुने उस अत्यन्त भयंकर पिशाचको पाशोंद्वारा बाँध लिया। तदनन्तर तुम्बुरुने शिवपुराणकी कथा बाँचनेका निश्चय करके महोत्सवयुक्त स्थान और मण्डप आदिकी रचना की। इतनेमें ही सम्पूर्ण लोकोंमें बड़े वेगसे यह प्रचार हो गया कि देवी पार्वतीकी आज्ञासे एक पिशाचका उद्धार करनेके उद्देश्यसे शिवपुराणकी उत्तम कथा सुनानेके लिये तुम्बुरु विन्ध्यपर्वतपर गये हैं। फिर तो उस कथाको सुननेके लोभसे बहुत-से देवर्षि भी शीघ्र ही वहाँ जा पहुँचे। आदरपूर्वक शिवपुराण सुननेके लिये आये हुए लोगोंका उस पर्वतपर बड़ा अद्भुत और कल्याणकारी समाज जुट गया। फिर तुम्बुरुने उस पिशाचको पाशोंसे बाँधकर आसनपर बिठाया और हाथमें वीणा लेकर गौरी-

पतिकी कथाका गान आरम्भ किया। पहली अर्थात् विद्येश्वरसंहितासे लेकर सातवीं वायुसंहितातक माहात्म्यसहित शिवपुराणकी कथाका उन्होंने स्पष्ट वर्णन किया। सातों संहिताओंसहित शिवपुराणका आदरपूर्वक श्रवण करके वे सभी श्रोता पूर्णतः कृतार्थ हो गये। उस परम पुण्यमय शिवपुराणको सुनकर उस पिशाचने अपने सारे पापोंको धोकर उस पैशाचिक शरीरको त्याग दिया। फिर तो शीघ्र ही उसका रूप दिव्य हो गया। अङ्गकान्ति गौरवर्णकी हो गयी। शरीरपर श्वेत वस्त्र तथा सब प्रकारके पुरुषोचित

आभूषण उसके अङ्गोंको उद्भासित करने लगे। वह त्रिनेत्रधारी चन्द्रशेखररूप हो गया। इस प्रकार दिव्य देहधारी होकर श्रीमान् बिन्दुग अपनी प्राणवल्लभा चञ्चुलाके साथ स्वयं भी पार्वतीवल्लभ भगवान् शिवका गुणगान करने लगा। उसकी स्त्रीको इस प्रकार दिव्य रूपसे सुशोभित देख वे सभी देवर्षि बड़े विस्मित हुए। उनका चित्त परमानन्दसे परिपूर्ण हो गया। भगवान् महेश्वरका वह अद्भुत चरित्र सुनकर वे सभी श्रोता परम कृतार्थ हो प्रेमपूर्वक श्रीशिवका यशोगान करते हुए अपने-अपने धामको चले गये। दिव्यरूपधारी श्रीमान् बिन्दुग भी सुन्दर विमानपर अपनी प्रियतमाके पास बैठकर सुखपूर्वक आकाशमें स्थित हो बड़ी शोभा पाने लगा।

तदनन्तर महेश्वरके सुन्दर एवं मनोहर गुणोंका गान करता हुआ वह अपनी प्रियतमा तथा तुम्बुरुके साथ शीघ्र ही शिवधाममें जा पहुँचा। वहाँ भगवान् महेश्वर तथा पार्वती देवीने प्रसन्नतापूर्वक बिन्दुगका बड़ा सत्कार किया और उसे अपना पार्षद बना लिया। उसकी पत्नी चञ्चुला पार्वतीजीकी सखी हो गयी। उस घनीभूत ज्योतिःस्वरूप परमानन्दमय सनातनधाममें अविचल निवास पाकर वे दोनों दम्पति परम सुखी हो गये। (अध्याय ५)

☆

शिवपुराणके श्रवणकी विधि तथा श्रोताओंके पालन करनेयोग्य नियमोंका वर्णन

शौनकजी कहते हैं—महाप्राज्ञ व्यासशिष्य सूतजी! आपको नमस्कार है। आप धन्य हैं, शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ हैं। आपके महान् गुण वर्णन करने योग्य हैं। अब आप कल्याणमय शिवपुराणके श्रवणकी विधि बतलाइये, जिससे सभी श्रोताओंको सम्पूर्ण उत्तम फलकी प्राप्ति हो सके।

सूतजीने कहा—मुने शौनक! अब मैं तुम्हें सम्पूर्ण फलकी प्राप्तिके लिये शिवपुराणके श्रवणकी विधि बता रहा हूँ। पहले किसी ज्योतिषीको बुलाकर दानमानसे संतुष्ट करके अपने सहयोगी लोगोंके साथ बैठकर बिना किसी विघ्नबाधाके कथाकी समाप्ति होनेके उद्देश्यसे शुद्ध मुहूर्तका अनुसंधान कराये और प्रयत्नपूर्वक देश-देशमें—स्थान-स्थानपर यह संदेश भेजे कि 'हमारे यहाँ शिवपुराणकी कथा होनेवाली है। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको उसे सुननेके लिये अवश्य पधारना चाहिये।' कुछ लोग भगवान् श्रीहरिकी कथासे बहुत दूर पड़ गये हैं। कितने ही स्त्री, शूद्र आदि भगवान् शंकरके कथा-कीर्तनसे वञ्चित रहते हैं। उन सबको भी सूचना हो जाय, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये। देश-देशमें जो भगवान् शिवके भक्त हों तथा शिव-कथाके कीर्तन और श्रवणके लिये उत्सुक हों, उन सबको आदरपूर्वक बुलवाना चाहिये और आये हुए लोगोंका सब प्रकारसे आदर-सत्कार करना चाहिये। शिव-मन्दिरमें, तीर्थमें, वनप्रान्तमें अथवा घरमें शिवपुराणकी कथा सुननेके लिये उत्तम स्थानका निर्माण करना चाहिये। केलेके

खम्भोंसे सुशोभित एक ऊँचा कथामण्डप तैयार कराये। उसे सब ओर फल-पुष्प आदिसे तथा सुन्दर चँदोवेसे अलंकृत करे और चारों ओर ध्वजा-पताका लगाकर तरह-तरहके सामानोंसे सजाकर सुन्दर शोभासम्पन्न बना दे। भगवान् शिवके प्रति सब प्रकारसे उत्तम भक्ति करनी चाहिये। वही सब तरहसे आनन्दका विधान करनेवाली है। परमात्मा भगवान् शंकरके लिये दिव्य आसनका निर्माण करना चाहिये तथा कथा-वाचकके लिये भी एक ऐसा दिव्य आसन बनाना चाहिये, जो उनके लिये सुखद हो सके। मुने! नियमपूर्वक कथा सुननेवाले श्रोताओंके लिये भी यथायोग्य सुन्दर स्थानोंकी व्यवस्था करनी चाहिये। अन्य लोगोंके लिये साधारण स्थान ही रखने चाहिये। जिसके मुखसे निकली हुई वाणी देहधारियोंके लिये कामधेनुके समान अभीष्ट फल देनेवाली होती है, उस पुराणवेत्ता विद्वान् वक्ताके प्रति तुच्छबुद्धि कभी नहीं करनी चाहिये। संसारमें जन्म तथा गुणोंके कारण बहुत-से गुरु होते हैं। परंतु उन सबमें पुराणोंका ज्ञाता विद्वान् ही परम गुरु माना गया है। पुराणवेत्ता पवित्र, दक्ष, शान्त, ईर्ष्यापर विजय पानेवाला, साधु और दयालु होना चाहिये। ऐसा प्रवचन-कुशल विद्वान् इस पुण्यमयी कथाको कहे। सूर्योदयसे आरम्भ करके साढ़े तीन पहर-तक उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् पुरुषको शिवपुराणकी कथा सम्यक् रीतिसे बाँचनी चाहिये। मध्याह्नकालमें दो घड़ीतक कथा बंद रखनी चाहिये, जिससे कथा-कीर्तनसे अवकाश पाकर लोग मल-मूत्रका त्याग कर सकें।

कथा-प्रारम्भके दिनसे एक दिन पहले व्रत ग्रहण करनेके लिये वक्ताको क्षौर करा लेना चाहिये। जिन दिनों कथा हो रही हो, उन दिनों प्रयत्नपूर्वक प्रातःकालका सारा नित्यकर्म संक्षेपसे ही कर लेना चाहिये। वक्ताके पास उसकी सहायताके लिये एक दूसरा वैसा ही विद्वान् स्थापित करना चाहिये। वह भी सब प्रकारके संशयोंको निवृत्त करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल हो। कथामें आनेवाले विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये गणेशजीका पूजन करे। कथाके स्वामी भगवान् शिवकी तथा विशेषतः शिवपुराणकी पुस्तककी भक्तिभावसे पूजा करे। तत्पश्चात् उत्तम बुद्धिवाला श्रोता तन-मनसे शुद्ध एवं प्रसन्नचित्त हो आदरपूर्वक शिवपुराणकी कथा सुने। जो वक्ता और श्रोता अनेक प्रकारके कर्मोंमें भटक रहे हों, काम आदि छः विकारोंसे युक्त हों, स्त्रीमें आसक्ति रखते हों और पाखण्डपूर्ण बातें कहते हों, वे पुण्यके भागी नहीं होते। जो लौकिक चिन्ता तथा धन, गृह एवं पुत्र आदिकी चिन्ताको छोड़कर कथामें मन लगाये रहते हैं, उन शुद्धबुद्धि पुरुषोंको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जो श्रोता श्रद्धा और भक्तिसे युक्त होते हैं, दूसरे कर्मोंमें मन नहीं लगाते और मौन, पवित्र एवं उद्वेगशून्य होते हैं, वे ही पुण्यके भागी होते हैं।

सूतजी बोले—शौनक! अब शिवपुराण सुननेका व्रत लेनेवाले पुरुषोंके लिये जो नियम हैं, उन्हें भक्तिपूर्वक सुनो। नियमपूर्वक इस श्रेष्ठ कथाको सुननेसे बिना किसी विघ्न-बाधाके उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जो लोग दीक्षासे रहित हैं, उनका

कथा-श्रवणमें अधिकार नहीं है। अतः मुने! कथा सुननेकी इच्छावाले सब लोगोंको पहले वक्तासे दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जो लोग नियमसे कथा सुनें, उनको ब्रह्मचर्यसे रहना, भूमिपर सोना, पत्तलमें खाना और प्रतिदिन कथा समाप्त होनेपर ही अन्न ग्रहण करना चाहिये। जिसमें शक्ति हो, वह पुराणकी समाप्तितक उपवास करके शुद्धतापूर्वक भक्तिभावसे उत्तम शिवपुराणको सुने। इस कथाका व्रत लेनेवाले पुरुषको प्रतिदिन एक ही बार हविष्यान्न भोजन करना चाहिये। जिस प्रकारसे कथा-श्रवणका नियम सुखपूर्वक सध सके, वैसे ही करना चाहिये। गरिष्ठ अन्न, दाल, जला अन्न, सेम, मसूर, भावदूषित तथा बासी अन्नको खाकर कथा-व्रती पुरुष कभी कथाको न सुने। जिसने कथाका व्रत ले रखा हो, वह पुरुष प्याज, लहसुन, हींग, गाजर, मादक वस्तु तथा आमिष कही जानेवाली वस्तुओंको त्याग दे। कथाका व्रत लेनेवाला पुरुष काम, क्रोध आदि छः विकारोंको, ब्राह्मणोंकी निन्दाको तथा पतिव्रता और साधु-संतोंकी निन्दाको भी त्याग दे। कथाव्रती पुरुष प्रतिदिन सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय तथा हार्दिक उदारता—इन सद्गुणोंको सदा अपनाये रहे। श्रोता निष्काम हो या सकाम, वह नियमपूर्वक कथा सुने। सकाम पुरुष अपनी अभीष्ट कामनाको प्राप्त करता है और निष्काम पुरुष मोक्ष पा लेता है। दरिद्र, क्षयका रोगी, पापी, भाग्यहीन तथा संतानरहित पुरुष भी इस उत्तम कथाको सुने। काक-वन्ध्या आदि जो सात प्रकारकी दुष्टा स्त्रियाँ हैं, वे तथा जिसका गर्भ गिर जाता हो, वह—इन सभीको शिवपुराणकी उत्तम कथा सुननी चाहिये। मुने! स्त्री हो या पुरुष—सबको यत्नपूर्वक विधि-विधानसे शिवपुराणकी यह उत्तम कथा सुननी चाहिये।

महर्षे! इस तरह शिवपुराणकी कथाके पाठ एवं श्रवण-सम्बन्धी यज्ञोत्सवकी समाप्ति होनेपर श्रोताओंको भक्ति एवं प्रयत्नपूर्वक भगवान् शिवकी पूजाकी भाँति पुराण-पुस्तककी भी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर विधिपूर्वक वक्ताका भी पूजन करना आवश्यक है। पुस्तकको आच्छादित करनेके लिये नवीन एवं सुन्दर बस्ता बनावे और उसे बाँधनेके लिये दृढ़ एवं दिव्य डोरी लगावे। फिर उसका विधिवत् पूजन करे। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार महान् उत्सवके साथ पुस्तक और वक्ताकी विधिवत् पूजा करके वक्ताकी सहायताके लिये स्थापित हुए पण्डितका भी उसीके अनुसार धन आदिके द्वारा उससे कुछ ही कम सत्कार करे। वहाँ आये हुए ब्राह्मणोंको अन्न-धन आदिका दान करे। साथ ही गीत, वाद्य और नृत्य आदिके द्वारा महान् उत्सव रचाये। मुने! यदि श्रोता विरक्त हो तो उसके लिये कथासमाप्तिके दिन विशेषरूपसे उस गीताका पाठ करना चाहिये, जिसे श्रीरामचन्द्रजीके प्रति भगवान् शिवने कहा था। यदि श्रोता गृहस्थ हो तो उस बुद्धिमान्‌को उस श्रवण-कर्मकी शान्तिके लिये शुद्ध हविष्यके द्वारा होम करना चाहिये। मुने! रुद्रसंहिताके प्रत्येक श्लोकद्वारा होम करना उचित है अथवा गायत्री-मन्त्रसे होम करना चाहिये; क्योंकि वास्तवमें यह पुराण गायत्रीमय ही है।

अथवा शिवपञ्चाक्षर मूलमन्त्रसे हवन करना उचित है। होम करनेकी शक्ति न हो तो विद्वान् पुरुष यथाशक्ति हवनीय हविष्यका ब्राह्मणको दान करे। न्यूनातिरिक्ततारूप दोषकी शान्तिके लिये भक्तिपूर्वक शिवसहस्रनामका पाठ अथवा श्रवण करे। इससे सब कुछ सफल होता है, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि तीनों लोकोंमें उससे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। कथाश्रवणसम्बन्धी व्रतकी पूर्णताकी सिद्धिके लिये ग्यारह ब्राह्मणोंको मधुमिश्रित खीर भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा दे। मुने! यदि शक्ति हो तो तीन तोले सोनेका एक सुन्दर सिंहासन बनवाये और उसपर उत्तम अक्षरोंमें लिखी अथवा लिखायी हुई शिवपुराणकी पोथी विधिपूर्वक स्थापित करे। तत्पश्चात् पुरुष उसकी आवाहन आदि विविध उपचारोंसे पूजा करके दक्षिणा चढ़ाये। फिर जितेन्द्रिय आचार्यका वस्त्र, आभूषण एवं गन्ध आदिसे पूजन करके दक्षिणासहित वह पुस्तक उन्हें समर्पित कर दे। उत्तम बुद्धिवाला श्रोता इस प्रकार भगवान् शिवके संतोषके लिये पुस्तकका दान करे। शौनक! इस पुराणके उस दानके प्रभावसे भगवान् शिवका अनुग्रह पाकर पुरुष भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। इस तरह विधि-विधानका पालन करनेपर श्रीसम्पन्न शिवपुराण सम्पूर्ण फलको देनेवाला तथा भोग और मोक्षका दाता होता है।

मुने! शिवपुराणका यह सारा माहात्म्य, जो सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाला है, मैंने तुम्हें कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते हो? श्रीमान् शिवपुराण समस्त पुराणोंके भालका तिलक माना गया है। यह भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय, रमणीय तथा भवरोगका निवारण करनेवाला है। जो सदा भगवान् शिवका ध्यान करते हैं, जिनकी वाणी शिवके गुणोंकी स्तुति करती है और जिनके दोनों कान उनकी कथा सुनते हैं, इस जीव-जगत्‌में उन्हींका जन्म लेना सफल है। वे निश्चय ही संसारसागरसे पार हो जाते हैं।* भिन्न-भिन्न प्रकारके समस्त गुण जिनके सच्चिदानन्दमय स्वरूपका कभी स्पर्श नहीं करते, जो अपनी महिमासे जगत्‌के बाहर और भीतर भासमान हैं तथा जो मनके बाहर और भीतर वाणी एवं मनोवृत्तिरूपमें प्रकाशित होते हैं, उन अनन्त आनन्दघनरूप परम शिवकी मैं शरण लेता हूँ। (अध्याय ६-७)

☆

* ते जन्मभाजः खलु जीवलोके ये वै सदा ध्यायन्ति विश्वनाथम्।
वाणी गुणान् स्तौति कथां शृणोति श्रोत्रद्वयं ते भवमुत्तरन्ति॥

श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय नमः

श्रीगणेशाय नमः

श्रीशिवमहापुराण

विद्येश्वरसंहिता

प्रयागमें सूतजीसे मुनियोंका तुरंत पापनाश करनेवाले साधनके विषयमें प्रश्न

आद्यन्तमङ्गलमजातसमानभाव-
मार्यं तमीशमजरामरमात्मदेवम्।
पञ्चाननं प्रबलपञ्चविनोदशीलं
सम्भावये मनसि शंकरमम्बिकेशम्॥

जो आदि और अन्तमें (तथा मध्यमें भी) नित्य मङ्गलमय हैं, जिनकी समानता अथवा तुलना कहीं भी नहीं है, जो आत्माके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले देवता (परमात्मा) हैं, जिनके पाँच मुख हैं और जो खेल-ही-खेलमें—अनायास जगत्‌की रचना, पालन और संहार तथा अनुग्रह एवं तिरोभावरूप पाँच प्रबल कर्म करते रहते हैं, उन सर्वश्रेष्ठ *अजर-अमर* ईश्वर अम्बिकापति भगवान् शंकरका मैं मन-ही-मन चिन्तन करता हूँ।

व्यासजी कहते हैं—जो धर्मका महान् क्षेत्र है और जहाँ गङ्गा-यमुनाका संगम हुआ है, उस परम पुण्यमय प्रयागमें, जो ब्रह्मलोकका मार्ग है, सत्यव्रतमें तत्पर रहनेवाले महातेजस्वी महाभाग महात्मा मुनियोंने एक विशाल ज्ञानयज्ञका आयोजन किया। उस ज्ञानयज्ञका समाचार सुनकर पौराणिक-शिरोमणि व्यास-शिष्य महामुनि सूतजी वहाँ मुनियोंका दर्शन करनेके लिये आये। सूतजीको आते देख वे सब मुनि उस समय हर्षसे खिल उठे और अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे उन्होंने उनका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् उन प्रसन्न महात्माओंने उनकी विधिवत् स्तुति करके विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहा—

'सर्वज्ञ विद्वान् रोमहर्षणजी! आपका भाग्य बड़ा भारी है, इसीसे आपने व्यासजीके मुखसे अपनी प्रसन्नताके लिये ही सम्पूर्ण पुराणविद्या प्राप्त की। इसलिये आप आश्चर्यस्वरूप कथाओंके भण्डार हैं—ठीक उसी तरह, जैसे रत्नाकर समुद्र बड़े-बड़े सारभूत रत्नोंका आगार है। तीनों लोकोंमें भूत, वर्तमान और भविष्य तथा और भी जो कोई वस्तु है, वह आपसे अज्ञात नहीं है। आप हमारे सौभाग्यसे इस यज्ञका दर्शन करनेके लिये यहाँ पधार गये हैं और इसी व्याजसे हमारा कुछ कल्याण करनेवाले हैं; क्योंकि आपका आगमन निरर्थक नहीं हो सकता। हमने पहले भी आपसे शुभाशुभ तत्त्वका पूरा-पूरा वर्णन सुना है; किंतु उससे तृप्ति नहीं होती, हमें उसे सुननेकी बारंबार इच्छा होती है।

उत्तम बुद्धिवाले सूतजी! इस समय हमें एक ही बात सुननी है। यदि आपका अनुग्रह हो तो गोपनीय होनेपर भी आप उस विषयका

वर्णन करें। घोर कलियुग आनेपर मनुष्य पुण्यकर्मसे दूर रहेंगे, दुराचारमें फँस जायँगे और सब-के-सब सत्य-भाषणसे मुँह फेर लेंगे, दूसरोंकी निन्दामें तत्पर होंगे। पराये धनको हड़प लेनेकी इच्छा करेंगे। उनका मन परायी स्त्रियोंमें आसक्त होगा तथा वे दूसरे प्राणियोंकी हिंसा किया करेंगे। अपने शरीरको ही आत्मा समझेंगे। मूढ़, नास्तिक और पशुबुद्धि रखनेवाले होंगे, माता-पितासे द्वेष रखेंगे। ब्राह्मण लोभरूपी ग्राहके ग्रास बन जायँगे। वेद बेचकर जीविका चलायेंगे। धनका उपार्जन करनेके लिये ही विद्याका अभ्यास करेंगे और मदसे मोहित रहेंगे। अपनी जातिके कर्म छोड़ देंगे। प्रायः दूसरोंको ठगेंगे, तीनों कालकी संध्योपासनासे दूर रहेंगे और ब्रह्मज्ञानसे शून्य होंगे। समस्त क्षत्रिय भी स्वधर्मका त्याग करनेवाले होंगे। कुसंगी, पापी और व्यभिचारी होंगे। उनमें शौर्यका अभाव होगा। वे कुत्सित चौर्य-कर्मसे जीविका चलायेंगे, शूद्रोंका-सा बर्ताव करेंगे और उनका चित्त कामका किंकर बना रहेगा। वैश्य संस्कार-भ्रष्ट, स्वधर्मत्यागी, कुमार्गी, धनोपार्जन-परायण तथा नाप-तौलमें अपनी कुत्सित वृत्तिका परिचय देनेवाले होंगे। इसी तरह शूद्र ब्राह्मणोंके आचारमें तत्पर होंगे उनकी आकृति उज्ज्वल होगी अर्थात् वे अपना कर्म-धर्म छोड़कर उज्ज्वल वेश-भूषासे विभूषित हो व्यर्थ घूमेंगे। वे स्वभावतः ही अपने धर्मका त्याग करनेवाले होंगे। उनके विचार धर्मके प्रतिकूल होंगे। वे कुटिल और द्विजनिन्दक होंगे। यदि धनी हुए तो कुकर्ममें लग जायँगे। विद्वान् हुए तो वाद-विवाद करनेवाले होंगे। अपनेको कुलीन मानकर चारों वर्णोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करेंगे, समस्त वर्णोंको अपने सम्पर्कसे भ्रष्ट करेंगे। वे लोग अपनी अधिकार-सीमासे बाहर जाकर द्विजोचित सत्कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले होंगे। कलियुगकी स्त्रियाँ प्रायः सदाचारसे भ्रष्ट और पतिका अपमान करनेवाली होंगी। सास-ससुरसे द्रोह करेंगी। किसीसे भय नहीं मानेंगी। मलिन भोजन करेंगी। कुत्सित हाव-भावमें तत्पर होंगी। उनका शील-स्वभाव बहुत बुरा होगा और वे अपने पतिकी सेवासे सदा ही विमुख रहेंगी। सूतजी ! इस तरह जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी है, जिन्होंने अपने धर्मका त्याग कर दिया है, ऐसे लोगोंको इहलोक और परलोकमें उत्तम गति कैसे प्राप्त होगी—इसी चिन्तासे हमारा मन सदा व्याकुल रहता है। परोपकारके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है। अतः जिस छोटे-से उपायसे इन सबके पापोंका तत्काल नाश हो जाय, उसे इस समय कृपापूर्वक बताइये; क्योंकि आप समस्त सिद्धान्तोंके ज्ञाता हैं।

व्यासजी कहते हैं—उन भावितात्मा मुनियोंकी यह बात सुनकर सूतजी मन-ही-मन भगवान् शंकरका स्मरण करके उनसे इस प्रकार बोले— (अध्याय १)

☆

शिवपुराणका परिचय

सूतजी कहते हैं—साधु महात्माओ ! आपने बहुत अच्छी बात पूछी है। आपका

यह ग्रन्थ तीनों लोकोंका हित करनेवाला है। मैं गुरुदेव व्यासका स्मरण करके आपलोगोंके स्नेहवश इस विषयका वर्णन करूँगा। आप आदरपूर्वक सुनें। सबसे उत्तम जो शिवपुराण है, वह वेदान्तका सारसर्वस्व है तथा वक्ता और श्रोताका समस्त पापराशियोंसे उद्धार करनेवाला है। इतना ही नहीं, वह परलोकमें परमार्थ वस्तुको देनेवाला है, कलिकी कल्मषराशिका विनाश करनेवाला है। उसमें भगवान् शिवके उत्तम यशका वर्णन है। ब्राह्मणो! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला वह पुराण सदा ही अपने प्रभावकी दृष्टिसे वृद्धि या विस्तारको प्राप्त हो रहा है। विप्रवरो! उस सर्वोत्तम शिवपुराणके अध्ययनमात्रसे वे कलियुगके पापासक्त जीव श्रेष्ठतम गतिको प्राप्त हो जायँगे। कलियुगके महान् उत्पात तभीतक जगत्‌में निर्भय होकर विचरेंगे, जबतक यहाँ शिवपुराणका उदय नहीं होगा। इसे वेदके तुल्य माना गया है। इस वेदकल्प पुराणका सबसे पहले भगवान् शिवने ही प्रणयन किया था। विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता, मातृसंहिता, एकादशरुद्रसंहिता, कैलाससंहिता, शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, सहस्रकोटिरुद्रसंहिता, वायवीयसंहिता तथा धर्मसंहिता—इस प्रकार इस पुराणके बारह भेद या खण्ड हैं। ये बारह संहिताएँ अत्यन्त पुण्यमयी मानी गयी हैं। ब्राह्मणो! अब मैं उनके श्लोकोंकी संख्या बता रहा हूँ। आपलोग वह सब आदरपूर्वक सुनें। विद्येश्वरसंहितामें दस हजार श्लोक हैं। रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता और मातृसंहिता—इनमेंसे प्रत्येकमें आठ-आठ हजार श्लोक हैं। ब्राह्मणो! एकादशरुद्रसंहितामें तेरह हजार, कैलाससंहितामें छः हजार, शतरुद्रसंहितामें तीन हजार, कोटिरुद्रसंहितामें नौ हजार, सहस्रकोटिरुद्रसंहितामें ग्यारह हजार, वायवीयसंहितामें चार हजार तथा धर्मसंहितामें बारह हजार श्लोक हैं। इस प्रकार मूल शिवपुराणकी श्लोकसंख्या एक लाख है। परंतु व्यासजीने उसे चौबीस हजार श्लोकोंमें संक्षिप्त कर दिया है। पुराणोंकी क्रमसंख्याके विचारसे इस शिवपुराणका स्थान चौथा है। इसमें सात संहिताएँ हैं।

पूर्वकालमें भगवान् शिवने श्लोक-संख्याकी दृष्टिसे सौ करोड़ श्लोकोंका एक ही पुराणग्रन्थ ग्रथित किया था। सृष्टिके आदिमें निर्मित हुआ वह पुराण-साहित्य अत्यन्त विस्तृत था। फिर द्वापर आदि युगोंमें द्वैपायन (व्यास) आदि महर्षियोंने जब पुराणका अठारह भागोंमें विभाजन कर दिया, उस समय सम्पूर्ण पुराणोंका संक्षिप्त स्वरूप केवल चार लाख श्लोकोंका रह गया। उस समय उन्होंने शिवपुराणका चौबीस हजार श्लोकोंमें प्रतिपादन किया। यही इसके श्लोकोंकी संख्या है। यह वेदतुल्य पुराण सात संहिताओंमें बँटा हुआ है। इसकी पहली संहिताका नाम विद्येश्वर-संहिता है, दूसरी रुद्रसंहिता समझनी चाहिये, तीसरीका नाम शतरुद्रसंहिता, चौथीका कोटिरुद्रसंहिता, पाँचवींका उमासंहिता, छठीका कैलाससंहिता और सातवींका नाम वायवीयसंहिता है। इस प्रकार ये सात संहिताएँ मानी गयी हैं। इन सात संहिताओंसे युक्त दिव्य शिवपुराण वेदके

और भक्तिसे देवताका कृपाप्रसाद प्राप्त होता है—ठीक उसी तरह, जैसे यहाँ अङ्कुरसे बीज और बीजसे अङ्कुर पैदा होता है। इसलिये तुम सब ब्रह्मर्षि भगवान् शंकरका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये भूतलपर जाकर वहाँ सहस्रों वर्षोंतक चालू रहनेवाले एक विशाल यज्ञका आयोजन करो। इन यज्ञपति भगवान् शिवकी ही कृपासे वेदोक्त विद्याके सारभूत साध्य-साधनका ज्ञान होता है।

शिवपदकी प्राप्ति ही साध्य है। उनकी सेवा ही साधन है तथा उनके प्रसादसे जो नित्य-नैमित्तिक आदि फलोंकी ओरसे निःस्पृह होता है, वही साधक है। वेदोक्त कर्मका अनुष्ठान करके उसके महान् फलको भगवान् शिवके चरणोंमें समर्पित कर देना ही परमेश्वरपदकी प्राप्ति है। वही सालोक्य आदिके क्रमसे प्राप्त होनेवाली मुक्ति है। उन-उन पुरुषोंकी भक्तिके अनुसार उन सबको उत्कृष्ट फलकी प्राप्ति होती है। उस भक्तिके साधन अनेक प्रकारके हैं, जिनका साक्षात् महेश्वरने ही प्रतिपादन किया है। उनमेंसे सारभूत साधनको संक्षिप्त करके मैं बता रहा हूँ। कानसे भगवान्‌के नाम-गुण और लीलाओंका श्रवण, वाणीद्वारा उनका कीर्तन तथा मनके द्वारा उनका मनन—इन तीनोंको महान् साधन कहा गया है।* तात्पर्य यह कि महेश्वरका श्रवण, कीर्तन और मनन करना चाहिये—यह श्रुतिका वाक्य हम सबके लिये प्रमाणभूत है। इसी साधनसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिमें लगे हुए आपलोग परम साध्यको प्राप्त हों। लोग प्रत्यक्ष वस्तुको आँखसे देखकर उसमें प्रवृत्त होते हैं। परंतु जिस वस्तुका कहीं भी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता, उसे श्रवणेन्द्रियद्वारा जान-सुनकर मनुष्य उसकी प्राप्तिके लिये चेष्टा करता है। अतः पहला साधन श्रवण ही है। उसके द्वारा गुरुके मुखसे तत्त्वको सुनकर श्रेष्ठ बुद्धिवाला विद्वान् पुरुष अन्य साधन-कीर्तन एवं मननकी सिद्धि करे। क्रमशः मननपर्यन्त इस साधनकी अच्छी तरह साधना कर लेनेपर उसके द्वारा सालोक्य आदिके क्रमसे धीरे-धीरे भगवान् शिवका संयोग प्राप्त होता है। पहले सारे अङ्गोंके रोग नष्ट हो जाते हैं। फिर सब प्रकारका लौकिक आनन्द भी विलीन हो जाता है।

भगवान् शंकरकी पूजा, उनके नामोंके जप तथा उनके गुण, रूप, विलास और नामोंका युक्तिपरायण चित्तके द्वारा जो निरन्तर परिशोधन या चिन्तन होता है, उसीको मनन कहा गया है; वह महेश्वरकी कृपादृष्टिसे उपलब्ध होता है। उसे समस्त श्रेष्ठ साधनोंमें प्रधान या प्रमुख कहा गया है।

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो! इस साधनका माहात्म्य बतानेके प्रसङ्गमें मैं आपलोगोंके लिये एक प्राचीन वृत्तान्तका वर्णन करूँगा, उसे ध्यान देकर आप सुनें। पहलेकी बात है, पराशर मुनिके पुत्र मेरे गुरु व्यासदेवजी सरस्वती नदीके सुन्दर तटपर तपस्या कर रहे थे। एक दिन सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानसे यात्रा करते हुए भगवान् सनत्कुमार अकस्मात् वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने

* श्रोत्रेण श्रवणं तस्य वचसा कीर्तनं तथा। मनसा मननं तस्य महासाधनमुच्यते॥
(शि० पु० विद्ये० ३। २१-२२)

तुल्य प्रामाणिक तथा सबसे उत्कृष्ट गति प्रदान करनेवाला है। यह निर्मल शिवपुराण भगवान् शिवके द्वारा ही प्रतिपादित है। इसे शैवशिरोमणि भगवान् व्यासने संक्षेपसे संकलित किया है। यह समस्त जीव-समुदायके लिये उपकारक, त्रिविध तापोंका नाश करनेवाला, तुलनारहित एवं सत्पुरुषोंको कल्याण प्रदान करनेवाला है। इसमें वेदान्त-विज्ञानमय, प्रधान तथा निष्कपट (निष्काम) धर्मका प्रतिपादन किया गया है। यह पुराण ईर्ष्यारहित अन्तःकरणवाले विद्वानोंके लिये जाननेकी वस्तु है। इसमें श्रेष्ठ मन्त्र-समूहोंका संकलन है तथा धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गकी प्राप्तिके साधनका भी वर्णन है। यह उत्तम शिवपुराण समस्त पुराणोंमें श्रेष्ठ है। वेद-वेदान्तमें वेद्यरूपसे विलसित परम वस्तु—परमात्माका इसमें गान किया गया है। जो बड़े आदरसे इसे पढ़ता और सुनता है, वह भगवान् शिवका प्रिय होकर परम गतिको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय २)

☆

साध्य-साधन आदिका विचार तथा श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीन साधनोंकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन

व्यासजी कहते हैं—सूतजीका यह वचन सुनकर वे सब महर्षि बोले—'अब आप हमें वेदान्तसार-सर्वस्वरूप अद्भुत शिवपुराणकी कथा सुनाइये।'

सूतजीने कहा—आप सब महर्षिगण रोग-शोकसे रहित कल्याणमय भगवान् शिवका स्मरण करके पुराणप्रवर शिवपुराणकी, जो वेदके सार-तत्त्वसे प्रकट हुआ है, कथा सुनिये। शिवपुराणमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—इन तीनोंका प्रीतिपूर्वक गान किया गया है और वेदान्तवेद्य सद्वस्तुका विशेषरूपसे वर्णन है। इस वर्तमान कल्पमें जब सृष्टिकर्म आरम्भ हुआ था, उन दिनों छः कुलोंके महर्षि परस्पर वाद-विवाद करते हुए कहने लगे—'अमुक वस्तु सबसे उत्कृष्ट है और अमुक नहीं है।' उनके इस विवादने अत्यन्त महान् रूप धारण कर लिया। तब वे सब-के-सब अपनी शङ्काके समाधानके लिये सृष्टिकर्ता अविनाशी ब्रह्माजीके पास गये और हाथ जोड़कर विनयभरी वाणीमें बोले—'प्रभो! आप सम्पूर्ण जगत्को धारण-पोषण करनेवाले तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि सम्पूर्ण तत्त्वोंसे परे परात्पर पुराणपुरुष कौन हैं?'

ब्रह्माजीने कहा—जहाँसे मनसहित वाणी उन्हें न पाकर लौट आती है तथा जिनसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र आदिसे युक्त यह सम्पूर्ण जगत् समस्त भूतों एवं इन्द्रियोंके साथ पहले प्रकट हुआ है, वे ही ये देव, महादेव सर्वज्ञ एवं सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं। ये ही सबसे उत्कृष्ट हैं। भक्तिसे ही इनका साक्षात्कार होता है। दूसरे किसी उपायसे कहीं इनका दर्शन नहीं होता। रुद्र, हरि, हर तथा अन्य देवेश्वर सदा उत्तम भक्तिभावसे उनका दर्शन करना चाहते हैं। भगवान् शिवमें भक्ति होनेसे मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। देवताके कृपाप्रसादसे उनमें भक्ति होती है

मेरे गुरुको वहाँ देखा। वे ध्यानमें मग्न थे। उससे जगनेपर उन्होंने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारजीको अपने सामने उपस्थित देखा। देखकर वे बड़े वेगसे उठे और उनके चरणोंमें प्रणाम करके मुनिने उन्हें अर्घ्य दिया और देवताओंके बैठने योग्य आसन भी अर्पित किया। तब प्रसन्न हुए भगवान् सनत्कुमार विनीतभावसे खड़े हुए व्यासजीसे गम्भीर वाणीमें बोले—

'मुने ! तुम सत्य वस्तुका चिन्तन करो। वह सत्य पदार्थ भगवान् शिव ही हैं, जो तुम्हारे साक्षात्कारके विषय होंगे। भगवान्

शंकरका श्रवण, कीर्तन, मनन—ये तीन महत्तर साधन कहे गये हैं। ये तीनों ही वेदसम्मत हैं। पूर्वकालमें मैं दूसरे-दूसरे साधनोंके सम्भ्रममें पड़कर घूमता-घामता मन्दराचलपर जा पहुँचा और वहाँ तपस्या करने लगा। तदनन्तर महेश्वर शिवकी आज्ञासे भगवान् नन्दिकेश्वर वहाँ आये। उनकी मुझपर बड़ी दया थी। वे सबके साक्षी तथा शिवगणोंके स्वामी भगवान् नन्दिकेश्वर मुझे स्नेहपूर्वक मुक्तिका उत्तम साधन बताते हुए बोले—'भगवान् शंकरका श्रवण, कीर्तन और मनन—ये तीनों साधन वेदसम्मत हैं और मुक्तिके साक्षात् कारण हैं; यह बात स्वयं भगवान् शिवने मुझसे कही है। अतः ब्रह्मन् ! तुम श्रवणादि तीनों साधनोंका ही अनुष्ठान करो।' व्यासजीसे बारंबार ऐसा कहकर अनुगामियोंसहित ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार परम सुन्दर ब्रह्मधामको चले गये। इस प्रकार पूर्वकालके इस उत्तम वृत्तान्तका मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है।

ऋषि बोले—सूतजी ! श्रवणादि तीन साधनोंको आपने मुक्तिका उपाय बताया है। किंतु जो श्रवण आदि तीनों साधनोंमें असमर्थ हो, वह मनुष्य किस उपायका अवलम्बन करके मुक्त हो सकता है। किस साधनभूत कर्मके द्वारा बिना यत्नके ही मोक्ष मिल सकता है ? (अध्याय ३-४)

☆

भगवान् शिवके लिङ्ग एवं साकार विग्रहकी पूजाके रहस्य तथा महत्त्वका वर्णन

सूतजी कहते हैं—शौनक ! जो श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीनों साधनोंके अनुष्ठानमें समर्थ न हो, वह भगवान् शंकरके लिङ्ग एवं मूर्तिकी स्थापना करके नित्य उसकी पूजा करे तो संसार-सागरसे पार हो सकता है। वञ्चना अथवा छल न

करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार धनराशि ले जाय और उसे शिवलिङ्ग अथवा शिवमूर्तिकी सेवाके लिये अर्पित कर दे। साथ ही निरन्तर उस लिङ्ग एवं मूर्तिकी पूजा भी करे। उसके लिये भक्तिभावसे मण्डप, गोपुर, तीर्थ, मठ एवं क्षेत्रकी स्थापना करे तथा उत्सव रचाये। वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा पूआ और शाक आदि व्यञ्जनोंसे युक्त भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोजन अन्न नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे। छत्र, ध्वजा, व्यजन, चामर तथा अन्य अङ्गोंसहित राजोपचारकी भाँति सब सामान भगवान् शिवके लिङ्ग एवं मूर्तिको चढ़ाये। प्रदक्षिणा, नमस्कार तथा यथाशक्ति जप करे। आवाहनसे लेकर विसर्जनतक सारा कार्य प्रतिदिन भक्तिभावसे सम्पन्न करे। इस प्रकार शिवलिङ्ग अथवा शिवमूर्तिमें भगवान् शंकरकी पूजा करनेवाला पुरुष श्रवणादि साधनोंका अनुष्ठान न करे तो भी भगवान् शिवकी प्रसन्नतासे सिद्धि प्राप्त कर लेता है। पहलेके बहुत-से महात्मा पुरुष लिङ्ग तथा शिवमूर्तिकी पूजा करनेमात्रसे भवबन्धनसे मुक्त हो चुके हैं।

ऋषियोंने पूछा—मूर्तिमें ही सर्वत्र देवताओंकी पूजा होती है (लिङ्गमें नहीं), परंतु भगवान् शिवकी पूजा सब जगह मूर्तिमें और लिङ्गमें भी क्यों की जाती है?

सूतजीने कहा—मुनीश्वरो! तुम्हारा यह प्रश्न तो बड़ा ही पवित्र और अत्यन्त अद्भुत है। इस विषयमें महादेवजी ही वक्ता हो सकते हैं। दूसरा कोई पुरुष कभी और कहीं भी इसका प्रतिपादन नहीं कर सकता। इस प्रश्नके समाधानके लिये भगवान् शिवने जो कुछ कहा है और उसे मैंने गुरुजीके मुखसे जिस प्रकार सुना है, उसी तरह क्रमशः वर्णन करूँगा। एकमात्र भगवान् शिव ही ब्रह्मरूप होनेके कारण 'निष्कल' (निराकार) कहे गये हैं। रूपवान् होनेके कारण उन्हें 'सकल' भी कहा गया है। इसलिये वे सकल और निष्कल दोनों हैं। शिवके निष्कल—निराकार होनेके कारण ही उनकी पूजाका आधारभूत लिङ्ग भी निराकार ही प्राप्त हुआ है। अर्थात् शिवलिङ्ग शिवके निराकार स्वरूपका प्रतीक है। इसी तरह शिवके सकल या साकार होनेके कारण उनकी पूजाका आधारभूत विग्रह साकार प्राप्त होता है अर्थात् शिवका साकार विग्रह उनके साकार स्वरूपका प्रतीक होता है। सकल और अकल (समस्त अङ्ग-आकार-सहित साकार और अङ्ग-आकारसे सर्वथा रहित निराकार) रूप होनेसे ही वे 'ब्रह्म' शब्दसे कहे जानेवाले परमात्मा हैं। यही कारण है कि सब लोग लिङ्ग (निराकार) और मूर्ति (साकार) दोनोंमें ही सदा भगवान् शिवकी पूजा करते हैं। शिवसे भिन्न जो दूसरे-दूसरे देवता हैं, वे साक्षात् ब्रह्म नहीं हैं। इसलिये कहीं भी उनके लिये निराकार लिङ्ग नहीं उपलब्ध होता।

पूर्वकालमें बुद्धिमान् ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार मुनिने मन्दराचलपर नन्दिकेश्वरसे इसी प्रकारका प्रश्न किया था।

सनत्कुमार बोले—भगवन्! शिवसे भिन्न जो देवता हैं। उन सबकी पूजाके लिये सर्वत्र प्रायः बेर (मूर्ति) मात्र ही अधिक संख्यामें देखा और सुना जाता है। केवल भगवान् शिवकी ही पूजामें लिङ्ग और बेर दोनोंका उपयोग देखनेमें आता है। अतः कल्याणमय नन्दिकेश्वर! इस विषयमें जो

तत्त्वकी बात हो, उसे मुझे इस प्रकार बताइये, जिससे अच्छी तरह समझमें आ जाय।

नन्दिकेश्वरने कहा—निष्पाप ब्रह्मकुमार! आपके इस प्रश्नका हम-जैसे लोगोंके द्वारा कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता; क्योंकि यह गोपनीय विषय है और लिङ्ग साक्षात् ब्रह्मका प्रतीक है। तथापि आप शिवभक्त हैं। इसलिये इस विषयमें भगवान् शिवने जो कुछ बताया है, उसे ही आपके समक्ष कहता हूँ। भगवान् शिव ब्रह्मस्वरूप और निष्कल (निराकार) हैं; इसलिये उन्हींकी पूजामें निष्कल लिङ्गका उपयोग होता है। सम्पूर्ण वेदोंका यही मत है।

सनत्कुमार बोले—महाभाग योगीन्द्र! आपने भगवान् शिव तथा दूसरे देवताओंके पूजनमें लिङ्ग और बेरके प्रचारका जो रहस्य विभागपूर्वक बताया है, वह यथार्थ है। इसलिये लिङ्ग और बेरकी आदि उत्पत्तिका जो उत्तम वृत्तान्त है, उसीको मैं इस समय सुनना चाहता हूँ। लिङ्गके प्राकट्यका रहस्य सूचित करनेवाला प्रसङ्ग मुझे सुनाइये।

इसके उत्तरमें नन्दिकेश्वरने भगवान् महादेवके निष्कल स्वरूप लिङ्गके आविर्भावका प्रसङ्ग सुनाना आरम्भ किया। उन्होंने ब्रह्मा तथा विष्णुके विवाद, देवताओंकी व्याकुलता एवं चिन्ता, देवताओंका दिव्य कैलास-शिखरपर गमन, उनके द्वारा चन्द्रशेखर महादेवका स्तवन, देवताओंसे प्रेरित हुए महादेवजीका ब्रह्मा और विष्णुके विवाद-स्थलमें आगमन तथा दोनोंके बीचमें निष्कल आदि-अन्तरहित भीषण अग्निस्तम्भके रूपमें उनका आविर्भाव आदि प्रसङ्गोंकी कथा कही। तदनन्तर श्रीब्रह्मा और विष्णु दोनोंके द्वारा उस ज्योतिर्मय स्तम्भकी ऊँचाई और गहराईका थाह लेनेकी चेष्टा एवं केतकी-पुष्पके शाप-वरदान आदिके प्रसङ्ग भी सुनाये। (अध्याय ५—८ तक)

☆

महेश्वरका ब्रह्मा और विष्णुको अपने निष्कल और सकल स्वरूपका परिचय देते हुए लिङ्गपूजनका महत्त्व बताना

नन्दिकेश्वर कहते हैं—तदनन्तर वे दोनों—ब्रह्मा और विष्णु भगवान् शंकरको प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ उनके दायें-बायें भागमें चुपचाप खड़े हो गये। फिर, उन्होंने वहाँ साक्षात् प्रकट पूजनीय महादेवजीको श्रेष्ठ आसनपर स्थापित करके पवित्र पुरुष-वस्तुओंद्वारा उनका पूजन किया। दीर्घकालतक अविकृतभावसे सुस्थिर रहनेवाली वस्तुओंको 'पुरुष-वस्तु' कहते हैं और अल्पकालतक ही टिकनेवाली क्षणभङ्गुर वस्तुएँ 'प्राकृत वस्तु' कहलाती हैं। इस तरह वस्तुके ये दो भेद जानने चाहिये। (किन पुरुष-वस्तुओंसे उन्होंने भगवान् शिवका पूजन किया, यह बताया जाता है—) हार, नूपुर, केयूर, किरीट, मणिमय कुण्डल, यज्ञोपवीत, उत्तरीय वस्त्र, पुष्प-माला, रेशमी वस्त्र, हार, मुद्रिका, पुष्प, ताम्बूल, कपूर, चन्दन एवं अगुरुका अनुलेप, धूप, दीप, श्वेतछत्र, व्यजन, ध्वजा, चँवर तथा अन्यान्य दिव्य उपहारोंद्वारा, जिनका वैभव वाणी और मनकी पहुँचसे परे था, जो केवल पशुपति (परमात्मा) के ही

योग्य थे और जिन्हें पशु (बद्ध जीव) कदापि नहीं पा सकते थे, उन दोनोंने अपने स्वामी महेश्वरका पूजन किया। सबसे पहले वहाँ ब्रह्मा और विष्णुने भगवान् शंकरकी पूजा की। इससे प्रसन्न हो भक्तिपूर्वक भगवान् शिवने वहाँ नम्रभावसे खड़े हुए उन दोनों देवताओंसे मुस्कराकर कहा—

महेश्वर बोले—पुत्रो! आजका दिन एक महान् दिन है। इसमें तुम्हारे द्वारा जो आज मेरी पूजा हुई है, इससे मैं तुमलोगोंपर बहुत प्रसन्न हूँ। इसी कारण यह दिन परम पवित्र और महान्-से-महान् होगा। आजकी यह तिथि 'शिवरात्रि'के नामसे विख्यात होकर मेरे लिये परम प्रिय होगी। इसके समयमें जो मेरे लिङ्ग (निष्कल—अङ्ग-आकृतिसे रहित निराकार स्वरूपके प्रतीक) वेर (सकल—साकाररूपके प्रतीक विग्रह) की पूजा करेगा, वह पुरुष जगत्‌की सृष्टि और पालन आदि कार्य भी कर सकता है। जो शिवरात्रिको दिन-रात निराहार एवं जितेन्द्रिय रहकर अपनी शक्तिके अनुसार निश्चलभावसे मेरी यथोचित पूजा करेगा, उसको मिलनेवाले फलका वर्णन सुनो। एक वर्षतक निरन्तर मेरी पूजा करनेपर जो फल मिलता है, वह सारा फल केवल शिवरात्रिको मेरा पूजन करनेसे मनुष्य तत्काल प्राप्त कर लेता है। जैसे पूर्ण चन्द्रमाका उदय समुद्रकी वृद्धिका अवसर है, उसी प्रकार यह शिवरात्रि तिथि मेरे धर्मकी वृद्धिका समय है। इस तिथिमें मेरी स्थापना आदिका मङ्गलमय उत्सव होना चाहिये। पहले मैं जब 'ज्योतिर्मय स्तम्भरूपसे प्रकट हुआ था, वह समय मार्गशीर्षमासमें आर्द्रा नक्षत्रसे युक्त पूर्णमासी या प्रतिपदा है। जो पुरुष मार्गशीर्षमासमें आर्द्रा नक्षत्र होनेपर पार्वतीसहित मेरा दर्शन करता है अथवा मेरी मूर्ति या लिङ्गकी ही झाँकी करता है, वह मेरे लिये कार्तिकेयसे भी अधिक प्रिय है। उस शुभ दिनको मेरे दर्शनमात्रसे पूरा फल प्राप्त होता है। यदि दर्शनके साथ-साथ मेरा पूजन भी किया जाय तो इतना अधिक फल प्राप्त होता है कि उसका वाणीद्वारा वर्णन नहीं हो सकता।

वहाँपर मैं लिङ्गरूपसे प्रकट होकर बहुत बड़ा हो गया था। अतः उस लिङ्गके कारण यह भूतल 'लिङ्गस्थान'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। जगत्‌के लोग इसका दर्शन और पूजन कर सकें, इसके लिये यह अनादि और अनन्त ज्योतिःस्तम्भ अथवा ज्योतिर्मय लिङ्ग अत्यन्त छोटा हो जायगा। यह लिङ्ग सब प्रकारके भोग सुलभ करानेवाला तथा भोग और मोक्षका एकमात्र साधन है। इसका दर्शन, स्पर्श और ध्यान किया जाय तो यह

प्राणियोंको जन्म और मृत्युके कष्टसे छुड़ानेवाला है। अग्निके पहाड़-जैसा जो यह शिवलिङ्ग यहाँ प्रकट हुआ है, इसके कारण यह स्थान 'अरुणाचल' नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ अनेक प्रकारके बड़े-बड़े तीर्थ प्रकट होंगे। इस स्थानमें निवास करने या मरनेसे जीवोंका मोक्षतक हो जायगा।

मेरे दो रूप हैं—'सकल' और 'निष्कल'। दूसरे किसीके ऐसे रूप नहीं हैं। पहले मैं स्तम्भरूपसे प्रकट हुआ; फिर अपने साक्षात्-रूपसे। 'ब्रह्मभाव' मेरा 'निष्कल' रूप है और 'महेश्वरभाव' 'सकल' रूप। ये दोनों मेरे ही सिद्धरूप हैं। मैं ही परब्रह्म परमात्मा हूँ। कलायुक्त और अकल मेरे ही स्वरूप हैं। ब्रह्मरूप होनेके कारण मैं ईश्वर भी हूँ। जीवोंपर अनुग्रह आदि करना मेरा कार्य है। ब्रह्मा और केशव! मैं सबसे बृहत् और जगत्‌की वृद्धि करनेवाला होनेके कारण 'ब्रह्म' कहलाता हूँ। सर्वत्र समरूपसे स्थित और व्यापक होनेसे मैं ही सबका आत्मा हूँ। सर्गसे लेकर अनुग्रहतक (आत्मा या ईश्वरसे भिन्न) जो जगत्-सम्बन्धी पाँच कृत्य हैं, वे सदा मेरे ही हैं, मेरे अतिरिक्त दूसरे किसीके नहीं हैं; क्योंकि मैं ही सबका ईश्वर हूँ। पहले मेरी ब्रह्मरूपताका बोध करानेके लिये 'निष्कल' लिङ्ग प्रकट हुआ था। फिर अज्ञात ईश्वरत्वका साक्षात्कार करानेके निमित्त मैं साक्षात् जगदीश्वर ही 'सकल' रूपमें तत्काल प्रकट हो गया। अतः मुझमें जो ईशत्व है, उसे ही मेरा सकलरूप जानना चाहिये तथा जो यह मेरा निष्कल स्तम्भ है, वह मेरे ब्रह्मस्वरूपका बोध करानेवाला है। यह मेरा ही लिङ्ग (चिह्न) है। तुम दोनों प्रतिदिन यहाँ रहकर इसका पूजन करो। यह मेरा ही स्वरूप है और मेरे सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है। लिङ्ग और लिङ्गीमें नित्य अभेद होनेके कारण मेरे इस लिङ्गका महान् पुरुषोंको भी पूजन करना चाहिये। मेरे एक लिङ्गकी स्थापना करनेका यह फल बताया गया है कि उपासकको मेरी समानताकी प्राप्ति हो जाती है। यदि एकके बाद दूसरे शिवलिङ्गकी भी स्थापना कर दी गयी, तब तो उपासकको फलरूपसे मेरे साथ एकत्व (सायुज्य मोक्ष) रूप फल प्राप्त होता है। प्रधानतया शिवलिङ्गकी ही स्थापना करनी चाहिये। मूर्तिकी स्थापना उसकी अपेक्षा गौण कर्म है। शिवलिङ्गके अभावमें सब ओरसे सवेर (मूर्तियुक्त) होनेपर भी वह स्थान क्षेत्र नहीं कहलाता।

(अध्याय ९)

☆

पाँच कृत्योंका प्रतिपादन, प्रणव एवं पञ्चाक्षर-मन्त्रकी महत्ता, ब्रह्मा-विष्णुद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उनका अन्तर्धान

ब्रह्मा और विष्णुने पूछा—प्रभो! सृष्टि आदि पाँच कृत्योंके लक्षण क्या हैं, यह हम दोनोंको बताइये।

भगवान् शिव बोले—मेरे कर्तव्योंको समझना अत्यन्त गहन है, तथापि मैं कृपापूर्वक तुम्हें उनके विषयमें बता रहा हूँ। ब्रह्मा और अच्युत! 'सृष्टि', 'पालन', 'संहार', 'तिरोभाव' और 'अनुग्रह'—ये पाँच ही मेरे जगत्-सम्बन्धी कार्य हैं, जो नित्यसिद्ध हैं। संसारकी रचनाका जो

आरम्भ है, उसीको सर्ग या 'सृष्टि' कहते हैं। मुझसे पालित होकर सृष्टिका सुस्थिररूपसे रहना ही उसकी 'स्थिति' है। उसका विनाश ही 'संहार' है। प्राणोंके उत्क्रमणको 'तिरोभाव' कहते हैं। इन सबसे छुटकारा मिल जाना ही मेरा 'अनुग्रह' है। इस प्रकार मेरे पाँच कृत्य हैं। सृष्टि आदि जो चार कृत्य हैं, वे संसारका विस्तार करनेवाले हैं। पाँचवाँ कृत्य अनुग्रह मोक्षका हेतु है। वह सदा मुझमें ही अचल भावसे स्थिर रहता है। मेरे भक्तजन इन पाँचों कृत्योंको पाँचों भूतोंमें देखते हैं। सृष्टि भूतलमें, स्थिति जलमें, संहार अग्निमें, तिरोभाव वायुमें और अनुग्रह आकाशमें स्थित है। पृथ्वीसे सबकी सृष्टि होती है। जलसे सबकी वृद्धि एवं जीवन-रक्षा होती है। आग सबको जला देती है। वायु सबको एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाती है और आकाश सबको अनुगृहीत करता है। विद्वान् पुरुषोंको यह विषय इसी रूपमें जानना चाहिये। इन पाँच कृत्योंका भारवहन करनेके लिये ही मेरे पाँच मुख हैं। चार दिशाओंमें चार मुख हैं और इनके बीचमें पाँचवाँ मुख है। पुत्रो! तुम दोनोंने तपस्या करके प्रसन्न हुए मुझ परमेश्वरसे सृष्टि और स्थिति नामक दो कृत्य प्राप्त किये हैं। ये दोनों तुम्हें बहुत प्रिय हैं। इसी प्रकार मेरी विभूतिस्वरूप 'रुद्र' और 'महेश्वर' ने दो अन्य उत्तम कृत्य—संहार और तिरोभाव मुझसे प्राप्त किये हैं। परंतु अनुग्रह नामक कृत्य दूसरा कोई नहीं पा सकता। रुद्र और महेश्वर अपने कर्मको भूले नहीं हैं। इसलिये मैंने उनके लिये अपनी समानता प्रदान की है। वे रूप, वेष, कृत्य, वाहन, आसन और आयुध आदिमें मेरे समान ही हैं। मैंने पूर्वकालमें अपने स्वरूपभूत मन्त्रका उपदेश किया है, जो ओंकारके रूपमें प्रसिद्ध है। वह महामङ्गलकारी मन्त्र है। सबसे पहले मेरे मुखसे ओंकार (ॐ) प्रकट हुआ, जो मेरे स्वरूपका बोध करानेवाला है। ओंकार वाचक है और मैं वाच्य हूँ। यह मन्त्र मेरा स्वरूप ही है। प्रतिदिन ओंकारका निरन्तर स्मरण करनेसे मेरा ही सदा स्मरण होता है।

मेरे उत्तरवर्ती मुखसे अकारका, पश्चिम मुखसे उकारका, दक्षिण मुखसे मकारका, पूर्ववर्ती मुखसे बिन्दुका तथा मध्यवर्ती मुखसे नादका प्राकट्य हुआ। इस प्रकार पाँच अवयवोंसे युक्त ओंकारका विस्तार हुआ है। इन सभी अवयवोंसे एकीभूत होकर वह प्रणव 'ॐ' नामक एक अक्षर हो गया। यह नाम-रूपात्मक सारा जगत् तथा वेद उत्पन्न स्त्री-पुरुषवर्गरूप दोनों कुल इस प्रणव-मन्त्रसे व्याप्त हैं। यह मन्त्र शिव और शक्ति दोनोंका बोधक है। इसीसे पञ्चाक्षर-मन्त्रकी उत्पत्ति हुई है, जो मेरे सकल रूपका बोधक है। वह अकारादि क्रमसे और मकारादि क्रमसे क्रमशः प्रकाशमें आया है ('ॐ नमः शिवाय' यह पञ्चाक्षर-मन्त्र है)। इस पञ्चाक्षर-मन्त्रसे मातृका वर्ण प्रकट हुए हैं, जो पाँच भेदवाले हैं।* उसीसे शिरोमन्त्रसहित त्रिपदा गायत्रीका प्राकट्य हुआ है। उस गायत्रीसे सम्पूर्ण वेद प्रकट हुए हैं और उन वेदोंसे करोड़ों मन्त्र निकले हैं। उन-उन मन्त्रोंसे भिन्न-भिन्न कार्योंकी सिद्धि होती है; परंतु इस प्रणव एवं पञ्चाक्षरसे

* अ इ उ ऋ लृ—ये पाँच मूलभूत स्वर हैं तथा व्यञ्जन भी पाँच-पाँच वर्णोंसे युक्त पाँच वर्गवाले हैं।

सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। इस मन्त्रसमुदायसे भोग और मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं। मेरे सकल स्वरूपसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी मन्त्रराज साक्षात् भोग प्रदान करनेवाले और शुभकारक (मोक्षप्रद) हैं।

नन्दिकेश्वर कहते हैं—तदनन्तर जगदम्बा पार्वतीके साथ बैठे हुए गुरुवर महादेवजीने उत्तराभिमुख बैठे हुए ब्रह्मा और विष्णुको पर्दा करनेवाले वस्त्रसे आच्छादित करके उनके मस्तकपर अपना करकमल रखकर धीरे-धीरे उच्चारण करके उन्हें उत्तम मन्त्रका उपदेश किया। मन्त्र-तन्त्रमें बतायी हुई विधिके पालनपूर्वक तीन बार मन्त्रका उच्चारण करके भगवान् शिवने उन दोनों शिष्योंको मन्त्रकी दीक्षा दी। फिर उन शिष्योंने गुरुदक्षिणाके रूपमें अपने-आपको ही समर्पित कर दिया और दोनों हाथ जोड़कर उनके समीप खड़े हो उन देवेश्वर जगद्गुरुका स्तवन किया।

ब्रह्मा और विष्णु बोले—प्रभो! आप निष्कलरूप हैं। आपको नमस्कार है। आप निष्कल तेजसे प्रकाशित होते हैं। आपको नमस्कार है। आप सबके स्वामी हैं। आपको नमस्कार है। आप सर्वात्माको नमस्कार है अथवा सकल-स्वरूप आप महेश्वरको नमस्कार है। आप प्रणवके वाच्यार्थ हैं। आपको नमस्कार है। आप प्रणवलिङ्गवाले हैं। आपको नमस्कार है। सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके पाँच मुख हैं। आप परमेश्वरको नमस्कार है। पञ्चब्रह्म-स्वरूप पाँच कृत्यवाले आपको नमस्कार है। आप सबके आत्मा हैं, ब्रह्म हैं। आपके गुण और शक्तियाँ अनन्त हैं, आपको नमस्कार है। आपके सकल और निष्कल दो रूप हैं। आप सद्गुरु एवं शम्भु हैं, आपको नमस्कार है।*

इन पद्योंद्वारा अपने गुरु महेश्वरकी स्तुति करके ब्रह्मा और विष्णुने उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

महेश्वर बोले—'आर्द्रा' नक्षत्रसे युक्त चतुर्दशीको प्रणवका जप किया जाय तो वह अक्षय फल देनेवाला होता है। सूर्यकी संक्रान्तिसे युक्त महा-आर्द्रा नक्षत्रमें एक बार किया हुआ प्रणव-जप कोटिगुने जपका फल देता है। 'मृगशिरा' नक्षत्रका अन्तिम भाग तथा 'पुनर्वसु'का आदिमभाग पूजा, होम और तर्पण आदिके लिये सदा आर्द्राके समान ही होता है—यह जानना चाहिये। मेरा या मेरे लिङ्गका दर्शन प्रभातकालमें ही—प्रातः और संगव (मध्याह्नके पूर्व) कालमें करना चाहिये। मेरे दर्शन-पूजनके लिये चतुर्दशी तिथि निशीथव्यापिनी अथवा प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये; क्योंकि परवर्तिनी तिथिसे संयुक्त चतुर्दशीकी ही प्रशंसा की जाती है। पूजा करनेवालोंके लिये मेरी मूर्ति तथा लिङ्ग दोनों समान हैं, फिर भी मूर्तिकी अपेक्षा लिङ्गका स्थान ऊँचा है। इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये

---

* नमो निष्कलरूपाय नमो निष्कलतेजसे। नमः सकलनाथाय नमस्ते सकलात्मने॥
नमः प्रणववाच्याय नमः प्रणवलिङ्गिने। नमः सृष्ट्यादिकर्त्रे च नमः पञ्चमुखाय ते॥
पञ्चब्रह्मस्वरूपाय पञ्चकृत्याय ते नमः। आत्मने ब्रह्मणे तुभ्यमनन्तगुणशक्तये॥
सकलाकलरूपाय शम्भवे गुरवे नमः। (शि० पु० वि० सं० १०।२८—३१ ½)

कि वे बेर (मूर्ति) से भी श्रेष्ठ समझकर लिङ्गका ही पूजन करें। लिङ्गका ॐकार-मन्त्रसे और बेरका पञ्चाक्षर-मन्त्रसे पूजन करना चाहिये। शिवलिङ्गकी स्वयं ही स्थापना करके अथवा दूसरोंसे भी स्थापना करवाकर उत्तम द्रव्यमय उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। इससे मेरा पद सुलभ हो जाता है।

इस प्रकार उन दोनों शिष्योंको उपदेश देकर भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये।

(अध्याय १०)

☆

शिवलिङ्गकी स्थापना, उसके लक्षण और पूजनकी विधिका वर्णन तथा शिवपदकी प्राप्ति करानेवाले सत्कर्मोंका विवेचन

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! शिवलिङ्गकी स्थापना कैसे करनी चाहिये? उसका लक्षण क्या है? तथा उसकी पूजा कैसे करनी चाहिये, किस देश-कालमें करनी चाहिये और किस द्रव्यके द्वारा उसका निर्माण होना चाहिये?

सूतजीने कहा—महर्षियो! मैं तुमलोगोंके लिये इस विषयका वर्णन करता हूँ। ध्यान देकर सुनो और समझो। अनुकूल एवं शुभ समयमें किसी पवित्र तीर्थमें नदी आदिके तटपर अपनी रुचिके अनुसार ऐसी जगह शिवलिङ्गकी स्थापना करनी चाहिये, जहाँ नित्य पूजन हो सके। पार्थिव द्रव्यसे, जलमय द्रव्यसे अथवा तैजस पदार्थसे अपनी रुचिके अनुसार कल्पोक्त लक्षणोंसे युक्त शिव-लिङ्गका निर्माण करके उसकी पूजा करनेसे उपासकको उस पूजनका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है। सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त शिवलिङ्गकी यदि पूजा की जाय तो वह तत्काल पूजाका फल देनेवाला होता है। यदि चलप्रतिष्ठा करनी हो तो इसके लिये छोटा-सा शिवलिङ्ग अथवा विग्रह श्रेष्ठ माना जाता है और यदि अचलप्रतिष्ठा करनी हो तो स्थूल शिवलिङ्ग अथवा विग्रह अच्छा माना गया है। उत्तम लक्षणोंसे युक्त शिवलिङ्गकी पीठसहित स्थापना करनी चाहिये। शिवलिङ्गका पीठ मण्डलाकार (गोल), चौकोर, त्रिकोण अथवा खाटके पायेकी भाँति ऊपर-नीचे मोटा और बीचमें पतला होना चाहिये। ऐसा लिङ्ग-पीठ महान् फल देनेवाला होता है। पहले मिट्टीसे, प्रस्तर आदिसे अथवा लोहे आदिसे शिवलिङ्गका निर्माण करना चाहिये। जिस द्रव्यसे शिवलिङ्गका निर्माण हो, उसीसे उसका पीठ भी बनाना चाहिये। यही स्थावर (अचलप्रतिष्ठावाले) शिवलिङ्गकी विशेष बात है। चर (चलप्रतिष्ठावाले) शिवलिङ्गमें भी लिङ्ग और पीठका एक ही उपादान होना चाहिये। किंतु बाणलिङ्गके लिये यह नियम नहीं है। लिङ्गकी लम्बाई निर्माणकर्ता या स्थापना करनेवाले यजमानके बारह अंगुलके बराबर होनी चाहिये। ऐसे ही शिवलिङ्गको उत्तम कहा गया है। इससे कम लम्बाई हो तो फलमें कमी आ जाती है, अधिक हो तो कोई दोषकी बात नहीं है। चर लिङ्गमें भी वैसा ही नियम है। उसकी लम्बाई कम-से-कम कर्ताके एक अंगुलके बराबर होनी चाहिये। उससे छोटा होनेपर अल्प फल मिलता है।

किंतु उससे अधिक होना दोषकी बात नहीं है। यजमानको चाहिये कि वह पहले शिल्प-शास्त्रके अनुसार एक विमान या देवालय बनवाये, जो देवगणोंकी मूर्तियोंसे अलंकृत हो। उसका गर्भगृह बहुत ही सुन्दर, सुदृढ़ और दर्पणके समान स्वच्छ हो। उसे नौ प्रकारके रत्नोंसे विभूषित किया गया हो। उसमें पूर्व और पश्चिम दिशामें दो मुख्य द्वार हों। जहाँ शिवलिङ्गकी स्थापना करनी हो, उस स्थानके गर्तमें नीलम, लाल वैदूर्य, श्याम, मरकत, मोती, मूँगा, गोमेद और हीरा—इन नौ रत्नोंको तथा अन्य महत्त्वपूर्ण द्रव्योंको वैदिक मन्त्रोंके साथ छोड़े। सद्योजात आदि पाँच वैदिक मन्त्रों* द्वारा शिवलिङ्गका पाँच स्थानोंमें क्रमशः पूजन करके अग्निमें हविष्यकी अनेक आहुतियाँ दे और परिवारसहित मेरी पूजा करके गुरुस्वरूप आचार्यको धनसे तथा भाई-बन्धुओंको मनचाही वस्तुओंसे संतुष्ट करे। याचकोंको जड़ (सुवर्ण, गृह एवं भू-सम्पत्ति) तथा चेतन (गौ आदि) वैभव प्रदान करे।

स्थावर-जंगम सभी जीवोंको यत्नपूर्वक संतुष्ट करके एक गड्ढेमें सुवर्ण तथा नौ प्रकारके रत्न भरकर सद्योजातादि वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करके परम कल्याणकारी महादेवजीका ध्यान करे। तत्पश्चात् नादघोषसे युक्त महामन्त्र ओंकार (ॐ) का उच्चारण करके उक्त गड्ढेमें शिवलिङ्गकी स्थापना करके उसे पीठसे संयुक्त करे। इस प्रकार पीठयुक्त लिङ्गकी स्थापना करके उसे नित्य-लेप (दीर्घकालतक टिके रहनेवाले मसाले) से जोड़कर स्थिर करे। इसी प्रकार वहाँ परम सुन्दर वेर (मूर्ति) की भी स्थापना करनी चाहिये। सारांश यह कि भूमि-संस्कार आदिकी सारी विधि जैसी लिङ्ग-प्रतिष्ठाके लिये कही गयी है, वैसी ही वेर (मूर्ति) प्रतिष्ठाके लिये भी समझनी चाहिये। अन्तर इतना ही है कि लिङ्ग-प्रतिष्ठाके लिये प्रणवमन्त्रके उच्चारणका विधान है, परन्तु वेरकी प्रतिष्ठा पञ्चाक्षर-मन्त्रसे करनी चाहिये। जहाँ लिङ्गकी प्रतिष्ठा हुई है, वहाँ भी उत्सवके लिये बाहर सवारी निकालने आदिके निमित्त वेर (मूर्ति) को रखना आवश्यक है। वेरको बाहरसे भी लिया जा सकता है। उसे गुरुजनोंसे ग्रहण करे। बाह्य वेर वही लेने योग्य है, जो साधु पुरुषोंद्वारा पूजित हो। इस प्रकार लिङ्गमें और वेरमें भी की हुई महादेवजीकी पूजा शिवपद प्रदान करनेवाली होती है। स्थावर और जंगमके भेदसे लिङ्ग भी दो प्रकारका कहा गया है। वृक्ष, लता आदिको स्थावर लिङ्ग कहते हैं और कृमि-कीट आदिको जंगम लिङ्ग। स्थावर लिङ्गकी सींचने आदिके द्वारा सेवा करनी चाहिये और जंगम लिङ्गको आहार एवं जल आदि देकर तृप्त करना उचित है। उन स्थावर-जंगम जीवोंको सुख पहुँचानेमें अनुरक्त होना भगवान् शिवका पूजन है, ऐसा विद्वान् पुरुष मानते हैं। (यों चराचर जीवोंको ही भगवान्

---

* ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मथाय नमः।

शंकरके प्रतीक मानकर उनका पूजन करना चाहिये।)

इस तरह महालिङ्गकी स्थापना करके विविध उपचारोंद्वारा उसका पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार नित्य पूजा करनी चाहिये तथा देवालयके पास ध्वजारोपण आदि करना चाहिये। शिवलिङ्ग साक्षात् शिवका पद प्रदान करनेवाला है। अथवा चर लिङ्गमें षोडशोपचारोंद्वारा यथोचित रीतिसे क्रमशः पूजन करे। यह पूजन भी शिवपद प्रदान करनेवाला है। आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, पाद्याङ्ग आचमन, अभ्यङ्गपूर्वक स्नान, वस्त्र एवं यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल-समर्पण, नीराजन, नमस्कार और विसर्जन—ये सोलह उपचार हैं। अथवा अर्घ्यसे लेकर नैवेद्यतक विधिवत् पूजन करे। अभिषेक, नैवेद्य, नमस्कार और तर्पण—ये सब यथाशक्ति नित्य करे। इस तरह किया हुआ शिवका पूजन शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है। अथवा किसी मनुष्यके द्वारा स्थापित शिवलिङ्गमें, ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिङ्गमें, देवताओं-द्वारा स्थापित शिवलिङ्गमें, अपने-आप प्रकट हुए स्वयम्भूलिङ्गमें तथा अपने द्वारा नूतन स्थापित हुए शिवलिङ्गमें भी उपचार-समर्पणपूर्वक जैसे-तैसे पूजन करनेसे या पूजनकी सामग्री देनेसे भी मनुष्य ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह सारा फल प्राप्त कर लेता है। क्रमशः परिक्रमा और नमस्कार करनेसे भी शिवलिङ्ग शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है। यदि नियमपूर्वक शिवलिङ्गका दर्शनमात्र कर लिया जाय तो वह भी कल्याणप्रद होता है। मिट्टी, आटा, गायके गोबर, फूल, कनेर-पुष्प, फल, गुड़, मक्खन, भस्म अथवा अन्नसे भी अपनी रुचिके अनुसार शिवलिङ्ग बनाकर तदनुसार उसका पूजन करे अथवा प्रतिदिन दस हजार प्रणवमन्त्रका जप करे अथवा दोनों संध्याओंके समय एक-एक सहस्र प्रणवका जप किया करे। यह क्रम भी शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला है, ऐसा जानना चाहिये।

जपकालमें मकारान्त प्रणवका उच्चारण मनकी शुद्धि करनेवाला होता है। समाधिमें मानसिक जपका विधान है तथा अन्य सब समय भी उपांशु* जप ही करना चाहिये। नाद और बिन्दुसे युक्त ओंकारके उच्चारणको विद्वान् पुरुष 'समानप्रणव' कहते हैं। यदि प्रतिदिन आदरपूर्वक दस हजार पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप किया जाय अथवा दोनों संध्याओंके समय एक-एक सहस्रका ही जप किया जाय तो उसे शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला समझना चाहिये। ब्राह्मणोंके लिये आदिमें प्रणवसे युक्त पञ्चाक्षर-मन्त्र अच्छा बताया गया है। कलशसे किया हुआ स्नान, मन्त्रकी दीक्षा, मातृकाओंका न्यास, सत्यसे पवित्र अन्तःकरणवाला ब्राह्मण तथा ज्ञानी गुरु—इन सबको उत्तम माना गया है।

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

ॐ ईशानः सर्वविद्यानां ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्॥

* मन्त्राक्षरोंका इतने धीमे स्वरमें उच्चारण करे कि उसे दूसरा कोई सुन न सके। ऐसे जपको उपांशु कहते हैं।

द्विजोंके लिये 'नमः शिवाय' के उच्चारणका विधान है। द्विजेतरोंके लिये अन्तमें नमः पदके प्रयोगकी विधि है अर्थात् वे 'शिवाय नमः' इस मन्त्रका उच्चारण करें। स्त्रियोंके लिये भी कहीं-कहीं विधिपूर्वक नमोऽन्त उच्चारणका ही विधान है अर्थात् वे भी 'शिवाय नमः' का ही जप करें। कोई-कोई ऋषि ब्राह्मणकी स्त्रियोंके लिये नमः पूर्वक शिवायके जपकी अनुमति देते हैं अर्थात् वे 'नमः शिवाय' का जप करें। पञ्चाक्षर-मन्त्रका पाँच करोड़ जप करके मनुष्य भगवान् सदाशिवके समान हो जाता है। एक, दो, तीन अथवा चार करोड़का जप करनेसे क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा महेश्वरका पद प्राप्त होता है। अथवा मन्त्रमें जितने अक्षर हैं, उनका पृथक्-पृथक् एक-एक लाख जप करे अथवा समस्त अक्षरोंका एक साथ ही जितने अक्षर हों उतने लाख जप करे। इस तरहके जपको शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला समझना चाहिये। यदि एक हजार दिनोंमें प्रतिदिन एक सहस्र जपके क्रमसे पञ्चाक्षर-मन्त्रका दस लाख जप पूरा कर लिया जाय और प्रतिदिन ब्राह्मण-भोजन कराया जाय तो उस मन्त्रसे अभीष्ट कार्यकी सिद्धि होने लगती है।

ब्राह्मणको चाहिये कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल एक हजार आठ बार गायत्रीका जप करे। ऐसा होनेपर गायत्री क्रमशः शिवका पद प्रदान करनेवाली होती है। वेदमन्त्रों और वैदिक सूक्तोंका भी नियमपूर्वक जप करना चाहिये। वेदोंका पारायण भी शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला है, ऐसा जानना चाहिये। अन्यान्य जो बहुत-से मन्त्र हैं, उनका भी जितने अक्षर हों, उतने लाख जप करें। इस प्रकार जो यथाशक्ति जप करता है, वह क्रमशः शिवपद (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। अपनी रुचिके अनुसार किसी एक मन्त्रको अपनाकर मृत्युपर्यन्त प्रतिदिन उसका जप करना चाहिये अथवा 'ओम् (ॐ)' इस मन्त्रका प्रतिदिन एक सहस्र जप करना चाहिये। ऐसा करनेपर भगवान् शिवकी आज्ञासे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है।

जो मनुष्य भगवान् शिवके लिये फुलवाड़ी या बगीचे आदि लगाता है तथा शिवके सेवाकार्यके लिये मन्दिरमें झाड़ने-बुहारने आदिकी व्यवस्था करता है, वह इस पुण्यकर्मको करके शिवपद प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिवके जो काशी आदि क्षेत्र हैं, उनमें भक्तिपूर्वक नित्य निवास करे। वह जड, चेतन सभीको भोग और मोक्ष देनेवाला होता है। अतः विद्वान् पुरुषको भगवान् शिवके क्षेत्रमें आमरण निवास करना चाहिये। पुण्यक्षेत्रमें स्थित बावड़ी, कुआँ और पोखरे आदिको शिवगङ्गा समझना चाहिये। भगवान् शिवका ऐसा ही वचन है। वहाँ स्नान, दान और जप करके मनुष्य भगवान् शिवको प्राप्त कर लेता है। अतः मृत्युपर्यन्त शिवके क्षेत्रका आश्रय लेकर रहना चाहिये। जो शिवके क्षेत्रमें अपने किसी मृत सम्बन्धीका दाह, दशाह, मासिक श्राद्ध, सपिण्डीकरण अथवा वार्षिक श्राद्ध करता है अथवा कभी भी शिवके क्षेत्रमें अपने पितरोंको पिण्ड देता है, वह तत्काल सब पापोंसे मुक्त हो जाता और अन्तमें शिवपद पाता है। अथवा शिवके क्षेत्रमें सात, पाँच, तीन या एक ही रात निवास कर ले। ऐसा करनेसे भी क्रमशः

शिवपदकी प्राप्ति होती है।

लोकमें अपने-अपने वर्णके अनुरूप सदाचारका पालन करनेसे भी मनुष्य शिवपदको प्राप्त कर लेता है। वर्णानुकूल आचरणसे तथा भक्तिभावसे वह अपने सत्कर्मका अतिशय फल पाता है, कामना-पूर्वक किये हुए अपने कर्मके अभीष्ट फलको शीघ्र ही पा लेता है। निष्कामभावसे किया हुआ सारा कर्म साक्षात् शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला होता है।

दिनके तीन विभाग होते हैं—प्रातः, मध्याह्न और सायाह्न। इन तीनोंमें क्रमशः एक-एक प्रकारके कर्मका सम्पादन किया जाता है। प्रातःकालको शास्त्रविहित नित्यकर्मके अनुष्ठानका समय जानना चाहिये। मध्याह्नकाल सकाम-कर्मके लिये उपयोगी है तथा सायंकाल शान्ति-कर्मके उपयुक्त है, ऐसा जानना चाहिये। इसी प्रकार रात्रिमें भी समयका विभाजन किया गया है। रातके चार प्रहरोंमेंसे जो बीचके दो प्रहर हैं, उन्हें निशीथकाल कहा गया है। विशेषतः उसी कालमें की हुई भगवान् शिवकी पूजा अभीष्ट फलको देनेवाली होती है—ऐसा जानकर कर्म करनेवाला मनुष्य यथोक्त फलका भागी होता है। विशेषतः कलियुगमें कर्मसे ही फलकी सिद्धि होती है। अपने-अपने अधिकारके अनुसार ऊपर कहे गये किसी भी कर्मके द्वारा शिवाराधन करनेवाला पुरुष यदि सदाचारी है और पापसे डरता है तो वह उन-उन कर्मोंका पूरा-पूरा फल अवश्य प्राप्त कर लेता है।

ऋषियोंने कहा—सूतजी! पुण्यक्षेत्र कौन-कौन-से हैं, जिनका आश्रय लेकर सभी स्त्री-पुरुष शिवपद प्राप्त कर लें यह हमें संक्षेपसे बताइये। (अध्याय ११)

☆

मोक्षदायक पुण्यक्षेत्रोंका वर्णन, कालविशेषमें विभिन्न नदियोंके जलमें स्नानके उत्तम फलका निर्देश तथा तीर्थोंमें पापसे बचे रहनेकी चेतावनी

सूतजी बोले—विद्वान् एवं बुद्धिमान् महर्षियो! मोक्षदायक शिवक्षेत्रोंका वर्णन सुनो। तत्पश्चात् मैं लोकरक्षाके लिये शिवसम्बन्धी आगमोंका वर्णन करूँगा। पर्वत, वन और काननोंसहित इस पृथ्वीका विस्तार पचास करोड़ योजन है। भगवान् शिवकी आज्ञासे पृथ्वी सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करके स्थित है। भगवान् शिवने भूतलपर विभिन्न स्थानोंमें वहाँ-वहाँके निवासियोंको कृपापूर्वक मोक्ष देनेके लिये शिवक्षेत्रका निर्माण किया है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जिन्हें देवताओं तथा ऋषियोंने अपना वासस्थान बनाकर अनुगृहीत किया है। इसीलिये उनमें तीर्थत्व प्रकट हो गया है तथा अन्य बहुत-से तीर्थक्षेत्र ऐसे हैं, जो लोकोंकी रक्षाके लिये स्वयं प्रादुर्भूत हुए हैं। तीर्थ और क्षेत्रमें जानेपर मनुष्यको सदा स्नान, दान और जप आदि करना चाहिये; अन्यथा वह रोग, दरिद्रता तथा मूकता आदि दोषोंका भागी होता है। जो मनुष्य इस भारतवर्षके भीतर मृत्युको प्राप्त होता है, वह अपने पुण्यके फलसे ब्रह्मलोकमें वास करके पुण्यक्षयके पश्चात् पुनः मनुष्य-योनिमें ही जन्म लेता है। (पापी मनुष्य पाप करके

दुर्गतिमें ही पड़ता है।) ब्राह्मणो! पुण्यक्षेत्रमें पापकर्म किया जाय तो वह और भी दृढ़ हो जाता है। अतः पुण्यक्षेत्रमें निवास करते समय सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अथवा थोड़ा-सा भी पाप न करे।*

सिन्धु और शतद्रु (सतलज) नदीके तटपर बहुत-से पुण्यक्षेत्र हैं। सरस्वती नदी परम पवित्र और साठ मुखवाली कही गयी है अर्थात् उसकी साठ धाराएँ हैं। विद्वान् पुरुष सरस्वतीके उन-उन धाराओंके तटपर निवास करे तो वह क्रमशः ब्रह्मपदको पा लेता है। हिमालय पर्वतसे निकली हुई पुण्यसलिला गङ्गा सौ मुखवाली नदी है, उसके तटपर काशी-प्रयाग आदि अनेक पुण्यक्षेत्र हैं। वहाँ मकरराशिके सूर्य होनेपर गङ्गाकी तटभूमि पहलेसे भी अधिक प्रशस्त एवं पुण्यदायक हो जाती है। शोणभद्र नदकी दस धाराएँ हैं, वह बृहस्पतिके मकरराशिमें आनेपर अत्यन्त पवित्र तथा अभीष्ट फल देनेवाला हो जाता है। उस समय वहाँ स्नान और उपवास करनेसे विनायकपदकी प्राप्ति होती है। पुण्यसलिला महानदी नर्मदाके चौबीस मुख (स्रोत) हैं। उसमें स्नान तथा उसके तटपर निवास करनेसे मनुष्यको वैष्णवपदकी प्राप्ति होती है। तमसाके बारह तथा रेवाके दस मुख हैं। परम पुण्यमयी गोदावरीके इक्कीस मुख बताये गये हैं। वह ब्रह्महत्या तथा गोवधके पापका भी नाश करनेवाली एवं रुद्रलोक देनेवाली है। कृष्णवेणी नदीका जल बड़ा पवित्र है। वह नदी समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। उसके अठारह मुख बताये गये हैं तथा वह विष्णुलोक प्रदान करनेवाली है। तुङ्गभद्राके दस मुख हैं। वह ब्रह्मलोक देनेवाली है। पुण्यसलिला सुवर्ण-मुखरीके नौ मुख कहे गये हैं। ब्रह्मलोकसे लौटे हुए जीव उसीके तटपर जन्म लेते हैं। सरस्वती नदी, पम्पासरोवर, कन्याकुमारी अन्तरीप तथा शुभकारक श्वेत नदी—ये सभी पुण्यक्षेत्र हैं। इनके तटपर निवास करनेसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। सह्य पर्वतसे निकली हुई महानदी कावेरी परम पुण्यमयी है। उसके सत्ताईस मुख बताये गये हैं। वह सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली है। उसके तट स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाले तथा ब्रह्मा और विष्णुका पद देनेवाले हैं। कावेरीके जो तट शैवक्षेत्रके अन्तर्गत हैं, वे अभीष्ट फल देनेके साथ ही शिवलोक प्रदान करनेवाले भी हैं।

नैमिषारण्य तथा बदरिकाश्रममें सूर्य और बृहस्पतिके मेषराशिमें आनेपर यदि स्नान करे तो उस समय वहाँ किये हुए स्नान-पूजन आदिको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला जानना चाहिये। सिंह और कर्कराशिमें सूर्यकी संक्रान्ति होनेपर सिन्धु नदीमें किया हुआ स्नान तथा केदार तीर्थके जलका पान एवं स्नान ज्ञानदायक माना गया है। जब बृहस्पति सिंहराशिमें स्थित हों, उस समय सिंहकी संक्रान्तिसे युक्त भाद्रपदमासमें यदि गोदावरीके जलमें स्नान किया जाय तो वह शिवलोककी प्राप्ति

* क्षेत्रे पापस्य करणं दृढं भवति भूसुराः। पुण्यक्षेत्रे निवासे हि पापमण्वपि नाचरेत्॥

(शि॰ पु॰ वि॰ १२।७)

करानेवाला होता है, ऐसा पूर्वकालमें स्वयं भगवान् शिवने कहा था। जब सूर्य और बृहस्पति कन्याराशिमें स्थित हों, तब यमुना और शोणभद्रमें स्नान करे। यह स्नान धर्मराज तथा गणेशजीके लोकमें महान् भोग प्रदान करानेवाला होता है, यह महर्षियोंकी मान्यता है। जब सूर्य और बृहस्पति तुलाराशिमें स्थित हों, उस समय कावेरी नदीमें स्नान करे। वह स्नान भगवान् विष्णुके वचनकी महिमासे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला माना गया है। जब सूर्य और बृहस्पति वृश्चिक राशिपर आ जायँ, तब मार्गशीर्ष (अगहन) के महीनेमें नर्मदामें स्नान करनेसे श्रीविष्णु-लोककी प्राप्ति हो सकती है। सूर्य और बृहस्पतिके धनराशिमें स्थित होनेपर सुवर्ण-मुखरी नदीमें किया हुआ स्नान शिवलोक प्रदान करानेवाला होता है, जैसा कि ब्रह्माजीका वचन है। जब सूर्य और बृहस्पति मकरराशिमें स्थित हों, उस समय माघमासमें गङ्गाजीके जलमें स्नान करना चाहिये। ब्रह्माजीका कथन है कि वह स्नान शिवलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है। शिवलोकके पश्चात् ब्रह्मा और विष्णुके स्थानोंमें सुख भोगनेपर अन्तमें मनुष्यको ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। माघमासमें तथा सूर्यके कुम्भराशिमें स्थित होनेपर फाल्गुन-मासमें गङ्गाजीके तटपर किया हुआ श्राद्ध, पिण्डदान अथवा तिलोदक-दान पिता और नाना दोनों कुलोंके पितरोंकी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार करनेवाला माना गया है। सूर्य और बृहस्पति जब मीनराशिमें स्थित हों, तब कृष्णवेणी नदीमें किये गये स्नानकी ऋषियोंने प्रशंसा की है। उन-उन महीनोंमें पूर्वोक्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान इन्द्रपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है। विद्वान् पुरुष गङ्गा अथवा कावेरी नदीका आश्रय लेकर तीर्थवास करे। ऐसा करनेसे तत्काल किये हुए पापका निश्चय ही नाश हो जाता है।

रुद्रलोक प्रदान करनेवाले बहुत-से क्षेत्र हैं। ताम्रपर्णी और वेगवती—ये दोनों नदियाँ ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप फल देनेवाली हैं। इन दोनोंके तटपर कितने ही स्वर्गदायक क्षेत्र हैं। इन दोनोंके मध्यमें बहुत-से पुण्यप्रद क्षेत्र हैं। वहाँ निवास करनेवाला विद्वान् पुरुष वैसे फलका भागी होता है। सदाचार, उत्तम वृत्ति तथा सद्भावनाके साथ मनमें दयाभाव रखते हुए विद्वान् पुरुषको तीर्थमें निवास करना चाहिये। अन्यथा उसका फल नहीं मिलता। पुण्यक्षेत्रमें किया हुआ थोड़ा-सा पुण्य भी अनेक प्रकारसे वृद्धिको प्राप्त होता है। तथा वहाँ किया हुआ छोटा-सा पाप भी महान् हो जाता है। यदि पुण्यक्षेत्रमें रहकर ही जीवन बितानेका निश्चय हो तो उस पुण्यसंकल्पसे उसका पहलेका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जायगा; क्योंकि पुण्यको ऐश्वर्यदायक कहा गया है। ब्राह्मणो! तीर्थवासजनित पुण्य कायिक, वाचिक और मानसिक सारे पापोंका नाश कर देता है। तीर्थमें किया हुआ मानसिक पाप वज्रलेप हो जाता है। वह कई कल्पोंतक पीछा नहीं छोड़ता है।* वैसा पाप

* पुण्यक्षेत्रे कृतं पुण्यं बहुधा ऋद्धिमृच्छति। पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं महदण्वपि जायते॥
तत्काले जीवनार्थश्चेत् पुण्येन क्षयमेष्यति। पुण्यमैश्वर्यदं प्राहुः कायिकं वाचिकं तथा॥
मानसं च तथा पापं तादृशं नाशयेद् द्विजाः। मानसं वज्रलेपं तु कल्पकल्पानुगं तथा॥
(शिवपुराण, विद्येश्वर-सं० १३। ३६—३८)

केवल ध्यानसे ही नष्ट होता है, अन्यथा नहीं। वाचिक पाप जपसे तथा कायिक पाप शरीरको सुखाने-जैसे कठोर तपसे नष्ट होता है; अतः सुख चाहनेवाले पुरुषको देवताओंकी पूजा करते और ब्राह्मणोंको दान देते हुए पापसे बचकर ही तीर्थमें निवास करना चाहिये।

(अध्याय १२)

☆

सदाचार, शौचाचार, स्नान, भस्मधारण, संध्यावन्दन, प्रणव-जप, गायत्री-जप, दान, न्यायतः धनोपार्जन तथा अग्निहोत्र आदिकी विधि एवं महिमाका वर्णन

ऋषियोंने कहा—सूतजी! अब आप शीघ्र ही हमें वह सदाचार सुनाइये, जिससे विद्वान् पुरुष पुण्यलोकोंपर विजय पाता है। स्वर्ग प्रदान करनेवाले धर्ममय आचार तथा नरकका कष्ट देनेवाले अधर्ममय आचारोंका भी वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—सदाचारका पालन करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण ही वास्तवमें 'ब्राह्मण' नाम धारण करनेका अधिकारी है। जो केवल वेदोक्त आचारका पालन करनेवाला एवं वेदका अभ्यासी है, उस ब्राह्मणकी 'विप्र' संज्ञा होती है। सदाचार, वेदाचार तथा विद्या—इनमेंसे एक-एक गुणसे ही युक्त होनेपर उसे 'द्विज' कहते हैं। जिसमें स्वल्पमात्रामें ही आचारका पालन देखा जाता है, जिसने वेदाध्ययन भी बहुत कम किया है तथा जो राजाका सेवक (पुरोहित, मन्त्री आदि) है, उसे 'क्षत्रिय-ब्राह्मण' कहते हैं। जो ब्राह्मण कृषि तथा वाणिज्य कर्म करनेवाला है और कुछ-कुछ ब्राह्मणोचित आचारका भी पालन करता है, वह 'वैश्य-ब्राह्मण' है तथा जो स्वयं ही खेत जोतता (हल चलाता) है, उसे 'शूद्र-ब्राह्मण' कहा गया है। जो दूसरोंके दोष देखनेवाला और परद्रोही है, उसे 'चाण्डाल-द्विज' कहते हैं। इसी तरह क्षत्रियोंमें भी जो पृथ्वीका पालन करता है, वह 'राजा' है। दूसरे लोग राजत्वहीन क्षत्रिय माने गये हैं। वैश्योंमें भी जो धान्य आदि वस्तुओंका क्रय-विक्रय करता है, वह 'वैश्य' कहलाता है। दूसरोंको 'वणिक्' कहते हैं। जो ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्योंकी सेवामें लगा रहता है, वही वास्तवमें 'शूद्र' कहलाता है। जो शूद्र हल जोतनेका काम करता है, उसे 'वृषल' समझना चाहिये। सेवा, शिल्प और कर्षणसे भिन्न वृत्तिका आश्रय लेनेवाले शूद्र 'दस्यु' कहलाते हैं। इन सभी वर्णोंके मनुष्योंको चाहिये कि वे ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर पूर्वाभिमुख हो सबसे पहले देवताओंका, फिर धर्मका, अर्थका, उसकी प्राप्तिके लिये उठाये जानेवाले क्लेशोंका तथा आय और व्ययका भी चिन्तन करें।

रातके पिछले पहरको उषःकाल जानना चाहिये। उस अन्तिम पहरका जो आधा या मध्यभाग है, उसे संधि कहते हैं। उस संधिकालमें उठकर द्विजको मल-मूत्र आदिका त्याग करना चाहिये। घरसे दूर जाकर बाहरसे अपने शरीरको ढके रखकर दिनमें उत्तराभिमुख बैठकर मल-मूत्रका त्याग करे। यदि उत्तराभिमुख बैठनेमें कोई

रुकावट हो तो दूसरी दिशाकी ओर मुख करके बैठे। जल, अग्नि, ब्राह्मण आदि तथा देवताओंका सामना बचाकर बैठे। मल-त्याग करके उठनेपर फिर उस मलको न देखे। तदनन्तर जलाशयसे बाहर निकाले हुए जलसे ही गुदाकी शुद्धि करे अथवा देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंके तीर्थोंमें उतरे बिना ही प्राप्त हुए जलसे शुद्धि करनी चाहिये। गुदामें सात, पाँच या तीन बार मिट्टी लगाकर उसे धोकर शुद्ध करे। लिङ्गमें ककोड़ेके फलके बराबर मिट्टी लेकर लगाये और उसे धो दे। परंतु गुदामें लगानेके लिये एक पसर मिट्टीकी आवश्यकता होती है। लिङ्ग और गुदाकी शुद्धिके पश्चात् उठकर अन्यत्र जाय और हाथ-पैरोंकी शुद्धि करके आठ बार कुल्ला करे। जिस किसी वृक्षके पत्तेसे अथवा उसके पतले काष्ठसे जलके बाहर दतुअन करना चाहिये। उस समय तर्जनी अंगुलिका उपयोग न करे। यह दन्त-शुद्धिका विधान बताया गया है। तदनन्तर जल-सम्बन्धी देवताओंको नमस्कार करके मन्त्रपाठ करते हुए जलाशयमें स्नान करे। यदि कण्ठतक या कमरतक पानीमें खड़े होनेकी शक्ति न हो तो घुटनेतक जलमें खड़ा हो अपने ऊपर जल छिड़ककर मन्त्रोच्चारण-पूर्वक स्नान-कार्य सम्पन्न करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वहाँ तीर्थजलसे देवता आदिका स्नानाङ्ग-तर्पण भी करे।

इसके बाद धौतवस्त्र लेकर पाँच कच्छ करके उसे धारण करे। साथ ही कोई उत्तरीय भी धारण कर ले; क्योंकि संध्या-वन्दन आदि सभी कर्मोंमें उसकी आवश्यकता होती है। नदी आदि तीर्थोंमें स्नान करनेपर स्नान-सम्बन्धी उतारे हुए वस्त्रको वहाँ न धोये। स्नानके पश्चात् विद्वान् पुरुष भीगे हुए उस वस्त्रको बावड़ीमें, कुएँके पास अथवा घर आदिमें ले जाय और वहाँ पत्थरपर, लकड़ी आदिपर, जलमें या स्थलमें अच्छी तरह धोकर उस वस्त्रको निचोड़े। द्विजो! वस्त्रको निचोड़नेसे जो जल गिरता है, वह एक श्रेणीके पितरोंकी तृप्तिके लिये होता है। इसके बाद जाबालि-उपनिषद्में बताये गये 'अग्निरिति॰' मन्त्रसे भस्म लेकर उसके द्वारा त्रिपुण्ड्र लगाये।*

---

* जाबालि-उपनिषद्में भस्मधारणकी विधि इस प्रकार कही गयी है—

'ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म व्योमेति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म' इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करे।

'मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान्रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे'॥

इस मन्त्रसे उठाकर जलसे मले, तत्पश्चात्—

'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥'

इत्यादि मन्त्रसे मस्तक, ललाट, वक्षःस्थल और कंधोंपर त्रिपुण्ड्र करे।

'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥'

तथा—

'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥'

—इन दोनों मन्त्रोंको तीन-तीन बार पढ़ते हुए तीन रेखाएँ खींचे।

इस विधिका पालन न किया जाय, इसके पूर्व ही यदि जलमें भस्म गिर जाय तो गिरानेवाला नरकमें जाता है। 'आपो हि ष्ठा०' इत्यादि मन्त्रसे पाप-शान्तिके लिये सिरपर जल छिड़के तथा 'यस्य क्षयाय' इस मन्त्रको पढ़कर पैरपर जल छिड़के। इसे संधिप्रोक्षण कहते हैं। 'आपो हि ष्ठा०' इत्यादि मन्त्रमें तीन ऋचाएँ हैं और प्रत्येक ऋचामें गायत्री छन्दके तीन-तीन चरण हैं। इनमेंसे प्रथम ऋचाके तीन चरणोंका पाठ करते हुए क्रमशः पैर, मस्तक और हृदयमें जल छिड़के। दूसरी ऋचाके तीन चरणोंको पढ़कर क्रमशः मस्तक, हृदय और पैरमें जल छिड़के तथा तीसरी ऋचाके तीन चरणोंका पाठ करते हुए क्रमशः हृदय, पैर और मस्तकका जलसे प्रोक्षण करे। इसे विद्वान् पुरुष 'मन्त्र-स्नान' मानते हैं। किसी अपवित्र वस्तुसे किंचित् स्पर्श हो जानेपर, अपना स्वास्थ्य ठीक न रहनेपर, राजा और राष्ट्रपर भय उपस्थित होनेपर तथा यात्राकालमें जलकी उपलब्धि न होनेकी विवशता आ जानेपर 'मन्त्र-स्नान' करना चाहिये। प्रातःकाल 'सूर्यश्च मा मन्युश्च' इत्यादि सूर्यानुवाकसे तथा सायंकाल 'अग्निश्च मा मन्युश्च' इत्यादि अग्नि-सम्बन्धी अनुवाकसे जलका आचमन करके पुनः जलसे अपने अङ्गोंका प्रोक्षण करे। मध्याह्नकालमें भी 'आपः पुनन्तु' इस मन्त्रसे आचमन करके पूर्ववत् प्रोक्षण या मार्जन करना चाहिये।

प्रातःकालकी संध्योपासनामें गायत्री-मन्त्रका जप करके तीन बार ऊपरकी ओर सूर्यदेवको अर्घ्य देने चाहिये। ब्राह्मणो! मध्याह्नकालमें गायत्री-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक सूर्यको एक ही अर्घ्य देना चाहिये। फिर सायंकाल आनेपर पश्चिमकी ओर मुख करके बैठ जाय और पृथ्वीपर ही सूर्यके लिये अर्घ्य दे (ऊपरकी ओर नहीं)। प्रातःकाल और मध्याह्नके समय अञ्जलिमें अर्घ्यजल लेकर अंगुलियोंकी ओरसे सूर्यदेवके लिये अर्घ्य दे। फिर अंगुलियोंके छिद्रसे ढलते हुए सूर्यको देखे तथा उनके लिये स्वतः प्रदक्षिणा करके शुद्ध आचमन करे। सायंकालमें सूर्यास्तसे दो घड़ी पहले की हुई संध्या निष्फल होती है; क्योंकि वह सायं संध्याका समय नहीं है। ठीक समयपर संध्या करनी चाहिये, ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है। यदि संध्योपासना किये बिना दिन बीत जाय तो प्रत्येक समयके लिये क्रमशः प्रायश्चित्त करना चाहिये। यदि एक दिन बीते तो प्रत्येक बीते हुए संध्याकालके लिये नित्य-नियमके अतिरिक्त सौ गायत्री-मन्त्रका अधिक जप करे। यदि नित्यकर्मके लुप्त हुए दस दिनसे अधिक बीत जाय तो उसके प्रायश्चित्तरूपमें एक लाख गायत्रीका जप करना चाहिये। यदि एक मासतक नित्यकर्म छूट जाय तो पुनः अपना उपनयनसंस्कार कराये।

अर्थसिद्धिके लिये ईश, गौरी, कार्तिकेय, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा और यमका तथा ऐसे ही अन्य देवताओंका भी शुद्ध जलसे तर्पण करे। फिर तर्पण कर्मको ब्रह्मार्पण करके शुद्ध आचमन करे। तीर्थके दक्षिण प्रशस्त मठमें, मन्त्रालयमें, देवालयमें, घरमें अथवा अन्य किसी नियत स्थानमें आसनपर स्थिरतापूर्वक बैठकर विद्वान् पुरुष अपनी बुद्धिको स्थिर करे और सम्पूर्ण देवताओंको नमस्कार करके पहले प्रणवका जप करनेके पश्चात् गायत्री-

मन्त्रकी आवृत्ति करे। प्रणवके 'अ', 'उ' और 'म्' इन तीनों अक्षरोंसे जीव और ब्रह्मकी एकताका प्रतिपादन होता है—इस बातको जानकर प्रणव (ॐ) का जप करना चाहिये। जपकालमें यह भावना करनी चाहिये कि 'हम तीनों लोकोंकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा, पालन करनेवाले विष्णु तथा संहार करनेवाले रुद्रकी—जो स्वयं-प्रकाश चिन्मय हैं—उपासना करते हैं। यह ब्रह्मस्वरूप ओंकार हमारी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंकी वृत्तियोंको, मनकी वृत्तियोंको तथा बुद्धिवृत्तियोंको सदा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले धर्म एवं ज्ञानकी ओर प्रेरित करे।' प्रणवके इस अर्थका बुद्धिके द्वारा चिन्तन करता हुआ जो इसका जप करता है, वह निश्चय ही ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। अथवा अर्थानुसंधानके बिना भी प्रणवका नित्य जप करना चाहिये। इससे 'ब्राह्मणत्वकी पूर्ति' होती है। ब्राह्मणत्वकी पूर्तिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रतिदिन प्रातःकाल एक सहस्र गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। मध्याह्नकालमें सौ बार और सायंकालमें अट्ठाईस बार जपकी विधि है। अन्य वर्णके लोगोंको अर्थात् क्षत्रिय और वैश्यको तीनों संध्याओंके समय यथासाध्य गायत्री-जप करना चाहिये।

शरीरके भीतर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, आज्ञा और सहस्रार—ये छः चक्र हैं। इनमें मूलाधारसे लेकर सहस्रारतक छहों स्थानोंमें क्रमशः विद्येश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, ईश, जीवात्मा और परमेश्वर स्थित हैं। इन सबमें ब्रह्मबुद्धि करके इनकी एकताका निश्चय करे और 'वह ब्रह्म मैं हूँ' ऐसी भावनापूर्वक प्रत्येक श्वासके साथ 'सोऽहं' का जप करे। उन्हीं विद्येश्वर आदिकी ब्रह्मरन्ध्र आदिमें तथा इस शरीरसे बाहर भी भावना करे। प्रकृतिके विकारभूत महत्तत्त्वसे लेकर पञ्चभूतपर्यन्त तत्त्वोंसे बना हुआ जो शरीर है, ऐसे सहस्रों शरीरोंका एक-एक अजपा गायत्रीके जपसे एक-एकके क्रमसे अतिक्रमण करके जीवको धीरे-धीरे परमात्मासे संयुक्त करे। यह जपका तत्त्व बताया गया है। सौ अथवा अट्ठाईस मन्त्रोंके जपसे उतने ही शरीरोंका अतिक्रमण होता है। इस प्रकार जो मन्त्रोंका जप है, इसीको आदिक्रमसे वास्तविक जप जानना चाहिये। सहस्र बार किया हुआ जप ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाला होता है, ऐसा जानना चाहिये। सौ बार किया हुआ जप इन्द्रपदकी प्राप्ति करानेवाला माना गया है। ब्राह्मणेतर पुरुष आत्मरक्षाके लिये जो स्वल्पमात्रामें जप करता है, वह ब्राह्मणके कुलमें जन्म लेता है। प्रतिदिन सूर्योपस्थान करके उपर्युक्तरूपसे जपका अनुष्ठान करना चाहिये। बारह लाख गायत्रीका जप करनेवाला पुरुष पूर्णरूपसे 'ब्राह्मण' कहा गया है। जिस ब्राह्मणने एक लाख गायत्रीका भी जप न किया हो, उसे वैदिक कार्यमें न लगाये। सत्तर वर्षकी अवस्थातक नियमपालनपूर्वक कार्य करे। इसके बाद गृहत्यागकर संन्यास ले ले। परिव्राजक या संन्यासी पुरुष नित्य प्रातःकाल बारह हजार प्रणवका जप करे। यदि एक दिन इस नियमका उल्लङ्घन हो जाय तो दूसरे दिन उसके बदलेमें उतना मन्त्र और अधिक जपना चाहिये और सदा इस प्रकार जपको चलानेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि

क्रमश: एक मास आदिका उल्लङ्घन हो गया तो डेढ़ लाख जप करके उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये। इससे अधिक समयतक नियमका उल्लङ्घन हो जाय तो पुन: नये सिरेसे गुरुसे नियम ग्रहण करे। ऐसा करनेसे दोषोंकी शान्ति होती है, अन्यथा वह रौरव नरकमें जाता है। जो सकाम भावनासे युक्त गृहस्थ ब्राह्मण है, उसीको धर्म तथा अर्थके लिये यत्न करना चाहिये। मुमुक्षु ब्राह्मणको तो सदा ज्ञानका ही *अभ्यास करना चाहिये।* धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, अर्थसे भोग सुलभ होता है। फिर उस भोगसे वैराग्यकी सम्भावना होती है। धर्मपूर्वक उपार्जित धनसे जो भोग प्राप्त होता है, उससे एक दिन अवश्य वैराग्यका उदय होता है। धर्मके विपरीत अधर्मसे उपार्जित हुए धनके द्वारा जो भोग प्राप्त होता है, उससे भोगोंके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। मनुष्य धर्मसे धन पाता है, *तपस्यासे उसे दिव्य रूपकी प्राप्ति* होती है। कामनाओंका त्याग करनेवाले पुरुषके अन्त:करणकी शुद्धि होती है। उस शुद्धिसे ज्ञानका उदय होता है, इसमें संशय नहीं है।

सत्ययुग आदिमें तपको ही प्रशस्त कहा गया है, किंतु कलियुगमें द्रव्यसाध्य धर्म (दान आदि) अच्छा माना गया है। सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें तपस्यासे और द्वापरमें यज्ञ करनेसे ज्ञानकी सिद्धि होती है; परंतु कलियुगमें प्रतिमा (भगवद्विग्रह) की पूजासे ज्ञानलाभ होता है। अधर्म हिंसा (दु:ख) रूप है और धर्म सुखरूप है। अधर्मसे मनुष्य दु:ख पाता है और धर्मसे वह सुख एवं अभ्युदयका भागी होता है। दुराचारसे दु:ख प्राप्त होता है और सदाचारसे सुख। *अत: भोग और मोक्षकी सिद्धिके* लिये धर्मका उपार्जन करना चाहिये। जिसके घरमें कम-से-कम चार मनुष्य हैं, ऐसे कुटुम्बी ब्राह्मणको जो सौ वर्षके लिये जीविका (जीवन-निर्वाहकी सामग्री) देता है, उसके लिये वह दान ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है। एक सहस्र चान्द्रायण व्रतका अनुष्ठान ब्रह्मलोकदायक माना गया है। जो क्षत्रिय एक सहस्र कुटुम्बको *जीविका और आवास देता है,* उसका वह कर्म इन्द्रलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है। दस हजार कुटुम्बोंको दिया हुआ आश्रय-दान ब्रह्मलोक प्रदान करता है। दाता पुरुष जिस देवताको सामने रखकर दान करता है अर्थात् वह दानके द्वारा जिस देवताको प्रसन्न करना चाहता है, उसीका लोक उसे प्राप्त होता है—यह बात वेदवेत्ता पुरुष अच्छी तरह जानते हैं। धनहीन पुरुष सदा तपस्याका उपार्जन करे; क्योंकि तपस्या और तीर्थसेवनसे अक्षय सुख पाकर मनुष्य उसका उपभोग करता है।

अब मैं न्यायत: धनके उपार्जनकी विधि बता रहा हूँ। ब्राह्मणको चाहिये कि वह सदा सावधान रहकर विशुद्ध प्रतिग्रह (दान-ग्रहण) तथा याजन (यज्ञ कराने) आदिसे धनका अर्जन करे। वह इसके लिये कहीं दीनता न दिखाये और न अत्यन्त क्लेशदायक कर्म ही करे। क्षत्रिय बाहुबलसे धनका उपार्जन करे और वैश्य कृषि एवं गोरक्षासे। न्यायोपार्जित धनका दान करनेसे दाताको ज्ञानकी सिद्धि प्राप्त होती है। ज्ञानसिद्धिद्वारा सब पुरुषोंको गुरुकृपा—मोक्षसिद्धि सुलभ होती है। मोक्षसे स्वरूपकी सिद्धि (ब्रह्मरूपसे स्थिति) प्राप्त होती है, जिससे

मुक्त पुरुष परमानन्दका अनुभव करता है। गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि वह धन-धान्यादि सब वस्तुओंका दान करे। वह तृषा-निवृत्तिके लिये जल तथा क्षुधारूपी रोगकी शान्तिके लिये सदा अन्नका दान करे। खेत, धान्य, कच्चा अन्न तथा भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—ये चार प्रकारके सिद्ध अन्न दान करने चाहिये। जिसके अन्नको खाकर मनुष्य जबतक कथा-श्रवण आदि सत्कर्मका पालन करता है, उतने समयतक उसके किये हुए पुण्यफलका आधा भाग दाताको मिल जाता है—इसमें संशय नहीं है। दान लेनेवाला पुरुष दानमें प्राप्त हुई वस्तुका दान तथा तपस्या करके अपने प्रति-ग्रहजनित पापकी शुद्धि कर ले। अन्यथा उसे रौरव नरकमें गिरना पड़ता है। अपने धनके तीन भाग करे—एक भाग धर्मके लिये, दूसरा भाग वृद्धिके लिये तथा तीसरा भाग अपने उपभोगके लिये। नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये तीनों प्रकारके कर्म धर्मार्थ रखे हुए धनसे करे। साधकको चाहिये कि वह वृद्धिके लिये रखे हुए धनसे ऐसा व्यापार करे, जिससे उस धनकी वृद्धि हो तथा उपभोगके लिये रक्षित धनसे हितकारक, परिमित एवं पवित्र भोग भोगे। खेतीसे पैदा किये हुए धान्यका दसवाँ अंश दान कर दे। इससे पापकी शुद्धि होती है। शेष धनसे धर्म, वृद्धि एवं उपभोग करे; अन्यथा वह रौरव नरकमें पड़ता है अथवा उसकी बुद्धि पापपूर्ण हो जाती है या खेती ही चौपट हो जाती है। वृद्धिके लिये किये गये व्यापारमें प्राप्त हुए धनका छठा भाग दान कर देने योग्य है। बुद्धिमान् पुरुष अवश्य उसका दान कर दे।

विद्वान्‌को चाहिये कि वह दूसरोंके दोषोंका बखान न करे। ब्राह्मणो! दोषवश दूसरोंके सुने या देखे हुए छिद्रको भी प्रकट न करे। विद्वान् पुरुष ऐसी बात न कहे, जो समस्त प्राणियोंके हृदयमें रोष पैदा करनेवाली हो। ऐश्वर्यकी सिद्धिके लिये दोनों संध्याओंके समय अग्निहोत्रकर्म अवश्य करे। जो दोनों समय अग्निहोत्र करनेमें असमर्थ हो, वह एक ही समय सूर्य और अग्निको विधिपूर्वक दी हुई आहुतिसे संतुष्ट करे। चावल, धान्य, घी, फल, कंद तथा हविष्य—इनके द्वारा विधिपूर्वक स्थालीपाक बनाये तथा यथोचित रीतिसे सूर्य और अग्निको अर्पित करे। यदि हविष्यका अभाव हो तो प्रधान होममात्र करे। सदा सुरक्षित रहनेवाली अग्निको विद्वान् पुरुष अजस्रकी संज्ञा देते हैं। अथवा संध्याकालमें जपमात्र या सूर्यकी वन्दनामात्र कर ले। आत्मज्ञानकी इच्छावाले तथा धनार्थी पुरुषोंको भी इस प्रकार विधिवत् उपासना करनी चाहिये। जो सदा ब्रह्मयज्ञमें तत्पर होते हैं, देवताओंकी पूजामें लगे रहते हैं, नित्य अग्निपूजा एवं गुरुपूजामें अनुरक्त होते हैं तथा ब्राह्मणोंको तृप्त किया करते हैं, वे सब लोग स्वर्गलोकके भागी होते हैं। (अध्याय १३)

☆

अग्नियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ आदिका वर्णन, भगवान् शिवके द्वारा सातों वारोंका निर्माण तथा उनमें देवाराधनसे विभिन्न प्रकारके फलोंकी प्राप्तिका कथन

ऋषियोंने कहा—प्रभो! अग्नियज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, गुरुपूजा तथा ब्रह्मतृप्तिका हमारे समक्ष क्रमशः वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—महर्षियो! गृहस्थ पुरुष अग्निमें सायंकाल और प्रातःकाल जो चावल आदि द्रव्यकी आहुति देता है, उसीको अग्नियज्ञ कहते हैं। जो ब्रह्मचर्य आश्रममें स्थित हैं, उन ब्रह्मचारियोंके लिये समिधाका आधान ही अग्नियज्ञ है। वे समिधाका ही अग्निमें हवन करें। ब्राह्मणो! ब्रह्मचर्य आश्रममें निवास करनेवाले द्विजोंका जबतक विवाह न हो जाय और वे औपासनाग्निकी प्रतिष्ठा न कर लें, तबतक उनके लिये अग्निमें समिधाकी आहुति, व्रत आदिका पालन तथा विशेष यजन आदि ही कर्तव्य है (यही उनके लिये अग्नियज्ञ है)। द्विजो! जिन्होंने बाह्य अग्निको विसर्जित करके अपने आत्मामें ही अग्निका आरोप कर लिया है, ऐसे वानप्रस्थियों और संन्यासियोंके लिये यही हवन या अग्नियज्ञ है कि वे विहित समयपर हितकर, परिमित और पवित्र अन्नका भोजन कर लें। ब्राह्मणो! सायंकाल अग्निके लिये दी हुई आहुति सम्पत्ति प्रदान करनेवाली होती है, ऐसा जानना चाहिये और प्रातःकाल सूर्यदेवको दी हुई आहुति आयुकी वृद्धि करनेवाली होती है, यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये। दिनमें अग्निदेव सूर्यमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं। अतः प्रातःकाल सूर्यको दी हुई आहुति भी अग्नियज्ञके ही अन्तर्गत है। इस प्रकार यह अग्नियज्ञका वर्णन किया गया।

इन्द्र आदि समस्त देवताओंके उद्देश्यसे अग्निमें जो आहुति दी जाती है, उसे देवयज्ञ समझना चाहिये। स्थालीपाक आदि यज्ञोंको देवयज्ञ ही मानना चाहिये। लौकिक अग्निमें प्रतिष्ठित जो चूडाकरण आदि संस्कार-निमित्तक हवन-कर्म हैं, उन्हें भी देवयज्ञके ही अन्तर्गत जानना चाहिये। अब ब्रह्मयज्ञका वर्णन सुनो। द्विजको चाहिये कि वह देवताओंकी तृप्तिके लिये निरन्तर ब्रह्मयज्ञ करे। वेदोंका जो नित्य अध्ययन या स्वाध्याय होता है, उसीको ब्रह्मयज्ञ कहा गया है, प्रातः नित्यकर्मके अनन्तर सायंकालतक ब्रह्मयज्ञ किया जा सकता है। उसके बाद रातमें इसका विधान नहीं है।

अग्निके बिना देवयज्ञ कैसे सम्पन्न होता है, इसे तुमलोग श्रद्धासे और आदरपूर्वक सुनो। सृष्टिके आरम्भमें सर्वज्ञ, दयालु और सर्वसमर्थ महादेवजीने समस्त लोकोंके उपकारके लिये वारोंकी कल्पना की। वे भगवान् शिव संसाररूपी रोगको दूर करनेके लिये वैद्य हैं। सबके ज्ञाता तथा समस्त औषधोंके भी औषध हैं। उन भगवान्‌ने पहले अपने वारकी कल्पना की, जो आरोग्य प्रदान करनेवाला है। तत्पश्चात् अपनी मायाशक्तिका वार बनाया, जो सम्पत्ति प्रदान करनेवाला है। जन्मकालमें दुर्गतिग्रस्त बालककी रक्षाके लिये उन्होंने कुमारके वारकी कल्पना की। तत्पश्चात्

सर्वसमर्थ महादेवजीने आलस्य और पापकी निवृत्ति तथा समस्त लोकोंका हित करनेकी इच्छासे लोकरक्षक भगवान् विष्णुका वार बनाया। इसके बाद सबके स्वामी भगवान् शिवने पुष्टि और रक्षाके लिये आयुःकर्ता त्रिलोकस्रष्टा परमेष्ठी ब्रह्माका आयुष्कारक वार बनाया, जिससे सम्पूर्ण जगत्के आयुष्यकी सिद्धि हो सके। इसके बाद तीनों लोकोंकी वृद्धिके लिये पहले पुण्य-पापकी रचना हो जानेपर उनके करनेवाले लोगोंको शुभाशुभ फल देनेके लिये भगवान् शिवने इन्द्र और यमके वारोंका निर्माण किया। ये दोनों वार क्रमशः भोग देनेवाले तथा लोगोंके मृत्युभयको दूर करनेवाले हैं। इसके बाद सूर्य आदि सात ग्रहोंको, जो अपने ही स्वरूपभूत तथा प्राणियोंके लिये सुख-दुःखके सूचक हैं, भगवान् शिवने उपर्युक्त सात वारोंका स्वामी निश्चित किया। वे सब-के-सब ग्रह-नक्षत्रोंके ज्योतिर्मय मण्डलमें प्रतिष्ठित हैं। शिवके वार या दिनके स्वामी सूर्य हैं। शक्तिसम्बन्धी वारके स्वामी सोम हैं। कुमारसम्बन्धी दिनके अधिपति मङ्गल हैं। विष्णुवारके स्वामी बुध हैं। ब्रह्माजीके वारके अधिपति बृहस्पति हैं। इन्द्रवारके स्वामी शुक्र और यमवारके स्वामी शनैश्चर हैं। अपने-अपने वारमें की हुई उन देवताओंकी पूजा उनके अपने-अपने फलको देनेवाली होती है।

सूर्य आरोग्यके और चन्द्रमा सम्पत्तिके दाता हैं। मङ्गल व्याधियोंका निवारण करते हैं, बुध पुष्टि देते हैं। बृहस्पति आयुकी वृद्धि करते हैं। शुक्र भोग देते हैं और शनैश्चर मृत्युका निवारण करते हैं। ये सात वारोंके क्रमशः फल बताये गये हैं, जो उन-उन देवताओंकी प्रीतिसे प्राप्त होते हैं। अन्य देवताओंकी भी पूजाका फल देनेवाले भगवान् शिव ही हैं। देवताओंकी प्रसन्नताके लिये पूजाकी पाँच प्रकारकी ही पद्धति बनायी गयी। उन-उन देवताओंके मन्त्रोंका जप यह पहला प्रकार है। उनके लिये होम करना दूसरा, दान करना तीसरा तथा तप करना चौथा प्रकार है। किसी वेदीपर, प्रतिमामें, अग्निमें अथवा ब्राह्मणके शरीरमें आराध्य देवताकी भावना करके सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा या आराधना करना पाँचवाँ प्रकार है।

इनमें पूजाके उत्तरोत्तर आधार श्रेष्ठ हैं। पूर्व-पूर्वके अभावमें उत्तरोत्तर आधारका अवलम्बन करना चाहिये। दोनों नेत्रों तथा मस्तकके रोगमें और कुष्ठ रोगकी शान्तिके लिये भगवान् सूर्यकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये। तदनन्तर एक दिन, एक मास, एक वर्ष अथवा तीन वर्षतक लगातार ऐसा साधन करना चाहिये। इससे यदि प्रबल प्रारब्धका निर्माण हो जाय तो रोग एवं जरा आदि रोगोंका नाश हो जाता है। इष्टदेवके नाममन्त्रोंका जप आदि साधन वार आदिके अनुसार फल देते हैं। रविवारको सूर्यदेवके लिये, अन्य देवताओंके लिये तथा ब्राह्मणोंके लिये विशिष्ट वस्तु अर्पित करे। यह साधन विशिष्ट फल देनेवाला होता है तथा इसके द्वारा विशेषरूपसे पापोंकी शान्ति होती है। सोमवारको विद्वान् पुरुष सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये लक्ष्मी आदिकी पूजा करे तथा सपत्नीक ब्राह्मणोंको घृतपक्व अन्नका भोजन कराये। मङ्गलवारको रोगोंकी शान्तिके लिये काली आदिकी पूजा करे तथा उड़द,

मूँग एवं अरहरकी दाल आदिसे युक्त अन्न ब्राह्मणोंको भोजन कराये। बुधवारको विद्वान् पुरुष दधियुक्त अन्नसे भगवान् विष्णुका पूजन करे। ऐसा करनेसे सदा पुत्र, मित्र और कलत्र आदिकी पुष्टि होती है। जो दीर्घायु होनेकी इच्छा रखता हो, वह गुरुवारको देवताओंकी पुष्टिके लिये वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा घृतमिश्रित खीरसे यजन-पूजन करे। भोगोंकी प्राप्तिके लिये शुक्रवारको एकाग्रचित्त होकर देवताओंका पूजन करे और ब्राह्मणोंकी तृप्तिके लिये षड्रस युक्त अन्न दे। इसी प्रकार स्त्रियोंकी प्रसन्नताके लिये सुन्दर वस्त्र आदिका विधान करे। शनैश्चर अपमृत्युका निवारण करनेवाला है। उस दिन बुद्धिमान् पुरुष रुद्र आदिकी पूजा करे। तिलके होमसे, दानसे देवताओंको संतुष्ट करके ब्राह्मणोंको तिल-मिश्रित अन्न भोजन कराये। जो इस तरह देवताओंकी पूजा करेगा, वह आरोग्य आदि फलका भागी होगा।

देवताओंके नित्य-पूजन, विशेष-पूजन, स्नान, दान, जप, होम तथा ब्राह्मण-तर्पण आदिमें एवं रवि आदि वारोंमें विशेष तिथि और नक्षत्रोंका योग प्राप्त होनेपर विभिन्न देवताओंके पूजनमें सर्वज्ञ जगदीश्वर भगवान् शिव ही उन-उन देवताओंके रूपमें पूजित हो सब लोगोंको आरोग्य आदि फल प्रदान करते हैं। देश, काल, पात्र, द्रव्य, श्रद्धा एवं लोकके अनुसार उनके तारतम्य क्रमका ध्यान रखते हुए महादेवजी आराधना करनेवाले लोगोंको आरोग्य आदि फल देते हैं। शुभ (माङ्गलिक कर्म) के आरम्भमें और अशुभ (अन्त्येष्टि आदि कर्म) के अन्तमें तथा जन्म-नक्षत्रोंके आनेपर गृहस्थ पुरुष अपने घरमें आरोग्य आदिकी समृद्धिके लिये सूर्य आदि ग्रहोंका पूजन करे। इससे सिद्ध है कि देवताओंका यजन सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। ब्राह्मणोंका देवयजन कर्म वैदिक मन्त्रके साथ होना चाहिये। (यहाँ ब्राह्मण शब्द क्षत्रिय और वैश्यका भी उपलक्षण है।) शूद्र आदि दूसरोंका देवयज्ञ तान्त्रिक विधिसे होना चाहिये। शुभ फलकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको सातों ही दिन अपनी शक्तिके अनुसार सदा देवपूजन करना चाहिये। निर्धन मनुष्य तपस्या (व्रत आदिके कष्ट-सहन) द्वारा और धनी धनके द्वारा देवताओंकी आराधना करे। वह बार-बार श्रद्धापूर्वक इस तरहके धर्मका अनुष्ठान करता है और बारंबार पुण्यलोकोंमें नाना प्रकारके फल भोगकर पुनः इस पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करता है। धनवान् पुरुष सदा भोग सिद्धिके लिये मार्गमें वृक्षादि लगाकर लोगोंके लिये छायाकी व्यवस्था करे। जलाशय (कुँआ, बावली और पोखरे) बनवाये। वेद-शास्त्रोंकी प्रतिष्ठाके लिये पाठशालाका निर्माण करे तथा अन्यान्य प्रकारसे भी धर्मका संग्रह करता रहे। धनीको यह सब कार्य सदा ही करते रहना चाहिये। समयानुसार पुण्यकर्मोंके परिपाकसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर ज्ञानकी सिद्धि हो जाती है। द्विजो ! जो इस अध्यायको सुनता, पढ़ता अथवा सुननेकी व्यवस्था करता है, उसे देवयज्ञका फल प्राप्त होता है। (अध्याय १६)

★

देश, काल, पात्र और दान आदिका विचार

ऋषियोंने कहा—समस्त पदार्थोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ सूतजी ! अब आप क्रमशः देश, काल आदिका वर्णन करें।

सूतजी बोले—महर्षियो ! देवयज्ञ आदि कर्मोंमें अपना शुद्ध गृह समान फल देनेवाला होता है अर्थात् अपने घरमें किये हुए देवयज्ञ आदि शास्त्रोक्त फलको सममात्रामें देनेवाले होते हैं। गोशालाका स्थान घरकी अपेक्षा दसगुना फल देता है। जलाशयका तट उससे भी दसगुना महत्त्व रखता है तथा जहाँ बेल, तुलसी एवं पीपलवृक्षका मूल निकट हो, वह स्थान जलाशयके तटसे भी दसगुना फल देनेवाला होता है। देवालयको उससे भी दसगुने महत्त्वका स्थान जानना चाहिये। देवालयसे भी दसगुना महत्त्व रखता है तीर्थभूमिका तट। उससे दसगुना श्रेष्ठ है नदीका किनारा। उससे दसगुना उत्कृष्ट है तीर्थनदीका तट और उससे भी दसगुना महत्त्व रखता है सप्तगङ्गा नामक नदियोंका तीर्थ। गङ्गा, गोदावरी, कावेरी, ताम्रपर्णी, सिन्धु, सरयू और नर्मदा—इन सात नदियोंको सप्तगङ्गा कहा गया है। समुद्रके तटका स्थान इनसे भी दसगुना पवित्र माना गया है और पर्वतके शिखरका प्रदेश समुद्रतटसे भी दसगुना पावन है। सबसे अधिक महत्त्वका वह स्थान जानना चाहिये, जहाँ मन लग जाय।

यहाँतक देशका वर्णन हुआ, अब कालका तारतम्य बताया जाता है—सत्ययुगमें यज्ञ, दान आदि कर्म पूर्ण फल देनेवाले होते हैं, ऐसा जानना चाहिये। त्रेतायुगमें उसका तीन चौथाई फल मिलता है। द्वापरमें सदा आधे ही फलकी प्राप्ति कही गयी है। कलियुगमें एक चौथाई ही फलकी प्राप्ति समझनी चाहिये और आधा कलियुग बीतनेपर उस चौथाई फलमेंसे भी एक चतुर्थांश कम हो जाता है। शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषको शुद्ध एवं पवित्र दिन सम फल देनेवाला होता है।

विद्वान् ब्राह्मणो ! सूर्य-संक्रान्तिके दिन किया हुआ सत्कर्म पूर्वोक्त शुद्ध दिनकी अपेक्षा दसगुना फल देनेवाला होता है, यह जानना चाहिये। उससे भी दसगुना महत्त्व उस कर्मका है, जो विषुव* नामक योगमें किया जाता है। दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन अर्थात् कर्ककी संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका महत्त्व विषुवसे भी दसगुना माना गया है। उससे भी दसगुना मकर-संक्रान्तिमें और उससे भी दसगुना चन्द्रग्रहणमें किये हुए पुण्यका महत्त्व है। सूर्यग्रहणका समय सबसे उत्तम है। उसमें किये गये पुण्यकर्मका फल चन्द्रग्रहणसे भी अधिक और पूर्णमात्रामें होता है, इस बातको विज्ञ पुरुष जानते हैं। जगद्रूपी सूर्यका राहुरूपी विषसे संयोग होता है, इसलिये सूर्यग्रहणका समय रोग प्रदान करनेवाला है। अतः उस विषकी शान्तिके लिये उस समय स्नान, दान और जप करे।

---

* ज्योतिषके अनुसार वह समय जब कि सूर्य विषुव रेखापर पहुँचता है और दिन तथा रात दोनों बराबर होते हैं। वर्षमें दो बार आता है—एक तो सौर चैत्रमासकी नवमी तिथि या अंग्रेजी २१ मार्चको और दूसरा सौर आश्विनकी नवमी तिथि या अंग्रेजी २२ सितम्बरको।

यह काल विषकी शान्तिके लिये उपयोगी होनेके कारण पुण्यप्रद माना गया है। जन्म-नक्षत्रके दिन तथा व्रतकी पूर्तिके दिनका समय सूर्यग्रहणके समान ही समझा जाता है। परंतु महापुरुषोंके सङ्गका काल करोड़ों सूर्यग्रहणके समान पावन है, ऐसा ज्ञानी पुरुष जानते-मानते हैं।

तपोनिष्ठ योगी और ज्ञाननिष्ठ यति—ये पूजाके पात्र हैं; क्योंकि ये पापोंके नाशमें कारण होते हैं। जिसने चौबीस लाख गायत्रीका जप कर लिया हो, वह ब्राह्मण भी पूजाका उत्तम पात्र है। वह सम्पूर्ण फलों और भोगोंको देनेमें समर्थ है। जो पतनसे त्राण करता अर्थात् नरकमें गिरनेसे बचाता है, उसके लिये इसी गुणके कारण शास्त्रमें 'पात्र' शब्दका प्रयोग होता है। वह दाताका पातकसे त्राण करनेके कारण 'पात्र'* कहलाता है। गायत्री अपने गायकका पतनसे त्राण करती है; इसीलिये वह 'गायत्री' कहलाती है। जैसे इस लोकमें जो धनहीन है, वह दूसरेको धन नहीं देता—जो यहाँ धनवान् है, वही दूसरेको धन दे सकता है, उसी तरह जो स्वयं शुद्ध और पवित्रात्मा है, वही दूसरे मनुष्योंका त्राण या उद्धार कर सकता है। जो गायत्रीका जप करके शुद्ध हो गया है, वही शुद्ध ब्राह्मण कहलाता है। इसलिये दान, जप, होम और पूजा सभी कर्मोंके लिये वही शुद्ध पात्र है। ऐसा ब्राह्मण ही दान तथा रक्षा करनेकी पात्रता रखता है।

स्त्री हो या पुरुष—जो भी भूखा हो, वही अन्नदानका पात्र है। जिसको जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे वह वस्तु बिना माँगे ही दे दी जाय तो दाताको उस दानका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है, ऐसी महर्षियोंकी मान्यता है। जो सवाल या याचना करनेके बाद दिया गया हो, वह दान आधा ही फल देनेवाला बताया गया है। अपने सेवकको दिया हुआ दान एक चौथाई फल देनेवाला होता है। विप्रवरो! जो जातिमात्रसे ब्राह्मण है और दीनतापूर्ण वृत्तिसे जीवन बिताता है, उसे दिया हुआ धनका दान दाताको इस भूतलपर दस वर्षोंतक भोग प्रदान करनेवाला होता है। वही दान यदि वेदवेत्ता ब्राह्मणको दिया जाय तो वह स्वर्गलोकमें देवताओंके वर्षसे दस वर्षोंतक दिव्य भोग देनेवाला होता है। शिल और उञ्छ वृत्तिसे† लाया हुआ और गुरुदक्षिणामें प्राप्त हुआ अन्न-धन शुद्ध द्रव्य कहलाता है। उसका दान दाताको पूर्ण फल देनेवाला बताया गया है। क्षत्रियोंका शौर्यसे कमाया हुआ, वैश्योंका व्यापारसे आया हुआ और शूद्रोंका सेवावृत्तिसे प्राप्त किया हुआ धन भी उत्तम द्रव्य कहलाता है। धर्मकी इच्छा रखनेवाली स्त्रियोंको जो धन पिता एवं पतिसे मिला हुआ हो, उनके लिये वह उत्तम द्रव्य है।

गौ आदि बारह वस्तुओंका चैत्र आदि बारह महीनोंमें क्रमशः दान करना चाहिये। गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, घी, वस्त्र, धान्य,

* पतनात्त्रायत इति पात्रं शास्त्रे प्रयुज्यते। दातुश्च पातकात्त्राणात्पात्रमित्यभिधीयते॥

(शि० पु० विद्ये० १५। १५)

† कोशकार कहते हैं—

'उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्।'

गुड़, चाँदी, नमक, कोहड़ा और कन्या—ये ही वे बारह वस्तुएँ हैं। इनमें गोदानसे कायिक, वाचिक और मानसिक पापोंका निवारण तथा कायिक आदि पुण्यकर्मोंकी पुष्टि होती है। ब्राह्मणो! भूमिका दान इहलोक और परलोकमें प्रतिष्ठा (आश्रय) की प्राप्ति करानेवाला है। तिलका दान बलवर्धक एवं मृत्युका निवारक होता है। सुवर्णका दान जठराग्निको बढ़ानेवाला तथा वीर्यदायक है। घीका दान पुष्टिकारक होता है। वस्त्रका दान आयुकी वृद्धि करानेवाला है, ऐसा जानना चाहिये। धान्यका दान अन्न-धनकी समृद्धिमें कारण होता है। गुड़का दान मधुर भोजनकी प्राप्ति करानेवाला होता है। चाँदीके दानसे वीर्यकी वृद्धि होती है। लवणका दान षड्रस भोजनकी प्राप्ति कराता है। सब प्रकारका दान सारी समृद्धिकी सिद्धिके लिये होता है। विज्ञ पुरुष कूष्माण्डके दानको पुष्टिदायक मानते हैं। कन्याका दान आजीवन भोग देनेवाला कहा गया है। ब्राह्मणो! वह लोक और परलोकमें भी सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति करानेवाला है।

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जिन वस्तुओंसे श्रवण आदि इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है, उनका सदा दान करे। श्रोत्र आदि दस इन्द्रियोंके जो शब्द आदि दस विषय हैं, उनका दान किया जाय तो वे भोगोंकी प्राप्ति कराते हैं तथा दिशा आदि इन्द्रिय* देवताओंको संतुष्ट करते हैं। वेद और शास्त्रको गुरुमुखसे ग्रहण करके गुरुके उपदेशसे अथवा स्वयं ही बोध प्राप्त करनेके पश्चात् जो बुद्धिका यह निश्चय होता है कि 'कर्मोंका फल अवश्य मिलता है', इसीको उच्चकोटिकी 'आस्तिकता' कहते हैं। भाई-बन्धु अथवा राजाके भयसे जो आस्तिकता-बुद्धि या श्रद्धा होती है, वह कनिष्ठ श्रेणीकी आस्तिकता है। जो सर्वथा दरिद्र है, इसलिये जिसके पास सभी वस्तुओंका अभाव है, वह वाणी अथवा कर्म (शरीर) द्वारा यजन करे। मन्त्र, स्तोत्र और जप आदिको वाणीद्वारा किया गया यजन समझना चाहिये तथा तीर्थयात्रा और व्रत आदिको विद्वान् पुरुष शारीरिक यजन मानते हैं। जिस किसी भी उपायसे थोड़ा हो या बहुत, देवतार्पण-बुद्धिसे जो कुछ भी दिया अथवा किया जाय, वह दान या सत्कर्म भोगोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ होता है। तपस्या और दान—ये दो कर्म मनुष्यको सदा करने चाहिये तथा ऐसे गृहका दान करना चाहिये, जो अपने वर्ण (चमक-दमक या सफाई) और गुण (सुख-सुविधा) से सुशोभित हो। बुद्धिमान् पुरुष देवताओंकी तृप्तिके लिये जो कुछ देते हैं, वह अतिशय मात्रामें और सब प्रकारके भोग प्रदान करनेवाला होता है। उस दानसे विद्वान् पुरुष इहलोक और

अर्थात् खेत कट जाने या बाजार उठ जानेपर वहाँ बिखरे हुए अन्नके एक-एक कणको चुनना और उससे जीविका चलाना 'उञ्छ' वृत्ति है तथा खेतकी फसल कट जानेपर वहाँ पड़ी गेहूँ आदिकी बालें बीनना 'शिल' कहा है और उससे जीविका चलाना 'शिल' वृत्ति है।

* श्रवणेन्द्रियके देवता दिशाएँ, नेत्रके सूर्य, नासिकाके अश्विनीकुमार, रसनेन्द्रियके वरुण, त्वगिन्द्रियके वायु, वागिन्द्रियके अग्नि, लिङ्गके प्रजापति, गुदाके मित्र, हाथोंके इन्द्र और पैरोंके देवता विष्णु हैं।

परलोकमें उत्तम जन्म और सदा सुलभ होनेवाला भोग पाता है। ईश्वरार्पण-बुद्धिसे यज्ञ-दान आदि कर्म करके मनुष्य मोक्ष-फलका भागी होता है। (अध्याय १५)

☆

पृथ्वी आदिसे निर्मित देवप्रतिमाओंके पूजनकी विधि, उनके लिये नैवेद्यका विचार, पूजनके विभिन्न उपचारोंका फल, विशेष मास, वार, तिथि एवं नक्षत्रोंके योगमें पूजनका विशेष फल तथा लिङ्गके वैज्ञानिक स्वरूपका विवेचन

ऋषियोंने कहा—साधुशिरोमणे ! अब आप पार्थिव प्रतिमाकी पूजाका विधान बताइये, जिससे समस्त अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है।

सूतजी बोले—महर्षियो ! तुमलोगोंने बहुत उत्तम बात पूछी है। पार्थिव प्रतिमाका पूजन सदा सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है तथा दुःखका तत्काल निवारण करनेवाला है। मैं उसका वर्णन करता हूँ, तुमलोग उसको ध्यान देकर सुनो। पृथ्वी आदिकी बनी हुई देव प्रतिमाओंकी पूजा इस भूतलपर अभीष्टदायक मानी गयी है, निश्चय ही इसमें पुरुषोंका और स्त्रियोंका भी अधिकार है। नदी, पोखरे अथवा कुएँमें प्रवेश करके पानीके भीतरसे मिट्टी ले आये। फिर गन्ध-चूर्णके द्वारा उसका संशोधन करे और शुद्ध मण्डपमें रखकर उसे महीन पीसे और साने। इसके बाद हाथसे प्रतिमा बनाये और दूधसे उसका सुन्दर संस्कार करे। उस प्रतिमामें अङ्ग-प्रत्यङ्ग अच्छी तरह प्रकट हुए हों तथा वह सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न बनायी गयी हो। तदनन्तर उसे पद्मासनपर स्थापित करके आदर-पूर्वक उसका पूजन करे। गणेश, सूर्य, विष्णु, दुर्गा और शिवकी प्रतिमाका, शिवका एवं शिवलिङ्गका द्विजको सदा पूजन करना चाहिये। षोडशोपचार-पूजनजनित फलकी सिद्धिके लिये सोलह उपचारोंद्वारा पूजन करना चाहिये। पुष्पसे प्रोक्षण और मन्त्र-पाठपूर्वक अभिषेक करे। अगहनीके चावलसे नैवेद्य तैयार करे। सारा नैवेद्य एक कुडव (लगभग पावभर) होना चाहिये। घरमें पार्थिव-पूजनके लिये एक कुडव और बाहर किसी मनुष्यद्वारा स्थापित शिवलिङ्गके पूजनके लिये एक प्रस्थ (सेरभर) नैवेद्य तैयार करना आवश्यक है, ऐसा जानना चाहिये। देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिङ्गके लिये तीन सेर नैवेद्य अर्पित करना उचित है और स्वयं प्रकट हुए स्वयम्भू लिङ्गके लिये पाँच सेर। ऐसा करनेपर पूर्ण फलकी प्राप्ति समझनी चाहिये। इस प्रकार सहस्र बार पूजा करनेसे द्विज सत्यलोकको प्राप्त कर लेता है।

बारह अंगुल चौड़ा, इससे दूना और एक अंगुल अधिक अर्थात् पचीस अंगुल लंबा तथा पंद्रह अंगुल चौड़ा जो लोहे या लकड़ीका बना हुआ पात्र होता है, उसे विद्वान् पुरुष 'शिव' कहते हैं। उसका आठवाँ भाग प्रस्थ कहलाता है, जो चार

कुरुक्षके बराबर माना गया है। मनुष्यद्वारा स्थापित शिवलिङ्गके लिये दस प्रस्थ, ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिङ्गके लिये सौ प्रस्थ और स्वयम्भू शिवलिङ्गके लिये एक सहस्र प्रस्थ नैवेद्य निवेदन किया जाय तथा जल, तैल आदि एवं गन्ध द्रव्योंकी भी यथायोग्य मात्रा रखी जाय तो यह उन शिवलिङ्गोंकी महापूजा बतायी जाती है।

देवताका अभिषेक करनेसे आत्मशुद्धि होती है, गन्धसे पुण्यकी प्राप्ति होती है। नैवेद्य लगानेसे आयु बढ़ती और तृप्ति होती है। धूप निवेदन करनेसे धनकी प्राप्ति होती है। दीप दिखानेसे ज्ञानका उदय होता है और ताम्बूल समर्पण करनेसे भोगकी उपलब्धि होती है। इसलिये स्नान आदि छः उपचारोंको यत्नपूर्वक अर्पित करे। नमस्कार और जप—ये दोनों सम्पूर्ण अभीष्ट फलको देनेवाले हैं। इसलिये भोग और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको पूजाके अन्तमें सदा ही जप और नमस्कार करने चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि वह सदा पहले मनसे पूजा करके फिर उन-उन उपचारोंसे करे। देवताओंकी पूजासे उन-उन देवताओंके लोकोंकी प्राप्ति होती है तथा उनके अवान्तर लोकमें भी यथेष्ट भोगकी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं।

अब मैं देवपूजासे प्राप्त होनेवाले विशेष फलोंका वर्णन करता हूँ। द्विजो! तुमलोग श्रद्धापूर्वक सुनो। विघ्नराज गणेशकी पूजासे भूलोकमें उत्तम अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। शुक्रवारको, श्रावण और भाद्रपद मासोंके शुक्ल-पक्षकी चतुर्थीको और पौषमासमें शतभिषा नक्षत्रके आनेपर विधि-पूर्वक गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये। सौ या सहस्र दिनोंमें सौ या सहस्र बार पूजा करे। देवता और अग्निमें श्रद्धा रखते हुए किया जानेवाला उनका नित्य पूजन मनुष्योंको पुत्र एवं अभीष्ट वस्तु प्रदान करता है। वह समस्त पापोंका शमन तथा भिन्न-भिन्न दुष्कर्मोंका विनाश करनेवाला है। विभिन्न वारोंमें की हुई शिव आदिकी पूजाको आत्मशुद्धि प्रदान करनेवाली समझना चाहिये। वार या दिन, तिथि, नक्षत्र और योगोंका आधार है। समस्त कामनाओंको देनेवाला है। उसमें वृद्धि और क्षय नहीं होता। इसलिये उसे पूर्ण ब्रह्मस्वरूप मानना चाहिये। सूर्योदयकालसे लेकर सूर्योदयकाल आनेतक एक वारकी स्थिति मानी गयी है जो ब्राह्मण आदि सभी वर्णोंके कर्मोंका आधार है। विहित तिथिके पूर्वभागमें की हुई देवपूजा मनुष्योंको पूर्ण भोग प्रदान करनेवाली होती है।

यदि मध्याह्नके बाद तिथिका आरम्भ होता है तो रात्रियुक्त तिथिका पूर्वभाग पितरोंके श्राद्धादि कर्मके लिये उत्तम बताया जाता है। ऐसी तिथिका परभाग ही दिनसे युक्त होता है, अतः वही देवकर्मके लिये प्रशस्त माना गया है। यदि मध्याह्नकालतक तिथि रहे तो उदयव्यापिनी तिथिको ही देवकार्यमें ग्रहण करना चाहिये। इसी तरह शुभ तिथि एवं नक्षत्र आदि ही देवकार्यमें ग्राह्य होते हैं। वार आदिका भलीभाँति विचार करके पूजा और जप आदि करने चाहिये। वेदोंमें पूजा-शब्दके अर्थकी इस प्रकार योजना की गयी है—पूजायते अनेन इति पूजा। यह पूजा-शब्दकी व्युत्पत्ति है। 'पूः' का अर्थ है भोग और फलकी सिद्धि—वह जिस कर्मसे सम्पन्न होती है,

उसका नाम पूजा है। मनोवाञ्छित वस्तु तथा ज्ञान—ये ही अभीष्ट वस्तुएँ हैं; सकाम भाववालेको अभीष्ट भोग अपेक्षित होता है और निष्काम भाववालेको अर्थ—पारमार्थिक ज्ञान। ये दोनों ही पूजा-शब्दके अर्थ हैं; इनकी योजना करनेसे ही पूजा-शब्दकी सार्थकता है। इस प्रकार लोक और वेदमें पूजा-शब्दका अर्थ विख्यात है। नित्य और नैमित्तिक कर्म कालान्तरमें फल देते हैं; किन्तु काम्य कर्मका यदि भलीभाँति अनुष्ठान हुआ हो तो वह तत्काल फलद होता है। प्रतिदिन एक पक्ष, एक मास और एक वर्षतक लगातार पूजन करनेसे उन-उन कर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है और उनसे वैसे ही पापोंका क्रमशः क्षय होता है।

प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको की हुई महागणपतिकी पूजा एक पक्षके पापोंका नाश करनेवाली और एक पक्षतक उत्तम भोगरूपी फल देनेवाली होती है। चैत्रमासमें चतुर्थीको की हुई पूजा एक मासतक किये गये पूजनका फल देनेवाली होती है और जब सूर्य सिंह राशिपर स्थित हों, उस समय भाद्रपदमासकी चतुर्थीको की हुई गणेशजीकी पूजा एक वर्षतक मनोवाञ्छित भोग प्रदान करती है—ऐसा जानना चाहिये। श्रावणमासके रविवारको, हस्त नक्षत्रसे युक्त सप्तमी तिथिको तथा माघशुक्ला सप्तमीको भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। ज्येष्ठ तथा भाद्रपदमासोंके बुधवारको, श्रवण नक्षत्रसे युक्त द्वादशी तिथिको तथा केवल द्वादशीको भी किया गया भगवान् विष्णुका पूजन अभीष्ट सम्पत्तिको देनेवाला माना गया है। श्रावणमासमें की जानेवाली श्रीहरिकी पूजा अभीष्ट मनोरथ और आरोग्य प्रदान करनेवाली होती है। अङ्गों एवं उपकरणोंसहित पूर्वोक्त गौ आदि बारह वस्तुओंका दान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीको द्वादशी तिथिमें आराधनाद्वारा श्रीविष्णुकी तृप्ति करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जो द्वादशी तिथिको भगवान् विष्णुके बारह नामोंद्वारा बारह ब्राह्मणोंका षोडशोपचार पूजन करता है, वह उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण देवताओंके विभिन्न बारह नामोंद्वारा किया हुआ, बारह ब्राह्मणोंका पूजन उन-उन देवताओंको प्रसन्न करनेवाला होता है।

कर्ककी संक्रान्तिसे युक्त श्रावणमासमें नवमी तिथिको मृगशिरा नक्षत्रके योगमें अम्बिकाका पूजन करे। वे सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोगों और फलोंको देनेवाली हैं। ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उस दिन अवश्य उनकी पूजा करनी चाहिये। आश्विनमासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथि सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। उसी मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको यदि रविवार पड़ा हो तो उस दिनका महत्त्व विशेष बढ़ जाता है। उसके साथ ही यदि आर्द्रा और महार्द्रा (सूर्यसंक्रान्तिसे युक्त आर्द्रा) का योग हो तो उक्त अवसरोंपर की हुई शिवपूजाका विशेष महत्त्व माना गया है। माघ कृष्णा चतुर्दशीको की हुई शिवजीकी पूजा सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। वह मनुष्योंकी आयु बढ़ाती, मृत्यु-कष्टको दूर हटाती और समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति कराती है। ज्येष्ठमासमें चतुर्दशीको यदि

महार्द्राका योग हो अथवा मार्गशीर्षमासमें किसी भी तिथिको यदि आर्द्रा नक्षत्र हो तो उस अवसरपर विचित्र वस्तुओंकी बनी हुई मूर्तिके रूपमें शिवकी जो सोलह उपचारोंसे पूजा करता है, उस पुण्यात्माके चरणोंका दर्शन करना चाहिये। भगवान् शिवकी पूजा मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाली है, ऐसा जानना चाहिये। कार्तिकमासमें प्रत्येक वार और तिथि आदिमें महादेवजीकी पूजाका विशेष महत्त्व है। कार्तिकमास आनेपर विद्वान् पुरुष दान, तप, होम, जप और नियम आदिके द्वारा समस्त देवताओंका षोडशोपचारोंसे पूजन करे। उस पूजनमें देव-प्रतिमा, ब्राह्मण तथा मन्त्रोंका उपयोग आवश्यक है। ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे भी वह पूजन-कर्म सम्पन्न होता है। पूजकको चाहिये कि वह कामनाओंको त्यागकर पीड़ारहित (शान्त) हो देवाराधनमें तत्पर रहे।

कार्तिकमासमें देवताओंका यजन-पूजन समस्त भोगोंको देनेवाला, व्याधियोंको हर लेनेवाला तथा भूतों और ग्रहोंका विनाश करनेवाला है। कार्तिकमासके रविवारोंको भगवान् सूर्यकी पूजा करने और तेल तथा सूती वस्त्र देनेसे मनुष्योंके कोढ़ आदि रोगोंका नाश होता है। हर्रे, काली मिर्च, वस्त्र और खीरा आदिका दान और ब्राह्मणोंकी प्रतिष्ठा करनेसे क्षयके रोगका नाश होता है। दीप और सरसोंके दानसे मिरगीका रोग मिट जाता है। कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त सोमवारोंको किया हुआ शिवजीका पूजन मनुष्योंके महान् दारिद्र्यको मिटानेवाला और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको देनेवाला है। घरकी आवश्यक सामग्रियोंके साथ गृह और क्षेत्र आदिका दान करनेसे भी उक्त फलकी प्राप्ति होती है। कृत्तिकायुक्त मङ्गलवारोंको श्रीस्कन्दका पूजन करनेसे तथा दीपक एवं घण्टा आदिका दान देनेसे मनुष्योंको शीघ्र ही वाक्सिद्धि प्राप्त हो जाती है, उनके मुँहसे निकली हुई हर एक बात सत्य होती है। कृत्तिकायुक्त बुधवारोंको किया हुआ श्रीविष्णुका यजन तथा दही-भातका दान मनुष्योंको उत्तम संतानकी प्राप्ति करानेवाला होता है। कृत्तिकायुक्त गुरुवारोंको धनसे ब्रह्माजीका पूजन तथा मधु, सोना और घीका दान करनेसे मनुष्योंके भोग-वैभवकी वृद्धि होती है। कृत्तिकायुक्त शुक्रवारोंको गजानन[1] गणेशजीकी पूजा करनेसे तथा गन्ध, पुष्प एवं अन्नका दान देनेसे मानवोंके भोग्य पदार्थोंकी वृद्धि होती है। उस दिन सोना, चाँदी आदिका दान करनेसे वन्ध्याको भी उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। कृत्तिकायुक्त शनिवारोंको दिक्पालोंकी वन्दना, दिग्गजों, नागों और सेतुपालोंका पूजन, त्रिनेत्रधारी रुद्र, पापहारी विष्णु तथा ज्ञानदाता ब्रह्माका आराधन और धन्वन्तरि एवं दोनों अश्विनीकुमारोंका पूजन करनेसे रोग, दुर्मृत्यु एवं अकालमृत्युका निवारण होता है तथा तात्कालिक व्याधियोंकी शान्ति हो जाती है। नमक, लोहा, तेल और उड़द आदिका त्रिकटु (सोंठ, पीपल और गोल मिर्च),

---

१. यहाँ मूलमें 'गजवोमेड' शब्द आया है जिसका पूर्ववर्ती व्याख्याकारोंने 'गणेश' अर्थ किया है। सम्भवतः 'वोमेड' शब्दका प्रयोग यहाँ मस्तक या मुखके अर्थमें आया है।

फल, गन्ध और जल आदिका तथा घृत आदि द्रव-पदार्थोंका और सुवर्ण, मोती आदि कठोर वस्तुओंका भी दान देनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। इनमेंसे नमक आदिका मान कम-से-कम एक प्रस्थ (सेर) होना चाहिये और सुवर्ण आदिका मान कम-से-कम एक पल।

धनकी संक्रान्तिसे युक्त पौषमासमें उषःकालमें शिव आदि समस्त देवताओंका पूजन क्रमशः समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला होता है। इस पूजनमें अगहनीके चावलसे तैयार किये गये हविष्यका नैवेद्य उत्तम बताया जाता है। पौषमासमें नाना प्रकारके अन्नका नैवेद्य विशेष महत्त्व रखता है। मार्गशीर्षमासमें केवल अन्नका दान करनेवाले मनुष्योंको ही सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति हो जाती है। मार्गशीर्षमासमें अन्नका दान करनेवाले मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। वह अभीष्ट-सिद्धि, आरोग्य, धर्म, वेदका सम्यक् ज्ञान, उत्तम अनुष्ठानका फल, इहलोक और परलोकमें महान् भोग, अन्तमें सनातन योग (मोक्ष) तथा वेदान्तज्ञानकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है। जो भोगकी इच्छा रखनेवाला है, वह मनुष्य मार्गशीर्षमास आनेपर कम-से-कम तीन दिन भी उषःकालमें अवश्य देवताओंका पूजन करे और पौषमासको पूजनसे खाली न जाने दे। उषःकालसे लेकर संगवकाल-तक ही पौषमासमें पूजनका विशेष महत्त्व बताया गया है। पौषमासमें पूरे महीनेभर जितेन्द्रिय और निराहार रहकर द्विज प्रातःकालसे मध्याह्नकालतक वेदमाता गायत्रीका जप करे। तत्पश्चात् रातको सोनेके समयतक पञ्चाक्षर आदि मन्त्रोंका जप करे। ऐसा करनेवाला ब्राह्मण ज्ञान पाकर शरीर छूटनेके बाद मोक्ष प्राप्त कर लेता है। द्विजेतर नर-नारियोंको त्रिकाल स्नान और पञ्चाक्षर मन्त्रके ही निरन्तर जपसे विशुद्ध ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इष्टमन्त्रोंका सदा जप करनेसे बड़े-से-बड़े पापोंका भी नाश हो जाता है।

सारा चराचर जगत् बिन्दु-नादस्वरूप है। बिन्दु शक्ति है और नाद शिव। इस तरह यह जगत् शिव-शक्तिस्वरूप ही है। नाद बिन्दुका और बिन्दु इस जगत्‌का आधार है, ये बिन्दु और नाद (शक्ति और शिव) सम्पूर्ण जगत्‌के आधाररूपसे स्थित हैं। बिन्दु और नादसे युक्त सब कुछ शिवस्वरूप है; क्योंकि वही सबका आधार है। आधारमें ही आधेयका समावेश अथवा लय होता है। यही सकलीकरण है। इस सकलीकरणकी स्थितिसे ही सृष्टिकालमें जगत्‌का प्रादुर्भाव होता है, इसमें संशय नहीं है। शिवलिङ्ग बिन्दु नादस्वरूप है। अतः उसे जगत्‌का कारण बताया जाता है। बिन्दु देवी है और नाद शिव, इन दोनोंका संयुक्तरूप ही शिवलिङ्ग कहलाता है। अतः जन्मके संकटसे छुटकारा पानेके लिये शिवलिङ्गकी पूजा करनी चाहिये। बिन्दुरूपा देवी उमा माता हैं और नादस्वरूप भगवान् शिव पिता। इन माता-पिताके पूजित होनेसे परमानन्दकी ही प्राप्ति होती है। अतः परमानन्दका लाभ लेनेके लिये शिवलिङ्गका विशेषरूपसे पूजन करे। देवी उमा जगत्‌की माता हैं और भगवान् शिव जगत्‌के पिता। जो इनकी सेवा करता है, उस पुत्रपर इन दोनों माता-पिताकी कृपा नित्य अधिकाधिक

बढ़ती रहती है *। वह पूजकपर कृपा करके उसे अपना आन्तरिक ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। अतः मुनीश्वरो! आन्तरिक आनन्दकी प्राप्तिके लिये, शिवलिङ्गको माता-पिताका स्वरूप मानकर उसकी पूजा करनी चाहिये। भर्ग (शिव) पुरुषरूप हैं और भर्गा (शिवा अथवा शक्ति) प्रकृति कहलाती हैं। अव्यक्त आन्तरिक अधिष्ठानरूप गर्भको पुरुष कहते हैं और सुव्यक्त आन्तरिक अधिष्ठानभूत गर्भको प्रकृति। पुरुष आदिगर्भ है, वह प्रकृतिरूप गर्भसे युक्त होनेके कारण गर्भवान् है; क्योंकि वही प्रकृतिका जनक है। प्रकृतिमें जो पुरुषका संयोग होता है, यही पुरुषसे उसका प्रथम जन्म कहलाता है। अव्यक्त प्रकृतिसे महत्तत्त्वादिके क्रमसे जो जगत्‌का व्यक्त होना है, यही उस प्रकृतिका द्वितीय जन्म कहलाता है। जीव पुरुषसे ही बारंबार जन्म और मृत्युको प्राप्त होता है। मायाद्वारा अन्यरूपसे प्रकट किया जाना ही उसका जन्म कहलाता है. जीवका शरीर जन्मकालसे ही जीर्ण (छः भावविकारोंसे युक्त) होने लगता है, इसीलिये उसे 'जीव' संज्ञा दी गयी है। जो जन्म लेता और विविध पाशोंद्वारा तनाव (बन्धन) में पड़ता है, उसका नाम जीव है; जन्म और बन्धन जीव-शब्दका अर्थ ही है। अतः जन्ममृत्युरूपी बन्धनकी निवृत्तिके लिये जन्मके अधिष्ठानभूत मातृ-पितृस्वरूप शिवलिङ्गका पूजन करना चाहिये।

गायका दूध, गायका दही और गायका घी—इन तीनोंको पूजनके लिये शहद और शक्करके साथ पृथक्-पृथक् भी रखे और इन सबको मिलाकर सम्मिलितरूपसे पञ्चामृत भी तैयार कर ले। (इनके द्वारा शिवलिङ्गका अभिषेक एवं स्नान कराये), फिर गायके दूध और अन्नके मेलसे नैवेद्य तैयार करके प्रणव मन्त्रके उच्चारणपूर्वक उसे भगवान् शिवको अर्पित करे। सम्पूर्ण प्रणवको ध्वनिलिङ्ग कहते हैं। स्वयम्भूलिङ्ग नादस्वरूप होनेके कारण नादलिङ्ग कहा गया है। यन्त्र या अर्घा बिन्दुस्वरूप होनेके कारण बिन्दुलिङ्गके रूपमें विख्यात है। उसमें अचलरूपसे प्रतिष्ठित जो शिवलिङ्ग है, वह मकार-स्वरूप है, इसलिये मकारलिङ्ग कहलाता है। सवारी निकालने आदिके लिये जो चरलिङ्ग होता है, वह उकार-स्वरूप होनेसे उकारलिङ्ग कहा गया है तथा पूजाकी दीक्षा देनेवाले जो गुरु या आचार्य हैं, उनका विग्रह अकारका प्रतीक होनेसे अकारलिङ्ग माना गया है। इस प्रकार अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद और ध्वनिके रूपमें लिङ्गके छः भेद हैं। इन छहों लिङ्गोंकी नित्य पूजा करनेसे साधक जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। (अध्याय १६)

☆

* माता देवी बिन्दुरूपा नादरूपः शिवः पिता॥
पूजिताभ्यां पितृभ्यां तु परमानन्द एव हि। परमानन्दलाभार्थं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्॥
सा देवी जगतां माता स शिवो जगतः पिता। पित्रोः शुश्रूषके नित्यं कृपाधिक्यं हि वर्धते॥
(शि॰ पु॰ वि॰ १६।९१—९३)

षड्लिङ्गस्वरूप प्रणवका माहात्म्य, उसके सूक्ष्म रूप (ॐकार) और स्थूल रूप (पञ्चाक्षर मन्त्र) का विवेचन, उसके जपकी विधि एवं महिमा, कार्यब्रह्मके लोकोंसे लेकर कारणरुद्रके लोकोंतकका विवेचन करके कालातीत, पञ्चावरणविशिष्ट शिवलोकके अनिर्वचनीय वैभवका निरूपण तथा शिवभक्तोंके सत्कारकी महत्ता

ऋषि बोले—प्रभो! महामुने! आप हमारे लिये क्रमशः षड्लिङ्गस्वरूप प्रणवका माहात्म्य तथा शिवभक्तके पूजनका प्रकार बताइये।

सूतजीने कहा—महर्षियो! आपलोग तपस्याके धनी हैं, आपने यह बड़ा सुन्दर प्रश्न उपस्थित किया है। किंतु इसका ठीक-ठीक उत्तर महादेवजी ही जानते हैं, दूसरा कोई नहीं। तथापि भगवान् शिवकी कृपासे ही मैं इस विषयका वर्णन करूँगा। वे भगवान् शिव हमारी और आपलोगोंकी रक्षाका भारी भार बारंबार स्वयं ही ग्रहण करें। 'प्र' नाम है प्रकृतिसे उत्पन्न संसाररूपी महासागरका। प्रणव इससे पार करनेके लिये दूसरी (नव) नाव है। इसलिये इस ओंकारको 'प्रणव'की संज्ञा देते हैं। ॐकार अपने जप करनेवाले साधकोंसे कहता है—'प्र-प्रपञ्च, न—नहीं है, वः—तुमलोगोंके लिये।' अतः इस भावको लेकर भी ज्ञानी पुरुष 'ओम्' को 'प्रणव' नामसे जानते हैं। इसका दूसरा भाव यों है—'प्र-प्रकर्षेण, न-नयेत्, वः-युष्मान् मोक्षम् इति वा प्रणवः।' अर्थात् यह तुम सब उपासकोंको बलपूर्वक मोक्षतक पहुँचा देगा।' इस अभिप्रायसे भी इसे ऋषि-मुनि 'प्रणव' कहते हैं। अपना जप करनेवाले योगियोंके तथा अपने मन्त्रकी पूजा करनेवाले उपासकके समस्त कर्मोंका नाश करके यह दिव्य नूतन ज्ञान देता है; इसलिये भी इसका नाम प्रणव* है। उन मायारहित महेश्वरको ही नव अर्थात् नूतन कहते हैं। वे परमात्मा प्रकृष्टरूपसे नव अर्थात् शुद्धस्वरूप हैं, इसलिये 'प्रणव' कहलाते हैं। प्रणव साधकको नव अर्थात् नवीन (शिवस्वरूप) कर देता है। इसलिये भी विद्वान् पुरुष उसे प्रणवके नामसे जानते हैं। अथवा प्रकृष्टरूपसे नव—दिव्य परमात्मज्ञान प्रकट करता है, इसलिये वह प्रणव है।

प्रणवके दो भेद बताये गये हैं—स्थूल और सूक्ष्म। एक अक्षररूप जो 'ओम्' है, उसे सूक्ष्म प्रणव जानना चाहिये और 'नमः शिवाय' इस पाँच अक्षरवाले मन्त्रको स्थूल प्रणव समझना चाहिये। जिसमें पाँच अक्षर व्यक्त नहीं हैं, वह सूक्ष्म है और जिसमें पाँचों अक्षर सुस्पष्टरूपसे व्यक्त हैं, वह स्थूल है। जीवन्मुक्त पुरुषके लिये सूक्ष्म प्रणवके जपका विधान है। वही उसके लिये समस्त साधनोंका सार है। (यद्यपि जीवन्मुक्तके लिये किसी साधनकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह सिद्धरूप है, तथापि दूसरोंकी

---

* प्र (कर्मक्षयपूर्वक) नव (नूतन ज्ञान देनेवाला)।

दृष्टिमें जबतक उसका शरीर रहता है, तबतक उसके द्वारा प्रणव-जपकी सहज साधना स्वतः होती रहती है।) वह अपनी देहका विलय होनेतक सूक्ष्म प्रणव मन्त्रका जप और उसके अर्थभूत परमात्म-तत्त्वका अनुसंधान करता रहता है। जब शरीर नष्ट हो जाता है, तब वह पूर्ण ब्रह्मस्वरूप शिवको प्राप्त कर लेता है—यह सुनिश्चित बात है। जो अर्थका अनुसंधान न करके केवल मन्त्रका जप करता है, उसे निश्चय ही योगकी प्राप्ति होती है। जिसने छत्तीस करोड़ मन्त्रका जप कर लिया हो, उसे अवश्य ही योग प्राप्त हो जाता है। सूक्ष्म प्रणवके भी ह्रस्व और दीर्घके भेदसे दो रूप जानने चाहिये। अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शब्द, काल और कला—इनसे युक्त जो प्रणव है, उसे 'दीर्घ प्रणव' कहते हैं। वह योगियोंके ही हृदयमें स्थित होता है। मकारपर्यन्त जो ओम् है, वह अ उ म्— इन तीन तत्त्वोंसे युक्त है। इसीको 'ह्रस्व प्रणव' कहते हैं। 'अ' शिव है, 'उ' शक्ति है और मकार इन दोनोंकी एकता है। वह त्रितत्त्वरूप है, ऐसा समझकर ह्रस्व प्रणवका जप करना चाहिये। जो अपने समस्त पापोंका क्षय करना चाहते हैं, उनके लिये इस ह्रस्व प्रणवका जप अत्यन्त आवश्यक है।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच भूत तथा शब्द, स्पर्श आदि इनके पाँच विषय—ये सब मिलकर दस वस्तुएँ मनुष्योंकी कामनाके विषय हैं। इनकी आशा मनमें लेकर जो कर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न होते हैं, वे दस प्रकारके पुरुष प्रवृत्त (अथवा प्रवृत्तिमार्गी) कहलाते हैं तथा जो निष्कामभावसे शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे निवृत्त (अथवा निवृत्तिमार्गी) कहे गये हैं। प्रवृत्त पुरुषोंको ह्रस्व प्रणवका ही जप करना चाहिये और निवृत्त पुरुषोंको दीर्घ प्रणवका। व्याहृतियों तथा अन्य मन्त्रोंके आदिमें इच्छानुसार शब्द और कलासे युक्त प्रणवका उच्चारण करना चाहिये। वेदके आदिमें और दोनों संध्याओंकी उपासनाके समय भी ओंकारका उच्चारण करना चाहिये।

प्रणवका नौ करोड़ जप करनेसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। फिर नौ करोड़का जप करनेसे वह पृथ्वीतत्त्वपर विजय पा लेता है। तत्पश्चात् पुनः नौ करोड़का जप करके वह जल-तत्त्वको जीत लेता है। पुनः नौ करोड़ जपसे अग्नितत्त्वपर विजय पाता है। तदनन्तर फिर नौ करोड़का जप करके वह वायु-तत्त्वपर विजयी होता है। फिर नौ करोड़के जपसे आकाशको अपने अधिकारमें कर लेता है। इसी प्रकार नौ-नौ करोड़का जप करके वह क्रमशः गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्दपर विजय पाता है, इसके बाद फिर नौ करोड़का जप करके अहंकारको भी जीत लेता है। इस तरह एक सौ आठ करोड़ प्रणवका जप करके उत्कृष्ट बोधको प्राप्त हुआ पुरुष शुद्ध योगका लाभ करता है। शुद्ध योगसे युक्त होनेपर वह जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। सदा प्रणवका जप और प्रणवरूपी शिवका ध्यान करते-करते समाधिमें स्थित हुआ महायोगी पुरुष साक्षात् शिव ही है, इसमें संशय नहीं है। पहले अपने शरीरमें प्रणवके ऋषि, छन्द और देवता आदिका न्यास करके फिर जप आरम्भ करना चाहिये। अकारादि मातृका वर्णोंसे युक्त प्रणवका अपने अङ्गोंमें न्यास

करके मनुष्य ऋषि हो जाता है। मन्त्रोंके दशविध[1] संस्कार, मातृकान्यास तथा षडध्वशोधन[2] आदिके साथ सम्पूर्ण न्यासफल उसे प्राप्त हो जाता है। प्रवृत्ति तथा प्रवृत्ति-निवृत्तिसे मिश्रित भाववाले पुरुषोंके लिये स्थूल प्रणवका जप ही अभीष्ट साधक होता है।

क्रिया, तप और जपके योगसे शिवयोगी तीन प्रकारके होते हैं—जो क्रमशः क्रियायोगी, तपोयोगी और जपयोगी कहलाते हैं। जो धन आदि वैभवोंसे पूजा-सामग्रीका संचय करके हाथ आदि अङ्गोंसे नमस्कारादि क्रिया करते हुए इष्टदेवकी पूजामें लगा रहता है, वह 'क्रियायोगी'

---

१. मन्त्रोंके दस संस्कार ये हैं—जनन, दीपन, बोधन, ताडन, अभिषेचन, विमलीकरण, जीवन, तर्पण, गोपन और आप्यायन। इनकी विधि इस प्रकार है—

भोजपत्रपर गोरोचन, कुङ्कुम, चन्दनादिसे आत्माभिमुख त्रिकोण लिखे, फिर तीनों कोणोंमें छः-छः समान रेखाएँ खींचे। ऐसा करनेपर ४९ त्रिकोण कोष्ठ बनेंगे। उनमें ईशानकोणसे मातृकावर्ण लिखकर देवताका आवाहन-पूजन करके मन्त्रका एक-एक वर्ण उद्धारण करके अलग पत्रपर लिखे। ऐसा करनेपर 'जनन' नामका प्रथम संस्कार होगा।

हंसमन्त्रका सम्पुट करनेसे एक हजार जपद्वारा मन्त्रका दूसरा 'दीपन' संस्कार होता है। यथा—हंसः रामाय नमः सोऽहम्।

हूं-बीज-सम्पुटित मन्त्रका पाँच हजार जप करनेसे 'बोधन' नामक तीसरा संस्कार होता है। यथा—हूं रामाय नमः हूं।

फट्-सम्पुटित मन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'ताडन' नामक चतुर्थ संस्कार होता है। यथा—फट् रामाय नमः फट्।

भूर्जपत्रपर मन्त्र लिखकर 'रों हंसः ओं' इस मन्त्रसे जलको अभिमन्त्रित करे और उस अभिमन्त्रित जलसे अश्वत्थपत्रादिद्वारा मन्त्रका अभिषेक करे। ऐसा करनेपर 'अभिषेक' नामक पाँचवाँ संस्कार होता है।

'ओं त्रौं वषट्' इन वर्णोंसे सम्पुटित मन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'विमलीकरण' नामक छठा संस्कार होता है। यथा—ओं त्रौं वषट् रामाय नमः वषट् त्रौं ओं।

स्वधा-वषट्-सम्पुटित मूलमन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'जीवन' नामक सातवाँ संस्कार होता है। यथा—स्वधा वषट् रामाय नमः वषट् स्वधा।

दुग्ध, जल एवं घृतके द्वारा मूलमन्त्रसे सौ बार तर्पण करना ही 'तर्पण' संस्कार है।

ह्रीं-बीज-सम्पुटित एक हजार जप करनेसे 'गोपन' नामक नवम संस्कार होता है। यथा—ह्रीं रामाय नमः ह्रीं।

ह्रौं-बीज-सम्पुटित एक हजार जप करनेसे 'आप्यायन' नामक दसवाँ संस्कार होता है। यथा—ह्रौं रामाय नमः ह्रौं १०००।

इस प्रकार संस्कृत किया हुआ मन्त्र शीघ्र सिद्धिप्रद होता है।

२. षडध्व-शोधनका कार्य शैवी दीक्षाके अन्तर्गत है। उसमें पहले कुण्डों या वेदीपर अग्निस्थापन होता है। वहाँ षडध्वाका शोधन करके होमसे ही दीक्षा सम्पन्न होती है। विस्तार-भयसे अधिक विवरण नहीं दिया जा रहा है।

कहलाता है। पूजामें संलग्न रहकर जो परिमित भोजन करता, बाह्य इन्द्रियोंको जीतकर वशमें किये रहता और मनको भी वशमें करके परद्रोह आदिसे दूर रहता है, वह 'तपोयोगी' कहलाता है। इन सभी सद्‌गुणोंसे युक्त होकर जो सदा शुद्धभावसे रहता तथा समस्त काम आदि दोषोंसे रहित हो शान्तचित्तसे निरन्तर जप किया करता है, उसे महात्मा पुरुष 'जपयोगी' मानते हैं। जो मनुष्य सोलह प्रकारके उपचारोंसे शिवयोगी महात्माओंकी पूजा करता है, वह शुद्ध होकर सालोक्य आदिके क्रमसे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट मुक्तिको प्राप्त कर लेता है।

द्विजो! अब मैं जपयोगका वर्णन करता हूँ। तुम सब लोग ध्यान देकर सुनो। तपस्या करनेवालेके लिये जपका उपदेश किया गया है; क्योंकि वह जप करते-करते अपने-आपको सर्वथा शुद्ध (निष्पाप) कर लेता है। ब्राह्मणो! पहले 'नमः' पद हो, उसके बाद चतुर्थी विभक्तिमें 'शिव' शब्द हो तो पञ्चतत्त्वात्मक 'नमः शिवाय' मन्त्र होता है। इसे 'शिव-पञ्चाक्षर' कहते हैं। यह स्थूल प्रणवरूप है। इस पञ्चाक्षरके जपसे ही मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। पञ्चाक्षरमन्त्रके आदिमें ओंकार लगाकर ही सदा उसका जप करना चाहिये। द्विजो! गुरुके मुखसे पञ्चाक्षरमन्त्रका उपदेश पाकर जहाँ सुखपूर्वक निवास किया जा सके, ऐसी उत्तम भूमिपर महीनेके पूर्वपक्ष (शुक्ल) में (प्रतिपदासे) आरम्भ करके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीतक निरन्तर जप करता रहे। माघ और भादोंके महीने अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। यह समय सब समयोंसे उत्तमोत्तम माना गया है। साधकको चाहिये कि वह प्रतिदिन एक बार परिमित भोजन करे, मौन रहे, इन्द्रियोंको वशमें रखे, अपने स्वामी एवं माता-पिताकी नित्य सेवा करे। इस नियमसे रहकर जप करनेवाला पुरुष एक सहस्र जपसे ही शुद्ध हो जाता है, अन्यथा वह ऋणी होता है। भगवान् शिवका निरन्तर चिन्तन करते हुए पञ्चाक्षर-मन्त्रका पाँच लाख जप करे। जपकालमें इस प्रकार ध्यान करे। कल्याणदाता भगवान् शिव कमलके आसनपर विराज-मान हैं। उनका मस्तक श्रीगङ्गाजी तथा चन्द्रमाकी कलासे सुशोभित है। उनकी बायीं जाँघपर आदिशक्ति भगवती उमा बैठी हैं। वहाँ खड़े हुए बड़े-बड़े गण भगवान् शिवकी शोभा बढ़ा रहे हैं। महादेवजी अपने चार हाथोंमें मृगमुद्रा, टङ्क तथा वर एवं अभयकी मुद्राएँ धारण किये हुए हैं। इस प्रकार सदा सबपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् सदाशिवका बारंबार स्मरण करते हुए हृदय अथवा सूर्यमण्डलमें पहले उनकी मानसिक पूजा करके फिर पूर्वाभिमुख हो पूर्वोक्त पञ्चाक्षरी विद्याका जप करे। उन दिनों साधक सदा शुद्ध कर्म ही करे (और दुष्कर्मसे बचा रहे)। जपकी समाप्तिके दिन कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको प्रातःकाल नित्यकर्म करके शुद्ध एवं सुन्दर स्थानमें शौच-संतोषादि नियमोंसे युक्त हो शुद्ध हृदयसे पञ्चाक्षर-मन्त्रका बारह सहस्र जप करे। तत्पश्चात् पाँच सपत्नीक ब्राह्मणोंका, जो श्रेष्ठ एवं शिवभक्त हों, वरण करे। इनके अतिरिक्त एक श्रेष्ठ आचार्यप्रवरका भी वरण करे और उसे साम्ब सदाशिवका स्वरूप समझे। ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—इन पाँचोंके

प्रतीकस्वरूप पाँच ही श्रेष्ठ और शिवभक्त ब्राह्मणोंका वरण करनेके पश्चात् पूजन-सामग्रीको एकत्र करके भगवान् शिवका पूजन आरम्भ करे। विधिपूर्वक शिवकी पूजा सम्पन्न करके होम आरम्भ करे।

अपने गृह्यसूत्रके अनुसार सुखान्त कर्म करके अर्थात् परिसमूहन, उपलेपन, उल्लेखन, मृद्-उद्धरण और अभ्युक्षण—इन पञ्च भू-संस्कारोंके पश्चात् वेदीपर स्वाभिमुख अग्निको स्थापित करके कुशकण्डिकाके अनन्तर प्रज्वलित अग्निमें आज्यभागान्त आहुति देकर प्रस्तुत होमका कार्य आरम्भ करे। कपिला गायके घीसे ग्यारह, एक सौ एक अथवा एक हजार एक आहुतियाँ स्वयं ही दे अथवा विद्वान् पुरुष शिवभक्त ब्राह्मणोंसे एक सौ आठ आहुतियाँ दिलाये। होमकर्म समाप्त होनेपर गुरुको दक्षिणाके रूपमें एक गाय और बैल देने चाहिये। ईशान आदिके प्रतीकरूप जिन पाँच ब्राह्मणोंका वरण किया गया हो, उनको ईशान आदिका स्वरूप ही समझे तथा आचार्यको साम्ब सदा-शिवका स्वरूप माने। इसी भावनाके साथ उन सबके चरण धोये और उनके चरणोदकसे अपने मस्तकको सींचे। ऐसा करनेसे वह साधक अगणित तीर्थोंमें तत्काल स्नान करनेका फल प्राप्त कर लेता है। उन ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक दशांश अन्न देना चाहिये। गुरुपत्नीको पराशक्ति मानकर उनका भी पूजन करे। ईशानादि-क्रमसे उन सभी ब्राह्मणोंका उत्तम अन्नसे पूजन करके अपने वैभव-विस्तारके अनुसार रुद्राक्ष, वस्त्र, बड़ा और पूआ आदि अर्पित करे। तदनन्तर दिक्पालादिको बलि देकर ब्राह्मणोंको भरपूर भोजन कराये। इसके बाद देवेश्वर शिवसे प्रार्थना करके अपना जप समाप्त करे। इस प्रकार पुरश्चरण करके मनुष्य उस मन्त्रको सिद्ध कर लेता है। फिर पाँच लाख जप करनेसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है। तदनन्तर पुनः पाँच लाख जप करनेपर अतलसे लेकर सत्यलोकतक चौदहों भुवनोंपर क्रमशः अधिकार प्राप्त हो जाता है।

यदि अनुष्ठान पूर्ण होनेके पहले बीचमें ही साधककी मृत्यु हो जाय तो वह परलोकमें उत्तम भोग भोगनेके पश्चात् पुनः पृथ्वीपर जन्म लेकर पञ्चाक्षर-मन्त्रके जपका अनुष्ठान करता है। समस्त लोकोंका ऐश्वर्य पानेके पश्चात् वह मन्त्रको सिद्ध करनेवाला पुरुष यदि पुनः पाँच लाख जप करे तो उसे ब्रह्माजीका सामीप्य प्राप्त होता है। पुनः पाँच लाख जप करनेसे सारूप्य नामक ऐश्वर्य प्राप्त होता है। सौ लाख जप करनेसे वह साक्षात् ब्रह्माके समान हो जाता है। इस तरह कार्य-ब्रह्म (हिरण्यगर्भ)का सायुज्य प्राप्त करके वह उस ब्रह्माका प्रलय होनेतक उस लोकमें यथेष्ट भोग भोगता है। फिर दूसरे कल्पका आरम्भ होनेपर वह ब्रह्माजीका पुत्र होता है। उस समय फिर तपस्या करके दिव्य तेजसे प्रकाशित हो वह क्रमशः मुक्त हो जाता है। पृथ्वी आदि कार्यस्वरूप भूतोंद्वारा पातालसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त ब्रह्माजीके चौदह लोक क्रमशः निर्मित हुए हैं। सत्यलोकसे ऊपर क्षमालोकतक जो चौदह भुवन हैं, वे भगवान् विष्णुके लोक हैं। क्षमालोकसे ऊपर शुचिलोकपर्यन्त अट्ठाईस भुवन स्थित हैं। शुचिलोकके अन्तर्गत

कैलासमें प्राणियोंका संहार करनेवाले रुद्रदेव विराजमान हैं। शुचिलोकसे ऊपर अहिंसालोकपर्यन्त छप्पन भुवनोंकी स्थिति है। अहिंसालोकका आश्रय लेकर जो ज्ञान-कैलास नामक नगर शोभा पाता है, उसमें कार्यभूत महेश्वर सबको अदृश्य करके रहते हैं। अहिंसालोकके अन्तमें कालचक्रकी स्थिति है। यहाँतक महेश्वरके विराट्-स्वरूपका वर्णन किया गया। वहींतक लोकोंका तिरोधान अथवा लय होता है। उससे नीचे कर्मोंका भोग है और उससे ऊपर ज्ञानका भोग। उसके नीचे कर्ममाया है और उसके ऊपर ज्ञानमाया।

(अब मैं कर्ममाया और ज्ञानमायाका तात्पर्य बता रहा हूँ—) 'मा' का अर्थ है लक्ष्मी। उससे कर्मभोग यात—प्राप्त होता है। इसलिये यह माया अथवा कर्ममाया कहलाती है। इसी तरह मा अर्थात् लक्ष्मीसे ज्ञानभोग यात अर्थात् प्राप्त होता है। इसलिये उसे माया या ज्ञानमाया कहा गया है। उपर्युक्त सीमासे नीचे नश्वर भोग है और ऊपर नित्य भोग। उससे नीचे ही तिरोधान अथवा लय है, ऊपर नहीं। वहाँसे नीचे ही कर्ममय पाशोंद्वारा बन्धन होता है। ऊपर बन्धनका सदा अभाव है। उससे नीचे ही जीव सकाम कर्मोंका अनुसरण करते हुए विभिन्न लोकों और योनियोंमें चक्कर काटते हैं। उससे ऊपरके लोकोंमें निष्काम कर्मका ही भोग बताया गया है। बिन्दुपूजामें तत्पर रहनेवाले उपासक वहाँसे नीचेके लोकोंमें ही घूमते हैं। उसके ऊपर तो निष्कामभावसे शिवलिङ्गकी पूजा करनेवाले उपासक ही जाते हैं। जो एकमात्र शिवकी ही उपासनामें तत्पर हैं, वे उससे ऊपरके लोकोंमें जाते हैं। वहाँसे नीचे जीवकोटि है और ऊपर ईश्वरकोटि। नीचे संसारी जीव रहते हैं और ऊपर मुक्त पुरुष। नीचे कर्मलोक है और ऊपर ज्ञानलोक। ऊपर मद और अहंकारका नाश करनेवाली नम्रता है, वहाँ जन्मजनित तिरोधान नहीं है। उसका निवारण किये बिना वहाँ किसीका प्रवेश सम्भव नहीं है। इस प्रकार तिरोधानका निवारण करनेसे वहाँ ज्ञानशब्दका अर्थ ही प्रकाशित होता है। आधिभौतिक पूजा करनेवाले लोग उससे नीचेके लोकोंमें ही चक्कर काटते हैं। जो आध्यात्मिक उपासना करनेवाले हैं, वे ही उससे ऊपरको जाते हैं।

जो सत्य-अहिंसा आदि धर्मोंसे युक्त हो भगवान् शिवके पूजनमें तत्पर रहते हैं, वे कालचक्रको पार कर जाते हैं। काल-चक्रेश्वरकी सीमातक जो विराट् महेश्वरलोक बताया गया है, उससे ऊपर वृषभके आकारमें धर्मकी स्थिति है। वह ब्रह्मचर्यका मूर्तिमान् रूप है। उसके सत्य, शौच, अहिंसा और दया—ये चार पाद हैं। वह साक्षात् शिवलोकके द्वारपर खड़ा है। क्षमा उसके सींग हैं, शम कान है, वह वेदध्वनिरूपी शब्दसे विभूषित है। आस्तिकता उसके दोनों नेत्र हैं, विश्वास ही उसकी श्रेष्ठ बुद्धि एवं मन है। क्रिया आदि धर्मरूपी जो वृषभ हैं, वे कारण आदिमें स्थित हैं—ऐसा जानना चाहिये। उस क्रियारूप वृषभाकार धर्मपर कालातीत शिव आरूढ होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी जो अपनी-अपनी आयु है, उसीको दिन कहते हैं। जहाँ धर्मरूपी वृषभकी स्थिति है, उससे ऊपर न दिन है न रात्रि। वहाँ जन्म-मरण आदि भी नहीं है। वहाँ फिरसे कारणस्वरूप ब्रह्माके

कारण सत्यलोकपर्यन्त चौदह लोक स्थित हैं, जो पाञ्चभौतिक गन्ध आदिसे परे हैं। उनकी सनातन स्थिति है। सूक्ष्म गन्ध ही उनका स्वरूप है। उनसे ऊपर फिर कारणरूप विष्णुके चौदह लोक स्थित हैं। उनसे भी ऊपर फिर कारणरूपी रुद्रके अट्ठाईस लोकोंकी स्थिति मानी गयी है। फिर उनसे भी ऊपर कारणेश शिवके छप्पन लोक विद्यमान हैं। तदनन्तर शिवसम्मत ब्रह्मचर्यलोक है और वहीं पाँच आवरणोंसे युक्त ज्ञानमय कैलास है, जहाँ पाँच मण्डलों, पाँच ब्रह्मकलाओं और आदिशक्तिसे संयुक्त आदिलिङ्ग प्रतिष्ठित है। उसे परमात्मा शिवका शिवालय कहा गया है। वहीं पराशक्तिसे युक्त परमेश्वर शिव निवास करते हैं। वे सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—इन पाँचों कृत्योंमें प्रवीण हैं। उनका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दस्वरूप है। वे सदा ध्यानरूपी धर्ममें ही स्थित रहते हैं और सदा सबपर अनुग्रह किया करते हैं। वे स्वात्माराम हैं और समाधिरूपी आसनपर आसीन हो नित्य विराजमान होते हैं। कर्म एवं ध्यान आदिका अनुष्ठान करनेसे क्रमशः साधनपथमें आगे बढ़नेपर उनका दर्शन साध्य होता है। नित्य-नैमित्तिक आदि कर्मोंद्वारा देवताओंका यजन करनेसे भगवान् शिवके समाराधन-कर्ममें मन लगता है। क्रिया आदि जो शिवसम्बन्धी कर्म हैं, उनके द्वारा शिवज्ञान सिद्ध करे। जिन्होंने शिवतत्त्वका साक्षात्कार कर लिया है अथवा जिनपर शिवकी कृपादृष्टि पड़ चुकी है, वे सब मुक्त ही हैं—इसमें संशय नहीं है। आत्मस्वरूपसे जो स्थिति है, वही मुक्ति है। एकमात्र अपने आत्मामें रमण या आनन्दका अनुभव करना ही मुक्तिका स्वरूप है। जो पुरुष क्रिया, तप, जप, ज्ञान और ध्यानरूपी धर्मोंमें भलीभाँति स्थित है, वह शिवका साक्षात्कार करके स्वात्मारामत्वरूप मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है। जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंसे अशुद्धिको दूर कर देते हैं, उसी प्रकार कृपा करनेमें कुशल भगवान् शिव अपने भक्तके अज्ञानको मिटा देते हैं। अज्ञानकी निवृत्ति हो जानेपर शिवज्ञान स्वतः प्रकट हो जाता है। शिवज्ञानसे अपना विशुद्ध स्वरूप आत्मारामत्व प्राप्त होता है और आत्मारामत्वकी सम्यक् सिद्धि हो जानेपर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।

इस तरह यहाँ जो कुछ बताया गया है, वह पहले मुझे गुरुपरम्परासे प्राप्त हुआ था। तत्पश्चात् मैंने पुनः नन्दीश्वरके मुखसे इस विषयको सुना था। नन्दिस्थानसे परे जो स्वसंवेद्य शिव-वैभव है, उसका अनुभव केवल भगवान् शिवको ही है। साक्षात् शिवलोकके उस वैभवका ज्ञान सबको शिवकी कृपासे ही हो सकता है, अन्यथा नहीं—ऐसा आस्तिक पुरुषोंका कथन है।

साधकको चाहिये कि वह पाँच लाख जप करनेके पश्चात् भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये महाभिषेक एवं नैवेद्य निवेदन करके शिवभक्तोंका पूजन करे। भक्तकी पूजासे भगवान् शिव बहुत प्रसन्न होते हैं। शिव और उनके भक्तमें कोई भेद नहीं है। वह साक्षात् शिवस्वरूप ही है। शिवस्वरूप मन्त्रको धारण करके वह शिव ही हो गया रहता है। शिवभक्तका शरीर शिवरूप ही है। अतः उसकी सेवामें तत्पर रहना चाहिये। जो शिवके भक्त हैं, वे लोक

और वेदकी सारी क्रियाओंको जानते हैं। जो क्रमशः जितना-जितना शिवमन्त्रका जप कर लेता है, उसके शरीरको उतना-ही-उतना शिवका सामीप्य प्राप्त होता जाता है, इसमें संशय नहीं है। शिवभक्त स्त्रीका रूप देवी पार्वतीका ही स्वरूप है। वह जितना मन्त्र जपती है, उसे उतना ही देवीका सांनिध्य प्राप्त होता जाता है। साधक स्वयं शिवस्वरूप होकर पराशक्तिका पूजन करे। शक्ति, बेर तथा लिङ्गका चित्र बनाकर अथवा मिट्टी आदिसे इनकी आकृतिका निर्माण करके प्राणप्रतिष्ठापूर्वक निष्कपट भावसे इनका पूजन करे। शिवलिङ्गको शिव मानकर, अपनेको शक्तिरूप समझकर, शक्तिलिङ्गको देवी मानकर और अपनेको शिवरूप समझकर, शिवलिङ्गको नादरूप तथा शक्तिको बिन्दुरूप मानकर परस्पर सटे हुए शक्तिलिङ्ग और शिवलिङ्गके प्रति उपप्रधान और प्रधानकी भावना रखते हुए जो शिव और शक्तिका पूजन करता है, वह मूलरूपकी भावना करनेके कारण शिवरूप ही है। शिवभक्त शिव-मन्त्ररूप होनेके कारण शिवके ही स्वरूप हैं। जो सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा करता है, उसे अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। जो शिवलिङ्गोपासक शिवभक्तकी सेवा आदि करके उसे आनन्द प्रदान करता है, उस विद्वान्‌पर भगवान् शिव बड़े प्रसन्न होते हैं। पाँच, दस या सौ सपत्नीक शिवभक्तोंको बुलाकर भोजन आदिके द्वारा पत्नीसहित उनका सदैव समादर करे। धनमें, देहमें और मन्त्रमें शिवभावना रखते हुए उन्हें शिव और शक्तिका स्वरूप जानकर निष्कपट भावसे उनकी पूजा करे। ऐसा करनेवाला पुरुष इस भूतलपर फिर जन्म नहीं लेता।

(अध्याय १७)

☆

बन्धन और मोक्षका विवेचन, शिवपूजाका उपदेश, लिङ्ग आदिमें शिवपूजनका विधान, भस्मके स्वरूपका निरूपण और महत्त्व, शिव एवं गुरु शब्दकी व्युत्पत्ति तथा शिवके भस्मधारणका रहस्य

ऋषि बोले— सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ सूतजी! बन्धन और मोक्षका स्वरूप क्या है? यह हमें बताइये।

सूतजीने कहा—महर्षियो! मैं बन्धन और मोक्षका स्वरूप तथा मोक्षके उपायका वर्णन करूँगा। तुमलोग आदरपूर्वक सुनो। जो प्रकृति आदि आठ बन्धनोंसे बँधा हुआ है, वह जीव बद्ध कहलाता है और जो उन आठों बन्धनोंसे छूटा हुआ है, उसे मुक्त कहते हैं। प्रकृति आदिको वशमें कर लेना मोक्ष कहलाता है। बन्धन आगन्तुक है और मोक्ष स्वतःसिद्ध है। बद्ध जीव जब बन्धनसे मुक्त हो जाता है तब उसे मुक्तजीव कहते हैं। प्रकृति, बुद्धि (महत्तत्त्व), त्रिगुणात्मक अहंकार और पाँच तन्मात्राएँ—इन्हें ज्ञानी पुरुष प्रकृत्याद्यष्टक मानते हैं। प्रकृति आदि आठ तत्त्वोंके समूहसे देहकी उत्पत्ति हुई है। देहसे कर्म उत्पन्न होता है और फिर कर्मसे नूतन देहकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार बारंबार जन्म और कर्म होते रहते हैं। शरीरको स्थूल, सूक्ष्म और कारणके भेदसे तीन प्रकारका जानना चाहिये। स्थूल शरीर

(जाग्रत् अवस्थामें) व्यापार करानेवाला, सूक्ष्म शरीर (जाग्रत् और स्वप्न-अवस्थाओंमें) इन्द्रिय-भोग प्रदान करनेवाला तथा कारण शरीर (सुषुप्तावस्थामें) आत्मानन्दकी अनुभूति करानेवाला कहा गया है। जीवको उसके प्रारब्ध-कर्मानुसार सुख-दुःख प्राप्त होते हैं। वह अपने पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप सुख और पापकर्मोंके फलस्वरूप दुःखका उपभोग करता है। अतः कर्मपाशसे बँधा हुआ जीव अपने त्रिविध शरीरसे होनेवाले शुभाशुभ कर्मोंद्वारा सदा चक्रकी भाँति बारंबार घुमाया जाता है। इस चक्रवत् भ्रमणकी निवृत्तिके लिये चक्रकर्ताका स्तवन एवं आराधन करना चाहिये। प्रकृति आदि जो आठ पाश बतलाये गये हैं, उनका समुदाय ही महाचक्र है और जो प्रकृतिसे परे हैं, वह परमात्मा शिव हैं। भगवान् महेश्वर ही प्रकृति आदि महाचक्रके कर्ता हैं; क्योंकि वे प्रकृतिसे परे हैं। जैसे बकायन नामक वृक्षका थाला जलको पीता और उगलता है, उसी प्रकार शिव प्रकृति आदिको अपने वशमें करके उसपर शासन करते हैं। उन्होंने सबको वशमें कर लिया है, इसीलिये वे शिव कहे गये हैं। शिव ही सर्वज्ञ, परिपूर्ण तथा निःस्पृह हैं। सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि बोध, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्त शक्तिसे संयुक्त होना और अपने भीतर अनन्त शक्तियोंको धारण करना—महेश्वरके इन छः प्रकारके मानसिक ऐश्वर्योंको केवल वेद जानता है। अतः भगवान् शिवके अनुग्रहसे ही प्रकृति आदि आठों तत्त्व वशमें होते हैं। भगवान् शिवका कृपा-प्रसाद प्राप्त करनेके लिये उन्हींका पूजन करना चाहिये।

यदि कहें—शिव तो परिपूर्ण हैं, निःस्पृह हैं; उनकी पूजा कैसे हो सकती है? तो इसका उत्तर यह है कि भगवान् शिवके उद्देश्यसे—उनकी प्रसन्नताके लिये किया हुआ सत्कर्म उनके कृपाप्रसादको प्राप्त करानेवाला होता है। शिव-लिङ्गमें, शिवकी प्रतिमामें तथा शिवभक्तजनोंमें शिवकी भावना करके उनकी प्रसन्नताके लिये पूजा करनी चाहिये। वह पूजन शरीरसे, मनसे, वाणीसे और धनसे भी किया जा सकता है। उस पूजासे महेश्वर शिव, जो प्रकृतिसे परे हैं, पूजकपर विशेष कृपा करते हैं और उनका वह कृपा-प्रसाद सत्य होता है। शिवकी कृपासे कर्म आदि सभी बन्धन अपने वशमें हो जाते हैं। कर्मसे लेकर प्रकृतिपर्यन्त सब कुछ जब वशमें हो जाता है, तब वह जीव मुक्त कहलाता है और स्वात्मारामरूपसे विराजमान होता है। परमेश्वर शिवकी कृपासे जब कर्मजनित शरीर अपने वशमें हो जाता है, तब भगवान् शिवके लोकमें निवासका सौभाग्य प्राप्त होता है। इसीको सालोक्य-मुक्ति कहते हैं। जब तन्मात्राएँ वशमें हो जाती हैं, तब जीव जगदम्बासहित शिवका सामीप्य प्राप्त कर लेता है। यह सामीप्य मुक्ति है, उसके आयुध आदि और क्रिया आदि सब कुछ भगवान् शिवके समान हो जाते हैं। भगवान्‌का महाप्रसाद प्राप्त होनेपर बुद्धि भी वशमें हो जाती है। बुद्धि प्रकृतिका कार्य है। उसका वशमें होना सार्ष्टिमुक्ति कहा गया है। पुनः भगवान्‌का महान् अनुग्रह प्राप्त होनेपर प्रकृति वशमें हो जायगी। उस समय भगवान् शिवका मानसिक ऐश्वर्य बिना यत्नके ही प्राप्त हो जायगा। सर्वज्ञता और तृप्ति आदि जो

शिवके ऐश्वर्य हैं, उन्हें पाकर मुक्त पुरुष अपने आत्मामें ही विराजमान होता है। वेद और शास्त्रोंमें विश्वास रखनेवाले विद्वान् पुरुष इसीको सायुज्यमुक्ति कहते हैं। इस प्रकार लिङ्ग आदिमें शिवकी पूजा करनेसे क्रमशः मुक्ति स्वतः प्राप्त हो जाती है। इसलिये शिवका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये तत्सम्बन्धी क्रिया आदिके द्वारा उन्हींका पूजन करना चाहिये। शिवक्रिया, शिवतप, शिवमन्त्र-जप, शिवज्ञान और शिवध्यानके लिये सदा उत्तरोत्तर अभ्यास बढ़ाना चाहिये। प्रतिदिन प्रातःकालसे रातको सोते समयतक और जन्मकालसे लेकर मृत्युपर्यन्त सारा समय भगवान् शिवके चिन्तनमें ही बिताना चाहिये। सद्योजातादि मन्त्रों तथा नाना प्रकारके पुष्पोंसे जो शिवकी पूजा करता है, वह शिवको ही प्राप्त होगा।

ऋषि बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सूतजी! लिङ्ग आदिमें शिवजीकी पूजाका क्या विधान है, यह हमें बताइये।

सूतजीने कहा—द्विजो! मैं लिङ्गोंके क्रमका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ तुम सब लोग सुनो। वह प्रणव ही समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला प्रथम लिङ्ग है। उसे सूक्ष्म प्रणवरूप समझो। सूक्ष्म लिङ्ग निष्कल होता है और स्थूल लिङ्ग सकल। पञ्चाक्षर-मन्त्रको ही स्थूल लिङ्ग कहते हैं। उन दोनों प्रकारके लिङ्गोंका पूजन तप कहलाता है। वे दोनों ही लिङ्ग साक्षात् मोक्ष देनेवाले हैं। पौरुष-लिङ्ग और प्रकृति-लिङ्गके रूपमें बहुत-से लिङ्ग हैं। उन्हें भगवान् शिव ही विस्तारपूर्वक बता सकते हैं। दूसरा कोई नहीं जानता। पृथ्वीके विकारभूत जो-जो लिङ्ग ज्ञात हैं, उन-उनको मैं तुम्हें बता रहा हूँ। उनमें स्वयम्भूलिङ्ग प्रथम है। दूसरा बिन्दुलिङ्ग, तीसरा प्रतिष्ठित-लिङ्ग, चौथा चरलिङ्ग और पाँचवाँ गुरुलिङ्ग है। देवर्षियोंकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो उनके समीप प्रकट होनेके लिये पृथ्वीके अन्तर्गत बीजरूपसे व्याप्त हुए भगवान् शिव वृक्षोंके अङ्कुरकी भाँति भूमिको भेदकर नादलिङ्गके रूपमें व्यक्त हो जाते हैं। वे स्वतः व्यक्त हुए शिव ही स्वयं प्रकट होनेके कारण स्वयम्भू नाम धारण करते हैं। ज्ञानीजन उन्हें स्वयम्भूलिङ्गके रूपमें जानते हैं। उस स्वयम्भूलिङ्गकी पूजासे उपासकका ज्ञान स्वयं ही बढ़ने लगता है। सोने-चाँदी आदिके पत्रपर, भूमिपर अथवा वेदीपर अपने हाथसे लिखित जो शुद्ध प्रणव मन्त्ररूप लिङ्ग है, उसमें तथा मन्त्रलिङ्गका आलेखन करके उसमें भगवान् शिवकी प्रतिष्ठा और आवाहन करे। ऐसा बिन्दुनादमय लिङ्ग स्थावर और जङ्गम दोनों ही प्रकारका होता है। इसमें शिवका दर्शन भावनामय ही है, ऐसा निस्संदेह कहा जा सकता है। जिसको जहाँ भगवान् शंकरके प्रकट होनेका विश्वास हो, उसके लिये वहीं प्रकट होकर वे अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। अपने हाथसे लिखे हुए यन्त्रमें अथवा अकृत्रिम स्थावर आदिमें भगवान् शिवका आवाहन करके सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा करे। ऐसा करनेसे साधक स्वयं ही ऐश्वर्यको प्राप्त कर लेता है और इस साधनके अभ्याससे उसको ज्ञान भी होता है। देवताओं और ऋषियोंने आत्मसिद्धिके लिये अपने हाथसे वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक शुद्ध मण्डलमें शुद्ध भावनाद्वारा जिस उत्तम शिवलिङ्गकी

स्थापना की है, उसे पौरुष लिङ्ग कहते हैं। तथा वही प्रतिष्ठित लिङ्ग कहलाता है। उस लिङ्गकी पूजा करनेसे सदा पौरुष ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। महान् ब्राह्मण और महाधनी राजा किसी कारीगरसे शिवलिङ्गका निर्माण कराकर जो मन्त्रपूर्वक उसकी स्थापना करते हैं, उनके द्वारा स्थापित हुआ वह लिङ्ग भी प्रतिष्ठित लिङ्ग कहलाता है। किंतु वह प्राकृत लिङ्ग है। इसलिये प्राकृत ऐश्वर्य-भोगको ही देनेवाला होता है। जो शक्तिशाली और नित्य होता है, उसे पौरुष कहते हैं तथा जो दुर्बल और अनित्य होता है, वह प्राकृत कहलाता है।

लिङ्ग, नाभि, जिह्वा, नासाग्रभाग और शिखाके क्रमसे कटि, हृदय और मस्तक तीनों स्थानोंमें जो लिङ्गकी भावना की गयी है, उस आध्यात्मिक लिङ्गको ही चरलिङ्ग कहते हैं। पर्वतको पौरुषलिङ्ग बताया गया है और भूतलको विद्वान् पुरुष प्राकृतलिङ्ग मानते हैं। वृक्ष आदिको पौरुषलिङ्ग जानना चाहिये और गुल्म आदिको प्राकृतलिङ्ग। साठी नामक धान्यको प्राकृतलिङ्ग समझना चाहिये और शालि (अगहनी) एवं गेहूँको पौरुषलिङ्ग। अणिमा आदि आठों सिद्धियोंको देनेवाला जो ऐश्वर्य है, उसे पौरुष ऐश्वर्य जानना चाहिये। सुन्दर स्त्री तथा धन आदि विषयोंको आस्तिक पुरुष प्राकृत ऐश्वर्य कहते हैं। चरलिङ्गोंमें सबसे प्रथम रसलिङ्गका वर्णन किया जाता है। रसलिङ्ग ब्राह्मणोंको उनकी सारी अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। शुभकारक बाणलिङ्ग क्षत्रियोंको महान् राज्यकी प्राप्ति करानेवाला है। सुवर्णलिङ्ग वैश्योंको महाधनपतिका पद प्रदान करनेवाला है तथा सुन्दर शिवलिङ्ग शूद्रोंको महाशुद्धि देनेवाला है। स्फटिकमय लिङ्ग तथा बाणलिङ्ग सब लोगोंको उनकी समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं। अपना न हो तो दूसरेका स्फटिक या बाणलिङ्ग भी पूजाके लिये निषिद्ध नहीं है। स्त्रियों, विशेषतः सधवाओंके लिये पार्थिव लिङ्गकी पूजाका विधान है। प्रवृत्तिमार्गमें स्थित विधवाओंके लिये स्फटिकलिङ्गकी पूजा बतायी गयी है। परंतु विरक्त विधवाओंके लिये रसलिङ्गकी पूजाको ही श्रेष्ठ कहा गया है। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षियो! बचपनमें, जवानीमें और बुढ़ापेमें भी शुद्ध स्फटिकमय शिवलिङ्गका पूजन स्त्रियोंको समस्त भोग प्रदान करनेवाला है। गृहासक्त स्त्रियोंके लिये पीठपूजा भूतलपर सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाली है।

प्रवृत्तिमार्गमें चलनेवाला पुरुष सुपात्र गुरुके सहयोगसे ही समस्त पूजाकर्म सम्पन्न करे। इष्टदेवका अभिषेक करनेके पश्चात् अगहनीके चावलसे बने हुए खीर आदि पक्वान्नोंद्वारा नैवेद्य अर्पण करे। पूजाके अन्तमें शिवलिङ्गको सम्पुटमें पधराकर घरके भीतर पृथक् रख दे। जो निवृत्ति-मार्गी पुरुष हैं, उनके लिये हाथपर ही शिवलिङ्ग-पूजाका विधान है। उन्हें भिक्षादिसे प्राप्त हुए अपने भोजनको ही नैवेद्यरूपमें निवेदित करना चाहिये। निवृत्त पुरुषोंके लिये सूक्ष्म लिङ्ग ही श्रेष्ठ बताया जाता है। वे विभूतिके द्वारा पूजन करें और विभूतिको ही नैवेद्यरूपसे निवेदित भी करें। पूजा करके उस लिङ्गको सदा अपने मस्तकपर धारण करें।

विभूति तीन प्रकारकी बतायी गयी है—लोकाग्निजनित, वेदाग्निजनित और

शिवाग्निजनित। लोकाग्निजनित या लौकिक भस्मको द्रव्योंकी शुद्धिके लिये लाकर रखे। मिट्टी, लकड़ी और लोहेके पात्रोंकी, धान्योंकी, तिल आदि द्रव्योंकी, वस्त्र आदिकी तथा पर्युषित वस्तुओंकी भस्मसे शुद्धि होती है। कुत्ते आदिसे दूषित हुए पात्रोंकी भी भस्मसे ही शुद्धि मानी गयी है। वस्तु-विशेषकी शुद्धिके लिये यथायोग्य सजल अथवा निर्जल भस्मका उपयोग करना चाहिये। वेदाग्निजनित जो भस्म है, उसको उन-उन वैदिक कर्मोंके अन्तमें धारण करना चाहिये। मन्त्र और क्रियासे जनित जो होमकर्म है, वह अग्निमें भस्मका रूप धारण करता है। उस भस्मको धारण करनेसे वह कर्म आत्मामें आरोपित हो जाता है। अघोर[१]-मूर्तिधारी शिवका जो अपना मन्त्र है, उसे पढ़कर बेलकी लकड़ीको जलाये। उस मन्त्रसे अभिमन्त्रित अग्निको शिवाग्नि कहा गया है। उसके द्वारा जले हुए काष्ठका जो भस्म है, वह शिवाग्निजनित है। कपिला गायके गोबर अथवा गायमात्रके गोबरको तथा शमी, पीपल, पलाश, बड़, अमलतास और बैर—इनकी लकड़ियोंको शिवाग्निसे जलाये। वह शुद्ध भस्म शिवाग्निजनित माना गया है अथवा कुशकी अग्निमें शिवमन्त्रके उच्चारणपूर्वक काष्ठको जलाये। फिर उस भस्मको कपड़ेसे अच्छी तरह छानकर नये घड़ेमें भरकर रख दे। उसे समय-समयपर अपनी कान्ति या शोभाकी वृद्धिके लिये धारण करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्मानित एवं पूजित होता है। पूर्वकालमें भगवान् शिवने भस्म शब्दका ऐसा ही अर्थ प्रकट किया था। जैसे राजा अपने राज्यमें सारभूत करको ग्रहण करता है, जैसे मनुष्य सस्य आदिको जलाकर (राँधकर) उसका सार ग्रहण करते हैं तथा जैसे जठरानल नाना प्रकारके भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थोंको भारी मात्रामें ग्रहण करके जलाता, जलाकर सारतर वस्तु ग्रहण करता और उस सारतर वस्तुसे स्वदेहका पोषण करता है, उसी प्रकार प्रपञ्चकर्ता परमेश्वर शिवने भी अपनेमें आधेयरूपसे विद्यमान प्रपञ्चको जलाकर भस्मरूपसे उसके सारतत्त्वको ग्रहण किया है। प्रपञ्चको दग्ध करके शिवने उसके भस्मको अपने शरीरमें लगाया है। राख, भभूत पोतनेके बहाने जगत्‌के सारको ही ग्रहण किया है। अपने शरीरमें अपने लिये रत्नस्वरूप भस्मको इस प्रकार स्थापित किया है—आकाशके सारतत्त्वसे केश, वायुके सारतत्त्वसे मुख, अग्निके सारतत्त्वसे हृदय, जलके सारतत्त्वसे कटिभाग और पृथ्वीके सारतत्त्वसे घुटनेको धारण किया है। इसी तरह उनके सारे अङ्ग विभिन्न वस्तुओंके साररूप हैं। महेश्वरने अपने ललाटमें तिलकरूपसे जो त्रिपुण्ड्र धारण किया है, वह ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका सारतत्त्व है। वे इन सब वस्तुओंको जगत्‌के अभ्युदयका हेतु मानते हैं। इन भगवान् शिवने ही प्रपञ्चके सार-सर्वस्वको अपने वशमें किया है। अतः इन्हें अपने वशमें करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। जैसे समस्त मृगोंका हिंसक मृग सिंह कहलाता है और उसकी हिंसा करनेवाला दूसरा कोई मृग नहीं है, अतएव उसे सिंह कहा गया है।

१. अघोर-मन्त्रको पृष्ठ ६० की टिप्पणीमें देखिये।

इकारका *अर्थ* है नित्यसुख एवं आनन्द, इकारका अर्थ है पुरुष और वकारका अर्थ है अमृतस्वरूपा शक्ति। इन सबका सम्मिलित रूप ही शिव कहलाता है। अतः इस रूपमें भगवान् शिवको अपना आत्मा मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये; अतः पहले अपने अङ्गोंमें भस्म मले। फिर ललाटमें उत्तम त्रिपुण्ड्र धारण करे। पूजाकालमें सजल भस्मका उपयोग होता है और द्रव्यशुद्धिके लिये निर्जल भस्मका। गुणातीत परम शिव राजस आदि सविकार गुणोंका अवरोध करते हैं—दूर हटाते हैं, इसलिये वे सबके गुरुरूपका आश्रय लेकर स्थित हैं। गुरु विश्वासी शिष्योंके तीनों गुणोंको पहले दूर करके फिर उन्हें शिवतत्त्वका बोध कराते हैं, इसीलिये गुरु कहलाते हैं। गुरुकी पूजा परमात्मा शिवकी ही पूजा है। गुरुके उपयोगसे बचा हुआ सारा पदार्थ आत्मशुद्धि करनेवाला होता है। गुरुकी आज्ञाके बिना उपयोगमें लाया हुआ सब कुछ वैसा ही है, जैसे चोर चोरी करके लायी हुई वस्तुका उपयोग करता है। गुरुसे भी विशेष ज्ञानवान् पुरुष मिल जाय तो उसे भी यत्नपूर्वक गुरु बना लेना चाहिये। अज्ञानरूपी बन्धनसे छूटना ही जीवमात्रके लिये साध्य पुरुषार्थ है। अतः जो विशेष ज्ञानवान् है, वही जीवको उस बन्धनसे छुड़ा सकता है।

जन्म और मरणरूप द्वन्द्वको भगवान् शिवकी मायाने ही अर्पित किया है। जो इन दोनोंको शिवकी मायाको ही अर्पित कर देता है, वह फिर शरीरके बन्धनमें नहीं पड़ता। जबतक शरीर रहता है, तबतक जो क्रियाके ही अधीन है, वह जीव बद्ध कहलाता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीरोंको वशमें कर लेनेपर जीवका मोक्ष हो जाता है, ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका कथन है। मायाचक्रके निर्माता भगवान् शिव ही परम कारण हैं। वे अपनी मायाके दिये हुए द्वन्द्वका स्वयं ही परिमार्जन करते हैं। अतः शिवके द्वारा कल्पित हुआ द्वन्द्व उन्हींको समर्पित कर देना चाहिये। जो शिवकी पूजामें तत्पर हो, वह मौन रहे, सत्य आदि गुणोंसे संयुक्त हो तथा क्रिया, जप, तप, ज्ञान और ध्यानमेंसे एक-एकका अनुष्ठान करता रहे। ऐश्वर्य, दिव्य शरीरकी प्राप्ति, ज्ञानका उदय, अज्ञानका निवारण और भगवान् शिवके सामीप्यका लाभ—ये *क्रमशः क्रिया आदिके फल हैं।* निष्काम कर्म करनेसे अज्ञानका निवारण हो जानेके कारण शिवभक्त पुरुष उसके यथोक्त फलको पाता है। शिवभक्त पुरुष देश, काल, शरीर और धनके अनुसार यथायोग्य क्रिया आदिका अनुष्ठान करे। न्यायोपार्जित उत्तम धनसे निर्वाह करते हुए विद्वान् पुरुष शिवके स्थानमें निवास करे। जीवहिंसा आदिसे रहित और अत्यन्त क्लेशशून्य जीवन बिताते हुए पञ्चाक्षर-मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित अन्न और जलको सुखस्वरूप माना गया है अथवा कहते हैं कि दरिद्र पुरुषके लिये भिक्षासे प्राप्त हुआ अन्न ज्ञान देनेवाला होता है। शिवभक्तको भिक्षान्न *प्राप्त हो तो वह शिवभक्तिको बढ़ाता है।* शिवयोगी पुरुष भिक्षान्नको शम्भुसत्र कहते हैं। जिस किसी भी उपायसे जहाँ-कहीं भी भूतलपर शुद्ध अन्नका भोजन करते हुए सदा मौनभावसे रहे और अपने साधनका रहस्य किसीपर प्रकट न करे। भक्तोंके समक्ष ही

शिवके माहात्म्यको प्रकाशित करे। शिवमन्त्रके रहस्यको भगवान् शिव ही जानते हैं, दूसरा नहीं।

(अध्याय १८)

☆

पार्थिवलिङ्गके निर्माणकी रीति तथा वेद-मन्त्रोंद्वारा उसके पूजनकी विस्तृत एवं संक्षिप्त विधिका वर्णन

तदनन्तर पार्थिव लिङ्गकी श्रेष्ठता तथा महिमाका वर्णन करके सूतजी कहते हैं—महर्षियो! अब मैं वैदिक कर्मके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखनेवाले लोगोंके लिये वेदोक्त मार्गसे ही पार्थिव-पूजाकी पद्धतिका वर्णन करता हूँ। यह पूजा भोग और मोक्ष दोनोंको देनेवाली है। आह्निकसूत्रोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार विधिपूर्वक स्नान और संध्योपासना करके पहले ब्रह्मयज्ञ करे। तत्पश्चात् देवताओं, ऋषियों, सनकादि मनुष्यों और पितरोंका तर्पण करे। अपनी रुचिके अनुसार सम्पूर्ण नित्यकर्मको पूर्ण करके शिवस्मरणपूर्वक भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करे। तत्पश्चात् सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलकी सिद्धिके लिये ऊँची भक्तिभावनाके साथ उत्तम पार्थिवलिङ्गकी वेदोक्त विधिसे भलीभाँति पूजा करे। नदी या तालाबके किनारे, पर्वतपर, वनमें, शिवालयमें अथवा और किसी पवित्र स्थानमें पार्थिव-पूजा करनेका विधान है। ब्राह्मणो! शुद्ध स्थानसे निकाली हुई मिट्टीको यत्नपूर्वक लाकर बड़ी सावधानीके साथ शिवलिङ्गका निर्माण करे। ब्राह्मणके लिये श्वेत, क्षत्रियके लिये लाल, वैश्यके लिये पीली और शूद्रके लिये काली मिट्टीसे शिवलिङ्ग बनानेका विधान है अथवा जहाँ जो मिट्टी मिल जाय, उसीसे शिवलिङ्ग बनाये।

शिवलिङ्ग बनानेके लिये प्रयत्नपूर्वक मिट्टीका संग्रह करके उस शुभ मृत्तिकाको अत्यन्त शुद्ध स्थानमें रखे। फिर उसकी शुद्धि करके जलसे सानकर पिण्डी बना ले और वेदोक्त मार्गसे धीरे-धीरे सुन्दर पार्थिवलिङ्गकी रचना करे। तत्पश्चात् भोग और मोक्षरूपी फलकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक उसका पूजन करे। उस पार्थिवलिङ्गके पूजनकी जो विधि है, उसे मैं विधानपूर्वक बता रहा हूँ; तुम सब लोग सुनो। 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए समस्त पूजन-सामग्रीका प्रोक्षण करे—उसपर जल छिड़के। इसके बाद 'भूरसि०[1]' इत्यादि मन्त्रसे क्षेत्रसिद्धि करे, फिर 'आपोऽस्मान्०[2]' इस मन्त्रसे जलका संस्कार करे। इसके बाद 'नमस्ते रुद्र०[3]' इस मन्त्रसे स्फाटिकाबन्ध (स्फटिक

---

१. पूरा मन्त्र इस प्रकार है—भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः। (यजु० १३। १८)

२. आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वꣳ हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि। दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाꣳ शग्मां परि दधे भद्रं वर्णं पुष्यन्। (यजु० ४। २)

३. नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः बाहुभ्यामुत ते नमः। (यजु० १६। १)

शिलाका घेरा) बनानेकी बात कही गयी है। 'नमः शम्भवाय०[1]' इस मन्त्रसे क्षेत्रशुद्धि और पञ्चामृतका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् शिवभक्त पुरुष 'नमः' पूर्वक 'नीलग्रीवाय०[2]' मन्त्रसे शिवलिङ्गकी उत्तम प्रतिष्ठा करे। इसके बाद वैदिक रीतिसे पूजन-कर्म करनेवाला उपासक भक्तिपूर्वक 'एतत्ते रुद्रावसं०[3]' इस मन्त्रसे रमणीय आसन दे। 'मा नो महान्तम्०[4]' इस मन्त्रसे आवाहन करे, 'या ते रुद्र०[5]' इस मन्त्रसे भगवान् शिवको आसनपर समासीन करे। 'यामिषुं०[6]' इस मन्त्रसे शिवके अङ्गोंमें न्यास करे। 'अध्यवोचत्०[7]' इस मन्त्रसे प्रेमपूर्वक अधिवासन करे। 'असौ यस्ताम्रो०[8]' इस मन्त्रसे शिवलिङ्गमें इष्टदेवता शिवका न्यास करे। 'असौ योऽवसर्पति०[9]' इस मन्त्रसे उपसर्पण (देवताके समीप गमन) करे। इसके बाद 'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय०[10]' इस मन्त्रसे इष्टदेवको पाद्य समर्पित करे। 'रुद्रगायत्री०[11]' से अर्घ्य दे। 'त्र्यम्बकं०[12]' मन्त्रसे आचमन कराये। 'पयः पृथिव्यां०[13]' इस मन्त्रसे दुग्धस्नान कराये। 'दधिक्राव्णो०[14]' इस

---

१. नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च। (यजु० १६।४१)

२. नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः। (यजु० १६।८)

३. एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहि्ँसन्नः शिवोऽतीहि। (यजु०३।६१)

४. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः। (यजु० १६।१५)

५. या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि। (यजु० १६।२)

६. यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हि्ँसीः पुरुषं जगत्। (यजु० १६।३)

७. अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अही्ँश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव। (यजु० १६।५)

८. असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः। ये चैन्ँ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषा्ँ हेड ईमहे। (यजु० १६।६)

९. असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः। (यजु० १६।७)

१०. यह मन्त्र पहले दिया जा चुका है।

११. तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

१२. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः। (यजु० ३।६०)

१३. पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्। (यजु० १८।३६)

१४. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयू्ँषि तारिषत्। (यजु० २३।३२)

मन्त्रसे दधिस्नान कराये। 'घृतं घृतपावा०[1]' इस मन्त्रसे घृतस्नान कराये। 'मधु वाता०[2]', 'मधु नक्तं०[3]', 'मधुमान्नो[4]' इन तीन ऋचाओंसे मधुस्नान और शर्करा-स्नान[5] कराये। इन दुग्ध आदि पाँच वस्तुओंको पञ्चामृत कहते हैं।

अथवा पाद्य-समर्पणके लिये कहे गये 'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय०' इत्यादि मन्त्रद्वारा पञ्चामृतसे स्नान कराये। तदनन्तर 'मा नस्तोके०[6]' इस मन्त्रसे प्रेमपूर्वक भगवान् शिवको कटिबन्ध (करधनी) अर्पित करे। 'नमो धृष्णवे०[7]' इस मन्त्रका उच्चारण करके आराध्य देवताको उत्तरीय धारण कराये। 'या ते हेतिः०[8]' इत्यादि चार ऋचाओंको पढ़कर वेदज्ञ भक्त प्रेमसे विधिपूर्वक भगवान् शिवके लिये वस्त्र (एवं यज्ञोपवीत) समर्पित करे। इसके बाद 'नमः श्वभ्यः०[9]' इत्यादि मन्त्रको पढ़कर शुद्ध बुद्धिवाला भक्त पुरुष भगवान्‌को प्रेमपूर्वक गन्ध (सुगन्धित चन्दन एवं रोली) चढ़ाये। 'नमस्तक्षभ्यो०[10]' इस मन्त्रसे अक्षत अर्पित करे। 'नमः पार्याय०[11]'

---

१. घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा। (यजु० ६। १९)

२. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। (यजु० १३। २७)

३. मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। (यजु० १३। २८)

४. मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाꣳ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः। (यजु० १३। २९)

५. बहुत-से विद्वान् 'मधु वाता०' आदि तीन ऋचाओंका उपयोग केवल मधुस्नानमें ही करते हैं और शर्करा-स्नान कराते समय निम्नाङ्कित मन्त्र बोलते हैं—
अपाꣳ रसमुद्वयसꣳ सूर्ये सन्तꣳ समाहितम्। अपाꣳ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। (यजु० ९। ३)

६. मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे। (यजु० १६। १६)

७. नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च। (यजु० १६। ३६)

८. या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः। तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज (११)। परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः। अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम् (१२)। अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव (१३)। नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे। उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने (१४)। (यजु० १६)

९. नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च। (यजु० १६। २८)

१०. नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः। (यजु० १६। २७)

११. नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च। (यजु० १६। ४२)

इस मन्त्रसे फूल चढ़ाये। 'नमः पर्णाय॰'[1] इस मन्त्रसे बिल्वपत्र समर्पण करे। 'नमः कपर्दिने च॰'[2] इत्यादि मन्त्रसे विधिपूर्वक धूप दे। 'नम आशवे॰'[3] इस ऋचासे शास्त्रोक्त विधिके अनुसार दीप निवेदन करे। तत्पश्चात् (हाथ धोकर) 'नमो ज्येष्ठाय॰'[4] इस मन्त्रसे उत्तम नैवेद्य अर्पित करे। फिर पूर्वोक्त त्र्यम्बक-मन्त्रसे आचमन कराये। 'इमा रुद्राय॰'[5] इस ऋचासे फल समर्पण करे। फिर 'नमो व्रज्याय॰'[6] इस मन्त्रसे भगवान् शिवको अपना सब कुछ समर्पित कर दे। तदनन्तर 'मा नो महान्तम्॰' तथा 'मा नस्तोके' इन पूर्वोक्त दो मन्त्रोंद्वारा केवल अक्षतोंसे ग्यारह रुद्रोंका पूजन करे। फिर 'हिरण्यगर्भः॰'[7] इत्यादि मन्त्रसे जो तीन ऋचाओंके रूपमें पठित है, दक्षिणा चढ़ाये*। 'देवस्य त्वा॰'[8] इस मन्त्रसे विद्वान् पुरुष आराध्यदेवका अभिषेक करे। दीपके लिये बताये हुए 'नम आशवे॰' इत्यादि मन्त्रसे भगवान् शिवकी नीराजना (आरती) करे। तत्पश्चात् 'इमा रुद्राय॰' इत्यादि तीन ऋचाओंसे भक्तिपूर्वक रुद्रदेवको पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। 'मा नो महान्तम्॰' इस मन्त्रसे विज्ञ उपासक पूजनीय देवताकी परिक्रमा करे। फिर उत्तम बुद्धि-वाला उपासक 'मा नस्तोके॰' इस मन्त्रसे भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम करे। 'एष ते॰'[9]

---

१. नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवाना हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो नम आनिर्हतेभ्यः। (यजु॰ १६। ४६)

२. नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च। (यजु॰ १६। २९)

३. नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च। (यजु॰ १६। ३१)

४. नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च। (यजु॰ १६। ३२)

५. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्। (यजु॰ १६। ४८)

६. नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च। (यजु॰ १६। ४४)

७. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।

* यह मन्त्र यजुर्वेदके अन्तर्गत तीन स्थानोंमें पठित और तीन मन्त्रोंके रूपमें परिगणित है। यथा—यजु॰ १३। ४; २३। १ तथा २५। १० में।

८. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभि षिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि। (यजु॰ २०। ३)

९. एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा। एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः॥ (यजु॰ ३। ५७)

इस मन्त्रसे शिवमुद्राका प्रदर्शन करे। 'यतो यतः०'[1] इस मन्त्रसे अभय नामक मुद्राका, 'त्र्यम्बकं०' मन्त्रसे ज्ञान नामक मुद्राका तथा 'नमः सेना०'[2] इत्यादि मन्त्रसे महामुद्राका प्रदर्शन करे। 'नमो गोभ्य०'[3] इस ऋचाद्वारा धेनुमुद्रा दिखाये। इस तरह पाँच मुद्राओंका प्रदर्शन करके शिवसम्बन्धी मन्त्रोंका जप करे अथवा वेदज्ञ पुरुष 'शतरुद्रिय'[4] मन्त्रकी आवृत्ति करे। तत्पश्चात् वेदज्ञ पुरुष पञ्चाङ्ग पाठ करे। तदनन्तर 'देवा गातु०'[5] इत्यादि मन्त्रसे भगवान् शंकरका विसर्जन करे। इस प्रकार शिवपूजाकी वैदिक विधिका विस्तारसे प्रतिपादन किया गया।

महर्षियो! अब संक्षेपसे भी पार्थिव-पूजनकी वैदिक विधिका वर्णन सुनो। 'सद्यो जातं०'[6] इस ऋचासे पार्थिव लिङ्ग बनानेके लिये मिट्टी ले आये। 'वामदेवाय०'[7] इत्यादि मन्त्र पढ़कर उसमें जल डाले। (जब मिट्टी सनकर तैयार हो जाय तब) 'अघोर०'[8] मन्त्रसे लिङ्ग निर्माण करे। फिर 'तत्पुरुषाय०'[9] इस मन्त्रसे विधिवत् उसमें भगवान् शिवका आवाहन करे। तदनन्तर 'ईशान०'[10] मन्त्रसे भगवान् शिवको वेदीपर स्थापित करे। इनके सिवाय अन्य सब विधानोंको भी शुद्ध बुद्धिवाला उपासक संक्षेपसे ही सम्पन्न करे। इसके बाद विद्वान् पुरुष पञ्चाक्षर मन्त्रसे अथवा गुरुके दिये हुए अन्य किसी शिवसम्बन्धी मन्त्रसे सोलह उपचारोंद्वारा विधिवत् पूजन करे अथवा—

भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि।
उग्राय उग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने॥ (२० । ३५)

—इस मन्त्रद्वारा विद्वान् उपासक भगवान् शंकरकी पूजा करे। वह भ्रम छोड़कर उत्तम भाव-भक्तिसे शिवकी आराधना करे; क्योंकि भगवान् शिव भक्तिसे ही मनोवाञ्छित फल देते हैं।

ब्राह्मणो! यहाँ जो वैदिक विधिसे पूजनका क्रम बताया गया है, इसका पूर्णरूपसे आदर करता हुआ मैं पूजाकी एक दूसरी विधि भी बता रहा हूँ, जो उत्तम होनेके

---

१. यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥ (यजु० ३६ । २२)
२. नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः। क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः॥ (यजु० १६ । २६)
३. नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च। नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः॥ (गोमतीविद्या)
४. यजुर्वेदका वह अंश, जिसमें रुद्रके सौ या उससे अधिक नाम आये हैं और उनके द्वारा रुद्रदेवकी स्तुति की गयी है। (देखिये यजु० अध्याय १६)
५. देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इमं देव यज्ञ ँ स्वाहा वाते धाः॥ (यजु० ८ । २१)
६. सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥
७. ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मथाय नमः।
८. ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः।
९. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।
१०. ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणो ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदा शिवोम्॥

साथ ही सर्व-साधारणके लिये उपयोगी है। मुनिवरो! पार्थिव-लिङ्गकी पूजा भगवान् शिवके नामोंसे बतायी गयी है। वह पूजा सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाली है। मैं उसे बताता हूँ, सुनो! हर, महेश्वर, शम्भु, शूलपाणि, पिनाकधृक्, शिव, पशुपति और महादेव—ये क्रमशः शिवके आठ नाम कहे गये हैं। इनमेंसे प्रथम नामके द्वारा अर्थात् 'ॐ हराय नमः' का उच्चारण करके पार्थिवलिङ्ग बनानेके लिये मिट्टी लाये। दूसरे नाम अर्थात् 'ॐ महेश्वराय नमः' का उच्चारण करके लिङ्ग-निर्माण करे। फिर 'ॐ शम्भवे नमः' बोलकर उस पार्थिव-लिङ्गकी प्रतिष्ठा करे। तत्पश्चात् 'ॐ शूलपाणये नमः' कहकर उस पार्थिवलिङ्गमें भगवान् शिवका आवाहन करे। 'ॐ पिनाकधृषे नमः' कहकर उस शिवलिङ्गको नहलाये। 'ॐ शिवाय नमः' बोलकर उसकी पूजा करे। फिर 'ॐ पशुपतये नमः' कहकर क्षमा-प्रार्थना करे और अन्तमें 'ॐ महादेवाय नमः' कहकर आराध्यदेवका विसर्जन कर दे। प्रत्येक नामके आदिमें ॐकार और अन्तमें चतुर्थी विभक्तिके साथ 'नमः' पद लगाकर बड़े आनन्द और भक्तिभावसे पूजनसम्बन्धी सारे कार्य करने चाहिये[१]।

षडक्षर-मन्त्रसे अङ्गन्यास और करन्यासकी विधि भलीभाँति सम्पन्न करके फिर नीचे लिखे अनुसार ध्यान करे। जो कैलास पर्वतपर एक सुन्दर सिंहासनके मध्यभागमें विराजमान हैं, जिनके वामभागमें भगवती उमा उनसे सटकर बैठी हुई हैं, सनक-सनन्दन आदि भक्तजन जिनकी पूजा कर रहे हैं तथा जो भक्तोंके दुःखरूपी दावानलको नष्ट कर देनेवाले अप्रमेय-शक्तिशाली ईश्वर हैं, उन विश्वविभूषण भगवान् शिवका चिन्तन करना चाहिये। भगवान् महेश्वरका प्रतिदिन इस प्रकार ध्यान करे—उनकी अङ्ग-कान्ति चाँदीके पर्वतकी भाँति गौर है। वे अपने मस्तकपर मनोहर चन्द्रमाका मुकुट धारण करते हैं। रत्नोंके आभूषण धारण करनेसे उनका श्रीअङ्ग और भी उद्भासित हो उठा है। उनके चार हाथोंमें क्रमशः परशु, मृगमुद्रा, वर एवं अभयमुद्रा सुशोभित हैं। वे सदा प्रसन्न रहते हैं। कमलके आसनपर बैठे हैं और देवतालोग चारों ओर खड़े होकर उनकी स्तुति कर रहे हैं। उन्होंने वस्त्रकी जगह व्याघ्रचर्म धारण कर रखा है। वे इस विश्वके आदि हैं, बीज (कारण) रूप हैं। तथा सबका समस्त भय हर लेनेवाले हैं। उनके पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुखमण्डलमें तीन-तीन नेत्र हैं।*

---

१. हरो महेश्वरः शम्भुः शूलपाणिः पिनाकधृक्। शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इति क्रमात्॥
मृदाहरणसंघट्टप्रतिष्ठाह्वानमेव च। स्नपनं पूजनं चैव क्षमस्वेति विसर्जनम्॥
ॐकारादिचतुर्थ्यन्तैर्नमोऽन्तैर्नामभिः क्रमात्। कर्तव्याश्च क्रियाः सर्वा भक्त्या परमया मुदा॥
(शि० पु० वि० २०।४७—४९)

* अङ्गन्यास और करन्यासका प्रयोग इस प्रकार समझना चाहिये। ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः १। ॐ नं तर्जनीभ्यां नमः २। ॐ मं मध्यमाभ्यां नमः ३। ॐ शिं अनामिकाभ्यां नमः ४। ॐ वां कनिष्ठिकाभ्यां नमः ५। ॐ यं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ६। इति करन्यासः। ॐ ॐ हृदयाय नमः १। ॐ नं शिरसे स्वाहा २।

इस प्रकार ध्यान तथा उत्तम पार्थिवलिङ्गका पूजन करके गुरुके दिये हुए पञ्चाक्षर-मन्त्रका विधिपूर्वक जप करे। विप्रवरो ! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह देवेश्वर शिवको प्रणाम करके नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा उनका स्तवन करे तथा शतरुद्रिय (यजु॰ १६ वें अध्यायके मन्त्रों)का पाठ करे। तत्पश्चात् अञ्जलिमें अक्षत और फूल लेकर उत्तम भक्तिभावसे निम्नाङ्कित मन्त्रोंको पढ़ते हुए प्रेम और प्रसन्नताके साथ भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

'सबको सुख देनेवाले कृपानिधान भूतनाथ शिव ! मैं आपका हूँ। आपके गुणोंमें ही मेरे प्राण बसते हैं अथवा आपके गुण ही मेरे प्राण—मेरे जीवनसर्वस्व हैं। मेरा चित्त सदा आपके ही चिन्तनमें लगा हुआ है। यह जानकर मुझपर प्रसन्न होइये। कृपा कीजिये। शंकर ! मैंने अनजानमें अथवा जानबूझकर यदि कभी आपका जप और पूजन आदि किया हो तो आपकी कृपासे वह सफल हो जाय। गौरीनाथ ! मैं आधुनिक युगका महान् पापी हूँ, पतित हूँ और आप सदासे ही परम महान् पतितपावन हैं। इस बातका विचार करके आप जैसा चाहें, वैसा करें। महादेव ! सदाशिव ! वेदों, पुराणों, नाना प्रकारके शास्त्रीय सिद्धान्तों और विभिन्न महर्षियोंने भी अबतक आपको पूर्णरूपसे नहीं जाना है। फिर मैं कैसे जान सकता हूँ ? महेश्वर ! मैं जैसा हूँ, वैसा ही, उसी रूपमें सम्पूर्ण भावसे आपका हूँ, आपके आश्रित हूँ, इसलिये आपसे रक्षा पानेके योग्य हूँ। परमेश्वर ! आप मुझपर प्रसन्न होइये।'* मुने ! इस

ॐ मं शिखायै वषट् ३। ॐ शिं कवचाय हुम् ४। ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट् ५। ॐ यं अस्त्राय फट् ६। इति हृदयादिषडङ्गन्यासः। यहाँ करन्यास और हृदयादिषडङ्गन्यासके छः-छः वाक्य दिये गये हैं। इनमें करन्यासके प्रथम वाक्यको पढ़कर दोनों तर्जनी अंगुलियोंसे अंगुष्ठोंका स्पर्श करना चाहिये। शेष वाक्योंको पढ़कर अङ्गुष्ठोंसे तर्जनी आदि अंगुलियोंका स्पर्श करना चाहिये। इसी प्रकार अङ्गन्यासमें भी दाहिने हाथसे हृदयादि अङ्गोंका स्पर्श करनेकी विधि है। केवल कवचन्यासमें दाहिने हाथसे बायीं भुजा और बायें हाथसे दायीं भुजाका स्पर्श करना चाहिये। 'अस्त्राय फट्' इस अन्तिम वाक्यको पढ़ते हुए दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे ले आकर बायीं हथेलीपर ताली बजानी चाहिये। ध्यानसम्बन्धी श्लोक, जिनके भाव ऊपर दिये गये हैं, इस प्रकार हैं—

कैलासपीठासनमध्यसंस्थं भक्तैः सनन्दादिभिरर्च्यमानम्। भक्तार्तिदावानलमप्रमेयं ध्यायेदुमालिङ्गितविश्वभूषणम्॥
ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

(शि॰ पु॰ वि॰ २०। ५१-५२)

* तावकस्त्वद्गुणप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड। कृपानिधे इति ज्ञात्वा भूतनाथ प्रसीद मे॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया। कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकर॥
अहं पापी महानद्य पावनश्च भवान्महान्। इति विज्ञाय गौरीश यदिच्छसि तथा कुरु॥
वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैर्ऋषिभिर्विविधैरपि। न ज्ञातोऽसि महादेव कुतोऽहं त्वां सदाशिव॥
यथा तथा त्वदीयोऽस्मि सर्वभावैर्महेश्वर। रक्षणीयस्त्वयाहं वै प्रसीद परमेश्वर॥

(शि॰ पु॰ वि॰ २०। ५६—६०)

प्रकार प्रार्थना करके हाथमें लिये हुए अक्षत और पुष्पको भगवान् शिवके ऊपर चढ़ाकर उन शम्भुदेवको भक्तिभावसे विधिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम करे। तदनन्तर शुद्ध बुद्धिवाला उपासक शास्त्रोक्त विधिसे इष्टदेवकी परिक्रमा करे। फिर श्रद्धापूर्वक स्तुतियोंद्वारा देवेश्वर शिवकी स्तुति करे। इसके बाद गला बजाकर (गलेसे अव्यक्त शब्दका उच्चारण करके) पवित्र एवं विनीत चित्तवाला साधक भगवान्‌को प्रणाम करे। फिर आदरपूर्वक विज्ञप्ति करे और उसके बाद विसर्जन। मुनिवरो! इस प्रकार विधिपूर्वक पार्थिवपूजा बतायी गयी। वह भोग और मोक्ष देनेवाली तथा भगवान् शिवके प्रति भक्तिभावको बढ़ानेवाली है।

(अध्याय १९-२०)

☆

पार्थिवपूजाकी महिमा, शिवनैवेद्यभक्षणके विषयमें निर्णय तथा बिल्वका माहात्म्य

(तदनन्तर ऋषियोंके पूछनेपर किस कामनाकी पूर्तिके लिये कितने पार्थिवलिङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये, इस विषयका वर्णन करके)

सूतजी बोले—महर्षियो! पार्थिव-लिङ्गोंकी पूजा कोटि-कोटि यज्ञोंका फल देनेवाली है। कलियुगमें लोगोंके लिये शिवलिङ्ग-पूजन जैसा श्रेष्ठ दिखायी देता है वैसा दूसरा कोई साधन नहीं है—यह समस्त शास्त्रोंका निश्चित सिद्धान्त है। शिवलिङ्ग भोग और मोक्ष देनेवाला है। लिङ्ग तीन प्रकारके कहे गये हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। जो चार अंगुल ऊँचा और देखनेमें सुन्दर हो तथा वेदीसे युक्त हो, उस शिवलिङ्गको शास्त्रज्ञ महर्षियोंने 'उत्तम' कहा है। उससे आधा 'मध्यम' और उससे आधा 'अधम' माना गया है। इस तरह तीन प्रकारके शिवलिङ्ग कहे गये हैं, जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा विलोम संकर—कोई भी क्यों न हो, वह अपने अधिकारके अनुसार वैदिक अथवा तान्त्रिक मन्त्रसे सदा आदरपूर्वक शिवलिङ्गकी पूजा करे। ब्राह्मणो! महर्षियो! अधिक कहनेसे क्या लाभ? शिवलिङ्गका पूजन करनेमें स्त्रियोंका तथा अन्य सब लोगोंका भी अधिकार है*। द्विजोंके लिये वैदिक पद्धतिसे ही शिवलिङ्गकी पूजा करना श्रेष्ठ है; परंतु अन्य लोगोंके लिये वैदिक मार्गसे पूजा करनेकी सम्मति नहीं है। वेदज्ञ द्विजोंको वैदिक मार्गसे ही पूजन करना चाहिये, अन्य मार्गसे नहीं—यह भगवान् शिवका कथन है। दधीचि और गौतम आदिके शापसे जिनका चित्त दग्ध हो गया है, उन द्विजोंकी वैदिक कर्ममें श्रद्धा नहीं होती। जो मनुष्य वेदों तथा स्मृतियोंमें कहे हुए सत्कर्मोंकी अवहेलना

---

* ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा प्रतिलोमजः। पूजयेत् सततं लिङ्गं तत्तन्मन्त्रेण सादरम्॥
किं बहूक्तेन मुनयः स्त्रीणामपि तथान्यतः। अधिकारोऽस्ति सर्वेषां शिवलिङ्गार्चने द्विजाः॥

(शि० पु० वि० २१। ३९-४०)

करके दूसरे कर्मको करने लगता है, उसका मनोरथ कभी सफल नहीं होता।*

इस प्रकार विधिपूर्वक भगवान् शंकरका नैवेद्यान्त पूजन करके उनकी त्रिभुवनमयी आठ मूर्तियोंका भी वहीं पूजन करे। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा यजमान—ये भगवान् शंकरकी आठ मूर्तियाँ कही गयी हैं। इन मूर्तियोंके साथ-साथ शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईश्वर, महादेव तथा पशुपति—इन नामोंकी भी अर्चना करे। तदनन्तर चन्दन, अक्षत और बिल्वपत्र लेकर वहाँ ईशान आदिके क्रमसे भगवान् शिवके परिवारका उत्तम भक्तिभावसे पूजन करे। ईशान, नन्दी, चण्ड, महाकाल, भृङ्गी, वृष, स्कन्द, कपर्दीश्वर, सोम तथा शुक्र—ये दस शिवके परिवार हैं, जो क्रमशः ईशान आदि दसों दिशाओंमें पूजनीय हैं। तत्पश्चात् भगवान् शिवके समक्ष वीरभद्रका और पीछे कीर्तिमुखका पूजन करके विधिपूर्वक ग्यारह रुद्रोंकी पूजा करे। इसके बाद पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करके शतरुद्रिय स्तोत्रका, नाना प्रकारकी स्तुतियोंका तथा शिवपञ्चाङ्गका पाठ करे। तत्पश्चात् परिक्रमा और नमस्कार करके शिवलिङ्गका विसर्जन करे। इस प्रकार मैंने शिवपूजनकी सम्पूर्ण विधिका आदरपूर्वक वर्णन किया। रात्रिमें देवकार्यको सदा उत्तराभिमुख होकर ही करना चाहिये। इसी प्रकार शिवपूजन भी पवित्र भावसे सदा उत्तराभिमुख होकर ही करना उचित है। जहाँ शिवलिङ्ग स्थापित हो, उससे पूर्व दिशाका आश्रय लेकर नहीं बैठना या खड़ा होना चाहिये; क्योंकि वह दिशा भगवान् शिवके आगे या सामने पड़ती है (इष्टदेवका सामना रोकना ठीक नहीं)। शिवलिङ्गसे उत्तर दिशामें भी न बैठे; क्योंकि उधर भगवान् शंकरका वामाङ्ग है, जिसमें शक्तिस्वरूपा देवी उमा विराजमान हैं। पूजकको शिवलिङ्गसे पश्चिम दिशामें भी नहीं बैठना चाहिये; क्योंकि वह आराध्यदेवका पृष्ठभाग है (पीछेकी ओरसे पूजा करना उचित नहीं है)। अतः अवशिष्ट दक्षिण दिशा ही ग्राह्य है। उसीका आश्रय लेना चाहिये। तात्पर्य यह कि शिवलिङ्गसे दक्षिण दिशामें उत्तराभिमुख होकर बैठे और पूजा करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह भस्मका त्रिपुण्ड्र लगाकर, रुद्राक्षकी माला लेकर तथा बिल्वपत्रका संग्रह करके ही भगवान् शंकरकी पूजा करे, इनके बिना नहीं। मुनिवरो! शिवपूजन आरम्भ करते समय यदि भस्म न मिले तो मिट्टीसे भी ललाटमें त्रिपुण्ड्र अवश्य कर लेना चाहिये।

ऋषि बोले—मुने! हमने पहलेसे यह बात सुन रखी है कि भगवान् शिवका नैवेद्य नहीं ग्रहण करना चाहिये। इस विषयमें शास्त्रका निर्णय क्या है, यह बताइये। साथ ही बिल्वका माहात्म्य भी प्रकट कीजिये।

सूतजीने कहा—मुनियो! आप शिव-सम्बन्धी व्रतका पालन करनेवाले हैं। अतः आप सबको शतशः धन्यवाद है। मैं प्रसन्नतापूर्वक सब कुछ बताता हूँ, आप सावधान होकर सुनें। जो भगवान् शिवका

* यो वैदिकमनादृत्य कर्म स्मार्तमथापि वा। अन्यत् समाचरेन्मर्त्यो न संकल्पफलं लभेत्॥

(शि० पु० वि० २१।४४)

भक्त है, बाहर-भीतरसे पवित्र और शुद्ध है, उत्तम व्रतका पालन करनेवाला तथा दृढ़ निश्चयसे युक्त है, वह शिव-नैवेद्यका अवश्य भक्षण करे। भगवान् शिवका नैवेद्य अग्राह्य है, इस भावनाको मनसे निकाल दे। शिवके नैवेद्यको देख लेनेमात्रसे भी सारे पाप दूर भाग जाते हैं, उसको खा लेनेपर तो करोड़ों पुण्य अपने भीतर आ जाते हैं। आये हुए शिव-नैवेद्यको सिर झुकाकर प्रसन्नताके साथ ग्रहण करे और प्रयत्न करके शिव-स्मरणपूर्वक उसका भक्षण करे। आये हुए शिव-नैवेद्यको जो यह कहकर कि मैं इसे दूसरे समयमें ग्रहण करूँगा, लेनेमें विलम्ब कर देता है, वह मनुष्य निश्चय ही पापसे बँध जाता है। जिसने शिवकी दीक्षा ली हो, उस शिवभक्तके लिये यह शिव-नैवेद्य अवश्य भक्षणीय है—ऐसा कहा जाता है। शिवकी दीक्षासे युक्त शिवभक्त पुरुषके लिये सभी शिवलिङ्गोंका नैवेद्य शुभ एवं 'महाप्रसाद' है; अतः वह उसका अवश्य भक्षण करे। परंतु जो अन्य देवताओंकी दीक्षासे युक्त हैं और शिवभक्तिमें भी मनको लगाये हुए हैं, उनके लिये शिव-नैवेद्य-भक्षणके विषयमें क्या निर्णय है— इसे आपलोग प्रेमपूर्वक सुनें। ब्राह्मणो! जहाँसे शालग्रामशिलाकी उत्पत्ति होती है, वहाँके उत्पन्न लिङ्गमें, रस-लिङ्ग (पारदलिङ्ग) में, पाषाण, रजत तथा सुवर्णसे निर्मित लिङ्गमें, देवताओं तथा सिद्धोंद्वारा प्रतिष्ठित लिङ्गमें, केसर-निर्मित लिङ्गमें, स्फटिकलिङ्गमें, रत्ननिर्मित लिङ्गमें तथा समस्त ज्योतिर्लिङ्गोंमें विराजमान भगवान् शिवके नैवेद्यका भक्षण चान्द्रायण-व्रतके समान पुण्यजनक है। ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष भी यदि पवित्र होकर शिव-निर्माल्यका भक्षण करके उसे (सिरपर) धारण करे तो उसका सारा पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। पर जहाँ चण्डका अधिकार है, वहाँ जो शिव-निर्माल्य हो, उसे साधारण मनुष्योंको नहीं खाना चाहिये। जहाँ चण्डका अधिकार नहीं है, वहाँके शिव-निर्माल्यका सभीको भक्तिपूर्वक भोजन करना चाहिये। बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर), लोह-निर्मित (स्वर्णादि-धातुमय) लिङ्ग, सिद्धलिङ्ग (जिन लिङ्गोंकी उपासनासे किसीने सिद्धि प्राप्त की है अथवा जो सिद्धोंद्वारा स्थापित हैं वे लिङ्ग), स्वयम्भूलिङ्ग—इन सब लिङ्गोंमें तथा शिवकी प्रतिमाओं (मूर्तियों)में चण्डका अधिकार नहीं है। जो मनुष्य शिवलिङ्गको विधिपूर्वक स्नान कराकर उस स्नानके जलका तीन बार आचमन करता है, उसके कायिक, वाचिक और मानसिक—तीनों प्रकारके पाप यहाँ शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। जो शिव-नैवेद्य, पत्र, पुष्प, फल और जल अग्राह्य है, वह सब भी शालग्रामशिलाके स्पर्शसे पवित्र—ग्रहणके योग्य हो जाता है। मुनीश्वरो! शिवलिङ्गके ऊपर चढ़ा हुआ जो द्रव्य है, वह अग्राह्य है। जो वस्तु लिङ्गस्पर्शसे रहित है अर्थात् जिस वस्तुको अलग रखकर शिवजीको निवेदित किया जाता है—लिङ्गके ऊपर चढ़ाया नहीं जाता, उसे अत्यन्त पवित्र जानना चाहिये। मुनिवरो! इस प्रकार नैवेद्यके विषयमें शास्त्रका निर्णय बताया गया।

अब तुमलोग सावधान हो आदरपूर्वक बिल्वका माहात्म्य सुनो। यह बिल्व-वृक्ष महादेवका ही रूप है। देवताओंने भी इसकी

स्तुति की है। फिर जिस किसी तरहसे इसकी महिमा कैसे जानी जा सकती है। तीनों लोकोंमें जितने पुण्य-तीर्थ प्रसिद्ध हैं, वे सम्पूर्ण तीर्थ बिल्वके मूलभागमें निवास करते हैं। जो पुण्यात्मा मनुष्य बिल्वके मूलमें लिङ्गस्वरूप अविनाशी महादेवजीका पूजन करता है, वह निश्चय ही शिवपदको प्राप्त होता है। जो बिल्वकी जड़के पास जलसे अपने मस्तकको सींचता है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल पा लेता है और वही इस भूतलपर पावन माना जाता है। इस बिल्वकी जड़के परम उत्तम थालेको जलसे भरा हुआ देखकर महादेवजी पूर्णतया संतुष्ट होते हैं। जो मनुष्य गन्ध, पुष्प आदिसे बिल्वके मूलभागका पूजन करता है, वह शिवलोकको पाता है और इस लोकमें भी उसकी सुख-संतति बढ़ती है। जो बिल्वकी जड़के समीप आदरपूर्वक दीपावली जलाकर रखता है, वह तत्त्वज्ञानसे सम्पन्न हो भगवान् महेश्वरमें मिल जाता है। जो बिल्वकी शाखा थामकर हाथसे उसके नये-नये पल्लव उतारता और उनसे उस बिल्वकी पूजा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो बिल्वकी जड़के समीप भगवान् शिवमें अनुराग रखनेवाले एक भक्तको भी भक्तिपूर्वक भोजन कराता है, उसे कोटिगुना पुण्य प्राप्त होता है। जो बिल्वकी जड़के पास शिवभक्तको खीर और घृतसे युक्त अन्न देता है, वह कभी दरिद्र नहीं होता। ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने साङ्गोपाङ्ग शिवलिङ्ग-पूजनका वर्णन किया। यह प्रवृत्तिमार्गी तथा निवृत्तिमार्गी पूजकोंके भेदसे दो प्रकारका होता है। प्रवृत्तिमार्गी लोगोंके लिये पीठ-पूजा इस भूतलपर सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली होती है। प्रवृत्त पुरुष सुपात्र गुरु आदिके द्वारा ही सारी पूजा सम्पन्न करे और अभिषेकके अन्तमें अगहनीके चावलसे बना हुआ नैवेद्य निवेदन करे। पूजाके अन्तमें शिवलिङ्गको शुद्ध सम्पुटमें विराजमान करके घरके भीतर कहीं अलग रख दे। निवृत्तिमार्गी उपासकोंके लिये हाथपर ही शिवपूजनका विधान है। उन्हें भिक्षा आदिसे प्राप्त हुए अपने भोजनको ही नैवेद्यरूपमें निवेदित कर देना चाहिये। निवृत्त पुरुषोंके लिये सूक्ष्म लिङ्ग ही श्रेष्ठ बताया जाता है। वे विभूतिसे पूजन करें और विभूतिको ही नैवेद्यरूपसे निवेदित भी करें। पूजा करके उस लिङ्गको सदा अपने मस्तकपर धारण करें।

(अध्याय २१-२२)

☆

शिवनाम-जप तथा भस्मधारणकी महिमा, त्रिपुण्ड्रके देवता और स्थान आदिका प्रतिपादन

ऋषि बोले—महाभाग व्यासशिष्य सूतजी! आपको नमस्कार है। अब आप उस परम उत्तम भस्म-माहात्म्यका ही वर्णन कीजिये। भस्म-माहात्म्य, रुद्राक्ष-माहात्म्य तथा उत्तम नाम-माहात्म्य—इन तीनोंका परम प्रसन्नतापूर्वक प्रतिपादन कीजिये और हमारे हृदयको आनन्द दीजिये।

सूतजीने कहा—महर्षियो! आपने बहुत उत्तम बात पूछी है। यह समस्त लोकोंके लिये हितकारक विषय है। जो

लोग भगवान् शिवकी उपासना करते हैं, वे धन्य हैं, कृतार्थ हैं; उनका देहधारण सफल है तथा उनके समस्त कुलका उद्धार हो गया। जिनके मुखमें भगवान् शिवका नाम है, जो अपने मुखसे सदाशिव और शिव इत्यादि नामोंका उच्चारण करते रहते हैं, पाप उनका उसी तरह स्पर्श नहीं करते, जैसे खदिर-वृक्षके अङ्गारको छूनेका साहस कोई भी प्राणी नहीं कर सकते। 'हे श्रीशिव! आपको नमस्कार है' (श्रीशिवाय नमस्तुभ्यम्) ऐसी बात जब मुँहसे निकलती है, तब वह मुख समस्त पापोंका विनाश करनेवाला पावन तीर्थ बन जाता है। जो मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक उस मुखका दर्शन करता है, उसे निश्चय ही तीर्थसेवनजनित फल प्राप्त होता है। ब्राह्मणो! शिवका नाम, विभूति (भस्म) तथा रुद्राक्ष—ये तीनों त्रिवेणीके समान परम पुण्यमय माने गये हैं। जहाँ ये तीनों शुभतर वस्तुएँ सर्वदा रहती हैं, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य त्रिवेणी-स्नानका फल पा लेता है। भगवान् शिवका नाम 'गङ्गा' है, विभूति 'यमुना' मानी गयी है तथा रुद्राक्षको सरस्वती कहा गया है। इन तीनोंकी संयुक्त त्रिवेणी समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! इन तीनोंकी महिमाको सदसद्विलक्षण भगवान् महेश्वरके बिना दूसरा कौन भलीभाँति जानता है। इस ब्रह्माण्डमें जो कुछ है, वह सब तो केवल महेश्वर ही जानते हैं।

विप्रगण! मैं अपनी श्रद्धा-भक्तिके अनुसार संक्षेपसे भगवन्नामोंकी महिमाका कुछ वर्णन करता हूँ। तुम सब लोग प्रेमपूर्वक सुनो। यह नाम-माहात्म्य समस्त पापोंको हर लेनेवाला सर्वोत्तम साधन है। 'शिव' इस नामरूपी दावानलसे महान् पातकरूपी पर्वत अनायास ही भस्म हो जाता है—यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है। शौनक! पापमूलक जो नाना प्रकारके दुःख हैं, वे एकमात्र शिवनाम (भगवन्नाम) से ही नष्ट होनेवाले हैं। दूसरे साधनोंसे सम्पूर्ण यत्न करनेपर भी पूर्णतया नष्ट नहीं होते हैं। जो मनुष्य इस भूतलपर सदा भगवान् शिवके नामोंके जपमें ही लगा हुआ है, वह वेदोंका ज्ञाता है, वह पुण्यात्मा है, वह धन्यवादका पात्र है तथा वह विद्वान् माना गया है। मुने! जिनका शिवनाम-जपमें विश्वास है, उनके द्वारा आचरित नाना प्रकारके धर्म तत्काल फल देनेके लिये उत्सुक हो जाते हैं। महर्षे! भगवान् शिवके नामसे जितने पाप नष्ट होते हैं, उतने पाप मनुष्य इस भूतलपर कर नहीं सकते।* जो शिवनामरूपी नौकापर आरूढ़ हो संसार-रूपी समुद्रको पार करते हैं, उनके जन्म-मरणरूप संसारके मूलभूत वे सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। महामुने! संसारके मूलभूत पातकरूपी पादपोंका शिवनामरूपी कुठारसे निश्चय ही नाश हो जाता है। जो पापरूपी दावानलसे पीड़ित हैं, उन्हें शिव-नामरूपी अमृतका पान करना चाहिये। पापोंके दावानलसे दग्ध होनेवाले

* भवन्ति विविधा धर्मास्तेषां सद्यः फलोन्मुखाः। येषां भवति विश्वासः शिवनामजपे मुने॥
पातकानि विनश्यन्ति यावन्ति शिवनामतः। भुवि तावन्ति पापानि क्रियन्ते न नरैर्मुने॥
(शि० पु० वि० २३। २८-२९)

लोगोंको उस शिव-नामामृतके बिना शान्ति नहीं मिल सकती। जो शिवनामरूपी सुधाकी वृष्टिजनित धारामें गोते लगा रहे हैं, वे संसाररूपी दावानलके बीचमें खड़े होनेपर भी कदापि शोकके भागी नहीं होते। जिन महात्माओंके मनमें शिवनामके प्रति बड़ी भारी भक्ति है, ऐसे लोगोंकी सहसा और सर्वथा मुक्ति होती है।* मुनीश्वर! जिसने अनेक जन्मोंतक तपस्या की है, उसीकी शिवनामके प्रति भक्ति होती है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है।

जिसके मनमें भगवान् शिवके नामके प्रति कभी खण्डित न होनेवाली असाधारण भक्ति प्रकट हुई है, उसीके लिये मोक्ष सुलभ है—यह मेरा मत है। जो अनेक पाप करके भी भगवान् शिवके नाम-जपमें आदरपूर्वक लग गया है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो ही जाता है—इसमें संशय नहीं है। जैसे वनमें दावानलसे दग्ध हुए वृक्ष भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार शिवनामरूपी दावानलसे दग्ध होकर उस समयतकके सारे पाप भस्म हो जाते हैं। शौनक! जिसके अङ्ग नित्य भस्म लगानेसे पवित्र हो गये हैं तथा जो शिवनाम-जपका आदर करने लगा है, वह घोर संसार-सागरको भी पार कर ही लेता है। सम्पूर्ण वेदोंका अवलोकन करके पूर्ववर्ती महर्षियोंने यही निश्चित किया है कि भगवान् शिवके नामका जप संसार-सागरको पार करनेके लिये सर्वोत्तम उपाय है। मुनिवरो! अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं शिव-नामके सर्वपापापहारी माहात्म्यका एक ही श्लोकमें वर्णन करता हूँ। भगवान् शंकरके एक नाममें भी पापहरणकी जितनी शक्ति है, उतना पातक मनुष्य कभी कर ही नहीं सकता।† मुने! पूर्वकालमें महापापी राजा इन्द्रद्युम्नने शिवनामके प्रभावसे ही उत्तम सद्गति प्राप्त की थी। इसी तरह कोई ब्राह्मणी युवती भी जो बहुत पाप कर चुकी थी, शिवनामके प्रभावसे ही उत्तम गतिको प्राप्त हुई। द्विजवरो! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवन्नामके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया है। अब तुम भस्मका माहात्म्य सुनो, जो समस्त पावन वस्तुओंको भी पावन करनेवाला है।

महर्षियो! भस्म सम्पूर्ण मङ्गलोंको देनेवाला तथा उत्तम है; उसके दो भेद बताये गये हैं, उन भेदोंका मैं वर्णन करता हूँ, सावधान होकर सुनो। एकको 'महाभस्म' जानना चाहिये और दूसरेको 'स्वल्पभस्म'। महाभस्मके भी अनेक भेद हैं। वह तीन

---

* शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ते। संसारमूलपापानि तानि नश्यन्त्यसंशयम्॥
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने। शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम्॥
शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः। पापदावाग्निदग्धानां शान्तिस्तेन विना न हि॥
शिवेति नामपीयूषवर्षधारापरिप्लुताः। संसारदवमध्येऽपि न शोचन्ति कदाचन॥
शिवनाम्नि महद्भक्तिर्जाता येषां महात्मनाम्। तद्विधानां तु सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा॥
(शि॰ पु॰ वि॰ २३। २९—३३)

† पापानां हरणे शम्भोर्नाम्नः शक्तिर्हि यावती। शक्नोति पातकं तावत् कर्तुं नापि नरः क्वचित्॥
(शि॰ पु॰ वि॰ २३। ४२)

प्रकारका कहा गया है—श्रौत, स्मार्त और लौकिक। स्वल्पभस्मके भी बहुत-से भेदोंका वर्णन किया गया है। श्रौत और स्मार्त भस्मको केवल द्विजोंके ही उपयोगमें आनेके योग्य कहा गया है। तीसरा जो लौकिक भस्म है, वह अन्य सब लोगोंके भी उपयोगमें आ सकता है। श्रेष्ठ महर्षियोंने यह बताया है कि द्विजोंको वैदिक मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भस्म धारण करना चाहिये। दूसरे लोगोंके लिये बिना मन्त्रके ही केवल धारण करनेका विधान है। जले हुए गोबरसे प्रकट होनेवाला भस्म आग्नेय कहलाता है। महामुने! वह भी त्रिपुण्ड्रका द्रव्य है, ऐसा कहा गया है। अग्निहोत्रसे उत्पन्न हुए भस्मका भी मनीषी पुरुषोंको संग्रह करना चाहिये। अन्य यज्ञसे प्रकट हुआ भस्म भी त्रिपुण्ड्र धारणके काममें आ सकता है। जाबालोपनिषद्में आये हुए 'अग्निः' इत्यादि सात मन्त्रोंद्वारा जलमिश्रित भस्मसे धूलन (विभिन्न अंगोंमें मर्दन या लेपन) करना चाहिये। महर्षि जाबालिने सभी वर्णों और आश्रमोंके लिये मन्त्रसे या बिना मन्त्रके भी आदरपूर्वक भस्मसे त्रिपुण्ड्र लगानेकी आवश्यकता बतायी है। समस्त अङ्गोंमें सजल भस्मको मलना अथवा विभिन्न अङ्गोंमें तिरछा त्रिपुण्ड्र लगाना—इन कार्योंको मोक्षार्थी पुरुष प्रमादसे भी न छोड़े, ऐसा श्रुतिका आदेश है। भगवान् शिव और विष्णुने भी तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण किया है। अन्य देवियोंसहित भगवती उमा और लक्ष्मी देवीने भी वाणीद्वारा इसकी प्रशंसा की है। ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों, वर्णसंकरों तथा जातिभ्रष्ट पुरुषोंने भी उद्धूलन एवं त्रिपुण्ड्रके रूपमें भस्म धारण किया है।

इसके पश्चात् भस्म-धारण तथा त्रिपुण्ड्रकी महिमा एवं विधि बताकर सूतजीने फिर कहा—महर्षियो! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे त्रिपुण्ड्रका माहात्म्य बताया है। यह समस्त प्राणियोंके लिये गोपनीय रहस्य है। अतः तुम्हें भी इसे गुप्त ही रखना चाहिये। मुनिवरो! ललाट आदि सभी निर्दिष्ट स्थानोंमें जो भस्मसे तीन तिरछी रेखाएँ बनायी जाती हैं, उन्हींको विद्वानोंने त्रिपुण्ड्र कहा है। भौंहोंके मध्य भागसे लेकर जहाँतक भौंहोंका अन्त है, उतना बड़ा त्रिपुण्ड्र ललाटमें धारण करना चाहिये। मध्यमा और अनामिका अंगुलीसे दो रेखाएँ करके बीचमें अङ्गुष्ठद्वारा प्रतिलोमभावसे की गयी रेखा त्रिपुण्ड्र कहलाती है अथवा बीचकी तीन अंगुलियोंसे भस्म लेकर यत्नपूर्वक भक्तिभावसे ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करे। त्रिपुण्ड्र अत्यन्त उत्तम तथा भोग और मोक्षको देनेवाला है। त्रिपुण्ड्रकी तीनों रेखाओंमेंसे प्रत्येकके नौ-नौ देवता हैं, जो सभी अङ्गोंमें स्थित हैं; मैं उनका परिचय देता हूँ। सावधान होकर सुनो। मुनिवरो! प्रणवका प्रथम अक्षर अकार, गार्हपत्य अग्नि, पृथ्वी, धर्म, रजोगुण, ऋग्वेद, क्रियाशक्ति, प्रातःसवन तथा महादेव—ये त्रिपुण्ड्रकी प्रथम रेखाके नौ देवता हैं, यह बात शिव-दीक्षापरायण पुरुषोंको अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये। प्रणवका दूसरा अक्षर उकार, दक्षिणाग्नि, आकाश, सत्त्वगुण, यजुर्वेद, मध्यंदिनसवन, इच्छाशक्ति, अन्तरात्मा तथा महेश्वर—ये दूसरी रेखाके नौ देवता हैं। प्रणवका तीसरा अक्षर मकार, आहवनीय अग्नि, परमात्मा, तमोगुण, द्युलोक, ज्ञानशक्ति, सामवेद,

तृतीयसवन तथा शिव—ये तीसरी रेखाके नौ देवता हैं। इस प्रकार स्थान-देवताओंको उत्तम भक्तिभावसे नित्य नमस्कार करके स्नान आदिसे शुद्ध हुआ पुरुष यदि त्रिपुण्ड्र धारण करे तो भोग और मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है। मुनीश्वर ! ये सम्पूर्ण अङ्गोंमें स्थान-देवता बताये गये हैं; अब उनके सम्बन्धी स्थान बताता हूँ, भक्तिपूर्वक सुनो। बत्तीस, सोलह, आठ अथवा पाँच स्थानोंमें त्रिपुण्ड्रका न्यास करे। मस्तक, ललाट, दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नासिका, मुख, कण्ठ, दोनों हाथों, दोनों कोहनी, दोनों कलाई, हृदय, दोनों पार्श्वभाग, नाभि, दोनों अण्डकोष, दोनों ऊरु, दोनों गुल्फ, दोनों घुटने, दोनों पिंडली और दोनों पैर—ये बत्तीस उत्तम स्थान हैं, इनमें क्रमशः अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, दस दिक्प्रदेश, दस दिक्पाल तथा आठ वसुओंका निवास है। धर, ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। इन सबका नाममात्र लेकर इनके स्थानोंमें विद्वान् पुरुष त्रिपुण्ड्र धारण करे।

अथवा एकाग्रचित्त हो सोलह स्थानमें ही त्रिपुण्ड्र धारण करे। मस्तक, ललाट, कण्ठ, दोनों कंधों, दोनों भुजाओं, दोनों कोहनियों तथा दोनों कलाइयोंमें, हृदयमें, नाभिमें, दोनों पसलियोंमें तथा पृष्ठभागमें त्रिपुण्ड्र लगाकर वहाँ दोनों अश्विनी-कुमारोंका शिव, शक्ति, रुद्र, ईश तथा नारदका और वामा आदि नौ शक्तियोंका पूजन करे। ये सब मिलकर सोलह देवता हैं। अश्विनीकुमार दो कहे गये हैं। नासत्य और दस्र अथवा मस्तक, केश, दोनों कान, मुख, दोनों भुजा, हृदय, नाभि, दोनों ऊरु, दोनों जानु, दोनों पैर और पृष्ठभाग— इन सोलह स्थानोंमें सोलह त्रिपुण्ड्रका न्यास करे। मस्तकमें शिव, केशमें चन्द्रमा, दोनों कानोंमें रुद्र और ब्रह्मा, मुखमें विघ्नराज गणेश, दोनों भुजाओंमें विष्णु और लक्ष्मी, हृदयमें शम्भु, नाभिमें प्रजापति, दोनों ऊरुओंमें नाग और नागकन्याएँ, दोनों घुटनोंमें ऋषिकन्याएँ, दोनों पैरोंमें समुद्र तथा विशाल पृष्ठभागमें सम्पूर्ण तीर्थ देवतारूपसे विराजमान हैं। इस प्रकार सोलह स्थानोंका परिचय दिया गया। अब आठ स्थान बताये जाते हैं। गुह्य स्थान, ललाट, परम उत्तम कर्णयुगल, दोनों कंधे, हृदय और नाभि—ये आठ स्थान हैं। इनमें ब्रह्मा तथा सप्तर्षि—ये आठ देवता बताये गये हैं। मुनीश्वरो ! भस्मके स्थानको जाननेवाले विद्वानोंने इस तरह आठ स्थानोंका परिचय दिया है अथवा मस्तक, दोनों भुजाएँ, हृदय और नाभि—इन पाँच स्थानोंको भस्मवेत्ता पुरुषोंने भस्म धारणके योग्य बताया है। यथासम्भव देश, काल आदिकी अपेक्षा रखते हुए उद्धूलन (भस्म) को अभिमन्त्रित करना और जलमें मिलाना आदि कार्य करे। यदि उद्धूलनमें भी असमर्थ हो तो त्रिपुण्ड्र आदि लगाये। त्रिनेत्रधारी, तीनों गुणोंके आधार तथा तीनों देवताओंके जनक भगवान् शिवका स्मरण करते हुए 'नमः शिवाय' कहकर ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाये। 'ईशाभ्यां नमः' ऐसा कहकर दोनों पार्श्वभागोंमें त्रिपुण्ड्र धारण करे। 'बीजाभ्यां नमः' यह बोलकर दोनों कलाइयोंमें भस्म लगावे। 'पितृभ्यां नमः' कहकर नीचेके अङ्गमें, 'उमेशाभ्यां नमः' कहकर ऊपरके अङ्गमें तथा 'भीमाय नमः' कहकर पीठमें और सिरके पिछले भागमें त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये।

(अध्याय २३-२४)

रुद्राक्षधारणकी महिमा तथा उसके विविध भेदोंका वर्णन

सूतजी कहते हैं—महाप्राज्ञ ! महामते ! शिवरूप शौनक ! अब मैं संक्षेपसे रुद्राक्षका माहात्म्य बता रहा हूँ, सुनो। रुद्राक्ष शिवको बहुत ही प्रिय है। इसे परम पावन समझना चाहिये। रुद्राक्षके दर्शनसे, स्पर्शसे तथा उसपर जप करनेसे वह समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला माना गया है। मुने ! पूर्वकालमें परमात्मा शिवने समस्त लोकोंका उपकार करनेके लिये देवी पार्वतीके सामने रुद्राक्षकी महिमाका वर्णन किया था।

भगवान् शिव बोले—महेश्वरि शिवे ! मैं तुम्हारे प्रेमवश भक्तोंके हितकी कामनासे रुद्राक्षकी महिमाका वर्णन करता हूँ, सुनो। महेशानि ! पूर्वकालकी बात है, मैं मनको संयममें रखकर हजारों दिव्य वर्षोंतक घोर तपस्यामें लगा रहा। एक दिन सहसा मेरा मन क्षुब्ध हो उठा। परमेश्वरि ! मैं सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेवाला स्वतन्त्र परमेश्वर हूँ। अतः उस समय मैंने लीलावश ही अपने दोनों नेत्र खोले, खोलते ही मेरे मनोहर नेत्रपुटोंसे कुछ जलकी बूँदें गिरीं। आँसूकी उन बूँदोंसे वहाँ रुद्राक्ष नामक वृक्ष पैदा हो गया। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये वे अश्रुबिन्दु स्थावरभावको प्राप्त हो गये। वे रुद्राक्ष मैंने विष्णुभक्तको तथा चारों वर्णोंके लोगोंको बाँट दिये। भूतलपर अपने प्रिय रुद्राक्षोंको मैंने गौड़ देशमें उत्पन्न किया। मथुरा, अयोध्या, लङ्का, मलयाचल, सह्यगिरि, काशी तथा अन्य देशोंमें भी उनके अङ्कुर उगाये। वे उत्तम रुद्राक्ष असह्य पापसमूहोंका भेदन करनेवाले तथा श्रुतियोंके भी प्रेरक हैं। मेरी आज्ञासे वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातिके भेदसे इस भूतलपर प्रकट हुए। रुद्राक्षोंकी ही जातिके शुभाक्ष भी हैं। उन ब्राह्मणादि जातिवाले रुद्राक्षोंके वर्ण श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण जानने चाहिये। मनुष्योंको चाहिये कि वे क्रमशः वर्णके अनुसार अपनी जातिका ही रुद्राक्ष धारण करें। भोग और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले चारों वर्णोंके लोगों और विशेषतः शिवभक्तोंको शिव-पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये रुद्राक्षके फलोंको अवश्य धारण करना चाहिये। आँवलेके फलके बराबर जो रुद्राक्ष हो, वह श्रेष्ठ बताया गया है। जो बेरके फलके बराबर हो, उसे मध्यम श्रेणीका कहा गया है और जो चनेके बराबर हो, उसकी गणना निम्नकोटिमें की गयी है। अब इसकी उत्तमताको परखनेकी यह दूसरी उत्तम प्रक्रिया बतायी जाती है। इसे बतानेका उद्देश्य है भक्तोंकी हितकामना। पार्वती ! तुम भलीभाँति प्रेमपूर्वक इस विषयको सुनो।

महेश्वरि ! जो रुद्राक्ष बेरके फलके बराबर होता है, वह उतना छोटा होनेपर भी लोकमें उत्तम फल देनेवाला तथा सुख-सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला होता है। जो रुद्राक्ष आँवलेके फलके बराबर होता है, वह समस्त अरिष्टोंका विनाश करनेवाला होता है तथा जो गुञ्जाफलके समान बहुत छोटा होता है, वह सम्पूर्ण मनोरथों और फलोंकी सिद्धि करनेवाला है। रुद्राक्ष जैसे-जैसे छोटा होता है, वैसे-ही-वैसे अधिक फल देनेवाला होता है। एक-एक बड़े रुद्राक्षसे एक-एक

छोटे रुद्राक्षको विद्वानोंने दसगुना अधिक फल देनेवाला बताया है। पापोंका नाश करनेके लिये रुद्राक्ष-धारण आवश्यक बताया गया है। वह निश्चय ही सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथोंका साधक है। अतः अवश्य ही उसे धारण करना चाहिये। परमेश्वरि! लोकमें मङ्गलमय रुद्राक्ष जैसा फल देनेवाला देखा जाता है, वैसी फलदायिनी दूसरी कोई माला नहीं दिखायी देती। देवि! समान आकार-प्रकारवाले, चिकने, मजबूत, स्थूल, कण्टकयुक्त (उभरे हुए छोटे-छोटे दानोंवाले) और सुन्दर रुद्राक्ष अभिलषित पदार्थोंके दाता तथा सदैव भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। जिसे कीड़ोंने दूषित कर दिया हो, जो टूटा-फूटा हो, जिसमें उभरे हुए दाने न हों, जो व्रणयुक्त हो तथा जो पूरा-पूरा गोल न हो, इन पाँच प्रकारके रुद्राक्षोंको त्याग देना चाहिये। जिस रुद्राक्षमें अपने-आप ही डोरा पिरोनेके योग्य छिद्र हो गया हो, वही यहाँ उत्तम माना गया है। जिसमें मनुष्यके प्रयत्नसे छेद किया गया हो, वह मध्यम श्रेणीका होता है। रुद्राक्ष-धारण बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। इस जगत्‌में ग्यारह सौ रुद्राक्ष धारण करके मनुष्य जिस फलको पाता है उसका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। भक्तिमान् पुरुष साढ़े पाँच सौ रुद्राक्षके दानोंका सुन्दर मुकुट बना ले और उसे सिरपर धारण करे। तीन सौ साठ दानोंको लंबे सूत्रमें पिरोकर एक हार बना ले। वैसे-वैसे तीन हार बनाकर भक्तिपरायण पुरुष उनका यज्ञोपवीत तैयार करे और उसे यथास्थान धारण किये रहे।

इसके बाद किस अङ्गमें कितने रुद्राक्ष धारण करने चाहिये, यह बताकर सूतजी बोले—महर्षियो! सिरपर ईशान-मन्त्रसे, कानमें तत्पुरुष-मन्त्रसे तथा गले और हृदयमें अघोर-मन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। विद्वान् पुरुष दोनों हाथोंमें अघोर-बीजमन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करे। उदरपर वामदेव-मन्त्रसे पंद्रह रुद्राक्षोंद्वारा गूँथी हुई माला धारण करे अथवा अङ्गोंसहित प्रणवका पाँच बार जप करके रुद्राक्षकी तीन, पाँच या सात मालाएँ धारण करे अथवा मूलमन्त्र ('नमः शिवाय') से ही समस्त रुद्राक्षोंको धारण करे। रुद्राक्षधारी पुरुष अपने खान-पानमें मदिरा, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन, लिसोड़ा आदिको त्याग दे। गिरिराज-नन्दिनी उमे! श्वेत रुद्राक्ष केवल ब्राह्मणोंको ही धारण करना चाहिये। गहरे लाल रंगका रुद्राक्ष क्षत्रियोंके लिये हितकर बताया गया है। वैश्योंके लिये प्रतिदिन बारंबार पीले रुद्राक्षको धारण करना आवश्यक है और शूद्रोंको काले रंगका रुद्राक्ष धारण करना चाहिये—यह वेदोक्त मार्ग है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, गृहस्थ और संन्यासी—सबको नियमपूर्वक रुद्राक्ष धारण करना उचित है। इसे धारण करनेका सौभाग्य बड़े पुण्यसे प्राप्त होता है। उमे! पहले आँवलेके बराबर और फिर उससे भी छोटे रुद्राक्ष धारण करे। जो रोगी हों, जिनमें दाने न हों, जिन्हें कीड़ोंने खा लिया हो, जिनमें पिरोनेयोग्य छेद न हों, ऐसे रुद्राक्ष मङ्गलाकाङ्क्षी पुरुषोंको नहीं धारण करने चाहिये। रुद्राक्ष मेरा मङ्गलमय लिङ्ग-विग्रह है। वह अन्ततोगत्वा चनेके बराबर लघुतर होता है। सूक्ष्म रुद्राक्षको ही सदा प्रशस्त माना गया है। सभी आश्रमों, समस्त वर्णों, स्त्रियों और शूद्रोंको भी

भगवान् शिवकी आज्ञाके अनुसार सदैव रुद्राक्ष धारण करना चाहिये।* यतियोंके लिये प्रणवके उच्चारणपूर्वक रुद्राक्ष-धारणका विधान है। जिसके ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगा हो और सभी अङ्ग रुद्राक्षसे विभूषित हों तथा जो मृत्युञ्जय-मन्त्रका जप कर रहा हो, उसका दर्शन करनेसे साक्षात् रुद्रके दर्शनका फल प्राप्त होता है।

पार्वती! रुद्राक्ष अनेक प्रकारके बताये गये हैं। मैं उनके भेदोंका वर्णन करता हूँ। वे भेद भोग और मोक्षरूप फल देनेवाले हैं। तुम उत्तम भक्तिभावसे उनका परिचय सुनो। एक मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् शिवका स्वरूप है। वह भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करता है। जहाँ रुद्राक्षकी पूजा होती है, वहाँसे लक्ष्मी दूर नहीं जाती। उस स्थानके सारे उपद्रव नष्ट हो जाते हैं तथा वहाँ रहनेवाले लोगोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं। दो मुखवाला रुद्राक्ष देवदेवेश्वर कहा गया है। वह सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंको देनेवाला है। तीन मुखवाला रुद्राक्ष सदा साक्षात् साधनका फल देनेवाला है, उसके प्रभावसे सारी विद्याएँ प्रतिष्ठित होती हैं, चार मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्माका रूप है। वह दर्शन और स्पर्शसे शीघ्र ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। पाँच मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् कालाग्निरुद्ररूप है। वह सब कुछ करनेमें समर्थ है। सबको मुक्ति देनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाला है। पञ्चमुख रुद्राक्ष समस्त पापोंको दूर कर देता है। छः मुखोंवाला रुद्राक्ष कार्तिकेयका स्वरूप है। यदि दाहिनी बाँहमें उसे धारण किया जाय तो धारण करनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। महेश्वरि! सात मुखवाला रुद्राक्ष अनङ्गस्वरूप और अनङ्ग नामसे ही प्रसिद्ध है। देवेशि! उसको धारण करनेसे दरिद्र भी ऐश्वर्यशाली हो जाता है। आठ मुखवाला रुद्राक्ष अष्टमूर्ति भैरवरूप है, उसको धारण करनेसे मनुष्य पूर्णायु होता है और मृत्युके पश्चात् शूलधारी शंकर हो जाता है। नौ मुखवाले रुद्राक्षको भैरव तथा कपिल-मुनिका प्रतीक माना गया है अथवा नौ रूप धारण करनेवाली महेश्वरी दुर्गा उसकी अधिष्ठात्री देवी मानी गयी हैं। जो मनुष्य भक्तिपरायण हो अपने बायें हाथमें नवमुख रुद्राक्षको धारण करता है, वह निश्चय ही मेरे समान सर्वेश्वर हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। महेश्वरि! दस मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् भगवान् विष्णुका रूप है। देवेशि! उसको धारण करनेसे मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। परमेश्वरि! ग्यारह मुखवाला जो रुद्राक्ष है, वह रुद्ररूप है। उसको धारण करनेसे मनुष्य सर्वत्र विजयी होता है। बारह मुखवाले रुद्राक्षको केशप्रदेशमें धारण करे। उसके धारण करनेसे मानो मस्तकपर बारहों आदित्य विराजमान हो जाते हैं। तेरह मुखवाला रुद्राक्ष विश्वेदेवोंका स्वरूप है। उसको धारण

* सर्वाश्रमाणां वर्णानां स्त्रीशूद्राणां शिवाज्ञया। धार्याः सदैव रुद्राक्षा × × × × ॥

(शि॰ पु॰ वि॰ २५। ४७)

करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्टोंको पाता तथा सौभाग्य और मङ्गल लाभ करता है। चौदह मुखवाला जो रुद्राक्ष है, वह परम शिवरूप है। उसे भक्तिपूर्वक मस्तकपर धारण करे। इससे समस्त पापोंका नाश हो जाता है।

गिरिराजकुमारी! इस प्रकार मुखोंके भेदसे रुद्राक्षके चौदह भेद बताये गये। अब तुम क्रमशः उन रुद्राक्षोंके धारण करनेके मन्त्रोंको प्रसन्नतापूर्वक सुनो। १. ॐ ह्रीं नमः। २. ॐ नमः। ३. ॐ क्लीं नमः। ४. ॐ ह्रीं नमः। ५. ॐ ह्रीं नमः। ६. ॐ ह्रीं हुं नमः। ७. ॐ हुं नमः। ८. ॐ हुं नमः। ९. ॐ ह्रीं हुं नमः। १०. ॐ ह्रीं नमः। ११. ॐ ह्रीं हुं नमः। १२. ॐ क्रौं क्ष्रौं रौं नमः। १३. ॐ ह्रीं नमः। १४. ॐ नमः। इन चौदह मन्त्रोंद्वारा क्रमशः एकसे लेकर चौदह मुखवाले रुद्राक्षको धारण करनेका विधान है। साधकको चाहिये कि वह निद्रा और आलस्यका त्याग करके श्रद्धा-भक्तिसे सम्पन्न हो सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये उक्त मन्त्रोंद्वारा उन-उन रुद्राक्षोंको धारण करे। रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले पुरुषको देखकर भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी तथा जो अन्य द्रोहकारी राक्षस आदि हैं, वे सब-के-सब दूर भाग जाते हैं। जो कृत्रिम अभिचार आदि प्रयुक्त होते हैं, वे सब रुद्राक्षधारीको देखकर सशङ्क हो दूर खिसक जाते हैं। पार्वती! रुद्राक्ष-मालाधारी पुरुषको देखकर मैं शिव, भगवान् विष्णु, देवी दुर्गा, गणेश, सूर्य तथा अन्य देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं। महेश्वरि! इस प्रकार रुद्राक्षकी महिमाको जानकर धर्मकी वृद्धिके लिये भक्तिपूर्वक पूर्वोक्त मन्त्रोंद्वारा विधिवत् उसे धारण करना चाहिये।

मुनीश्वर! भगवान् शिवने देवी पार्वतीके सामने जो कुछ कहा था, वह सब तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने कह सुनाया। मुनीश्वरो! मैंने तुम्हारे समक्ष इस विद्येश्वरसंहिताका वर्णन किया है। यह संहिता सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली तथा भगवान् शिवकी आज्ञासे नित्य मोक्ष प्रदान करनेवाली है।

(अध्याय २५)

☆

॥ विद्येश्वरसंहिता सम्पूर्ण ॥

☆

रुद्रसंहिता, प्रथम (सृष्टि) खण्ड

ऋषियोंके प्रश्नके उत्तरमें नारद-ब्रह्म-संवादकी अवतारणा करते हुए सूतजीका उन्हें नारदमोहका प्रसङ्ग सुनाना; कामविजयके गर्वसे युक्त हुए नारदका शिव, ब्रह्मा तथा विष्णुके पास जाकर अपने तपका प्रभाव बताना

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं
गौरीपतिं विदिततत्त्वमनन्तकीर्तिम्।
मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यरूपं
बोधस्वरूपममलं हि शिवं नमामि॥

जो विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लय आदिके एकमात्र कारण हैं, गौरी गिरिराजकुमारी उमाके पति हैं, तत्त्वज्ञ हैं, जिनकी कीर्तिका कहीं अन्त नहीं है, जो मायाके आश्रय होकर भी उससे अत्यन्त दूर हैं तथा जिनका स्वरूप अचिन्त्य है, उन विमल बोधस्वरूप भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ।

वन्दे शिवं तं प्रकृतेरनादिं
प्रशान्तमेकं पुरुषोत्तमं हि।
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा
नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः॥

मैं स्वभावसे ही उन अनादि, शान्तस्वरूप, एकमात्र पुरुषोत्तम शिवकी वन्दना करता हूँ, जो अपनी मायासे इस सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करके आकाशकी भाँति इसके भीतर और बाहर भी स्थित हैं।

वन्देऽन्तरस्थं निजगूढरूपं
शिवं स्वतस्स्रष्टुमिदं विचष्टे।
जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति
यत्संनिधौ चुम्बकलोहवत्तम्॥

जैसे लोहा चुम्बकसे आकृष्ट होकर उसके पास ही लटका रहता है, उसी प्रकार ये सारे जगत् सदा सब ओर जिसके आसपास ही भ्रमण करते हैं, जिन्होंने अपनेसे ही इस प्रपञ्चको रचनेकी विधि बतायी थी, जो सबके भीतर अन्तर्यामी-रूपसे विराजमान हैं तथा जिनका अपना स्वरूप अत्यन्त गूढ़ है, उन भगवान् शिवकी मैं सादर वन्दना करता हूँ।

व्यासजी कहते हैं—जगत्‌के पिता भगवान् शिव, जगन्माता कल्याणमयी पार्वती तथा उनके पुत्र गणेशजीको नमस्कार करके हम इस पुराणका वर्णन करते हैं। एक समयकी बात है, नैमिषारण्यमें निवास करनेवाले शौनक आदि सभी मुनियोंने उत्तम भक्तिभावके साथ सूतजीसे पूछा—

ऋषि बोले—महाभाग सूतजी! विद्येश्वरसंहिताकी जो साध्य-साधन-खण्ड नामवाली शुभ एवं उत्तम कथा है, उसे हमलोगोंने सुन लिया। उसका आदिभाग बहुत ही रमणीय है तथा वह शिव-भक्तोंपर भगवान् शिवका वात्सल्य-स्नेह प्रकट करनेवाली है। विद्वन्! अब आप भगवान् शिवके परम उत्तम स्वरूपका वर्णन कीजिये। साथ ही शिव और पार्वतीके दिव्य चरित्रोंका पूर्णरूपसे श्रवण कराइये। हम पूछते हैं, निर्गुण महेश्वर लोकमें सगुणरूप कैसे धारण करते हैं? हम सब

लोग विचार करनेपर भी शिवके तत्त्वको नहीं समझ पाते। सृष्टिके पहले भगवान् शिव किस प्रकार अपने स्वरूपसे स्थित होते हैं? फिर सृष्टिके मध्यकालमें वे भगवान् किस तरह क्रीडा करते हुए सम्यक् व्यवहार-बर्ताव करते हैं और सृष्टिकल्पका अन्त होनेपर वे महेश्वरदेव किस रूपमें स्थित रहते हैं? लोककल्याणकारी शंकर कैसे प्रसन्न होते हैं? और प्रसन्न हुए महेश्वर अपने भक्तों तथा दूसरोंको कौन-सा उत्तम फल प्रदान करते हैं? यह सब हमसे कहिये? हमने सुना है कि भगवान् शिव शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। वे महान् दयालु हैं, इसलिये अपने भक्तोंका कष्ट नहीं देख सकते। ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीन देवता शिवके ही अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं। उनके प्राकट्यकी कथा तथा उनके विशेष चरित्रोंका वर्णन कीजिये। प्रभो! आप उमाके आविर्भाव और विवाहकी भी कथा कहिये। विशेषतः उनके गार्हस्थ्यधर्मका और अन्य लीलाओंका भी वर्णन कीजिये। निष्पाप सूतजी! (हमारे प्रश्नके उत्तरमें) आपको ये सब तथा दूसरी बातें भी अवश्य कहनी चाहिये।

सूतजीने कहा—मुनीश्वरो! आपलोगोंने बड़ी उत्तम बात पूछी है। भगवान् सदाशिवकी कथामें आपलोगोंकी जो आन्तरिक निष्ठा हुई है, इसके लिये आप धन्यवादके पात्र हैं। ब्राह्मणो! भगवान् शंकरका गुणानुवाद सात्त्विक, राजस और तामस तीनों ही प्रकृतिके मनुष्योंको सदा आनन्द प्रदान करनेवाला है। पशुओंकी हिंसा करनेवाले निष्ठुर कसाईके सिवा दूसरा कौन पुरुष उस गुणानुवादको सुननेसे ऊब सकता है। जिनके मनमें कोई तृष्णा नहीं है, ऐसे महात्मा पुरुष भगवान् शिवके उन गुणोंका गान करते हैं; क्योंकि यह

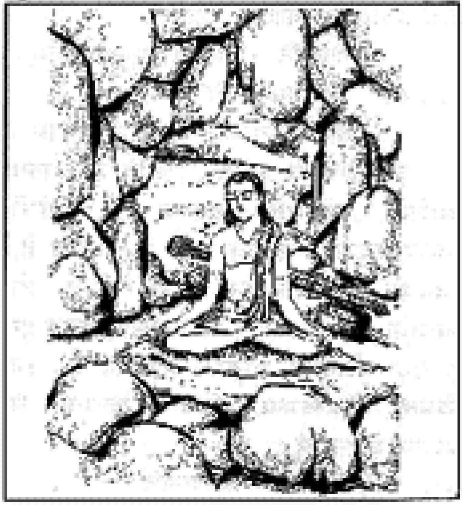

गुणावली संसाररूपी रोगकी दवा है, मन तथा कानोंको प्रिय लगनेवाली और सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाली है*। ब्राह्मणो! आपलोगोंके प्रश्नके अनुसार मैं यथाबुद्धि प्रयत्नपूर्वक शिव-लीलाका वर्णन करता हूँ, आप आदरपूर्वक सुनें। जैसे आपलोग पूछ रहे हैं, उसी प्रकार देवर्षि नारदजीने शिवरूपी भगवान् विष्णुसे प्रेरित होकर अपने पितासे पूछा था। अपने पुत्र नारदका प्रश्न सुनकर शिवभक्त ब्रह्माजीका चित्त प्रसन्न हो गया

* शम्भोर्गुणानुवादात् को विरज्येत पुमान् द्विजाः। विना पशुघ्नं त्रिविधजनानन्दकरात् सदा॥
गीयमानो वितृष्णैश्च भवरोगौषधोऽपि हि। मनःश्रोत्रादिरामश्च यतः सर्वार्थदः स वै॥
(शि० पु० रुद्र० सृ० १। २३-२४)

और वे उन मुनिशिरोमणिको हर्ष प्रदान करते हुए प्रेमपूर्वक भगवान् शिवके यशका गान करने लगे।

एक समयकी बात है, मुनिशिरोमणि विप्रवर नारदजीने, जो ब्रह्माजीके पुत्र हैं, विनीतचित्त हो तपस्यामें मन लगाया। हिमालय पर्वतमें कोई एक गुफा थी, जो बड़ी शोभासे सम्पन्न दिखायी देती थी। उसके निकट देवनदी गङ्गा निरन्तर वेगपूर्वक बहती थीं। वहाँ एक महान् दिव्य आश्रम था, जो नाना प्रकारकी शोभासे सुशोभित था। दिव्यदर्शी नारदजी तपस्या करनेके लिये उसी आश्रममें गये। उस गुफाको देखकर मुनिवर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और सुदीर्घकालतक वहाँ तपस्या करते रहे। उनका अन्तःकरण शुद्ध था। वे दृढ़तापूर्वक आसन बाँधकर मौन हो प्राणायामपूर्वक समाधिमें स्थित हो गये। ब्राह्मणो! उन्होंने वह समाधि लगायी, जिसमें ब्रह्मका साक्षात्कार करानेवाला 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ)—यह विज्ञान प्रकट होता है। मुनिवर नारदजी जब इस प्रकार तपस्या करने लगे, उस समय यह समाचार पाकर देवराज इन्द्र काँप उठे। वे मानसिक संतापसे विह्वल हो गये। 'ये नारदमुनि मेरा राज्य लेना चाहते हैं'—मन-ही-मन ऐसा सोचकर इन्द्रने उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये प्रयत्न करनेकी इच्छा की। उस समय देवराजने अपने मनसे कामदेवका स्मरण किया। स्मरण करते ही कामदेव आ गये। महेन्द्रने उन्हें नारदजीकी तपस्यामें विघ्न डालनेका आदेश दिया। यह आज्ञा पाकर कामदेव वसन्तको साथ ले बड़े गर्वसे उस स्थानपर गये और अपना उपाय करने लगे। उन्होंने वहाँ शीघ्र ही अपनी सारी कलाएँ रच डालीं। वसन्तने भी मदमत्त होकर अपना प्रभाव अनेक प्रकारसे प्रकट किया। मुनिवरो! कामदेव और वसन्तके अथक प्रयत्न करनेपर भी नारद मुनिके चित्तमें विकार नहीं उत्पन्न हुआ। महादेवजीके अनुग्रहसे उन दोनोंका गर्व चूर्ण हो गया।

शौनक आदि महर्षियो! ऐसा होनेमें जो कारण था, उसे आदरपूर्वक सुनो। महादेवजीकी कृपासे ही नारदमुनिपर कामदेवका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पहले उसी आश्रममें कामशत्रु भगवान् शिवने उत्तम तपस्या की थी और वहीं उन्होंने मुनियोंकी तपस्याका नाश करनेवाले कामदेवको शीघ्र ही भस्म कर डाला था। उस समय रतिने कामदेवको पुनः जीवित करनेके लिये देवताओंसे प्रार्थना की। तब देवताओंने समस्त लोकोंका कल्याण करनेवाले भगवान् शंकरसे याचना की। उनके याचना करनेपर वे बोले—'देवताओ! कुछ समय व्यतीत होनेके बाद कामदेव जीवित तो हो जायँगे, परंतु यहाँ उनका कोई उपाय नहीं चल सकेगा। अमरगण! यहाँ खड़े होकर लोग चारों ओर जितनी दूरतककी भूमिको नेत्रसे देख पाते हैं, वहाँतक कामदेवके बाणोंका प्रभाव नहीं चल सकेगा, इसमें संशय नहीं है।' भगवान् शंकरकी इस उक्तिके अनुसार उस समय वहाँ नारदजीके प्रति कामदेवका निजी प्रभाव मिथ्या सिद्ध हुआ। वे शीघ्र ही स्वर्गलोकमें इन्द्रके पास लौट गये। वहाँ कामदेवने अपना सारा वृत्तान्त और मुनिका प्रभाव कह सुनाया, तत्पश्चात् इन्द्रकी आज्ञासे वे वसन्तके साथ अपने स्थानको

लौट गये। उस समय देवराज इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने नारदजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। परंतु शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण वे उस पूर्ववृत्तान्तको स्मरण न कर सके। वास्तवमें इस संसारके भीतर सभी प्राणियोंके लिये शम्भुकी मायाको जानना अत्यन्त कठिन है। जिसने भगवान् शिवके चरणोंमें अपने-आपको समर्पित कर दिया है, उस भक्तको छोड़कर शेष सारा जगत् उनकी मायासे मोहित हो जाता है।* नारदजी भी भगवान् शंकरकी कृपासे वहाँ चिरकालतक तपस्यामें लगे रहे। जब उन्होंने अपनी तपस्याको पूर्ण हुई समझा, तब वे मुनि उससे विरत हो गये। 'कामदेवपर मेरी विजय हुई' ऐसा मानकर उन मुनीश्वरके मनमें व्यर्थ ही गर्व हो गया। भगवान् शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण उन्हें यथार्थ बातका ज्ञान नहीं रहा। (वे यह नहीं समझ सके कि कामदेवके पराजित होनेमें भगवान् शंकरका प्रभाव ही कारण है।) उस मायासे अत्यन्त मोहित हो मुनिशिरोमणि नारद अपना काम-विजय-सम्बन्धी वृत्तान्त बतानेके लिये तुरंत ही कैलास पर्वतपर गये। उस समय वे विजयके मदसे उन्मत्त हो रहे थे। वहाँ रुद्रदेवको नमस्कार करके गर्वसे भरे हुए मुनिने अपने-आपको महात्मा मानकर तथा अपने ही प्रभावसे कामदेवपर अपनी विजय हुई समझकर उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

वह सब सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शंकरने नारदजीसे, जो अपनी (शिवकी) ही मायासे मोहित होनेके कारण कामविजयके यथार्थ कारणको नहीं जानते थे और अपने विवेकको भी खो बैठे थे, कहा—

रुद्र बोले—तात नारद! तुम बड़े विद्वान् हो, धन्यवादके पात्र हो। परंतु मेरी यह बात ध्यान देकर सुनो। अबसे फिर कभी ऐसी बात कहीं भी न कहना। विशेषतः भगवान् विष्णुके सामने इसकी चर्चा कदापि न करना। तुमने मुझसे अपना जो वृत्तान्त बताया है, उसे पूछनेपर भी दूसरोंके सामने न कहना। यह सिद्धि-सम्बन्धी वृत्तान्त सर्वथा गुप्त रखने योग्य है, इसे कभी किसीपर प्रकट नहीं करना चाहिये। तुम मुझे विशेष प्रिय हो, इसीलिये अधिक जोर देकर मैं तुम्हें यह शिक्षा देता हूँ और इसे न कहनेकी आज्ञा देता हूँ; क्योंकि तुम भगवान् विष्णुके भक्त हो और उनके भक्त होते हुए ही मेरे अत्यन्त अनुगामी हो।

* दुर्ज्ञेया शाम्भवी माया सर्वेषां प्राणिनामिह। भक्तं विनार्पितात्मानं तया सम्मोह्यते जगत्॥

(शि० पु० रु० सृ० २। २५)

इस प्रकार बहुत कुछ कहकर संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् रुद्रने नारदजीको शिक्षा दी—अपने वृत्तान्तको गुप्त रखनेके लिये उन्हें समझाया-बुझाया। परंतु वे तो शिवकी मायासे मोहित थे। इसलिये उन्होंने उनकी दी हुई शिक्षाको अपने लिये हितकर नहीं माना। तदनन्तर मुनिशिरोमणि नारद ब्रह्मलोकमें गये। वहाँ ब्रह्माजीको नमस्कार करके उन्होंने कहा—'पिताजी! मैंने अपने तपोबलसे कामदेवको जीत लिया है।' उनकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन किया और सारा कारण जानकर अपने पुत्रको यह सब कहनेसे मना किया। परंतु नारदजी शिवकी मायासे मोहित थे। अतएव उनके चित्तमें मदका अङ्कुर जम गया था। उनकी बुद्धि मारी गयी थी। इसलिये नारदजी अपना सारा वृत्तान्त भगवान् विष्णुके सामने कहनेके लिये वहाँसे शीघ्र ही विष्णुलोकमें गये। नारदमुनिको आते देख भगवान् विष्णु बड़े आदरसे उठे और शीघ्र ही आगे बढ़कर उन्होंने मुनिको हृदयसे लगा लिया। मुनिके आगमनका क्या हेतु है, इसका उन्हें पहलेसे ही पता था। नारदजीको अपने आसनपर बिठाकर भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करके श्रीहरिने उनसे पूछा—

भगवान् विष्णु बोले—तात! कहाँसे आते हो? यहाँ किसलिये तुम्हारा आगमन हुआ है? मुनिश्रेष्ठ! तुम धन्य हो। तुम्हारे शुभागमनसे मैं पवित्र हो गया।

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर गर्वसे भरे हुए नारदमुनिने मदसे मोहित होकर अपना सारा वृत्तान्त बड़े अभिमानके साथ कह सुनाया। नारदमुनिका यह अहंकारयुक्त वचन सुनकर मन-ही-मन भगवान् विष्णुने उनकी कामविजयके यथार्थ कारणको पूर्णरूपसे जान लिया।

तत्पश्चात् श्रीविष्णु बोले—मुनिश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, तपस्याके तो भंडार ही हो। तुम्हारा हृदय भी बड़ा उदार है। मुने! जिसके भीतर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नहीं होते, उसीके मनमें समस्त दुःखोंको देनेवाले काम, मोह आदि विकार शीघ्र उत्पन्न होते हैं। तुम तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो और सदा ज्ञान-वैराग्यसे युक्त रहते हो; फिर तुममें कामविकार कैसे आ सकता है। तुम तो जन्मसे ही निर्विकार तथा शुद्ध बुद्धिवाले हो।

श्रीहरिकी कही हुई ऐसी बहुत-सी बातें सुनकर मुनिशिरोमणि नारद जोर-जोरसे हँसने लगे और मन-ही-मन भगवान्‌को प्रणाम करके इस प्रकार बोले—

नारदजीने कहा—स्वामिन्! जब मुझपर आपकी कृपा है, तब बेचारा कामदेव अपना क्या प्रभाव दिखा सकता है।

ऐसा कहकर भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक झुकाकर इच्छानुसार विचरनेवाले नारदमुनि वहाँसे चले गये।

(अध्याय १-२)

मायानिर्मित नगरमें शीलनिधिकी कन्यापर मोहित हुए नारदजीका भगवान् विष्णुसे उनका रूप माँगना, भगवान्‌का अपने रूपके साथ उन्हें वानरका-सा मुँह देना, कन्याका भगवान्‌को वरण करना और कुपित हुए नारदका शिवगणोंको शाप देना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! जब नारदमुनि इच्छानुसार वहाँसे चले गये, तब भगवान् शिवकी इच्छासे मायाविशारद श्रीहरिने तत्काल अपनी माया प्रकट की। उन्होंने मुनिके मार्गमें एक विशाल नगरकी रचना की, जिसका विस्तार सौ योजन था। वह अद्भुत नगर बड़ा ही मनोहर था। भगवान्‌ने उसे अपने वैकुण्ठलोकसे भी अधिक रमणीय बनाया था। नाना प्रकारकी वस्तुएँ उस नगरकी शोभा बढ़ाती थीं। वहाँ स्त्रियों और पुरुषोंके लिये बहुत-से विहार-स्थल थे। वह श्रेष्ठ नगर चारों वर्णोंके लोगोंसे भरा था। वहाँ शीलनिधि नामक ऐश्वर्यशाली राजा राज्य करते थे। वे अपनी पुत्रीका स्वयंवर करनेके लिये उद्यत थे। अतः उन्होंने महान् उत्सवका आयोजन किया था। उनकी कन्याका वरण करनेके लिये उत्सुक हो चारों दिशाओंसे बहुत-से राजकुमार पधारे थे, जो नाना प्रकारकी वेशभूषा तथा सुन्दर शोभासे प्रकाशित हो रहे थे। उन राजकुमारोंसे वह नगर भरा-पूरा दिखायी देता था। ऐसे सुन्दर राजनगरको देख नारदजी मोहित हो गये। वे राजा शीलनिधिके द्वारपर गये। मुनिशिरोमणि नारदको आया देख महाराज शीलनिधिने श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनपर बिठाकर उनका पूजन किया। तत्पश्चात् अपनी सुन्दरी कन्याको, जिसका नाम श्रीमती था, बुलवाया और उससे नारदजीके चरणोंमें प्रणाम करवाया। उस कन्याको देखकर नारदमुनि चकित हो गये और बोले—'राजन्! यह देवकन्याके समान सुन्दरी

महाभागा कन्या कौन है?' उनकी यह बात सुनकर राजाने हाथ जोड़कर कहा—'मुने! यह मेरी पुत्री है। इसका नाम श्रीमती है। अब इसके विवाहका समय आ गया है। यह अपने लिये सुन्दर वर चुननेके निमित्त स्वयंवरमें जानेवाली है। इसमें सब प्रकारके शुभ लक्षण लक्षित होते हैं। महर्षे! आप इसका भाग्य बताइये।'

राजाके इस प्रकार पूछनेपर कामसे विह्वल हुए मुनिश्रेष्ठ नारद उस कन्याको प्राप्त करनेकी इच्छा मनमें लिये राजाको

सम्बोधित करके इस प्रकार बोले—'भूपाल! आपकी यह पुत्री समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है, परम सौभाग्यवती है। अपने महान् भाग्यके कारण यह धन्य है और साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति समस्त गुणोंकी आगार है। इसका भावी पति निश्चय ही भगवान् शंकरके समान वैभवशाली, सर्वेश्वर, किसीसे पराजित न होनेवाला, वीर, कामविजयी तथा सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ होगा।'

ऐसा कहकर राजासे विदा ले इच्छानुसार विचरनेवाले नारदमुनि वहाँसे चल दिये। वे कामके वशीभूत हो गये थे। शिवकी मायाने उन्हें विशेष मोहमें डाल दिया था। वे मुनि मन-ही-मन सोचने लगे कि 'मैं इस राजकुमारीको कैसे प्राप्त करूँ? स्वयंवरमें आये हुए नरेशोंमेंसे सबको छोड़कर यह एकमात्र मेरा ही वरण करे, यह कैसे सम्भव हो सकता है? समस्त नारियोंको सौन्दर्य सर्वथा प्रिय होता है। सौन्दर्यको देखकर ही वह प्रसन्नतापूर्वक मेरे अधीन हो सकती है, इसमें संशय नहीं है।'

ऐसा विचारकर कामसे विह्वल हुए मुनिवर नारद भगवान् विष्णुका रूप ग्रहण करनेके लिये तत्काल उनके लोकमें जा पहुँचे। वहाँ भगवान् विष्णुको प्रणाम करके वे इस प्रकार बोले—'भगवन्! मैं एकान्तमें आपसे अपना सारा वृत्तान्त कहूँगा।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर लक्ष्मीपति श्रीहरि नारदजीके साथ एकान्तमें जा बैठे और बोले—'मुने! अब आप अपनी बात कहिये।'

तब नारदजीने कहा—भगवन्! आपके भक्त जो राजा शीलनिधि हैं, वे सदा धर्म-पालनमें तत्पर रहते हैं। उनकी एक विशाललोचना कन्या है, जो बहुत ही सुन्दरी है। उसका नाम श्रीमती है। वह विश्वमोहिनीके रूपमें विख्यात है और तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी है। प्रभो! आज मैं शीघ्र ही उस कन्यासे विवाह करना चाहता हूँ। राजा शीलनिधिने अपनी पुत्रीकी इच्छासे स्वयंवर रचाया है। इसलिये चारों दिशाओंसे वहाँ सहस्रों राजकुमार पधारे हैं। नाथ! मैं आपका प्रिय सेवक हूँ। अतः आप मुझे अपना स्वरूप दे दीजिये, जिससे राजकुमारी श्रीमती निश्चय ही मुझे वर ले।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! नारदमुनिकी ऐसी बात सुनकर भगवान् मधुसूदन हँस पड़े और भगवान् शंकरके प्रभावका अनुभव करके उन दयालु प्रभुने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—

भगवान् विष्णु बोले—मुने! तुम अपने अभीष्ट स्थानको जाओ। मैं उसी तरह तुम्हारा हित-साधन करूँगा, जैसे श्रेष्ठ वैद्य अत्यन्त पीड़ित रोगीका करता है; क्योंकि तुम मुझे विशेष प्रिय हो।

ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने नारदमुनिको मुख तो वानरका दे दिया और शेष अङ्गोंमें अपने-जैसा स्वरूप देकर वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये। भगवान्‌की पूर्वोक्त बात सुनकर और उनका मनोहर रूप प्राप्त हो गया समझकर नारदमुनिको बड़ा हर्ष हुआ। वे अपनेको कृतकृत्य मानने लगे। भगवान्‌ने क्या प्रयत्न किया है, इसको वे समझ न सके। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ नारद शीघ्र ही उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ राजा शीलनिधिने राजकुमारोंसे भरी हुई स्वयंवर-सभाका आयोजन किया था। विप्रवरो!

राजपुत्रोंसे घिरी हुई वह दिव्य स्वयंवर-सभा दूसरी इन्द्रसभाके समान अत्यन्त शोभा पा रही थी। नारदजी उस राजसभामें जा बैठे और वहाँ बैठकर प्रसन्न मनसे बार-बार यही सोचने लगे कि 'मैं भगवान् विष्णुके समान

रूप धारण किये हुए हूँ। अतः यह राजकुमारी अवश्य मेरा ही वरण करेगी, दूसरेका नहीं।' मुनिश्रेष्ठ नारदको यह ज्ञात नहीं था कि मेरा मुँह कितना कुरूप है। उस सभामें बैठे हुए सब मनुष्योंने मुनिको उनके पूर्वरूपमें ही देखा। राजकुमार आदि कोई भी उनके रूप-परिवर्तनके रहस्यको न जान सके। वहाँ नारदजीकी रक्षाके लिये भगवान् रुद्रके दो पार्षद आये थे, जो ब्राह्मणका रूप धारण करके गूढ़भावसे वहाँ बैठे थे। वे ही नारदजीके रूप-परिवर्तनके उत्तम भेदको जानते थे। मुनिको कामावेशसे मूढ़ हुआ जान वे दोनों पार्षद उनके निकट गये और आपसमें बातचीत करते हुए उनकी हँसी उड़ाने लगे। परंतु मुनि तो कामसे विह्वल हो रहे थे। अतः उन्होंने उनकी यथार्थ बात भी अनसुनी कर दी। वे मोहित हो श्रीमतीको प्राप्त करनेकी इच्छासे उसके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

इसी बीचमें वह सुन्दरी राजकन्या स्त्रियोंसे घिरी हुई अन्तःपुरसे वहाँ आयी। उसने अपने हाथमें सोनेकी एक सुन्दर माला ले रखी थी। वह शुभलक्षणा राजकुमारी स्वयंवरके मध्यभागमें लक्ष्मीके समान खड़ी हुई अपूर्व शोभा पा रही थी। उत्तम व्रतको पालन करनेवाली वह भूपकन्या माला हाथमें लेकर अपने मनके अनुरूप वरका अन्वेषण करती हुई सारी सभामें भ्रमण करने लगी। नारदमुनिका भगवान् विष्णुके समान शरीर और वानर-जैसा मुँह देखकर वह कुपित हो गयी और उनकी ओरसे दृष्टि हटाकर प्रसन्न मनसे दूसरी ओर चली गयी। स्वयंवर-सभामें अपने मनोवाञ्छित वरको न देखकर वह भयभीत हो गयी। राजकुमारी उस सभाके भीतर चुपचाप खड़ी रह गयी। उसने किसीके गलेमें जयमाला नहीं डाली। इतनेमें ही राजाके समान वेशभूषा धारण किये भगवान् विष्णु वहाँ आ पहुँचे। किन्हीं दूसरे लोगोंने उनको वहाँ नहीं देखा। केवल उस कन्याकी ही दृष्टि उनपर पड़ी। भगवान्‌को देखते ही उस परमसुन्दरी राजकुमारीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने तत्काल ही उनके कण्ठमें वह माला पहना दी। राजाका रूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु उस राजकुमारीको साथ लेकर तुरंत अदृश्य हो गये और अपने

धाममें जा पहुँचे। इधर सब राजकुमार श्रीमतीकी ओरसे निराश हो गये। नारदमुनि तो कामवेदनासे आतुर हो रहे थे। इसलिये वे अत्यन्त विह्वल हो उठे। तब वे दोनों विप्ररूपधारी ज्ञानविशारद रुद्रगण काम-विह्वल नारदजीसे उसी क्षण बोले—

रुद्रगणोंने कहा—हे नारद! हे मुने! तुम व्यर्थ ही कामसे मोहित हो रहे हो और

सौन्दर्यके बलसे राजकुमारीको पाना चाहते हो। अपना वानरके समान घृणित मुँह तो देख लो।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! उन रुद्रगणोंका यह वचन सुनकर नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ। वे शिवकी मायासे मोहित थे। उन्होंने दर्पणमें अपना मुँह देखा। वानरके समान अपना मुँह देख वे तुरंत ही क्रोधसे जल उठे और मायासे मोहित होनेके कारण उन दोनों शिवगणोंको वहाँ शाप देते हुए बोले—'अरे! तुम दोनोंने मुझ ब्राह्मणका उपहास किया है। अतः तुम ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न राक्षस हो जाओ। ब्राह्मणकी संतान होनेपर भी तुम्हारे आकार राक्षसके समान ही होंगे।' इस प्रकार अपने लिये शाप सुनकर वे दोनों ज्ञानिशिरोमणि शिवगण मुनिको मोहित जानकर कुछ नहीं बोले। ब्राह्मणो! वे सदा सब घटनाओंमें भगवान् शिवकी ही इच्छा मानते थे। अतः उदासीन भावसे अपने स्थानको चले गये और भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे।

(अध्याय ३)

नारदजीका भगवान् विष्णुको क्रोधपूर्वक फटकारना और शाप देना; फिर मायाके दूर हो जानेपर पश्चात्तापपूर्वक भगवान्‌के चरणोंमें गिरना और शुद्धिका उपाय पूछना तथा भगवान् विष्णुका उन्हें समझा-बुझाकर शिवका माहात्म्य जाननेके लिये ब्रह्माजीके पास जानेका आदेश और शिवके भजनका उपदेश देना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! माया-मोहित नारदमुनि उन दोनों शिवगणोंको यथोचित शाप देकर भी भगवान् शिवके इच्छावश मोहनिद्रासे जाग न सके। वे भगवान् विष्णुके किये हुए कपटको याद करके मनमें दुस्सह क्रोध लिये विष्णुलोकको गये और समिधा पाकर प्रज्वलित हुए अग्निदेवकी भाँति क्रोधसे

जलते हुए बोले—उनका ज्ञान नष्ट हो गया था। इसलिये वे दुर्वचनपूर्ण व्यङ्ग सुनाने लगे।

नारदजीने कहा—हरे! तुम बड़े दुष्ट हो, कपटी हो और समस्त विश्वको मोहमें डाले रहते हो। दूसरोंका उत्साह या उत्कर्ष तुमसे सहा नहीं जाता। तुम मायावी हो, तुम्हारा अन्तःकरण मलिन है। पूर्वकालमें तुम्हींने मोहिनीरूप धारण करके कपट किया, असुरोंको वारुणी मदिरा पिलायी, उन्हें अमृत नहीं पीने दिया। छल-कपटमें ही अनुराग रखनेवाले हरे! यदि महेश्वर रुद्र दया करके विष न पी लेते तो तुम्हारी सारी माया उसी दिन समाप्त हो जाती। विष्णुदेव! कपटपूर्ण चाल तुम्हें अधिक प्रिय है। तुम्हारा स्वभाव अच्छा नहीं है, तो भी भगवान् शंकरने तुम्हें स्वतन्त्र बना दिया है। तुम्हारी इस चाल-ढालको समझकर अब वे (भगवान् शिव) भी पश्चात्ताप करते होंगे। अपनी वाणीरूप वेदकी प्रामाणिकता स्थापित करनेवाले महादेवजीने ब्राह्मणको सर्वोपरि बताया है। हरे! इस बातको जानकर आज मैं बलपूर्वक तुम्हें ऐसी सीख दूँगा, जिससे तुम फिर कभी कहीं भी ऐसा कर्म नहीं कर सकोगे। अबतक तुम्हें किसी शक्तिशाली या तेजस्वी पुरुषसे पाला नहीं पड़ा था। इसलिये आजतक तुम निडर बने हुए हो। परंतु विष्णो! अब तुम्हें अपनी करनीका पूरा-पूरा फल मिलेगा!

भगवान् विष्णुसे ऐसा कहकर मायामोहित नारदमुनि अपने ब्रह्मतेजका प्रदर्शन करते हुए क्रोधसे खिन्न हो उठे और शाप देते हुए बोले—'विष्णो! तुमने स्त्रीके लिये मुझे व्याकुल किया है। तुम इसी तरह सबको मोहमें डालते रहते हो। यह कपटपूर्ण कार्य करते हुए तुमने जिस स्वरूपसे मुझे संयुक्त किया था, उसी स्वरूपसे तुम मनुष्य हो जाओ और स्त्रीके वियोगका दुःख भोगो। तुमने जिन वानरोंके समान मेरा मुँह

बनाया था, वे ही उस समय तुम्हारे सहायक हों। तुम दूसरोंको (स्त्री-विरहका) दुःख देनेवाले हो, अतः स्वयं भी तुम्हें स्त्रीके वियोगका दुःख प्राप्त हो। अज्ञानसे मोहित मनुष्योंके समान तुम्हारी स्थिति हो।'

अज्ञानसे मोहित हुए नारदजीने मोहवश श्रीहरिको जब इस तरह शाप दिया, तब उन्होंने शम्भुकी मायाकी प्रशंसा करते हुए उस शापको स्वीकार कर लिया। तदनन्तर महालीला करनेवाले शम्भुने अपनी उस विश्वमोहिनी मायाको, जिसके कारण ज्ञानी नारदमुनि भी मोहित हो गये थे, खींच लिया। उस मायाके तिरोहित होते ही नारदजी पूर्ववत् शुद्धबुद्धिसे युक्त हो गये।

उन्हें पूर्ववत् ज्ञान प्राप्त हो गया और उनकी सारी व्याकुलता जाती रही। इससे उनके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। वे अधिकाधिक पश्चात्ताप करते हुए बारंबार अपनी निन्दा करने लगे। उस समय उन्होंने ज्ञानीको भी मोहमें डालनेवाली भगवान् शम्भुकी मायाकी सराहना की। तदनन्तर यह जानकर कि मायाके कारण ही मैं भ्रममें पड़ गया था—यह सब कुछ मेरा माया-जनित भ्रम ही था, वैष्णवशिरोमणि नारदजी भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिर पड़े। भगवान् श्रीहरिने उन्हें उठाकर खड़ा कर दिया। उस समय अपनी दुर्बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण वे यों बोले 'नाथ! मायासे मोहित होनेके कारण मेरी बुद्धि बिगड़ गयी थी। इसलिये मैंने आपके प्रति बहुत दुर्वचन कहे हैं, आपको शापतक दे डाला है। प्रभो! उस शापको आप मिथ्या कर दीजिये। हाय! मैंने बहुत बड़ा पाप किया है। अब मैं निश्चय ही नरकमें पड़ूँगा। हरे! मैं आपका दास हूँ। बताइये, मैं क्या उपाय—कौन-सा प्रायश्चित्त करूँ, जिससे मेरा पाप-समूह नष्ट हो जाय और मुझे नरकमें न गिरना पड़े।' ऐसा कहकर शुद्ध बुद्धिवाले मुनिशिरोमणि नारदजी पुनः भक्तिभावसे भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिर पड़े। उस समय उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। तब श्रीविष्णुने उन्हें उठाकर मधुर वाणीमें कहा—

भगवान् विष्णु बोले—तात! खेद न करो। तुम मेरे श्रेष्ठ भक्त हो, इसमें संशय नहीं है। मैं तुम्हें एक बात बताता हूँ, सुनो। उससे निश्चय ही तुम्हारा परम हित होगा, तुम्हें नरकमें नहीं जाना पड़ेगा। भगवान् शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे। तुमने मदसे मोहित होकर जो भगवान् शिवकी बात नहीं मानी थी—उसकी अवहेलना कर दी थी, उसी अपराधका भगवान् शिवने तुम्हें ऐसा फल दिया है; क्योंकि वे ही कर्मफलके दाता हैं। तुम अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय कर लो कि भगवान् शिवकी इच्छासे ही यह सब कुछ हुआ है। सबके स्वामी परमेश्वर शंकर ही गर्वको दूर करनेवाले हैं। वे ही परब्रह्म परमात्मा हैं। उन्हींका सच्चिदानन्दरूपसे बोध होता है। वे निर्गुण और निर्विकार हैं। सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे परे हैं। वे ही अपनी मायाको लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीन रूपोंमें प्रकट होते हैं। निर्गुण और सगुण भी वे ही हैं। निर्गुण अवस्थामें उन्हींका नाम शिव है। वे ही परमात्मा, महेश्वर, परब्रह्म, अविनाशी, अनन्त और महादेव आदि नामोंसे कहे जाते हैं। उन्हींकी सेवासे ब्रह्माजी जगत्के स्रष्टा हुए हैं और मैं तीनों लोकोंका पालन करता हूँ। वे स्वयं ही रुद्ररूपसे सदा सबका संहार करते हैं। वे शिवस्वरूपसे सबके साक्षी हैं, मायासे भिन्न और निर्गुण हैं। स्वतन्त्र होनेके कारण वे अपनी इच्छाके अनुसार चलते हैं। उनका विहार—आचार-व्यवहार उत्तम है और वे भक्तोंपर दया करनेवाले हैं। नारदमुने! मैं तुम्हें एक सुन्दर उपाय बताता हूँ, जो सुखद, समस्त पापोंका नाशक और सदा भोग एवं मोक्ष देनेवाला है। तुम उसे सुनो। अपने सारे संशयोंको त्यागकर तुम भगवान् शंकरके सुयशका गान करो और सदा अनन्यभावसे शिवके शतनामस्तोत्रका पाठ करो। मुने! तुम निरन्तर उन्हींकी उपासना और उन्हींका भजन करो। उन्हींके यशको सुनो और गाओ तथा प्रतिदिन

उन्हींकी पूजा-अर्चा करते रहो। नारद! जो शरीर, मन और वाणीद्वारा भगवान् शंकरकी उपासना करता है, उसे पण्डित या ज्ञानी जानना चाहिये। वह जीवन्मुक्त कहलाता है। 'शिव' इस नामरूपी दावानलसे बड़े-बड़े पातकोंके असंख्य पर्वत अनायास भस्म हो जाते हैं—यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है।* जो भगवान् शिवके नामरूपी नौकाका आश्रय लेते हैं, वे संसार-सागरसे पार हो जाते हैं। संसारके मूलभूत उनके सारे पाप निस्संदेह नष्ट हो जाते हैं। महामुने! संसारके मूलभूत जो पातकरूपी वृक्ष हैं, उनका शिवनामरूपी कुठारसे निश्चय ही नाश हो जाता है।†

जो लोग पापरूपी दावानलसे पीड़ित हैं, उन्हें शिवनामरूपी अमृतका पान करना चाहिये। पापदावाग्निसे दग्ध होनेवाले प्राणियोंको उस (शिवनामामृत) के बिना शान्ति नहीं मिल सकती। सम्पूर्ण वेदोंका अवलोकन करके पूर्ववर्ती विद्वानोंने यही निश्चय किया है कि भगवान् शिवकी पूजा ही उत्कृष्ट साधन तथा जन्म-मरणरूपी संसारबन्धनके नाशका उपाय है। आजसे यत्नपूर्वक सावधान रहकर विधि-विधानके साथ भक्तिभावसे नित्य-निरन्तर जगदम्बा पार्वतीसहित महेश्वर सदाशिवका भजन करो, नित्य शिवकी ही कथा सुनो और कहो तथा अत्यन्त यत्न करके बारंबार शिव-भक्तोंका पूजन किया करो। मुनिश्रेष्ठ! अपने हृदयमें भगवान् शिवके उज्ज्वल चरणारविन्दोंकी स्थापना करके पहले शिवके तीर्थोंमें विचरो। मुने! इस प्रकार परमात्मा शंकरके अनुपम माहात्म्यका दर्शन करते हुए अन्तमें आनन्दवन (काशी) को जाओ, वह स्थान भगवान् शिवको बहुत ही प्रिय है। वहाँ भक्तिपूर्वक विश्वनाथजीका दर्शन-पूजन करो। विशेषतः उनकी स्तुति-वन्दना करके तुम निर्विकल्प (संशयरहित) हो जाओगे, नारदजी! इसके बाद तुम्हें मेरी आज्ञासे भक्तिपूर्वक अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये निश्चय ही ब्रह्मलोकमें जाना चाहिये। वहाँ अपने पिता ब्रह्माजीकी विशेषरूपसे स्तुति-वन्दना करके तुम्हें प्रसन्नतापूर्ण हृदयसे बारंबार शिव-महिमाके विषयमें प्रश्न करना चाहिये। ब्रह्माजी शिव-भक्तोंमें श्रेष्ठ हैं। वे तुम्हें बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान् शंकरका माहात्म्य और शतनामस्तोत्र सुनायेंगे। मुने! आजसे तुम शिवाराधनमें तत्पर रहनेवाले शिवभक्त हो जाओ और विशेषरूपसे मोक्षके भागी बनो। भगवान् शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे। इस प्रकार प्रसन्नचित्त हुए भगवान् विष्णु नारदमुनिको प्रेमपूर्वक उपदेश देकर श्रीशिवका स्मरण, वन्दन और स्तवन करके वहाँसे अन्तर्धान हो गये।

(अध्याय ४)

☆

---

* शिवेतिनामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः। भस्मीभवन्त्यनायासात् सत्यं सत्यं न संशयः॥ (शि॰ पु॰ रु॰ सृ॰ ४। ४५)

† शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ते। संसारमूलपापानि तेषां नश्यन्त्यसंशयम्॥
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने। शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम्॥ (शि॰ पु॰ रु॰ सृ॰ ४। ५१-५२)

नारदजीका शिवतीर्थोंमें भ्रमण, शिवगणोंको शापोद्धारकी बात बताना तथा ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे शिवतत्त्वके विषयमें प्रश्न करना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! भगवान् श्रीहरिके अन्तर्धान हो जानेपर मुनिश्रेष्ठ नारद शिवलिङ्गोंका भक्तिपूर्वक दर्शन करते हुए पृथ्वीपर विचरने लगे। ब्राह्मणो! भूमण्डलपर घूम-फिरकर उन्होंने भोग और मोक्ष देनेवाले बहुत-से शिवलिङ्गोंका प्रेमपूर्वक दर्शन किया। दिव्यदर्शी नारदजी भूतलके तीर्थोंमें विचर रहे हैं और इस समय उनका चित्त शुद्ध है—यह जानकर वे दोनों शिवगण उनके पास गये। वे उनके दिये हुए शापसे उद्धारकी इच्छा रखकर वहाँ गये थे। उन्होंने आदरपूर्वक मुनिके दोनों पैर पकड़ लिये और मस्तक झुकाकर भलीभाँति प्रणाम करके शीघ्र ही इस प्रकार कहा—

शिवगण बोले—ब्रह्मन्! हम दोनों शिवके गण हैं। मुने! हमने ही आपका अपराध किया है। राजकुमारी श्रीमतीके स्वयंवरमें आपका चित्त मायासे मोहित हो रहा था। उस समय परमेश्वरकी प्रेरणासे आपने हम दोनोंको शाप दे दिया। वहाँ कुसमय जानकर हमने चुप रह जाना ही अपनी जीवन-रक्षाका उपाय समझा। इसमें किसीका दोष नहीं है। हमें अपने कर्मका ही फल प्राप्त हुआ है। प्रभो! अब आप प्रसन्न होइये और हम दोनोंपर अनुग्रह कीजिये।

नारदजीने कहा—आप दोनों महादेवजीके गण हैं और सत्पुरुषोंके लिये परम सम्माननीय हैं। अतः मेरे मोहरहित एवं सुखदायक यथार्थ वचनको सुनिये। पहले निश्चय ही मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी, बिगड़ गयी थी और मैं सर्वथा मोहके वशीभूत हो गया था। इसीलिये आप दोनोंको मैंने शाप दे दिया। शिवगणो! मैंने जो कुछ कहा है, वह वैसा ही होगा, तथापि मेरी बात सुनिये। मैं आपके लिये शापोद्धारकी बात बता रहा हूँ। आपलोग आज मेरे अपराधको क्षमा कर दें। मुनिवर विश्रवाके वीर्यसे जन्म ग्रहण करके आप सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रसिद्ध (कुम्भकर्ण-रावण) राक्षसराजका पद प्राप्त करेंगे और बलवान्, वैभवसे युक्त तथा परम प्रतापी होंगे। समस्त ब्रह्माण्डके राजा होकर शिवभक्त एवं जितेन्द्रिय होंगे और शिवके ही दूसरे स्वरूप श्रीविष्णुके हाथों मृत्यु पाकर फिर अपने पदपर प्रतिष्ठित हो जायँगे।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! महात्मा नारदमुनिकी यह बात सुनकर वे दोनों

शिवगण प्रसन्न हो सानन्द अपने स्थानको लौट गये। श्रीनारदजी भी अत्यन्त आनन्दित हो अनन्यभावसे भगवान् शिवका ध्यान तथा शिवतीर्थोंका दर्शन करते हुए बारंबार भूमण्डलमें विचरने लगे। अन्तमें वे सबके ऊपर विराजमान शिवप्रिया काशीपुरीमें गये, जो शिवस्वरूपिणी एवं शिवको सुख देनेवाली है। काशीपुरीका दर्शन करके नारदजी कृतार्थ हो गये। उन्होंने भगवान् काशीनाथका दर्शन किया और परम प्रेम एवं परमानन्दसे युक्त हो उनकी पूजा की। काशीका सानन्द सेवन करके वे मुनिश्रेष्ठ कृतार्थताका अनुभव करने लगे और प्रेमसे विह्वल हो उसका नमन, वर्णन तथा स्मरण करते हुए ब्रह्मलोकको गये। निरन्तर शिवका स्मरण करनेसे उनकी बुद्धि शुद्ध हो गयी थी। वहाँ पहुँचकर शिवतत्त्वका विशेषरूपसे ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे नारदजीने ब्रह्माजीको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करके उनसे शिवतत्त्वके विषयमें पूछा। उस समय नारदजीका हृदय भगवान् शंकरके प्रति भक्तिभावनासे परिपूर्ण था।

नारदजी बोले—ब्रह्मन्! परब्रह्म परमात्माके स्वरूपको जाननेवाले पितामह! जगत्प्रभो! आपके कृपाप्रसादसे मैंने भगवान् विष्णुके उत्तम माहात्म्यका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त किया है। भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग, अत्यन्त दुस्तर तपोमार्ग, दानमार्ग तथा तीर्थमार्गका भी वर्णन सुना है। परंतु शिवतत्त्वका ज्ञान मुझे अभीतक नहीं हुआ है। मैं भगवान् शंकरकी पूजा-विधिको भी नहीं जानता। अतः प्रभो! आप क्रमशः इन विषयोंको तथा भगवान् शिवके विविध चरित्रोंको तथा उनके स्वरूप-तत्त्व, प्राकट्य, विवाह, गार्हस्थ्य धर्म—सब मुझे बताइये। निष्पाप पितामह! ये सब बातें तथा और भी जो आवश्यक बातें हों, उन सबका आपको वर्णन करना चाहिये। प्रजानाथ! शिव और शिवाके आविर्भाव एवं विवाहका प्रसङ्ग विशेषरूपसे कहिये—तथा कार्तिकेयके जन्मकी कथा भी मुझे सुनाइये। प्रभो! पहले बहुत लोगोंसे मैंने ये बातें सुनी हैं, किंतु तृप्त नहीं हो सका हूँ। इसीलिये आपकी शरणमें आया हूँ। आप मुझपर कृपा कीजिये।

अपने पुत्र नारदकी यह बात सुनकर लोक-पितामह ब्रह्मा वहाँ इस प्रकार बोले—

(अध्याय ५)

महाप्रलयकालमें केवल सद्ब्रह्मकी सत्ताका प्रतिपादन, उस निर्गुण-निराकार ब्रह्मसे ईश्वरमूर्ति (सदाशिव) का प्राकट्य, सदाशिवद्वारा स्वरूपभूता शक्ति (अम्बिका) का प्रकटीकरण, उन दोनोंके द्वारा उत्तम क्षेत्र (काशी या आनन्दवन) का प्रादुर्भाव, शिवके वामाङ्गसे परम पुरुष (विष्णु) का आविर्भाव तथा उनके सकाशसे प्राकृत तत्त्वोंकी क्रमशः उत्पत्तिका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—ब्रह्मन्! देवशिरोमणे! तुम सदा समस्त जगत्के उपकारमें ही लगे रहते हो। तुमने लोगोंके हितकी कामनासे यह बहुत उत्तम बात पूछी है। जिसके सुननेसे सम्पूर्ण लोकोंके समस्त पापोंका क्षय हो जाता है, उस अनामय शिवतत्त्वका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ। शिवतत्त्वका स्वरूप बड़ा ही उत्कृष्ट और अद्भुत है। जिस समय समस्त चराचर जगत् नष्ट हो गया था, सर्वत्र केवल अन्धकार-ही-अन्धकार था। न सूर्य दिखायी देते थे न चन्द्रमा। अन्यान्य ग्रहों और नक्षत्रोंका भी पता नहीं था। न दिन होता था न रात; अग्नि, पृथ्वी, वायु और जलकी भी सत्ता नहीं थी। प्रधान तत्त्व (अव्याकृत प्रकृति) से रहित सूना आकाशमात्र शेष था, दूसरे किसी तेजकी उपलब्धि नहीं होती थी। अदृष्ट आदिका भी अस्तित्व नहीं था। शब्द और स्पर्श भी साथ छोड़ चुके थे। गन्ध और रूपकी भी अभिव्यक्ति नहीं होती थी। रसका भी अभाव हो गया था। दिशाओंका भी भान नहीं होता था। इस प्रकार सब ओर निरन्तर सूचीभेद्य घोर अन्धकार फैला हुआ था। उस समय 'तत्सद्ब्रह्म' इस श्रुतिमें जो 'सत्' सुना जाता है, एकमात्र वही शेष था। जब 'यह', 'वह', 'ऐसा', 'जो' इत्यादि रूपसे निर्दिष्ट होनेवाला भावाभावात्मक जगत् नहीं था, उस समय एकमात्र वह 'सत्' ही शेष था, जिसे योगीजन अपने हृदयाकाशके

भीतर निरन्तर देखते हैं। वह सत्तत्त्व मनका विषय नहीं है। वाणीकी भी वहाँतक कभी

पहुँच नहीं होती। वह नाम तथा रूप-रंगसे भी शून्य है। वह न स्थूल है न कृश, न ह्रस्व है न दीर्घ तथा न लघु है न गुरु। उसमें न कभी वृद्धि होती है न ह्रास। श्रुति भी उसके विषयमें चकितभावसे 'है' इतना ही कहती है, अर्थात् उसकी सत्तामात्रका ही निरूपण कर पाती है, उसका कोई विशेष विवरण देनेमें असमर्थ हो जाती है। वह सत्य, ज्ञानस्वरूप, अनन्त, परमानन्दमय, परम ज्योतिःस्वरूप, अप्रमेय, आधाररहित, निर्विकार, निराकार, निर्गुण, योगिगम्य, सर्वव्यापी, सबका एकमात्र कारण, निर्विकल्प, निरारम्भ, मायाशून्य, उपद्रव-रहित, अद्वितीय, अनादि, अनन्त, संकोच-विकाससे शून्य तथा चिन्मय है।

जिस परब्रह्मके विषयमें ज्ञान और अज्ञानसे पूर्ण उक्तियोंद्वारा इस प्रकार (ऊपर बताये अनुसार) विकल्प किये जाते हैं; उसने कुछ कालके बाद (सृष्टिका समय आनेपर) द्वितीयकी इच्छा प्रकट की—उसके भीतर एकसे अनेक होनेका संकल्प उदित हुआ। तब उस निराकार परमात्माने अपनी लीलाशक्तिसे अपने लिये मूर्ति (आकार)की कल्पना की। वह मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्य-गुणोंसे सम्पन्न, सर्वज्ञानमयी, शुभस्वरूपा, सर्वव्यापिनी, सर्वरूपा, सर्वदर्शिनी, सर्वकारिणी, सबकी एकमात्र वन्दनीया, सर्वाद्या, सब कुछ देनेवाली और सम्पूर्ण संस्कृतियोंका केन्द्र थी। उस शुद्धरूपिणी ईश्वर-मूर्तिकी कल्पना करके वह अद्वितीय, अनादि, अनन्त, सर्वप्रकाशक, चिन्मय, सर्वव्यापी और अविनाशी परब्रह्म अन्तर्हित हो गया। जो मूर्तिरहित परम ब्रह्म है, उसीकी मूर्ति (चिन्मय आकार) भगवान् सदाशिव हैं। अर्वाचीन और प्राचीन विद्वान् उन्हींको ईश्वर कहते हैं। उस समय एकाकी रहकर स्वेच्छानुसार विहार करनेवाले उन सदाशिवने अपने विग्रहसे स्वयं ही एक स्वरूपभूता शक्तिकी सृष्टि की, जो उनके अपने श्रीअङ्गसे कभी अलग होनेवाली नहीं थी। उस पराशक्तिको प्रधान, प्रकृति, गुणवती, माया, बुद्धितत्त्वकी जननी तथा विकाररहित बताया गया है। वह शक्ति अम्बिका कही गयी है। उसीको प्रकृति, सर्वेश्वरी, त्रिदेवजननी, नित्या और मूलकारण भी कहते हैं। सदाशिवद्वारा प्रकट की गयी उस शक्तिके आठ भुजाएँ हैं। उस शुभलक्षणा देवीके मुखकी शोभा विचित्र है। वह अकेली ही अपने मुखमण्डलमें सदा एक सहस्र चन्द्रमाओंकी कान्ति धारण करती है। नाना प्रकारके आभूषण उसके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। वह देवी नाना प्रकारकी गतियोंसे सम्पन्न है और अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करती है। उसके खुले हुए नेत्र खिले हुए कमलके समान जान पड़ते हैं। वह अचिन्त्य तेजसे जगमगाती है। वह सबकी योनि है और सदा उद्यमशील रहती है। एकाकिनी होनेपर भी वह माया संयोगवशात् अनेक हो जाती है।

ये जो सदाशिव हैं, उन्हें परमपुरुष, ईश्वर, शिव, शम्भु और महेश्वर कहते हैं। वे अपने मस्तकपर आकाश-गङ्गाको धारण करते हैं। उनके भालदेशमें चन्द्रमा शोभा पाते हैं। उनके पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र हैं। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है। वे दस भुजाओंसे युक्त और त्रिशूलधारी हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा

कर्पूरके समान श्वेत-गौर है। ये अपने सारे अङ्गोंमें भस्म रमाये रहते हैं। उन कालरूपी ब्रह्मने एक ही समय शक्तिके साथ 'शिवलोक' नामक क्षेत्रका निर्माण किया था। उस उत्तम क्षेत्रको ही काशी कहते हैं। वह परम निर्वाण या मोक्षका स्थान है, जो सबके ऊपर विराजमान है। ये प्रिया-प्रियतमरूप शक्ति और शिव, जो परमानन्द-स्वरूप हैं, उस मनोरम क्षेत्रमें नित्य निवास करते हैं। काशीपुरी परमानन्दरूपिणी है। मुने! शिव और शिवाने प्रलयकालमें भी कभी उस क्षेत्रको अपने सांनिध्यसे मुक्त नहीं किया है। इसलिये विद्वान् पुरुष उसे 'अविमुक्त क्षेत्र'के नामसे भी जानते हैं। यह क्षेत्र आनन्दका हेतु है। इसलिये पिनाकधारी शिवने पहले उसका नाम 'आनन्दवन' रखा था। उसके बाद वह 'अविमुक्त'के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

देवर्षे! एक समय उस आनन्दवनमें रमण करते हुए शिवा और शिवके मनमें यह इच्छा हुई कि किसी दूसरे पुरुषकी भी सृष्टि करनी चाहिये, जिसपर यह सृष्टि-संचालनका महान् भार रखकर हम दोनों केवल काशीमें रहकर इच्छानुसार विचरें और निर्वाण धारण करें। वही पुरुष हमारे अनुग्रहसे सदा सबकी सृष्टि करे, पालन करे और वही अन्तमें सबका संहार भी करे। यह चित्त एक समुद्रके समान है। इसमें चिन्ताकी उत्ताल तरङ्गें उठ-उठकर इसे चञ्चल बनाये रहती हैं। इसमें सत्त्वगुणरूपी रत्न, तमोगुणरूपी ग्राह और रजोगुणरूपी मूँगे भरे हुए हैं। इस विशाल चित्त-समुद्रको संकुचित करके हम दोनों उस पुरुषके प्रसादसे आनन्द-कानन (काशी)में सुखपूर्वक निवास करें। यह आनन्दवन वह

स्थान है, जहाँ हमारी मनोवृत्ति सब ओरसे सिमिटकर इसीमें लगी हुई है तथा जिसके बाहरका जगत् चिन्तासे आतुर प्रतीत होता है। ऐसा निश्चय करके शक्तिसहित सर्वव्यापी परमेश्वर शिवने अपने वामभागके दसवें अङ्गपर अमृत मल दिया। फिर तो वहाँसे एक पुरुष प्रकट हुआ, जो तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दर था। वह शान्त था। उसमें सत्त्वगुणकी अधिकता थी तथा वह गम्भीरताका अथाह सागर था। मुने! क्षमा नामक गुणसे युक्त उस पुरुषके लिये ढूँढ़नेपर भी कहीं कोई उपमा नहीं मिलती

थी। उसकी कान्ति इन्द्रनील मणिके समान श्याम थी। उसके अङ्ग-अङ्गसे दिव्य शोभा छिटक रही थी और नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान शोभा पा रहे थे। श्रीअङ्गोंपर सुवर्णकी-सी कान्तिवाले दो सुन्दर रेशमी पीताम्बर शोभा दे रहे थे। किसीसे भी पराजित न होनेवाला वह वीर पुरुष अपने प्रचण्ड भुजदण्डोंसे सुशोभित हो रहा था। तदनन्तर उस पुरुषने परमेश्वर शिवको प्रणाम करके कहा—'स्वामिन्! मेरे नाम निश्चित कीजिये और काम बताइये। उस पुरुषकी यह बात सुनकर महेश्वर भगवान् शंकर हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें उससे बोले—

शिवने कहा—वत्स! व्यापक होनेके कारण तुम्हारा विष्णु नाम विख्यात हुआ। इसके सिवा और भी बहुत-से नाम होंगे, जो भक्तोंको सुख देनेवाले होंगे। तुम सुस्थिर उत्तम तप करो; क्योंकि वही समस्त कार्योंका साधन है।

ऐसा कहकर भगवान् शिवने श्वास-मार्गसे श्रीविष्णुको वेदोंका ज्ञान प्रदान किया। तदनन्तर अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीहरि भगवान् शिवको प्रणाम करके बड़ी भारी तपस्या करने लगे और शक्तिसहित परमेश्वर शिव भी पार्षदगणोंके साथ वहाँसे अदृश्य हो गये। भगवान् विष्णुने सुदीर्घ कालतक बड़ी कठोर तपस्या की। तपस्याके परिश्रमसे युक्त भगवान् विष्णुके अङ्गोंसे नाना प्रकारकी जलधाराएँ निकलने लगीं। यह सब भगवान् शिवकी मायासे ही सम्भव हुआ। महामुने! उस जलसे सारा सूना आकाश व्याप्त हो गया। वह ब्रह्मरूप जल अपने स्पर्शमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाला सिद्ध हुआ। उस समय थके हुए परम पुरुष विष्णुने स्वयं उस जलमें शयन किया। वे दीर्घकालतक बड़ी प्रसन्नताके साथ उसमें रहे। नार अर्थात् जलमें शयन करनेके कारण ही उनका 'नारायण' यह श्रुतिसम्मत नाम प्रसिद्ध हुआ। उस समय उन परम पुरुष नारायणके सिवा दूसरी कोई प्राकृत वस्तु नहीं थी। उसके बाद ही उन महात्मा नारायणदेवसे यथासमय सभी तत्त्व प्रकट हुए। महामते! विद्वन्! मैं उन तत्त्वोंकी उत्पत्तिका प्रकार बता रहा हूँ। सुनो, प्रकृतिसे महत्तत्त्व प्रकट हुआ और महत्तत्त्वसे तीनों गुण। इन गुणोंके भेदसे ही त्रिविध अहंकारकी उत्पत्ति हुई। अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ हुईं और उन तन्मात्राओंसे पाँच भूत प्रकट हुए। उसी समय ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंका भी प्रादुर्भाव हुआ। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने तुम्हें तत्त्वोंकी संख्या बतायी है। इनमेंसे पुरुषको छोड़कर शेष सारे तत्त्व प्रकृतिसे प्रकट हुए हैं, इसलिये सब-के-सब जड हैं। तत्त्वोंकी संख्या चौबीस है। उस समय एकाकार हुए चौबीस तत्त्वोंको ग्रहण करके वे परम पुरुष नारायण भगवान् शिवकी इच्छासे ब्रह्मरूप जलमें सो गये।

(अध्याय ६)

☆

भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमलका प्रादुर्भाव, शिवेच्छावश ब्रह्माजीका उससे प्रकट होना, कमलनालके उद्गमका पता लगानेमें असमर्थ ब्रह्माका तप करना, श्रीहरिका उन्हें दर्शन देना, विवादग्रस्त ब्रह्मा-विष्णुके बीचमें अग्नि-स्तम्भका प्रकट होना तथा उसके ओर-छोरका पता न पाकर उन दोनोंका उसे प्रणाम करना

ब्रह्माजी कहते हैं—देवर्षे! जब नारायणदेव जलमें शयन करने लगे, उस समय उनकी नाभिसे भगवान् शंकरके इच्छावश सहसा एक उत्तम कमल प्रकट हुआ, जो बहुत बड़ा था। उसमें असंख्य नालदण्ड थे। उसकी कान्ति कनेरके फूलके समान पीले रंगकी थी तथा उसकी लंबाई और ऊँचाई भी अनन्त योजन थी। वह कमल करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रहा था, सुन्दर होनेके साथ ही सम्पूर्ण तत्त्वोंसे युक्त था और अत्यन्त अद्भुत, परम रमणीय, दर्शनके योग्य तथा सबसे उत्तम था। तत्पश्चात् कल्याणकारी परमेश्वर साम्ब सदाशिवने पूर्ववत् प्रयत्न करके मुझे अपने दाहिने अङ्गसे उत्पन्न किया। मुने! उन महेश्वरने मुझे तुरंत ही अपनी मायासे मोहित करके नारायणदेवके नाभिकमलमें डाल दिया और लीलापूर्वक मुझे वहाँसे प्रकट किया। इस प्रकार उस कमलसे पुत्रके रूपमें मुझ हिरण्यगर्भका जन्म हुआ। मेरे चार मुख हुए और शरीरकी कान्ति लाल हुई। मेरे मस्तक त्रिपुण्ड्रकी रेखासे अङ्कित थे। तात! भगवान् शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण मेरी ज्ञानशक्ति इतनी दुर्बल हो रही थी कि मैंने उस कमलके सिवा दूसरे किसीको अपने शरीरका जनक या पिता नहीं जाना। मैं कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ, मेरा कार्य क्या है, मैं किसका पुत्र होकर उत्पन्न हुआ हूँ और किसने इस समय मेरा निर्माण किया है—इस प्रकार संशयमें पड़े हुए मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—'मैं किसलिये मोहमें पड़ा हुआ हूँ? जिसने मुझे उत्पन्न किया है, उसका पता लगाना तो बहुत सरल है। इस कमलपुष्पका जो पत्रयुक्त नाल है, उसका उद्गमस्थान इस जलके भीतर नीचेकी ओर है। जिसने मुझे उत्पन्न किया है, वह पुरुष भी वहीं होगा—इसमें संशय नहीं है।'

ऐसा निश्चय करके मैंने अपनेको कमलसे नीचे उतारा। मुने! मैं उस कमलकी एक-एक नालमें गया और सैकड़ों वर्षोंतक वहाँ भ्रमण करता रहा, किंतु कहीं भी उस कमलके उद्गमका उत्तम स्थान मुझे नहीं मिला। तब पुनः संशयमें पड़कर मैं उस कमलपुष्पपर जानेको उत्सुक हुआ और नालके मार्गसे उस कमलपर चढ़ने लगा। इस तरह बहुत ऊपर जानेपर भी मैं उस कमलके कोशको न पा सका। उस दशामें मैं और भी मोहित हो उठा। मुने! उस समय भगवान् शिवकी इच्छासे परम मङ्गलमयी उत्तम आकाशवाणी प्रकट हुई, जो मेरे मोहका विध्वंस करनेवाली थी। उस वाणीने कहा—'तप' (तपस्या करो)। उस आकाशवाणीको सुनकर मैंने अपने

जन्मदाता पिताका दर्शन करनेके लिये उस समय पुनः प्रयत्नपूर्वक बारह वर्षोंतक घोर तपस्या की। तब मुझपर अनुग्रह करनेके लिये ही चार भुजाओं और सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित भगवान् विष्णु वहाँ सहसा प्रकट हो गये। उन परम पुरुषने अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रखे थे। उनके सारे अङ्ग सजल जलधरके समान श्यामकान्तिसे सुशोभित थे। उन परम प्रभुने सुन्दर पीताम्बर पहन रखा था। उनके मस्तक आदि अङ्गोंमें मुकुट आदि महामूल्यवान् आभूषण शोभा पाते थे। उनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ था। मैं उनकी छविपर मोहित हो रहा था। वे मुझे करोड़ों कामदेवोंके समान मनोहर दिखायी दिये। उनका वह अत्यन्त सुन्दर रूप देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। वे साँवली और सुनहरी आभासे उद्भासित हो रहे थे। उस समय उन सदसत्स्वरूप, सर्वात्मा, चार भुजा धारण करनेवाले, महाबाहु नारायण-देवको वहाँ उस रूपमें अपने साथ देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ।

तदनन्तर उन नारायणदेवके साथ मेरी बातचीत आरम्भ हुई। भगवान् शिवकी लीलासे वहाँ हम दोनोंमें कुछ विवाद छिड़ गया। इसी समय हमलोगोंके बीचमें एक महान् अग्निस्तम्भ (ज्योतिर्मयलिङ्ग) प्रकट हुआ। मैंने और श्रीविष्णुने क्रमशः ऊपर और नीचे जाकर उसके आदि-अन्तका पता लगानेके लिये बड़ा प्रयत्न किया, परंतु हमें कहीं भी उसका ओर-छोर नहीं मिला। मैं थककर ऊपरसे नीचे लौट आया और भगवान् विष्णु भी उसी तरह नीचेसे ऊपर आकर मुझसे मिले। हम दोनों शिवकी मायासे मोहित थे। श्रीहरिने मेरे साथ आगे-पीछे और अगल-बगलसे परमेश्वर शिवको प्रणाम किया। फिर वे सोचने लगे—'यह क्या वस्तु है?' इसके स्वरूपका निर्देश नहीं किया जा सकता; क्योंकि न तो इसका कोई नाम है और न कर्म ही है। लिङ्गरहित तत्त्व ही यहाँ लिङ्गभावको प्राप्त हो गया है। ध्यानमार्गमें भी इसके स्वरूपका कुछ पता नहीं चलता। इसके बाद मैं और श्रीहरि दोनोंने अपने चित्तको स्वस्थ करके उस अग्निस्तम्भको प्रणाम करना आरम्भ किया।

हम दोनों बोले—महाप्रभो! हम आपके स्वरूपको नहीं जानते। आप जो कोई भी क्यों न हों, आपको हमारा नमस्कार है। महेशान! आप शीघ्र ही हमें अपने यथार्थ रूपका दर्शन कराइये।

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अहंकारसे आविष्ट हुए हम दोनों ही वहाँ नमस्कार करने लगे। ऐसा करते हुए हमारे सौ वर्ष बीत गये।

(अध्याय ७)

☆

ब्रह्मा और विष्णुको भगवान् शिवके शब्दमय शरीरका दर्शन

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ नारद! इस प्रकार हम दोनों देवता गर्वरहित हो निरन्तर प्रणाम करते रहे। हम दोनोंके मनमें एक ही अभिलाषा थी कि इस ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें प्रकट हुए परमेश्वर प्रत्यक्ष दर्शन दें। भगवान् शंकर दीनोंके प्रतिपालक,

अहंकारियोंका गर्व चूर्ण करनेवाले तथा सबके अविनाशी प्रभु हैं। वे हम दोनोंपर दयालु हो गये। उस समय वहाँ उन सुरश्रेष्ठसे, 'ओ३म्' 'ओ३म्' ऐसा शब्दरूप नाद प्रकट हुआ, जो स्पष्टरूपसे सुनायी देता था। वह नाद प्लुत स्वरमें अभिव्यक्त हुआ था। जोरसे प्रकट होनेवाले उस शब्दके विषयमें 'यह क्या है' ऐसा सोचते हुए समस्त देवताओंके आराध्य भगवान् विष्णु मेरे साथ संतुष्टचित्तसे खड़े रहे। वे सर्वथा वैरभावसे रहित थे। उन्होंने लिङ्गके दक्षिणभागमें सनातन आदिवर्ण अकारका दर्शन किया। उत्तरभागमें उकारका, मध्यभागमें मकारका और अन्तमें 'ओ३म्' इस नादका साक्षात् दर्शन एवं अनुभव किया। दक्षिणभागमें प्रकट हुए आदिवर्ण अकारको सूर्यमण्डलके समान तेजोमय देखकर जब उन्होंने उत्तरभागमें दृष्टिपात किया, तब वहाँ उकार वर्ण अग्निके समान दीप्तिशाली दिखायी दिया। मुनिश्रेष्ठ ! इसी तरह उन्होंने मध्यभागमें मकारको चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल कान्तिसे प्रकाशमान देखा। तदनन्तर जब उसके ऊपर दृष्टि डाली, तब शुद्ध स्फटिकमणिके समान निर्मल प्रभासे युक्त, तुरीयातीत, अमल, निष्कल, निरुपद्रव, निर्द्वन्द्व, अद्वितीय, शून्यमय, बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे रहित, बाह्यान्तरभेदसे युक्त, जगत्के भीतर और बाहर स्वयं ही स्थित, आदि, मध्य और अन्तसे रहित, आनन्दके आदि कारण तथा सबके परम आश्रय, सत्य, आनन्द एवं अमृतस्वरूप परब्रह्मका साक्षात्कार किया।

उस समय श्रीहरि यह सोचने लगे कि 'यह अग्निस्तम्भ यहाँ कहाँसे प्रकट हुआ है ? हम दोनों फिर इसकी परीक्षा करें। मैं इस अनुपम अनलस्तम्भके नीचे जाऊँगा।' ऐसा विचार करते हुए श्रीहरिने वेद और शब्द दोनोंके आवेशसे युक्त विश्वात्मा शिवका चिन्तन किया। तब वहाँ एक ऋषि प्रकट हुए, जो ऋषि-समूहके परम साररूप माने जाते हैं। उन्हीं ऋषिके द्वारा परमेश्वर श्रीविष्णुने जाना कि इस शब्दब्रह्ममय शरीरवाले परम लिङ्गके रूपमें साक्षात् परब्रह्मस्वरूप महादेवजी ही यहाँ प्रकट हुए हैं। ये चिन्तारहित (अथवा अचिन्त्य) रुद्र हैं। जहाँ जाकर मनसहित वाणी उसे प्राप्त किये बिना ही लौट आती है, उस परब्रह्म परमात्मा शिवका वाचक एकाक्षर (प्रणव) ही है, वे इसके वाच्यार्थरूप हैं। वह परम कारण, ऋत, सत्य, आनन्द एवं अमृतस्वरूप परात्पर परब्रह्म एकाक्षरका वाच्य है। प्रणवके एक अक्षर अकारसे जगत्के बीजभूत अण्डजन्मा भगवान् ब्रह्माका बोध होता है। उसके दूसरे एक अक्षर उकारसे परम कारणरूप श्रीहरिका बोध होता है और तीसरे एक अक्षर मकारसे भगवान् नील-लोहित शिवका ज्ञान होता है। अकार सृष्टिकर्ता है, उकार मोहमें डालनेवाला है और मकार नित्य अनुग्रह करनेवाला है। मकार-बोध्य सर्वव्यापी शिव बीजी (बीजमात्रके स्वामी) हैं और 'अकार' संज्ञक मुझ ब्रह्माको 'बीज' कहते हैं। 'उकार' नामधारी श्रीहरि योनि हैं। प्रधान और पुरुषके भी ईश्वर जो महेश्वर हैं, वे बीजी, बीज और योनि भी हैं। उन्हींको 'नाद' कहा गया है। (उनके भीतर सबका समावेश है।) बीजी अपनी इच्छासे ही अपने बीजको अनेक रूपोंमें विभक्त करके

स्थित हैं। इन बीजी भगवान् महेश्वरके लिङ्गसे अकाररूप बीज प्रकट हुआ, जो उकाररूप योनिमें स्थापित होकर सब ओर बढ़ने लगा। वह सुवर्णमय अण्डके रूपमें ही बताने योग्य था। उसका और कोई विशेष लक्षण नहीं लक्षित होता था। वह दिव्य अण्ड अनेक वर्षोंतक जलमें ही स्थित रहा। तदनन्तर एक हजार वर्षके बाद उस अण्डके दो टुकड़े हो गये। जलमें स्थित हुआ वह अण्ड अजन्मा ब्रह्माजीकी उत्पत्तिका स्थान था और साक्षात् महेश्वरके आघातसे ही फूटकर दो भागोंमें बँट गया था। उस अवस्थामें उसका ऊपर स्थित हुआ सुवर्णमय कपाल बड़ी शोभा पाने लगा। वही द्युलोकके रूपमें प्रकट हुआ तथा जो उसका दूसरा नीचेवाला कपाल था, वही यह पाँच लक्षणोंसे युक्त पृथिवी है। उस अण्डसे चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिनकी 'क' संज्ञा है। वे समस्त लोकोंके स्रष्टा हैं। इस प्रकार वे भगवान् महेश्वर ही 'अ', 'उ' और 'म्' इन त्रिविध रूपोंमें वर्णित हुए हैं। इसी अभिप्रायसे उन ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप सदाशिवने 'ओ३म्' 'ओ३म्' ऐसा कहा—यह बात यजुर्वेदके श्रेष्ठ मन्त्र कहते हैं। यजुर्वेदके श्रेष्ठ मन्त्रोंका यह कथन सुनकर ऋचाओं और साममन्त्रोंने भी हमसे आदरपूर्वक कहा—'हे हरे! हे ब्रह्मन्! यह बात ऐसी ही है।' इस तरह देवेश्वर शिवको जानकर श्रीहरिने शक्तिसम्भूत मन्त्रोंद्वारा उत्तम एवं महान् अभ्युदयसे शोभित होनेवाले उन महेश्वरदेवका स्तवन किया। इसी बीचमें मेरे साथ विश्वपालक भगवान् विष्णुने एक और भी अद्भुत एवं सुन्दर रूप देखा। मुने! वह रूप पाँच मुखों और दस भुजाओंसे अलंकृत था। उसकी कान्ति कर्पूरके समान गौर थी। वह नाना प्रकारकी छटाओंसे छविमान् और भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे विभूषित था। उस परम उदार महापराक्रमी और महापुरुषके लक्षणोंसे सम्पन्न अत्यन्त उत्कृष्ट रूपका दर्शन करके मैं और श्रीहरि दोनों कृतार्थ हो गये।

तत्पश्चात् परमेश्वर भगवान् महेश प्रसन्न हो अपने दिव्य शब्दमय रूपको प्रकट करके हँसते हुए खड़े हो गये। अकार उनका मस्तक और आकार ललाट है। इकार दाहिना और ईकार बायाँ नेत्र है। उकारको उनका दाहिना और ऊकारको बायाँ कान बताया जाता है। ऋकार उन परमेश्वरका दायाँ कपोल है और ॠकार बायाँ। ऌ और ॡ—ये उनकी नासिकाके दोनों छिद्र हैं। एकार उन सर्वव्यापी प्रभुका ऊपरी ओष्ठ है और ऐकार अधर। ओकार तथा औकार—ये दोनों क्रमशः उनकी ऊपर और नीचेकी दो दन्तपंक्तियाँ हैं। 'अं' और 'अः' उन देवाधिदेव शूलधारी शिवके दोनों तालु हैं। क आदि पाँच अक्षर उनके दाहिने पाँच हाथ हैं और च आदि पाँच अक्षर बायें पाँच हाथ; ट आदि और त आदि पाँच-पाँच अक्षर उनके पैर हैं। पकार पेट है। फकारको दाहिना पार्श्व बताया जाता है और बकारको बायाँ पार्श्व। भकारको कंधा कहते हैं। मकार उन योगी महादेव शम्भुका हृदय है। 'य' से लेकर 'स' तक सात अक्षर सर्वव्यापी शिवके शब्दमय शरीरकी सात धातुएँ हैं। हकार उनकी नाभि है और क्षकारको मेढ्र (मूत्रेन्द्रिय) कहा गया है। इस प्रकार निर्गुण एवं गुणस्वरूप परमात्माके शब्दमय रूपको भगवती उमाके

साथ देखकर मैं और श्रीहरि दोनों कृतार्थ हो गये। इस तरह शब्द-ब्रह्ममय-शरीरधारी महेश्वर शिवका दर्शन पाकर मेरे साथ श्रीहरिने उन्हें प्रणाम किया और पुनः ऊपरकी ओर देखा। उस समय उन्हें पाँच कलाओंसे युक्त ॐकारजनित मन्त्रका साक्षात्कार हुआ। तत्पश्चात् महादेवजीका 'ॐ तत्त्वमसि' यह महावाक्य दृष्टिगोचर हुआ, जो परम उत्तम मन्त्ररूप है तथा शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल है। फिर सम्पूर्ण धर्म और अर्थका साधक तथा बुद्धिस्वरूप गायत्री नामक दूसरा महान् मन्त्र लक्षित हुआ, जिसमें चौबीस अक्षर हैं तथा जो चारों पुरुषार्थरूपी फल देनेवाला है। तत्पश्चात् मृत्युञ्जय-मन्त्र फिर पञ्चाक्षर-मन्त्र तथा दक्षिणामूर्तिसंज्ञक चिन्तामणि-मन्त्रका साक्षात्कार हुआ। इस प्रकार पाँच मन्त्रोंकी उपलब्धि करके भगवान् श्रीहरि उनका जप करने लगे।

तदनन्तर ऋक्, यजुः और साम—ये जिनके रूप हैं, जो ईशोंके मुकुटमणि ईशान हैं, जो पुरातन पुरुष हैं, जिनका हृदय अघोर अर्थात् सौम्य है, जो हृदयको प्रिय लगनेवाले सर्वगुह्य सदाशिव हैं, जिनके चरण वाम—परम सुन्दर हैं, जो महान् देवता हैं और महान् सर्पराजको आभूषणके रूपमें धारण करते हैं, जिनके सभी ओर पैर और सभी ओर नेत्र हैं, जो मुझ ब्रह्माके भी अधिपति, कल्याणकारी तथा सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले हैं, उन वरदायक साम्बशिवका मेरे साथ भगवान् विष्णुने प्रिय वचनोंद्वारा संतुष्टचित्तसे स्तवन किया।

(अध्याय ८)

☆

उमासहित भगवान् शिवका प्राकट्य, उनके द्वारा अपने स्वरूपका विवेचन तथा ब्रह्मा आदि तीनों देवताओंकी एकताका प्रतिपादन

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! भगवान् विष्णुके द्वारा की हुई अपनी स्तुति सुनकर करुणानिधि महेश्वर बड़े प्रसन्न हुए और उमादेवीके साथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये। उस समय उनके पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र शोभा पाते थे। भालदेशमें चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित था। सिरपर जटा धारण किये गौरवर्ण, विशाल-नेत्र शिवने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें विभूति लगा रखी थी। उनके दस भुजाएँ थीं। कण्ठमें नील चिह्न था। उनके श्रीअङ्ग समस्त आभूषणोंसे विभूषित थे। उन सर्वाङ्गसुन्दर शिवके मस्तक भस्ममय त्रिपुण्ड्रसे अङ्कित थे। ऐसे विशेषणोंसे युक्त परमेश्वर महादेवजीको भगवती उमाके साथ उपस्थित देख मैंने और भगवान् विष्णुने पुनः प्रिय वचनोंद्वारा उनकी स्तुति की। तब पापहारी करुणाकर भगवान् महेश्वरने प्रसन्नचित्त होकर उन श्रीविष्णुदेवको श्वासरूपसे वेदका उपदेश दिया। मुने! उनके बाद शिवने परमात्मा श्रीहरिको गुह्य ज्ञान प्रदान किया। फिर उन परमात्माने कृपा करके मुझे भी वह ज्ञान दिया। वेदका ज्ञान प्राप्त करके कृतार्थ हुए भगवान् विष्णुने मेरे साथ हाथ जोड़ महेश्वरको नमस्कार करके पुनः उनसे पूजनकी विधि बताने तथा सदुपदेश देनेके लिये प्रार्थना की।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! श्रीहरिकी

यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए कृपानिधान भगवान् शिवने प्रीतिपूर्वक यह बात कही।

श्रीशिव बोले—सुरश्रेष्ठगण ! मैं तुम दोनोंकी भक्तिसे निश्चय ही बहुत प्रसन्न हूँ। तुमलोग मुझ महादेवकी ओर देखो। इस समय तुम्हें मेरा स्वरूप जैसा दिखायी देता है, वैसे ही रूपका प्रयत्नपूर्वक पूजन-चिन्तन करना चाहिये। तुम दोनों महाबली हो और मेरी स्वरूपभूता प्रकृतिसे प्रकट हुए हो। मुझ सर्वेश्वरके दायें-बायें अङ्गोंसे तुम्हारा आविर्भाव हुआ है। ये लोकपितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने पार्श्वसे उत्पन्न हुए हैं और तुम विष्णु मुझ परमात्माके वाम पार्श्वसे प्रकट हुए हो। मैं तुम दोनोंपर भलीभाँति प्रसन्न हूँ और तुम्हें मनोवाञ्छित वर देता हूँ। मेरी आज्ञासे तुम दोनोंकी मुझमें सुदृढ़ भक्ति हो। ब्रह्मन् ! तुम मेरी आज्ञाका पालन करते हुए जगत्‌की सृष्टि करो और वत्स विष्णो ! तुम इस चराचर जगत्‌का पालन करते रहो।

हम दोनोंसे ऐसा कहकर भगवान् शंकरने हमें पूजाकी उत्तम विधि प्रदान की, जिसके अनुसार पूजित होनेपर वे पूजकको अनेक प्रकारके फल देते हैं। शम्भुकी उपर्युक्त बात सुनकर मेरेसहित श्रीहरिने महेश्वरको हाथ जोड़ प्रणाम करके कहा।

भगवान् विष्णु बोले—प्रभो ! यदि हमारे प्रति आपके हृदयमें प्रीति उत्पन्न हुई है और यदि आप हमें वर देना आवश्यक समझते हैं तो हम यही वर माँगते हैं कि आपमें हम दोनोंकी सदा अनन्य एवं अविचल भक्ति बनी रहे।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! श्रीहरिकी यह बात सुनकर भगवान् हरने पुनः मस्तक झुकाकर प्रणाम करके हाथ जोड़े खड़े हुए उन नारायणदेवसे स्वयं कहा।

श्रीमहेश्वर बोले—मैं सृष्टि, पालन और संहारका कर्ता हूँ, सगुण और निर्गुण हूँ तथा सच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकार परब्रह्म परमात्मा हूँ। विष्णो ! सृष्टि, रक्षा और प्रलयरूप गुणों अथवा कार्योंके भेदसे मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण करके तीन स्वरूपोंमें विभक्त हुआ हूँ। हरे ! वास्तवमें मैं सदा निष्कल हूँ। विष्णो ! तुमने और ब्रह्माने मेरे अवतारके निमित्त जो स्तुति की है, तुम्हारी उस प्रार्थनाको मैं अवश्य सच्ची करूँगा; क्योंकि मैं भक्तवत्सल हूँ। ब्रह्मन् ! मेरा ऐसा ही परम उत्कृष्ट रूप तुम्हारे शरीरसे इस लोकमें प्रकट होगा, जो नामसे 'रुद्र' कहलायेगा। मेरे अंशसे प्रकट हुए रुद्रकी सामर्थ्य मुझसे कम नहीं होगी। जो मैं हूँ, वही यह रुद्र है। पूजाकी विधि-विधानकी दृष्टिसे भी मुझमें और उसमें कोई अन्तर नहीं है। जैसे ज्योतिका जल आदिके साथ सम्पर्क होनेपर भी उसमें स्पर्शदोष नहीं लगता, उसी प्रकार मुझ निर्गुण परमात्माको भी किसीके संयोगसे बन्धन नहीं प्राप्त होता। यह मेरा शिवरूप है। जब रुद्र प्रकट होंगे, तब वे भी शिवके ही तुल्य होंगे। महामुने ! उनमें और शिवमें परायेपनका भेद नहीं करना चाहिये। वास्तवमें एक ही रूप सब जगत्‌में व्यवहार-निर्वाहके लिये दो रूपोंमें विभक्त हो गया है। अतः शिव और रुद्रमें कभी भेदबुद्धि नहीं करनी चाहिये। वास्तवमें सारा दृश्य ही मेरे विचारसे शिवरूप है।

मैं, तुम, ब्रह्मा तथा जो ये रुद्र प्रकट होंगे, वे सब-के-सब एकरूप हैं। इनमें भेद

नहीं है। भेद माननेपर अवश्य ही बन्धन होगा। तथापि मेरा शिवरूप ही सनातन है। यही सदा सब रूपोंका मूलभूत कहा गया है। यह सत्य, ज्ञान एवं अनन्त ब्रह्म है।* ऐसा जानकर सदा मनसे मेरे यथार्थ-स्वरूपका दर्शन करना चाहिये। ब्रह्मन्! सुनो, मैं तुम्हें एक गोपनीय बात बता रहा हूँ। मैं स्वयं ब्रह्माजीकी भ्रुकुटिसे प्रकट होऊँगा। गुणोंमें भी मेरा प्राकट्य कहा गया है। जैसा कि लोगोंने कहा है 'हर तामस प्रकृतिके हैं।' वास्तवमें उस रूपमें अहंकारका वर्णन हुआ है। उस अहंकारको केवल तामस ही नहीं, वैकारिक (सात्त्विक) भी समझना चाहिये (क्योंकि सात्त्विक देवगण वैकारिक अहंकारकी ही सृष्टि हैं)। यह तामस और सात्त्विक आदि भेद केवल नाममात्रका है, वस्तुतः नहीं है। वास्तवमें 'हर'को तामस नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मन्! इस कारणसे तुम्हें ऐसा करना चाहिये। तुम तो इस सृष्टिके निर्माता बनो और श्रीहरि इसका पालन करें तथा मेरे अंशसे प्रकट होनेवाले जो रुद्र हैं, वे इसका प्रलय करनेवाले होंगे। ये जो 'उमा' नामसे विख्यात परमेश्वरी प्रकृति देवी हैं, इन्हींकी शक्तिभूता वाग्देवी ब्रह्माजीका सेवन करेंगी। फिर इन प्रकृति देवीसे वहाँ जो दूसरी शक्ति प्रकट होगी वे लक्ष्मीरूपसे भगवान् विष्णुका आश्रय लेंगी। तदनन्तर पुनः काली नामसे जो तीसरी शक्ति प्रकट होगी, वे निश्चय ही मेरे अंशभूत रुद्रदेवको प्राप्त होंगी। वे कार्यकी सिद्धिके लिये वहाँ ज्योतिरूपसे प्रकट होंगी। इस प्रकार मैंने देवीकी शुभस्वरूपा पराशक्तियोंका परिचय दिया। उनका कार्य क्रमशः सृष्टि, पालन और संहारका सम्पादन ही है। सुरश्रेष्ठ! ये सब-की-सब मेरी प्रिया प्रकृति देवीकी अंशभूता हैं। हरे! तुम लक्ष्मीका सहारा लेकर कार्य करो। ब्रह्मन्! तुम्हें प्रकृतिकी अंशभूता वाग्देवीको पाकर मेरी आज्ञाके अनुसार मनसे सृष्टिकार्यका संचालन करना चाहिये और मैं अपनी प्रियाकी अंशभूता परात्पर कालीका आश्रय ले रुद्ररूपसे प्रलय-सम्बन्धी उत्तम कार्य करूँगा। तुम सब लोग अवश्य ही सम्पूर्ण आश्रमों तथा उनसे भिन्न अन्यान्य विविध कार्योंद्वारा चारों वर्णोंसे भरे हुए लोककी सृष्टि एवं रक्षा आदि करके सुख पाओगे। हरे! तुम ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी हो। अतः अब मेरी आज्ञा पाकर जगत्‌में सब लोगोंके लिये मुक्तिदाता बनो। मेरा दर्शन होनेपर जो फल प्राप्त होता है, वही तुम्हारा दर्शन होनेपर भी होगा। मेरी यह बात सत्य है, सत्य है, इसमें संशयके लिये स्थान नहीं है। मेरे हृदयमें विष्णु हैं और विष्णुके हृदयमें मैं हूँ। जो इन दोनोंमें अन्तर नहीं समझता, वही मुझे विशेष प्रिय है।† श्रीहरि मेरे बायें अङ्गसे प्रकट हुए हैं। ब्रह्माका दाहिने अङ्गसे प्राकट्य हुआ है और महाप्रलयकारी विश्वात्मा रुद्र मेरे हृदयसे प्रादुर्भूत होंगे। विष्णो! मैं ही सृष्टि, पालन

---

* मूलीभूतं सदोक्तं च सत्यज्ञानमनन्तकम्। (शि० पु० रु० सृ० ९।४०)

† ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्॥ उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम। (शि० पु० रु० सृ० ९।५५-५६)

और संहार करनेवाले रज आदि त्रिविध गुणोंद्वारा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रनामसे प्रसिद्ध हो तीन रूपोंमें पृथक्-पृथक् प्रकट होता हूँ। साक्षात् शिव गुणोंसे भिन्न हैं। वे प्रकृति और पुरुषसे भी परे हैं—अद्वितीय, नित्य, अनन्त, पूर्ण एवं निरञ्जन परब्रह्म परमात्मा हैं। तीनों लोकोंका पालन करनेवाले श्रीहरि भीतर तमोगुण और बाहर सत्त्वगुण धारण करते हैं, त्रिलोकीका संहार करनेवाले रुद्रदेव भीतर सत्त्वगुण और बाहर तमोगुण धारण करते हैं तथा त्रिभुवनकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी बाहर और भीतरसे भी रजोगुणी ही हैं। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र—इन तीन देवताओंमें गुण हैं, परंतु शिव गुणातीत माने गये हैं। विष्णो! तुम मेरी आज्ञासे इन सृष्टिकर्ता पितामहका प्रसन्नतापूर्वक पालन करो; ऐसा करनेसे तीनों लोकोंमें पूजनीय होओगे। (अध्याय ९)

☆

श्रीहरिको सृष्टिकी रक्षाका भार एवं भोग-मोक्ष-दानका अधिकार दे भगवान् शिवका अन्तर्धान होना

परमेश्वर शिव बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हरे! विष्णो! अब तुम मेरी दूसरी आज्ञा सुनो। उसका पालन करनेसे तुम सदा समस्त लोकोंमें माननीय और पूजनीय बने रहोगे। ब्रह्माजीके द्वारा रचे गये लोकमें जब कोई दुःख या संकट उत्पन्न हो, तब तुम उन सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेके लिये सदा तत्पर रहना। तुम्हारे सम्पूर्ण दुस्सह कार्योंमें मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। तुम्हारे जो दुर्जेय और अत्यन्त उत्कट शत्रु होंगे, उन सबको मैं मार गिराऊँगा। हरे! तुम नाना प्रकारके अवतार धारण करके लोकमें अपनी उत्तम कीर्तिका विस्तार करो और सबके उद्धारके लिये तत्पर रहो। तुम रुद्रके ध्येय हो और रुद्र तुम्हारे ध्येय हैं। तुममें और रुद्रमें कुछ भी अन्तर नहीं है।* जो मनुष्य रुद्रका भक्त होकर तुम्हारी निन्दा करेगा, उसका सारा पुण्य तत्काल भस्म हो जायगा। पुरुषोत्तम विष्णो! तुमसे द्वेष करनेके कारण मेरी

* रुद्रध्येयो भवांश्चैव भवद्ध्येयो हरस्तथा। युवयोरन्तरं नैव तव रुद्रस्य किंचन॥
(शि॰ पु॰ रु॰ सृ॰ खं॰ १०। ६)

आज्ञासे उसको नरकमें गिरना पड़ेगा। यह बात सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है।* तुम इस लोकमें मनुष्योंके लिये विशेषतः भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले और भक्तोंके ध्येय तथा पूज्य होकर प्राणियोंका निग्रह और अनुग्रह करो।

ऐसा कहकर भगवान् शिवने मेरा हाथ पकड़ लिया और श्रीविष्णुको सौंपकर उनसे कहा—'तुम संकटके समय सदा इनकी सहायता करते रहना। सबके अध्यक्ष होकर सभीको भोग और मोक्ष प्रदान करना तथा सर्वदा समस्त कामनाओंका साधक एवं सर्वश्रेष्ठ बने रहना। जो तुम्हारी शरणमें आ गया, वह निश्चय ही मेरी शरणमें आ गया। जो मुझमें और तुममें अन्तर समझता है, वह अवश्य नरकमें गिरता है।' †

ब्रह्माजी कहते हैं—देवर्षे! भगवान् शिवका यह वचन सुनकर मेरे साथ भगवान् विष्णुने सबको वशमें करनेवाले विश्वनाथको प्रणाम करके मन्दस्वरमें कहा—

श्रीविष्णु बोले—करुणासिन्धो! जगन्नाथ शंकर! मेरी यह बात सुनिये। मैं आपकी आज्ञाके अधीन रहकर यह सब कुछ करूँगा। स्वामिन्! जो मेरा भक्त होकर आपकी निन्दा करे, उसे आप निश्चय ही नरकवास प्रदान करें। नाथ! जो आपका भक्त है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। जो ऐसा जानता है, उसके लिये मोक्ष दुर्लभ नहीं है।‡

श्रीहरिका यह कथन सुनकर दुःखहारी हरने उनकी बातका अनुमोदन किया और नाना प्रकारके धर्मोंका उपदेश देकर हम दोनोंके हितकी इच्छासे हमें अनेक प्रकारके वर दिये। इसके बाद भक्तवत्सल भगवान् शम्भु कृपापूर्वक हमारी ओर देखकर हम दोनोंके देखते-देखते सहसा वहीं अन्तर्धान हो गये। तभीसे इस लोकमें लिङ्ग-पूजाका विधान चालू हुआ है। लिङ्गमें प्रतिष्ठित भगवान् शिव भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। शिवलिङ्गकी जो वेदी या अर्घा है, वह महादेवीका स्वरूप है और लिङ्ग साक्षात् महेश्वरका। लयका अधिष्ठान होनेके कारण भगवान् शिवको लिङ्ग कहा गया है; क्योंकि उन्हींमें निखिल जगत्‌का लय होता है। महामुने! जो शिवलिङ्गके समीप कोई कार्य करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है।

(अध्याय १०)

☆

* रुद्रभक्तो नरो यस्तु तव निन्दां करिष्यति। तस्य पुण्यं च निखिलं द्रुतं भस्म भविष्यति॥
नरके पतनं तस्य त्वद्द्वेषात्पुरुषोत्तम। मदाज्ञया भवेद्विष्णो सत्यं सत्यं न संशयः॥
(शि० पु० रु० सृ० खं० १०। ८-९)

† त्वां यः समाश्रितो नूनं मामेव स समाश्रितः। अन्तरं यश्च जानाति निरये पतति ध्रुवम्॥
(शि० पु० रु० सृ० खं० १०। १४)

‡ मम भक्तश्च यः स्वामिंस्तव निन्दां करिष्यति। तस्य वै निरये वासं प्रयच्छ नियतं ध्रुवम्॥
त्वद्भक्तो यो भवेत्स्वामिन्मम प्रियतरो हि सः। एवं वै यो विजानाति तस्य मुक्तिर्न दुर्लभा॥
(शि० पु० रु० सृ० खं० १०। ३०-३१)

शिवपूजनकी विधि तथा उसका फल

ऋषि बोले—व्यासशिष्य महाभाग सूतजी ! आपको नमस्कार है। आज आपने भगवान् शिवकी बड़ी अद्भुत एवं परम पावन कथा सुनायी है। दयानिधे ! ब्रह्मा और नारदजीके संवादके अनुसार आप हमें शिवपूजनकी वह विधि बताइये, जिससे यहाँ भगवान् शिव संतुष्ट होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी शिवकी पूजा करते हैं। वह पूजन कैसे करना चाहिये ? आपने व्यासजीके मुखसे इस विषयको जिस प्रकार सुना हो, वह बताइये।

महर्षियोंका वह कल्याणप्रद एवं श्रुतिसम्मत वचन सुनकर सूतजीने उन मुनियोंके प्रश्नके अनुसार सब बातें प्रसन्नतापूर्वक बतायीं।

सूतजी बोले—मुनीश्वरो ! आपने बहुत अच्छी बात पूछी है। परंतु वह रहस्यकी बात है। मैंने इस विषयको जैसा सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसके अनुसार आज कुछ कह रहा हूँ। जैसे आपलोग पूछ रहे हैं, उसी तरह पूर्वकालमें व्यासजीने सनत्कुमारजीसे पूछा था। फिर उसे उपमन्युजीने भी सुना था। व्यासजीने शिवपूजन आदि जो भी विषय सुना था, उसे सुनकर उन्होंने लोकहितकी कामनासे मुझे पढ़ा दिया था। इसी विषयको भगवान् श्रीकृष्णने महात्मा उपमन्युसे सुना था। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने नारदजीसे इस विषयमें जो कुछ कहा था, वही इस समय मैं कहूँगा।

ब्रह्माजीने कहा—नारद ! मैं संक्षेपसे लिङ्गपूजनकी विधि बता रहा हूँ, सुनो। जैसा पहले कहा गया है, वैसा जो भगवान् शंकरका सुखमय, निर्मल एवं सनातन रूप है, उसका उत्तम भक्तिभावसे पूजन करे, इससे समस्त मनोवाञ्छित फलोंकी प्राप्ति होगी। दरिद्रता, रोग, दुःख तथा शत्रुजनित पीड़ा—ये चार प्रकारके पाप (कष्ट) तभीतक रहते हैं, जबतक मनुष्य भगवान् शिवका पूजन नहीं करता। भगवान् शिवकी पूजा होते ही सारे दुःख विलीन हो जाते और समस्त सुखोंकी प्राप्ति हो जाती है। तत्पश्चात् समय आनेपर उपासककी मुक्ति भी होती है। जो मानव-शरीरका आश्रय लेकर मुख्यतया संतान-सुखकी कामना करता है उसे चाहिये कि वह सम्पूर्ण कार्यों और मनोरथोंके साधक महादेवजीकी पूजा करे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी सम्पूर्ण कामनाओं तथा प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये क्रमसे विधिके अनुसार भगवान् शंकरकी पूजा करे। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर गुरु तथा शिवका स्मरण करके तीर्थोंका चिन्तन एवं भगवान् विष्णुका ध्यान करे। फिर मेरा, देवताओंका और मुनि आदिका भी स्मरण-चिन्तन करके स्तोत्रपाठपूर्वक शंकरजीका विधिपूर्वक नाम ले। उसके बाद शय्यासे उठकर निवास-स्थानसे दक्षिण दिशामें जाकर मलत्याग करे। मुने ! एकान्तमें मलोत्सर्ग करना चाहिये। उससे शुद्ध होनेके लिये जो विधि मैंने सुन रखी है, उसीको आज कहता हूँ। मनको एकाग्र करके सुनो।

ब्राह्मण गुदाकी शुद्धिके लिये उसमें पाँच बार शुद्ध मिट्टीका लेप करे और धोये। क्षत्रिय चार बार, वैश्य तीन बार और शूद्र दो बार विधिपूर्वक गुदाकी शुद्धिके लिये उसमें

मिट्टी लगाये। लिङ्गमें भी एक बार प्रयत्नपूर्वक मिट्टी लगानी चाहिये। तत्पश्चात् बायें हाथमें दस बार और दोनों हाथोंमें सात बार मिट्टी लगाकर धोये। तात! प्रत्येक पैरमें तीन-तीन बार मिट्टी लगाये। फिर दोनों हाथोंमें भी मिट्टी लगाकर धोये। स्त्रियोंको शूद्रकी ही भाँति अच्छी तरह मिट्टी लगानी चाहिये। हाथ-पैर धोकर पूर्ववत् शुद्ध मिट्टी ले और उसे लगाकर दाँत साफ करे। फिर अपने वर्णके अनुसार मनुष्य दतुअन करे। ब्राह्मणको बारह अंगुलकी दतुअन करनी चाहिये। क्षत्रिय ग्यारह अंगुल, वैश्य दस अंगुल और शूद्र नौ अंगुलकी दतुअन करे। यह दतुअनका मान बताया गया। मनुस्मृतिके अनुसार कालदोषका विचार करके ही दतुअन करे या त्याग दे। तात! षष्ठी, प्रतिपदा, अमावास्या, नवमी, व्रतका दिन, सूर्यास्तका समय, रविवार तथा श्राद्ध-दिवस—ये दन्तधावनके लिये वर्जित हैं—इनमें दतुअन नहीं करनी चाहिये। दतुअनके पश्चात् तीर्थ (जलाशय) आदिमें जाकर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये, विशेष देश-काल आनेपर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करना उचित है। स्नानके पश्चात् पहले आचमन करके वह धुला हुआ वस्त्र धारण करे। फिर सुन्दर एकान्त स्थलमें बैठकर संध्याविधिका अनुष्ठान करे। यथायोग्य संध्याविधिका पालन करके पूजाका कार्य आरम्भ करे।

मनको सुस्थिर करके पूजागृहमें प्रवेश करे। वहाँ पूजन-सामग्री लेकर सुन्दर आसनपर बैठे। पहले न्यास आदि करके क्रमशः महादेवजीकी पूजा करे। शिवकी पूजासे पहले गणेशजीकी, द्वारपालोंकी और दिक्पालोंकी भी भलीभाँति पूजा करके पीछे देवताके लिये पीठस्थानकी कल्पना करे। अथवा अष्टदलकमल बनाकर पूजाद्रव्यके समीप बैठे और उस कमलपर ही भगवान् शिवको समासीन करे। तत्पश्चात् तीन आचमन करके पुनः दोनों हाथ धोकर तीन प्राणायाम करके मध्यम प्राणायाम अर्थात् कुम्भक करते समय त्रिनेत्रधारी भगवान् शिवका इस प्रकार ध्यान करे—उनके पाँच मुख हैं, दस भुजाएँ हैं, शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल कान्ति है, सब प्रकारके आभूषण उनके श्रीअङ्गोंको विभूषित करते हैं तथा वे व्याघ्रचर्मकी चादर ओढ़े हुए हैं। इस तरह ध्यान करके यह भावना करे कि मुझे भी इनके समान ही रूप प्राप्त हो जाय। ऐसी भावना करके मनुष्य सदाके लिये अपने पापको भस्म कर डाले। इस प्रकार भावनाद्वारा शिवका ही शरीर धारण करके उन परमेश्वरकी पूजा करे। शरीरशुद्धि करके मूलमन्त्रका क्रमशः न्यास करे अथवा सर्वत्र प्रणवसे ही षडङ्ग न्यास करे। 'ॐ अद्येत्यादि०' रूपसे संकल्प-वाक्यका प्रयोग करके फिर पूजा आरम्भ करे। पाद्य, अर्घ्य और आचमनके लिये पात्रोंको तैयार करके रखे। बुद्धिमान् पुरुष विधिपूर्वक भिन्न-भिन्न प्रकारके नौ कलश स्थापित करे। उन्हें कुशाओंसे ढककर रखे और कुशाओंसे ही जल लेकर उन सबका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् उन-उन सभी पात्रोंमें शीतल जल डाले। फिर बुद्धिमान् पुरुष देख-भालकर प्रणवमन्त्रके द्वारा उनमें निम्नाङ्कित द्रव्योंको डाले। खस और चन्दनको पाद्यपात्रमें रखे। चमेलीके फूल, शीतलचीनी, कपूर, बड़की जड़ तथा तमाल—इन सबको यथोचित-

रूपसे कूट-पीसकर चूर्ण बना ले और आचमनीयके पात्रमें डाले। इलायची और चन्दनको तो सभी पात्रोंमें डालना चाहिये। देवाधिदेव महादेवजीके पार्श्वभागमें नन्दीश्वरका पूजन करे। गन्ध, धूप तथा भाँति-भाँतिके दीपोंद्वारा शिवकी पूजा करे। फिर लिङ्गशुद्धि करके मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक मन्त्रसमूहोंके आदिमें प्रणव तथा अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर उनके द्वारा इष्टदेवके लिये यथोचित आसनकी कल्पना करे। फिर प्रणवसे पद्मासनकी कल्पना करके यह भावना करे कि इस कमलका पूर्वदल साक्षात् अणिमा नामक ऐश्वर्यरूप तथा अविनाशी है। दक्षिणदल लघिमा है। पश्चिमदल महिमा है। उत्तरदल प्राप्ति है। अग्निकोणका दल प्राकाम्य है। नैर्ऋत्य-कोणका दल ईशित्व है। वायव्यकोणका दल वशित्व है। ईशानकोणका दल सर्वज्ञत्व है और उस कमलकी कर्णिकाको सोम कहा जाता है। सोमके नीचे सूर्य है, सूर्यके नीचे अग्नि है और अग्निके भी नीचे धर्म आदिके स्थान हैं। क्रमशः ऐसी कल्पना करनेके पश्चात् चारों दिशाओंमें अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार तथा उनके विकारोंकी कल्पना करे। सोमके अन्तमें सत्त्व, रज और तम— इन तीनों गुणोंकी कल्पना करे। इसके बाद 'सद्योजातं प्रपद्यामि' इत्यादि मन्त्रसे परमेश्वर शिवका आवाहन करके 'ॐ वामदेवाय नमः' इत्यादि वामदेव-मन्त्रसे उन्हें आसनपर विराजमान करे। फिर 'ॐ तत्पुरुषाय विद्महे' इत्यादि रुद्रगायत्रीद्वारा इष्टदेवका सांनिध्य प्राप्त करके उन्हें 'अघोरेभ्योऽथ' इत्यादि अघोरमन्त्रसे वहाँ निरुद्ध करे। फिर 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इत्यादि मन्त्रसे आराध्य देवका पूजन करे।

पाद्य और आचमनीय अर्पित करके अर्घ्य दे। तत्पश्चात् गन्ध और चन्दनमिश्रित जलसे विधिपूर्वक रुद्रदेवको स्नान कराये। फिर पञ्चगव्यनिर्माणकी विधिसे पाँचों द्रव्योंको एक पात्रमें लेकर प्रणवसे ही अभिमन्त्रित करके उन मिश्रित गव्यपदार्थों-द्वारा भगवान्‌को नहलाये। तत्पश्चात् पृथक्-पृथक् दूध, दही, मधु, गन्नेके रस तथा घीसे नहलाकर समस्त अभीष्टोंके दाता और हितकारी पूजनीय महादेवजीका प्रणवके उच्चारणपूर्वक पवित्र द्रव्योंद्वारा अभिषेक करे। पवित्र जलपात्रोंमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल डाले। डालनेसे पहले साधक श्वेत वस्त्रसे उस जलको यथोचित रीतिसे छान ले। उस जलको तबतक दूर न करे, जबतक इष्टदेवको चन्दन न चढ़ा ले। तब सुन्दर अक्षतोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक शंकरजीकी पूजा करे। उनके ऊपर कुश, अपामार्ग, कपूर, चमेली, चम्पा, गुलाब, श्वेत कनेर, बेला, कमल और उत्पल आदि भाँति-भाँतिके अपूर्व पुष्प एवं चन्दन आदि चढ़ाकर पूजा करे। परमेश्वर शिवके ऊपर जलकी धारा गिरती रहे, इसकी भी व्यवस्था करे। जलसे भरे भाँति-भाँतिके पात्रोंद्वारा महेश्वरको नहलाये। मन्त्रोच्चारणपूर्वक पूजा करनी चाहिये। वह समस्त फलोंको देनेवाली होती है।

तात! अब मैं तुम्हें समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंकी सिद्धिके लिये उन पूजा-सम्बन्धी मन्त्रोंको भी संक्षेपसे बता रहा हूँ, सावधानीके साथ सुनो। पावमानमन्त्रसे, 'वाङ्म०' इत्यादि मन्त्रसे, रुद्रमन्त्र तथा नीलरुद्रमन्त्रसे, सुन्दर एवं शुभ पुरुषसूक्तसे,

श्रीसूक्तसे, सुन्दर अथर्वशीर्षके मन्त्रसे, 'आ नो भद्रा०' इत्यादि शान्तिमन्त्रसे, शान्तिसम्बन्धी दूसरे मन्त्रोंसे, भारुण्डमन्त्र और अरुणमन्त्रोंसे, अर्थाभीष्टसाम तथा देवव्रतसामसे, 'अभि त्वा०' इत्यादि रथन्तरसामसे, पुरुषसूक्तसे, मृत्युञ्जयमन्त्रसे तथा पञ्चाक्षरमन्त्रसे पूजा करे। एक सहस्र अथवा एक सौ एक जलधाराएँ गिरानेकी व्यवस्था करे। यह सब वेदमार्गसे अथवा नाममन्त्रोंसे करना चाहिये। तदनन्तर भगवान् शंकरके ऊपर चन्दन और फूल आदि चढ़ाये। प्रणवसे ही मुखवास (ताम्बूल) आदि अर्पित करे। इसके बाद जो स्फटिकमणिके समान निर्मल, निष्कल, अविनाशी, सर्वलोककारण, सर्वलोकमय परमदेव हैं; जो ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और विष्णु आदि देवताओंकी भी दृष्टिमें नहीं आते; वेदवेत्ता विद्वानोंने जिन्हें वेदान्तमें मन-वाणीके अगोचर बताया है; जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित तथा समस्त रोगियोंके लिये औषधरूप हैं; जिनकी शिवतत्त्वके नामसे ख्याति है तथा जो शिवलिङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, उन भगवान् शिवका शिवलिङ्गके मस्तकपर प्रणवमन्त्रसे ही पूजन करे। धूप, दीप, नैवेद्य, सुन्दर ताम्बूल एवं सुरम्य आरतीद्वारा यथोक्त विधिसे पूजा करके स्तोत्रों तथा अन्य नाना प्रकारके मन्त्रोंद्वारा उन्हें नमस्कार करे। फिर अर्घ्य देकर भगवान्‌के चरणोंमें फूल बिखेरे और साष्टाङ्ग प्रणाम करके देवेश्वर शिवकी आराधना करे। फिर हाथमें फूल लेकर खड़ा हो जाय और दोनों हाथ जोड़कर निम्नाङ्कित मन्त्रसे सर्वेश्वर शंकरकी पुनः प्रार्थना करे—

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया।
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकर॥

'कल्याणकारी शिव! मैंने अनजानमें अथवा जान-बूझकर जो जप-पूजा आदि सत्कर्म किये हों, वे आपकी कृपासे सफल हों।'

इस प्रकार पढ़कर भगवान् शिवके ऊपर प्रसन्नतापूर्वक फूल चढ़ाये। स्वस्तिवाचन[1] करके नाना प्रकारकी आशीः[2] प्रार्थना करे। फिर शिवके ऊपर मार्जन[3] करना चाहिये। मार्जनके बाद नमस्कार करके अपराधके लिये क्षमा[4]-प्रार्थना करते हुए पुनरागमनके लिये विसर्जन[5] करना चाहिये। इसके बाद 'अघा'[6] से आरम्भ होनेवाले मन्त्रका उच्चारण करके नमस्कार करे। फिर सम्पूर्ण

---

१. 'ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥' इत्यादि स्वस्तिवाचनसम्बन्धी मन्त्र हैं। २. 'काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी। देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥ सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥' इत्यादि आशीःप्रार्थनाएँ हैं। ३. 'ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः' (यजु० ११। ५०—५२) इत्यादि तीन मार्जन-मन्त्र कहे गये हैं; इन्हें पढ़ते हुए इष्टदेवपर जल छिड़कना 'मार्जन' कहलाता है। ४. 'अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया। तानि सर्वाणि मे देव क्षमस्व परमेश्वर॥' इत्यादि क्षमा-प्रार्थनासम्बन्धी श्लोक हैं। ५. 'यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्। अभीष्टफलदानाय पुनरागमनाय च॥' इत्यादि विसर्जनसम्बन्धी श्लोक हैं। ६. 'ॐ अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरँहसः पिपृता निरवद्यात्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।' (यजु० ३३। ४२)

भावसे विभोर हो इस प्रकार प्रार्थना करे—

शिवे भक्तिः शिवे भक्तिः शिवे भक्तिर्भवे भवे।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम॥

'प्रत्येक जन्ममें मेरी शिवमें भक्ति हो, शिवमें भक्ति हो, शिवमें भक्ति हो। शिवके सिवा दूसरा कोई मुझे शरण देनेवाला नहीं। महादेव! आप ही मेरे लिये शरणदाता हैं।'

इस प्रकार प्रार्थना करके सम्पूर्ण सिद्धियोंके दाता देवेश्वर शिवका पराभक्तिके द्वारा पूजन करे। विशेषतः गलेकी आवाजसे भगवान्‌को संतुष्ट करे। फिर सपरिवार नमस्कार करके अनुपम प्रसन्नताका अनुभव करते हुए समस्त लौकिक कार्य सुखपूर्वक करता रहे।

जो इस प्रकार शिवभक्तिपरायण हो प्रतिदिन पूजन करता है, उसे अवश्य ही पग-पगपर सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है। वह उत्तम वक्ता होता है तथा उसे मनोवाञ्छित फलकी निश्चय ही प्राप्ति होती है। रोग, दुःख, दूसरोंके निमित्तसे होनेवाला उद्वेग, कुटिलता तथा विष आदिके रूपमें जो-जो कष्ट उपस्थित होता है, उसे कल्याणकारी परम शिव अवश्य नष्ट कर देते हैं। उस उपासकका कल्याण होता है। भगवान् शंकरकी पूजासे उसमें अवश्य सद्गुणोंकी वृद्धि होती है—ठीक उसी तरह, जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ते हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद! इस प्रकार मैंने शिवकी पूजाका विधान बताया। अब तुम क्या सुनना चाहते हो? कौन-सा प्रश्न पूछनेवाले हो?

(अध्याय ११)

☆

भगवान् शिवकी श्रेष्ठता तथा उनके पूजनकी अनिवार्य आवश्यकताका प्रतिपादन

नारदजी बोले—ब्रह्मन्! प्रजापते! आप धन्य हैं; क्योंकि आपकी बुद्धि भगवान् शिवमें लगी हुई है। विधे! आप पुनः इसी विषयका सम्यक् प्रकारसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—तात! एक समयकी बात है, मैं सब ओरसे ऋषियों तथा देवताओंको बुलाकर उन सबको क्षीरसागरके तटपर ले गया, जहाँ सबका हित-साधन करनेवाले भगवान् विष्णु निवास करते हैं। वहाँ देवताओंके पूछनेपर भगवान् विष्णुने सबके लिये शिवपूजनकी ही श्रेष्ठता बतलाकर यह कहा कि 'एक मुहूर्त या एक क्षण भी जो शिवका पूजन नहीं किया जाता, वही हानि है, वही महान्

छिद्र है, वही अंधापन है और वही मूर्खता है। जो भगवान् शिवकी भक्तिमें तत्पर हैं, जो मनसे उन्हींको प्रणाम और उन्हींका चिन्तन करते हैं, वे कभी दुःखके भागी नहीं होते *। जो महान् सौभाग्यशाली पुरुष मनोहर भवन, सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित स्त्रियाँ, जितनेसे मनको संतोष हो उतना धन, पुत्र-पौत्र आदि संतति, आरोग्य, सुन्दर शरीर, अलौकिक प्रतिष्ठा, स्वर्गीय सुख, अन्तमें मोक्षरूपी फल अथवा परमेश्वर शिवकी भक्ति चाहते हैं, वे पूर्वजन्मोंके महान् पुण्यसे भगवान् सदाशिवकी पूजा-अर्चामें प्रवृत्त होते हैं। जो पुरुष नित्य-भक्तिपरायण हो शिवलिङ्गकी पूजा करता है, उसको सफल सिद्धि प्राप्त होती है तथा वह पापोंके चक्करमें नहीं पड़ता।

भगवान्‌के इस प्रकार उपदेश देनेपर देवताओंने उन श्रीहरिको प्रणाम किया और मनुष्योंकी समस्त कामनाओंकी पूर्तिके लिये उनसे शिवलिङ्ग देनेके लिये प्रार्थना की। मुनिश्रेष्ठ उस प्रार्थनाको सुनकर जीवोंके उद्धारमें तत्पर रहनेवाले भगवान् विष्णुने विश्वकर्माको बुलाकर कहा—'विश्वकर्मन्! तुम मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण देवताओंको सुन्दर शिवलिङ्गका निर्माण करके दो।' तब विश्वकर्माने मेरी और श्रीहरिकी आज्ञाके अनुसार उन देवताओंको उनके अधिकारके अनुसार शिवलिङ्ग बनाकर दिये।

मुनिश्रेष्ठ नारद! किस देवताको कौन-सा शिवलिङ्ग प्राप्त हुआ, इसका वर्णन आज मैं कर रहा हूँ; उसे सुनो। इन्द्र पद्मराग-मणिके बने हुए शिवलिङ्गकी और कुबेर सुवर्णमय लिङ्गकी पूजा करते हैं। धर्म पीतमणिमय (पुखराजके बने हुए) लिङ्गकी तथा वरुण श्यामवर्णके शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं। भगवान् विष्णु इन्द्रनीलमय तथा ब्रह्मा हेममय लिङ्गकी पूजा करते हैं। मुने! विश्वेदेवगण चाँदीके शिवलिङ्गकी, वसुगण पीतलके बने हुए लिङ्गकी तथा दोनों अश्विनीकुमार पार्थिवलिङ्गकी पूजा करते हैं। लक्ष्मीदेवी स्फटिकमय लिङ्गकी, आदित्यगण ताम्रमय लिङ्गकी, राजा सोम मोतीके बने हुए लिङ्गकी तथा अग्निदेव वज्र (हीरे)के लिङ्गकी उपासना करते हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मण और उनकी पत्नियाँ मिट्टीके बने हुए शिवलिङ्गका, मयासुर चन्दननिर्मित लिङ्गका और नागगण मूँगेके बने हुए शिवलिङ्गका आदरपूर्वक पूजन करते हैं। देवी मक्खनके बने हुए लिङ्गकी, योगीजन भस्ममय लिङ्गकी, यक्षगण दधिनिर्मित लिङ्गकी, छायादेवी आटेसे बनाये हुए लिङ्गकी और ब्रह्मपत्नी रत्नमय शिवलिङ्गकी निश्चितरूपसे पूजा करती हैं। बाणासुर पारद या पार्थिव-लिङ्गकी पूजा करता है। दूसरे लोग भी ऐसा ही करते हैं। ऐसे-ऐसे शिवलिङ्ग बनाकर विश्वकर्माने विभिन्न लोगोंको दिये तथा वे सब देवता और ऋषि उन लिङ्गोंकी पूजा करते हैं। भगवान् विष्णुने इस तरह देवताओंको उनके हितकी कामनासे शिवलिङ्ग देकर उनसे तथा मुझ ब्रह्मासे पिनाकपाणि महादेवके पूजनकी विधि भी

* भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः। भवसंस्मरणा ये च न ते दुःखस्य भाजनाः॥

(शि० पु० रु० सृ० खं० १२।२१)

बतायी। पूजन-विधिसम्बन्धी उनके वचनोंको सुनकर देवशिरोमणियोंसहित मैं ब्रह्मा हृदयमें हर्ष लिये अपने धाममें आ गया। मुने! वहाँ आकर मैंने समस्त देवताओं और ऋषियोंको शिव-पूजाकी उत्तम विधि बतायी, जो सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली है।

उस समय मुझ ब्रह्माने कहा—देवताओंसहित समस्त ऋषियो! तुम प्रेमपरायण होकर सुनो; मैं प्रसन्नतापूर्वक तुमसे शिवपूजनकी उस विधिका वर्णन करता हूँ, जो भोग और मोक्ष देनेवाली है। देवताओ और मुनीश्वरो! समस्त जन्तुओंमें मनुष्य-जन्म प्राप्त करना प्रायः दुर्लभ है। उनमें भी उत्तम कुलमें जन्म तो और भी दुर्लभ है। उत्तम कुलमें भी आचारवान् ब्राह्मणोंके यहाँ उत्पन्न होना उत्तम पुण्यसे ही सम्भव है। यदि वैसा जन्म सुलभ हो जाय तो भगवान् शिवके संतोषके लिये उस उत्तम कर्मका अनुष्ठान करे, जो अपने वर्ण और आश्रमके लिये शास्त्रोंद्वारा प्रतिपादित है। जिस जातिके लिये जो कर्म बताया गया है, उसका उल्लङ्घन न करे। जितनी सम्पत्ति हो, उसके अनुसार ही दान करे। कर्ममय सहस्रों यज्ञोंसे तपोयज्ञ बढ़कर है। सहस्रों तपोयज्ञोंसे जपयज्ञका महत्त्व अधिक है। ध्यानयज्ञसे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। ध्यान ज्ञानका साधन है; क्योंकि योगी ध्यानके द्वारा अपने इष्टदेव समरस शिवका साक्षात्कार करता है।* ध्यानयज्ञमें तत्पर रहनेवाले उपासकके लिये भगवान् शिव सदा ही संनिहित हैं। जो विज्ञानसे सम्पन्न हैं, उन पुरुषोंकी शुद्धिके लिये किसी प्रायश्चित्त आदिकी आवश्यकता नहीं है।

मनुष्यको जबतक ज्ञानकी प्राप्ति न हो, तबतक वह विश्वास दिलानेके लिये कर्मसे ही भगवान् शिवकी आराधना करे। जगत्के लोगोंको एक ही परमात्मा अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त हो रहा है। एकमात्र भगवान् सूर्य एक स्थानमें रहकर भी जलाशय आदि विभिन्न वस्तुओंमें अनेक-से दीखते हैं। देवताओ! संसारमें जो-जो सत् या असत् वस्तु देखी या सुनी जाती है, वह सब परब्रह्म शिवरूप ही है—ऐसा समझो। जबतक तत्त्वज्ञान न हो जाय, तबतक प्रतिमाकी पूजा आवश्यक है। ज्ञानके अभावमें भी जो प्रतिमा-पूजाकी अवहेलना करता है, उसका पतन निश्चित है। इसलिये ब्राह्मणो! यह यथार्थ बात सुनो। अपनी जातिके लिये जो कर्म बताया गया है, उसका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। जहाँ-जहाँ यथावत् भक्ति हो, उस-उस आराध्यदेवका पूजन आदि अवश्य करना चाहिये; क्योंकि पूजन और दान आदिके बिना पातक दूर नहीं होते।† जैसे मैले कपड़ेमें रंग बहुत अच्छा नहीं चढ़ता है किंतु जब उसको धोकर स्वच्छ कर लिया जाता है, तब उसपर सब रंग अच्छी तरह चढ़ते हैं,

* ध्यानयज्ञात्परं नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम्। यतः समरसे स्वेष्टं योगी ध्यानेन पश्यति॥
(शि० पु० रु० सृ० १२।४८)

† यत्र यत्र यथाभक्तिः कर्तव्यं पूजनादिकम्। विना पूजनदानादि पातकं न च दूरतः॥
(शि० पु० रु० सृ० खं० १२।६९)

इसी प्रकार देवताओंकी भलीभाँति पूजासे जब त्रिविध शरीर पूर्णतया निर्मल हो जाता है, तभी उसपर ज्ञानका रंग चढ़ता है और तभी विज्ञानका प्राकट्य होता है। जब विज्ञान हो जाता है, तब भेदभावकी निवृत्ति हो जाती है। भेदकी सम्पूर्णतया निवृत्ति हो जानेपर द्वन्द्व-दुःख दूर हो जाते हैं और द्वन्द्व-दुःखसे रहित पुरुष शिवरूप हो जाता है।

मनुष्य जबतक गृहस्थ-आश्रममें रहे, तबतक पाँचों देवताओंकी तथा उनमें श्रेष्ठ भगवान् शंकरकी प्रतिमाका उत्तम प्रेमके साथ पूजन करे। अथवा जो सबके एकमात्र मूल हैं, उन भगवान् शिवकी ही पूजा सबसे बढ़कर है; क्योंकि मूलके सींचे जानेपर शाखास्थानीय सम्पूर्ण देवता स्वतः तृप्त हो जाते हैं। अतः जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको पाना चाहता है, वह अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहकर लोककल्याणकारी भगवान् शंकरका पूजन करे।

(अध्याय १२)

☆

शिवपूजनकी सर्वोत्तम विधिका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—अब मैं पूजाकी सर्वोत्तम विधि बता रहा हूँ, जो समस्त अभीष्ट तथा सुखोंको सुलभ करानेवाली है। देवताओ तथा ऋषियो! तुम ध्यान देकर सुनो। उपासकको चाहिये कि वह ब्राह्म मुहूर्तमें शयनसे उठकर जगदम्बा पार्वती-सहित भगवान् शिवका स्मरण करे तथा हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर भक्तिपूर्वक उनसे प्रार्थना करे—'देवेश्वर! उठिये, उठिये! मेरे हृदय-मन्दिरमें शयन करनेवाले देवता! उठिये! उमाकान्त! उठिये और ब्रह्माण्डमें सबका मङ्गल कीजिये। मैं धर्मको जानता हूँ, किंतु मेरी उसमें प्रवृत्ति नहीं होती। मैं अधर्मको जानता हूँ, परंतु मैं उससे दूर नहीं हो पाता। महादेव! आप मेरे हृदयमें स्थित होकर मुझे जैसी प्रेरणा देते हैं, वैसा ही मैं करता हूँ।' इस प्रकार भक्तिपूर्वक कहकर और गुरुदेवकी चरणपादुकाओंका स्मरण करके गाँवसे बाहर दक्षिण दिशामें मल-मूत्रका त्याग करनेके लिये जाय। मलत्याग करनेके बाद मिट्टी और जलसे धोनेके द्वारा शरीरकी शुद्धि करके दोनों हाथों और पैरोंको धोकर दतुअन करे, सूर्योदय होनेसे पहले ही दतुअन करके मुँहको सोलह बार जलकी अञ्जलियोंसे धोये। देवताओ तथा ऋषियो! षष्ठी, प्रतिपदा, अमावस्या और नवमी तिथियों तथा रविवारके दिन शिवभक्तको यत्नपूर्वक दतुअनको त्याग देना चाहिये। अवकाशके अनुसार नदी आदिमें जाकर अथवा घरमें ही भलीभाँति स्नान करे। मनुष्यको देश और कालके विरुद्ध स्नान नहीं करना चाहिये। रविवार, श्राद्ध, संक्रान्ति, ग्रहण, महादान, तीर्थ, उपवास-दिवस अथवा अशौच प्राप्त होनेपर मनुष्य गरम जलसे स्नान न करे। शिवभक्त मनुष्य तीर्थ आदिमें प्रवाहके सम्मुख होकर स्नान करे। जो नहानेके पहले तेल लगाना चाहे, उसे विहित एवं निषिद्ध दिनोंका विचार करके ही तैलाभ्यङ्ग करना चाहिये। जो प्रतिदिन नियमपूर्वक तेल

लगाता हो, उसके लिये किसी दिन भी तैलाभ्यङ्ग दूषित नहीं है अथवा जो तेल इत्र आदिसे वासित हो, उसका लगाना किसी दिन भी दूषित नहीं है। सरसोंका तेल ग्रहणको छोड़कर दूसरे किसी दिन भी दूषित नहीं होता। इस तरह देश-कालका विचार करके ही विधिपूर्वक स्नान करे। स्नानके समय अपने मुखको उत्तर अथवा पूर्वकी ओर रखना चाहिये।

उच्छिष्ट वस्त्रका उपयोग कभी न करे। शुद्ध वस्त्रसे इष्टदेवके स्मरणपूर्वक स्नान करे। जिस वस्त्रको दूसरेने धारण किया हो अथवा जो दूसरोंके पहननेकी वस्तु हो तथा जिसे स्वयं रातमें धारण किया गया हो, वह वस्त्र उच्छिष्ट कहलाता है। उससे तभी स्नान किया जा सकता है, जब उसे धो लिया गया हो। स्नानके पश्चात् देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंको तृप्ति देनेवाला स्नानाङ्ग तर्पण करना चाहिये। उसके बाद धुला हुआ वस्त्र पहने और आचमन करे। द्विजोत्तमो! तदनन्तर गोबर आदिसे लीप-पोतकर स्वच्छ किये हुए शुद्ध स्थानमें जाकर वहाँ सुन्दर आसनकी व्यवस्था करे। वह आसन विशुद्ध काष्ठका बना हुआ, पूरा फैला हुआ तथा विचित्र होना चाहिये। ऐसा आसन सम्पूर्ण अभीष्ट तथा फलोंको देनेवाला है। उसके ऊपर बिछानेके लिये यथायोग्य मृगचर्म आदि ग्रहण करे। शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष उस आसनपर बैठकर भस्मसे त्रिपुण्ड्र लगाये। त्रिपुण्ड्रसे जप-तप तथा दान सफल होता है। भस्मके अभावमें त्रिपुण्ड्रका साधन जल आदि बताया गया है। इस तरह त्रिपुण्ड्र करके मनुष्य रुद्राक्ष धारण करे और अपने नित्यकर्मका सम्पादन करके फिर शिवकी आराधना करे। तत्पश्चात् तीन बार मन्त्रोच्चारणपूर्वक आचमन करे। फिर वहाँ शिवकी पूजाके लिये अन्न और जल लाकर रखे। दूसरी कोई भी जो वस्तु आवश्यक हो, उसे यथाशक्ति जुटाकर अपने पास रखे। इस प्रकार पूजनसामग्रीका संग्रह करके वहाँ धैर्यपूर्वक स्थिर भावसे बैठे। फिर जल, गन्ध और अक्षतसे युक्त एक अर्घ्यपात्र लेकर उसे दाहिने भागमें रखे। उससे उपचारकी सिद्धि होती है। फिर गुरुका स्मरण करके उनकी आज्ञा लेकर विधिवत् संकल्प करके अपनी कामनाको अलग न रखते हुए पराभक्तिसे सपरिवार शिवका पूजन करे। एक मुद्रा दिखाकर सिन्दूर आदि उपचारोंद्वारा सिद्धि-बुद्धिसहित विघ्नहारी गणेशका पूजन करे। लक्ष और लाभसे युक्त गणेशजीका पूजन करके उनके नामके आदिमें प्रणव तथा अन्तमें नमः जोड़कर नामके साथ चतुर्थी विभक्तिका प्रयोग करते हुए नमस्कार करे। (यथा— ॐ गणपतये नमः अथवा ॐ लक्षलाभयुताय सिद्धिबुद्धिसहिताय गणपतये नमः) तदनन्तर उनसे क्षमा-प्रार्थना करके पुनः भाई कार्तिकेयसहित गणेशजीका पराभक्तिसे पूजन करके उन्हें बारंबार नमस्कार करे। तत्पश्चात् सदा द्वारपर खड़े रहनेवाले द्वारपाल महोदयका पूजन करके सती-साध्वी गिरिराजनन्दिनी उमाकी पूजा करे। चन्दन, कुङ्कुम तथा धूप, दीप आदि अनेक उपचारों तथा नाना प्रकारके नैवेद्योंसे शिवाका पूजन करके नमस्कार करनेके पश्चात् साधक शिवजीके समीप जाय। यथासम्भव अपने घरमें मिट्टी, सोना, चाँदी, धातु या अन्य पारे आदिकी शिव-प्रतिमा बनाये और उसे

नमस्कार करके भक्तिपरायण हो उसकी पूजा करे। उसकी पूजा हो जानेपर सभी देवता पूजित हो जाते हैं।

मिट्टीका शिवलिङ्ग बनाकर विधिपूर्वक उसकी स्थापना करे। अपने घरमें रहनेवाले लोगोंको स्थापना-सम्बन्धी सभी नियमोंका सर्वथा पालन करना चाहिये। भूतशुद्धि एवं मातृकान्यास करके प्राणप्रतिष्ठा करे। शिवालयमें दिक्पालोंकी भी स्थापना करके उनकी पूजा करे। घरमें सदा मूलमन्त्रका प्रयोग करके शिवकी पूजा करनी चाहिये। वहाँ द्वारपालोंके पूजनका सर्वथा नियम नहीं है। भगवान् शिवके समीप ही अपने लिये आसनकी व्यवस्था करे। उस समय उत्तराभिमुख बैठकर फिर आचमन करे, उसके बाद दोनों हाथ जोड़कर तब प्राणायाम करे। प्राणायामकालमें मनुष्यको मूलमन्त्रकी दस आवृत्तियाँ करनी चाहिये। हाथोंसे पाँच मुद्राएँ दिखाये। यह पूजाका आवश्यक अङ्ग है। इन मुद्राओंका प्रदर्शन करके ही मनुष्य पूजा-विधिका अनुसरण करे। तदनन्तर वहाँ दीप निवेदन करके गुरुको नमस्कार करे और पद्मासन या भद्रासन बाँधकर बैठे अथवा उत्तानासन या पर्यङ्कासनका आश्रय लेकर सुखपूर्वक बैठे और पुनः पूजनका प्रयोग करे। फिर अर्घ्यपात्रसे उत्तम शिवलिङ्गका प्रक्षालन करे। मनको भगवान् शिवसे अन्यत्र न ले जाकर पूजासामग्रीको अपने पास रखकर निम्नाङ्कित मन्त्रसमूहसे महादेवजीका आवाहन करे।

आवाहन

कैलासशिखरस्थं च पार्वतीपतिमुत्तमम्॥ ४७॥
यथोक्तरूपिणं शम्भुं निर्गुणं गुणरूपिणम्।
पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं वृषभध्वजम्॥ ४८॥
कर्पूरगौरं दिव्याङ्गं चन्द्रमौलिं कपर्दिनम्।
व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च गजचर्माम्बरं शुभम्॥ ४९॥
वासुक्यादिपरीताङ्गं पिनाकाद्यायुधान्वितम्।
सिद्धयोऽष्टौ च यस्याग्रे नृत्यन्तीह निरन्तरम्॥ ५०॥
जयजयेति शब्दैश्च सेवितं भक्तपुञ्जकैः।
तेजसा दुस्सहेनैव दुर्लक्ष्यं देवसेवितम्॥ ५१॥
शरण्यं सर्वसत्त्वानां प्रसन्नमुखपङ्कजम्।
वेदैः शास्त्रैर्यथागीतं विष्णुब्रह्मनुतं सदा॥ ५२॥
भक्तवत्सलमानन्दं शिवमावाहयाम्यहम्।
(अध्याय १३)

'जो कैलासके शिखरपर निवास करते हैं, पार्वती देवीके पति हैं, समस्त देवताओंसे उत्तम हैं, जिनके स्वरूपका शास्त्रोंमें यथावत् वर्णन किया गया है, जो निर्गुण होते हुए भी गुणरूप हैं, जिनके पाँच मुख, दस भुजाएँ और प्रत्येक मुखमण्डलमें तीन-तीन नेत्र हैं, जिनकी ध्वजापर वृषभका चिह्न अङ्कित है, अङ्गकान्ति कर्पूरके समान गौर है, जो दिव्यरूपधारी, चन्द्रमारूपी मुकुटसे सुशोभित तथा सिरपर जटाजूट धारण करनेवाले हैं, जो हाथीकी खाल पहनते और व्याघ्रचर्म ओढ़ते हैं, जिनका स्वरूप शुभ है, जिनके अङ्गोंमें वासुकि आदि नाग लिपटे रहते हैं, जो पिनाक आदि आयुध धारण करते हैं, जिनके आगे आठों सिद्धियाँ निरन्तर नृत्य करती रहती हैं, भक्तसमुदाय जय-जयकार करते हुए जिनकी सेवामें लगे रहते हैं, दुस्सह तेजके कारण जिनकी ओर देखना भी कठिन है, जो देवताओंसे सेवित तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको शरण देनेवाले हैं, जिनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ है, वेदों और शास्त्रोंने जिनकी महिमाका यथावत् गान किया है, विष्णु और ब्रह्मा

भी सदा जिनकी स्तुति करते हैं तथा जो परमानन्दस्वरूप हैं, उन भक्तवत्सल शम्भु शिवका मैं आवाहन करता हूँ।'

इस प्रकार साम्ब शिवका ध्यान करके उनके लिये आसन दे। चतुर्थ्यन्त पदसे ही क्रमशः सब कुछ अर्पित करे (यथा—साम्बाय सदाशिवाय नमः आसनं समर्पयामि —इत्यादि)। आसनके पश्चात् भगवान् शंकरको पाद्य और अर्घ्य दे। फिर परमात्मा शम्भुको आचमन कराकर पञ्चामृत-सम्बन्धी द्रव्योंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक शंकरको स्नान

कराये। वेदमन्त्रों अथवा समन्त्रक चतुर्थ्यन्त नामपदोंका उच्चारण करके भक्तिपूर्वक यथायोग्य समस्त द्रव्य भगवान्‌को अर्पित करे। अभीष्ट द्रव्यको शंकरके ऊपर चढ़ाये। फिर भगवान् शिवको वारुण-स्नान कराये। स्नानके पश्चात् उनके श्रीअङ्गोंमें सुगन्धित चन्दन तथा अन्य द्रव्योंका यत्नपूर्वक लेप करे। फिर सुगन्धित जलसे ही उनके ऊपर जलधारा गिराकर अभिषेक करे। वेदमन्त्रों, षडङ्गों अथवा शिवके ग्यारह नामोंद्वारा यथावकाश जलधारा चढ़ाकर वस्त्रसे शिवलिङ्गको अच्छी तरह पोंछे। फिर आचमनार्थ जल दे और वस्त्र समर्पित करे। नाना प्रकारके मन्त्रोंद्वारा भगवान् शिवको तिल, जौ, गेहूँ, मूँग और उड़द अर्पित करे। फिर पाँच मुखवाले परमात्मा शिवको पुष्प चढ़ाये। प्रत्येक मुखपर ध्यानके अनुसार यथोचित अभिलाषा करके कमल, शतपत्र, शङ्खपुष्प, कुशपुष्प, धत्तूर, मन्दार, द्रोणपुष्प (गूमा), तुलसीदल तथा बिल्वपत्र चढ़ाकर पराभक्तिके साथ भक्तवत्सल भगवान् शंकरकी विशेष पूजा करे। अन्य सब वस्तुओंका अभाव होनेपर शिवको केवल बिल्वपत्र ही अर्पित करे। बिल्वपत्र समर्पित होनेसे ही शिवकी पूजा सफल होती है। तत्पश्चात् सुगन्धित चूर्ण तथा सुवासित उत्तम तैल (इत्र आदि) विविध वस्तुएँ बड़े हर्षके साथ भगवान् शिवको अर्पित करे। फिर प्रसन्नतापूर्वक गुग्गुल और अगुरु आदिकी धूप निवेदन करे। तदनन्तर शंकरजीको घीसे भरा हुआ दीपक दे। इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्रसे भक्तिपूर्वक पुनः अर्घ्य दे और भाव-भक्तिसे वस्त्रद्वारा उनके मुखका मार्जन करे।

अर्घ्यमन्त्र

रूपं देहि यशो देहि भोगं देहि च शंकर।
भुक्तिमुक्तिफलं देहि गृहीत्वार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

'प्रभो! शंकर! आपको नमस्कार है। आप इस अर्घ्यको स्वीकार करके मुझे रूप दीजिये, यश दीजिये, भोग दीजिये तथा भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान कीजिये।'

इसके बाद भगवान् शिवको भाँति-भाँतिके उत्तम नैवेद्य अर्पित करे। नैवेद्यके

पश्चात् प्रेमपूर्वक आचमन कराये। तदनन्तर साङ्गोपाङ्ग ताम्बूल बनाकर शिवको समर्पित करे। फिर पाँच बत्तीकी आरती बनाकर भगवान्‌को दिखाये। उसकी संख्या इस प्रकार है—पैरोंमें चार बार, नाभिमण्डलके सामने दो बार, मुखके समक्ष एक बार तथा सम्पूर्ण अङ्गोंमें सात बार आरती दिखाये। तत्पश्चात् नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा प्रेमपूर्वक भगवान् वृषभध्वजकी स्तुति करे। तदनन्तर धीरे-धीरे शिवकी परिक्रमा करे। परिक्रमाके बाद भक्त पुरुष साष्टाङ्ग प्रणाम करे और निम्नाङ्कित मन्त्रसे भक्तिपूर्वक पुष्पाञ्जलि दे—

पुष्पाञ्जलिमन्त्र

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाद्यद्यत्पूजादिकं मया।
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकर॥
तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड।
इति विज्ञाय गौरीश भूतनाथ प्रसीद मे॥
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो॥
(अध्याय १३)

'शंकर! मैंने अज्ञानसे या जान-बूझकर जो पूजन आदि किया है, वह आपकी कृपासे सफल हो। मृड! मैं आपका हूँ, मेरे प्राण सदा आपमें लगे हुए हैं, मेरा चित्त सदा आपका ही चिन्तन करता है—ऐसा जानकर हे गौरीनाथ! भूतनाथ! आप मुझपर प्रसन्न होइये। प्रभो! धरतीपर जिनके पैर लड़खड़ा जाते हैं, उनके लिये भूमि ही सहारा है; उसी प्रकार जिन्होंने आपके प्रति अपराध किये हैं उनके लिये भी आप ही शरणदाता हैं।'

—इत्यादि रूपसे बहुत-बहुत प्रार्थना करके उत्तम विधिसे पुष्पाञ्जलि अर्पित करनेके पश्चात् पुनः भगवान्‌को नमस्कार करे। फिर निम्नाङ्कित मन्त्रसे विसर्जन करना चाहिये।

विसर्जन

स्वस्थाने गच्छ देवेश परिवारयुतः प्रभो।
पूजाकाले पुनर्नाथ त्वयाऽऽगन्तव्यमादरात्॥

'देवेश्वर प्रभो! अब आप परिवारसहित अपने स्थानको पधारें। नाथ! जब पूजाका समय हो, तब पुनः आप यहाँ सादर पदार्पण करें।'

इस प्रकार भक्तवत्सल शंकरकी बारंबार प्रार्थना करके उनका विसर्जन करे और उस जलको अपने हृदयमें लगाये तथा मस्तकपर चढ़ाये।

ऋषियो! इस तरह मैंने शिवपूजनकी सारी विधि बता दी, जो भोग और मोक्ष देनेवाली है। अब और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय १३)

☆

विभिन्न पुष्पों, अन्नों तथा जलादिकी धाराओंसे शिवजीकी पूजाका माहात्म्य

ब्रह्माजी बोले—नारद! जो लक्ष्मी-प्राप्तिकी इच्छा करता हो, वह कमल, बिल्वपत्र, शतपत्र और शङ्खपुष्पसे भगवान् शिवकी पूजा करे। ब्रह्मन्! यदि एक लाखकी संख्यामें इन पुष्पोंद्वारा भगवान् शिवकी पूजा सम्पन्न हो जाय तो सारे पापोंका नाश होता है और लक्ष्मीकी भी प्राप्ति हो जाती है, इसमें संशय नहीं है। प्राचीन पुरुषोंने बीस कमलोंका एक प्रस्थ बताया है। एक सहस्र बिल्वपत्रोंको भी एक

प्रस्थ कहा गया है। एक सहस्र शतपत्रसे आधे प्रस्थकी परिभाषा की गयी है। सोलह पलोंका एक प्रस्थ होता है और दस टङ्कोंका एक पल। इस मानसे पत्र, पुष्प आदिको तौलना चाहिये। जब पूर्वोक्त संख्यावाले पुष्पोंसे शिवकी पूजा हो जाती है, तब सकाम पुरुष अपने सम्पूर्ण अभीष्टको प्राप्त कर लेता है। यदि उपासकके मनमें कोई कामना न हो तो वह पूर्वोक्त पूजनसे शिवस्वरूप हो जाता है।

मृत्युञ्जय-मन्त्रका जब पाँच लाख जप पूरा हो जाता है, तब भगवान् शिव प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। एक लाखके जपसे शरीरकी शुद्धि होती है, दूसरे लाखके जपसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण होता है, तीसरे लाख पूर्ण होनेपर सम्पूर्ण काम्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। चौथे लाखका जप होनेपर स्वप्नमें भगवान् शिवका दर्शन होता है और पाँचवें लाखका जप ज्यों ही पूरा होता है, भगवान् शिव उपासकके सम्मुख तत्काल प्रकट हो जाते हैं। इसी मन्त्रका दस लाख जप हो जाय तो सम्पूर्ण फलकी सिद्धि होती है। जो मोक्षकी अभिलाषा रखता है, वह (एक लाख) दर्भोंद्वारा शिवका पूजन करे। मुनिश्रेष्ठ! सर्वत्र लाखकी ही संख्या समझनी चाहिये। आयुकी इच्छावाला पुरुष एक लाख दूर्वाओंद्वारा पूजन करे। जिसे पुत्रकी अभिलाषा हो, वह धतूरेके एक लाख फूलोंसे पूजा करे। लाल डंठलवाला धतूरा पूजनमें शुभदायक माना गया है। अगस्त्यके एक लाख फूलोंसे पूजा करनेवाले पुरुषको महान् यशकी प्राप्ति होती है। यदि तुलसीदलसे शिवकी पूजा करे तो उपासकको भोग और मोक्ष दोनों सुलभ होते हैं। लाल और सफेद आक, अपामार्ग और श्वेत कमलके एक लाख फूलोंद्वारा पूजा करनेसे भी उसी फल (भोग और मोक्ष) की प्राप्ति होती है। जपा (अड़हुल) के एक लाख फूलोंसे की हुई पूजा शत्रुओंको मृत्यु देनेवाली होती है। करवीरके एक लाख फूल यदि शिवपूजनके उपयोगमें लाये जायँ तो वे यहाँ रोगोंका उच्चाटन करनेवाले होते हैं। बन्धूक (दुपहरिया) के फूलोंद्वारा पूजन करनेसे आभूषणकी प्राप्ति होती है। चमेलीसे शिवकी पूजा करके मनुष्य वाहनोंको उपलब्ध करता है, इसमें संशय नहीं है। अलसीके फूलोंसे महादेवजीका पूजन करनेवाला पुरुष भगवान् विष्णुको प्रिय होता है। शमीपत्रोंसे पूजा करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। बेलाके फूल चढ़ानेपर भगवान् शिव अत्यन्त शुभलक्षणा पत्नी प्रदान करते हैं। जूहीके फूलोंसे पूजा की जाय तो घरमें कभी अन्नकी कमी नहीं होती। कनेरके फूलोंसे पूजा करनेपर मनुष्योंको वस्त्रकी प्राप्ति होती है। सेदुआरि या शेफालिकाके फूलोंसे शिवका पूजन किया जाय तो मन निर्मल होता है। एक लाख बिल्वपत्र चढ़ानेपर मनुष्य अपनी सारी काम्य वस्तुएँ प्राप्त कर लेता है। शृङ्गारहार (हरसिंगार) के फूलोंसे पूजा करनेपर सुख-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। वर्तमान ऋतुमें पैदा होनेवाले फूल यदि शिवकी सेवामें समर्पित किये जायँ तो वे मोक्ष देनेवाले होते हैं, इसमें संशय नहीं है। राईके फूल शत्रुओंको मृत्यु प्रदान करनेवाले होते हैं। इन फूलोंको एक-एक लाखकी संख्यामें शिवके ऊपर चढ़ाया जाय तो भगवान् शिव प्रचुर फल प्रदान करते हैं।

चम्पा और केवड़ेको छोड़कर शेष सभी फूल भगवान् शिवको चढ़ाये जा सकते हैं।

विप्रवर! महादेवजीके ऊपर चावल चढ़ानेसे मनुष्योंकी लक्ष्मी बढ़ती है। ये चावल अखण्डित होने चाहिये और इन्हें उत्तम भक्तिभावसे शिवके ऊपर चढ़ाना चाहिये। रुद्रप्रधान मन्त्रसे पूजा करके भगवान् शिवके ऊपर बहुत सुन्दर वस्त्र चढ़ाये और उसीपर चावल रखकर समर्पित करे तो उत्तम है। भगवान् शिवके ऊपर गन्ध, पुष्प आदिके साथ एक श्रीफल चढ़ाकर धूप आदि निवेदन करे तो पूजाका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है। वहाँ शिवके समीप बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इससे मन्त्रपूर्वक साङ्गोपाङ्ग लक्ष पूजा सम्पन्न होती है। जहाँ सौ मन्त्र जपनेकी विधि हो, वहाँ एक सौ आठ मन्त्र जपनेका विधान किया गया है। तिलोंद्वारा शिवजीको एक लाख आहुतियाँ दी जायँ अथवा एक लाख तिलोंसे शिवकी पूजा की जाय तो वह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली होती है। जौद्वारा की हुई शिवकी पूजा स्वर्गीय सुखकी वृद्धि करनेवाली है, ऐसा ऋषियोंका कथन है। गेहूँके बने हुए पकवानसे की हुई शंकरजीकी पूजा निश्चय ही बहुत उत्तम मानी गयी है। यदि उससे लाख बार पूजा हो तो उससे संतानकी वृद्धि होती है। यदि मूँगसे पूजा की जाय तो भगवान् शिव सुख प्रदान करते हैं। प्रियंगु (कँगनी) द्वारा सर्वाध्यक्ष परमात्मा शिवका पूजन करनेमात्रसे उपासकके धर्म, अर्थ और काम-भोगकी वृद्धि होती है तथा वह पूजा समस्त सुखोंको देनेवाली होती है। अरहरके पत्तोंसे शृंगार करके भगवान् शिवकी पूजा करे। यह पूजा नाना प्रकारके सुखों और सम्पूर्ण फलोंको देनेवाली है। मुनिश्रेष्ठ! अब फूलोंकी लक्ष संख्याका तौल बताया जा रहा है। प्रसन्नतापूर्वक सुनो। सूक्ष्म मानका प्रदर्शन करनेवाले व्यासजीने एक प्रस्थ शङ्खपुष्पको एक लाख बताया है। ग्यारह प्रस्थ चमेलीके फूल हों तो वही एक लाख फूलोंका मान कहा गया है। जूहीके एक लाख फूलोंका भी वही मान है। राईके एक लाख फूलोंका मान साढ़े पाँच प्रस्थ है। उपासकको चाहिये कि वह निष्काम होकर मोक्षके लिये भगवान् शिवकी पूजा करे।

भक्तिभावसे विधिपूर्वक शिवकी पूजा करके भक्तोंको पीछे जलधारा समर्पित करनी चाहिये। ज्वरमें जो मनुष्य प्रलाप करने लगता है, उसकी शान्तिके लिये जलधारा शुभकारक बतायी गयी है। शतरुद्रिय मन्त्रसे, रुद्रीके ग्यारह पाठोंसे, रुद्रमन्त्रोंके जपसे, पुरुषसूक्तसे, छः ऋचावाले रुद्रसूक्तसे, महामृत्युञ्जयमन्त्रसे, गायत्री-मन्त्रसे अथवा शिवके शास्त्रोक्त नामोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर बने हुए मन्त्रोंद्वारा जलधारा आदि अर्पित करनी चाहिये। सुख और संतानकी वृद्धिके लिये जलधाराद्वारा पूजन उत्तम बताया गया है। उत्तम भस्म धारण करके उपासकको प्रेमपूर्वक नाना प्रकारके शुभ एवं दिव्य द्रव्योंद्वारा शिवकी पूजा करनी चाहिये और शिवपर उनके सहस्रनाम मन्त्रोंसे घीकी धारा चढ़ानी चाहिये। ऐसा करनेपर वंशका विस्तार होता है, इसमें संशय नहीं है। इसी प्रकार यदि दस हजार मन्त्रोंद्वारा शिवजीकी पूजा की जाय तो प्रमेह

रोगकी शान्ति होती है और उपासकको मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति हो जाती है। यदि कोई नपुंसकताको प्राप्त हो तो वह घीसे शिवजीकी भलीभाँति पूजा करे तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराये। साथ ही उसके लिये मुनीश्वरोंने प्राजापत्य व्रतका भी विधान किया है। यदि बुद्धि जड हो जाय तो उस अवस्थामें पूजकको केवल शर्करामिश्रित दुग्धकी धारा चढ़ानी चाहिये। ऐसा करनेपर उसे बृहस्पतिके समान उत्तम बुद्धि प्राप्त हो जाती है। जबतक दस हजार मन्त्रोंका जप पूरा न हो जाय, तबतक पूर्वोक्त दुग्धधारा-द्वारा भगवान् शिवका उत्कृष्ट पूजन चालू रखना चाहिये। जब तन-मनमें अकारण ही उच्चाटन होने लगे— जी उचट जाय, कहीं भी प्रेम न रहे, दुःख बढ़ जाय और अपने घरमें सदा कलह रहने लगे, तब पूर्वोक्तरूपसे दूधकी धारा चढ़ानेसे सारा दुःख नष्ट हो जाता है। सुवासित तेलसे पूजा करनेपर भोगोंकी वृद्धि होती है। यदि मधुसे शिवकी पूजा की जाय तो राजयक्ष्माका रोग दूर हो जाता है। यदि शिवपर ईखके रसकी धारा चढ़ायी जाय तो वह भी सम्पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति करानेवाली होती है। गङ्गाजलकी धारा तो भोग और मोक्ष दोनों फलोंको देनेवाली है। ये सब जो-जो धाराएँ बतायी गयी हैं, इन सबको मृत्युञ्जयमन्त्रसे चढ़ाना चाहिये, उसमें भी उक्त मन्त्रका विधानतः दस हजार जप करना चाहिये, और ग्यारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये।

(अध्याय १४)

☆

सृष्टिका वर्णन

तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर ब्रह्माजी बोले—मुने! हमें पूर्वोक्त आदेश देकर जब महादेवजी अन्तर्धान हो गये, तब मैं उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ध्यानमग्न हो कर्तव्यका विचार करने लगा। उस समय भगवान् शंकरको नमस्कार करके श्रीहरिसे ज्ञान पाकर परमानन्दको प्राप्त हो मैंने सृष्टि करनेका ही निश्चय किया। तात! भगवान् विष्णु भी वहाँ सदाशिवको प्रणाम करके मुझे आवश्यक उपदेश दे तत्काल अदृश्य हो गये। वे ब्रह्माण्डसे बाहर जाकर भगवान् शिवकी कृपा प्राप्त करके वैकुण्ठधाममें जा पहुँचे और सदा वहीं रहने लगे। मैंने सृष्टिकी इच्छासे भगवान् शिव और विष्णुका स्मरण करके पहलेके रचे हुए जलमें अपनी अञ्जलि डालकर जलको ऊपरकी ओर उछाला। इससे वहाँ एक अण्ड प्रकट हुआ, जो चौबीस तत्त्वोंका समूह कहा जाता है। विप्रवर! वह विराट् आकारवाला अण्ड जडरूप ही था। उसमें चेतनता न देखकर मुझे बड़ा संशय हुआ और मैं अत्यन्त कठोर तप करने लगा। बारह वर्षोंतक भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगा रहा। तात! वह समय पूर्ण होनेपर भगवान् श्रीहरि स्वयं प्रकट हुए और बड़े प्रेमसे मेरे अङ्गोंका स्पर्श करते हुए मुझसे प्रसन्नतापूर्वक बोले।

श्रीविष्णुने कहा—ब्रह्मन्! तुम वर माँगो। मैं प्रसन्न हूँ। मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। भगवान् शिवकी कृपासे मैं सब कुछ देनेमें समर्थ हूँ।

ब्रह्मा बोले—(अर्थात् मैंने कहा—) महाभाग ! आपने जो मुझपर कृपा की है, वह सर्वथा उचित ही है; क्योंकि भगवान् शंकरने मुझे आपके हाथोंमें सौंप दिया है। विष्णो ! आपको नमस्कार है। आज मैं आपसे जो कुछ माँगता हूँ, उसे दीजिये। प्रभो ! यह विराट्‌रूप चौबीस तत्त्वोंसे बना हुआ अण्ड किसी तरह चेतन नहीं हो रहा है, जड़ीभूत दिखायी देता है। हरे ! इस समय भगवान् शिवकी कृपासे आप यहाँ प्रकट हुए हैं। अतः शंकरकी सृष्टि-शक्ति या विभूतिसे प्राप्त हुए इस अण्डमें चेतनता लाइये।

मेरे ऐसा कहनेपर शिवकी आज्ञामें तत्पर रहनेवाले महाविष्णुने अनन्तरूपका आश्रय ले उस अण्डमें प्रवेश किया। उस समय उन परम पुरुषके सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों पैर थे। उन्होंने भूमिको सब ओरसे घेरकर उस अण्डको व्याप्त कर लिया। मेरे द्वारा भलीभाँति स्तुति की जानेपर जब श्रीविष्णुने उस अण्डमें प्रवेश किया, तब वह चौबीस तत्त्वोंका विकाररूप अण्ड सचेतन हो गया। पातालसे लेकर सत्य-लोकतककी अवधिवाले उस अण्डके रूपमें वहाँ साक्षात् श्रीहरि ही विराजने लगे। उस विराट् अण्डमें व्यापक होनेसे ही वे प्रभु 'वैराज पुरुष' कहलाये। पञ्चमुख महादेवने केवल अपने रहनेके लिये सुरम्य कैलास-नगरका निर्माण किया, जो सब लोकोंसे ऊपर सुशोभित होता है। देवर्षे ! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका नाश हो जानेपर भी वैकुण्ठ और कैलास—इन दो धामोंका यहाँ कभी नाश नहीं होता। मुनिश्रेष्ठ ! मैं सत्यलोकका आश्रय लेकर रहता हूँ। तात ! महादेवजीकी आज्ञासे ही मुझमें सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न हुई है। बेटा ! जब मैं सृष्टिकी इच्छासे चिन्तन करने लगा, उस समय पहले मुझसे अनजानमें ही पापपूर्ण तमोगुणी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ, जिसे अविद्या-पञ्चक (अथवा पञ्चपर्वा अविद्या) कहते हैं। तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर शम्भुकी आज्ञासे मैं पुनः अनासक्त भावसे सृष्टिका चिन्तन करने लगा। उस समय मेरे द्वारा स्थावर-संज्ञक वृक्ष आदिकी सृष्टि हुई, जिसे मुख्य-सर्ग कहते हैं। (यह पहला सर्ग है।) उसे देखकर तथा वह अपने लिये पुरुषार्थका साधक नहीं है, यह जानकर सृष्टिकी इच्छावाले मुझ ब्रह्मासे दूसरा सर्ग प्रकट हुआ, जो दुःखसे भरा हुआ है; उसका नाम है— तिर्यक्स्रोता *। यह सर्ग भी पुरुषार्थका साधक नहीं था। उसे भी पुरुषार्थ-साधनकी शक्तिसे रहित जान जब मैं पुनः सृष्टिका चिन्तन करने लगा, तब मुझसे शीघ्र ही तीसरे सात्त्विक सर्गका प्रादुर्भाव हुआ, जिसे 'ऊर्ध्वस्रोता' कहते हैं। यह देवसर्गके नामसे विख्यात हुआ। देवसर्ग सत्यवादी तथा अत्यन्त सुखदायक है। उसे भी पुरुषार्थसाधनकी रुचि एवं अधिकारसे रहित मानकर मैंने अन्य सर्गके लिये अपने स्वामी श्रीशिवका चिन्तन आरम्भ किया। तब भगवान् शंकरकी आज्ञासे एक रजोगुणी सृष्टिका प्रादुर्भाव

* पशु, पक्षी आदि तिर्यक्स्रोता कहलाते हैं। वायुकी भाँति तिरछा चलनेके कारण ये तिर्यक् अथवा 'तिर्यक्स्रोता' कहे गये हैं।

हुआ, जिसे अर्वाक्स्रोता कहा गया है। इस सर्गके प्राणी मनुष्य हैं, जो पुरुषार्थ-साधनके उच्च अधिकारी हैं। तदनन्तर महादेवजीकी आज्ञासे भूत आदिकी सृष्टि हुई। इस प्रकार मैंने पाँच तरहकी वैकृत सृष्टिका वर्णन किया है। इनके सिवा तीन प्राकृत सर्ग भी कहे गये हैं, जो मुझ ब्रह्माके सांनिध्यसे प्रकृतिसे ही प्रकट हुए हैं। इनमें पहला

महत्तत्त्वका सर्ग है, दूसरा सूक्ष्म भूतों अर्थात् तन्मात्राओंका सर्ग है और तीसरा वैकारिकसर्ग कहलाता है। इस तरह ये तीन प्राकृत सर्ग हैं। प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकारके सर्गोंको मिलानेसे आठ सर्ग होते हैं। इनके सिवा नवाँ कौमारसर्ग है, जो प्राकृत और वैकृत भी है। इन सबके अवान्तर भेदका मैं वर्णन नहीं कर सकता; क्योंकि उसका उपयोग बहुत थोड़ा है।

अब द्विजात्मक सर्गका प्रतिपादन करता हूँ। इसीका दूसरा नाम कौमारसर्ग है, जिसमें सनक-सनन्दन आदि कुमारोंकी महत्त्वपूर्ण सृष्टि हुई है। सनक आदि मेरे चार मानस पुत्र हैं, जो मुझ ब्रह्माके ही समान हैं। वे महान् वैराग्यसे सम्पन्न तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हुए। उनका मन सदा भगवान् शिवके चिन्तनमें ही लगा रहता है। वे संसारसे विमुख एवं ज्ञानी हैं। उन्होंने मेरे आदेश देनेपर भी सृष्टिके कार्यमें मन नहीं लगाया। मुनिश्रेष्ठ नारद! सनकादि कुमारोंके दिये हुए नकारात्मक उत्तरको सुनकर मैंने बड़ा भयंकर क्रोध प्रकट किया। उस समय मुझपर मोह छा गया। उस अवसरपर मैंने मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्मरण किया। वे शीघ्र ही आ गये और उन्होंने समझाते हुए मुझसे कहा—'तुम भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये तपस्या करो।' मुनिश्रेष्ठ! श्रीहरिने जब मुझे ऐसी शिक्षा दी, तब मैं महाघोर एवं उत्कृष्ट तप करने लगा। सृष्टिके लिये तपस्या करते हुए मेरी दोनों भौंहों और नासिकाके मध्यभागसे, जो उनका अपना ही अविमुक्त नामक स्थान है, महेश्वरकी तीन मूर्तियोंमेंसे अन्यतम पूर्णांश, सर्वेश्वर एवं दयासागर भगवान् शिव अर्धनारीश्वररूपमें प्रकट हुए।

जो जन्मसे रहित, तेजकी राशि, सर्वज्ञ तथा सर्वस्रष्टा हैं, उन नीललोहित-नामधारी साक्षात् उमावल्लभ शंकरको सामने देख बड़ी भक्तिसे मस्तक झुका उनकी स्तुति करके मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और उन देवदेवेश्वरसे बोला—'प्रभो! आप भाँति-भाँतिके जीवोंकी सृष्टि कीजिये।' मेरी यह बात सुनकर उन देवाधिदेव महेश्वर रुद्रने अपने ही समान बहुत-से रुद्रगणोंकी सृष्टि

की। तब मैंने अपने स्वामी महेश्वर महारुद्रसे फिर कहा—'देव! आप ऐसे जीवोंकी

सृष्टि कीजिये, जो जन्म और मृत्युके भयसे युक्त हों।' मुनिश्रेष्ठ! मेरी ऐसी बात सुनकर करुणासागर महादेवजी हँस पड़े और तत्काल इस प्रकार बोले।

महादेवजीने कहा—विधातः! मैं जन्म और मृत्युके भयसे युक्त अशोभन जीवोंकी सृष्टि नहीं करूँगा; क्योंकि वे कर्मोंके अधीन हो दुःखके समुद्रमें डूबे रहेंगे। मैं तो दुःखके सागरमें डूबे हुए उन जीवोंका उद्धारमात्र करूँगा, गुरुका स्वरूप धारण करके उत्तम ज्ञान प्रदानकर उन सबको संसार-सागरसे पार करूँगा। प्रजापते! दुःखमें डूबे हुए सारे जीवकी सृष्टि तो तुम्हीं करो। मेरी आज्ञासे इस कार्यमें प्रवृत्त होनेके कारण तुम्हें माया नहीं बाँध सकेगी।

मुझसे ऐसा कहकर श्रीमान् भगवान् नीललोहित महादेव मेरे देखते-देखते अपने पार्षदोंके साथ वहाँसे तत्काल तिरोहित हो गये। (अध्याय १५)

☆

स्वायम्भुव मनु और शतरूपाकी, ऋषियोंकी तथा दक्षकन्याओंकी संतानोंका वर्णन तथा सती और शिवकी महत्ताका प्रतिपादन

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर मैंने शब्दतन्मात्रा आदि सूक्ष्म-भूतोंको स्वयं ही पञ्चीकृत करके अर्थात् उन पाँचोंका परस्पर सम्मिश्रण करके उनसे स्थूल आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीकी सृष्टि की। पर्वतों, समुद्रों और वृक्षों आदिको उत्पन्न किया। कलासे लेकर युगपर्यन्त जो काल-विभाग हैं, उनकी रचना की। मुने! उत्पत्ति और विनाशवाले और भी बहुत-से पदार्थोंका मैंने निर्माण किया। परंतु इससे मुझे संतोष नहीं हुआ। तब साम्ब शिवका ध्यान करके मैंने साधनपरायण पुरुषोंकी सृष्टि की। अपने दोनों नेत्रोंसे मरीचिको, हृदयसे भृगुको, सिरसे अङ्गिराको, व्यानवायुसे मुनिश्रेष्ठ पुलहको, उदानवायुसे पुलस्त्यको, समानवायुसे वसिष्ठको, अपानसे क्रतुको, दोनों कानोंसे अत्रिको, प्राणोंसे दक्षको, गोदसे तुमको, छायासे कर्दम मुनिको तथा संकल्पसे समस्त साधनोंके साधन धर्मको उत्पन्न किया। मुनिश्रेष्ठ! इस तरह इन उत्तम साधकोंकी सृष्टि करके महादेवजीकी कृपासे मैंने अपने-आपको कृतार्थ माना। तात! तत्पश्चात् संकल्पसे उत्पन्न हुए धर्म मेरी

आज्ञासे मानवरूप धारण करके साधकोंकी प्रेरणासे साधनमें लग गये। इसके बाद मैंने

अपने विभिन्न अङ्गोंसे देवता, असुर आदिके रूपमें असंख्य पुत्रोंकी सृष्टि करके उन्हें भिन्न-भिन्न शरीर प्रदान किये। मुने! तदनन्तर अन्तर्यामी भगवान् शंकरकी प्रेरणासे अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त करके मैं दो रूपवाला हो गया। नारद! आधे शरीरसे मैं स्त्री हो गया और आधेसे पुरुष। उस पुरुषने उस स्त्रीके गर्भसे सर्वसाधनसमर्थ उत्तम जोड़ेको उत्पन्न किया। उस जोड़ेमें जो पुरुष था, वही स्वायम्भुव मनुके नामसे प्रसिद्ध हुआ। स्वायम्भुव मनु उच्चकोटिके साधक हुए तथा जो स्त्री हुई, वह शतरूपा कहलायी। वह योगिनी एवं तपस्विनी हुई। तात! मनुने वैवाहिक विधिसे अत्यन्त सुन्दरी शतरूपाका पाणिग्रहण किया और उससे वे मैथुनजनित सृष्टि उत्पन्न करने लगे। उन्होंने शतरूपासे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र और तीन कन्याएँ उत्पन्न कीं। कन्याओंके नाम थे—आकूति, देवहूति और प्रसूति। मनुने आकूतिका विवाह प्रजापति रुचिके साथ किया। मझली पुत्री देवहूति कर्दमको ब्याह दी और उत्तानपादकी सबसे छोटी बहिन प्रसूति प्रजापति दक्षको दे दी। उनकी संतानपरम्पराओंसे समस्त चराचर जगत् व्याप्त है।

रुचिसे आकूतिके गर्भसे यज्ञ और दक्षिणा नामक स्त्री-पुरुषका जोड़ा उत्पन्न हुआ। यज्ञके दक्षिणासे बारह पुत्र हुए। मुने! कर्दमद्वारा देवहूतिके गर्भसे बहुत-सी पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। दक्षके प्रसूतिसे चौबीस कन्याएँ हुईं। उनमेंसे श्रद्धा आदि तेरह कन्याओंका विवाह दक्षने धर्मके साथ कर दिया। मुनीश्वर! धर्मकी उन पत्नियोंके नाम सुनो—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वसु, शान्ति, सिद्धि और कीर्ति—ये सब तेरह हैं। इनसे छोटी जो शेष ग्यारह सुलोचना कन्याएँ थीं, उनके नाम इस प्रकार हैं—ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा तथा स्वधा। भृगु, शिव, मरीचि, अङ्गिरा मुनि, पुलस्त्य, पुलह, मुनिश्रेष्ठ क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, अग्नि और पितरोंने क्रमशः इन ख्याति आदि कन्याओंका पाणिग्रहण किया। भृगु आदि मुनिश्रेष्ठ साधक हैं। इनकी संतानोंसे चराचर प्राणियोंसहित सारी त्रिलोकी भरी हुई है।

इस प्रकार अम्बिकापति महादेवजीकी आज्ञासे अपने पूर्वकर्मोंके अनुसार बहुत-से प्राणी असंख्य श्रेष्ठ द्विजोंके रूपमें उत्पन्न हुए। कल्पभेदसे दक्षके साठ कन्याएँ बतायी

गयी हैं। उनमेंसे दस कन्याओंका विवाह उन्होंने धर्मके साथ किया। सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको ब्याह दीं और विधिपूर्वक तेरह कन्याओंके हाथ दक्षने कश्यपके हाथमें दे दिये। नारद! उन्होंने चार कन्याएँ श्रेष्ठ रूपवाले तार्क्ष्य (अरिष्टनेमि) को ब्याह दीं तथा भृगु, अङ्गिरा और कृशाश्वको दो-दो कन्याएँ अर्पित कीं। उन स्त्रियोंसे उनके पतियोंद्वारा बहुसंख्यक चराचर प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई। मुनिश्रेष्ठ! दक्षने महात्मा कश्यपको जिन तेरह कन्याओंका विधिपूर्वक दान दिया था, उनकी संतानोंसे सारी त्रिलोकी व्याप्त है। स्थावर और जंगम कोई भी सृष्टि ऐसी नहीं है, जो कश्यपकी संतानोंसे शून्य हो। देवता, ऋषि, दैत्य, वृक्ष, पक्षी, पर्वत तथा तृण-लता आदि सभी कश्यपपत्नियोंसे पैदा हुए हैं। इस प्रकार दक्ष-कन्याओंकी संतानोंसे सारा चराचर जगत् व्याप्त है। पातालसे लेकर सत्यलोक-पर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड निश्चय ही उनकी संतानोंसे सदा भरा रहता है, कभी खाली नहीं होता।

इस तरह भगवान् शंकरकी आज्ञासे ब्रह्माजीने भलीभाँति सृष्टि की। पूर्वकालमें सर्वव्यापी शम्भुने जिन्हें तपस्याके लिये प्रकट किया था तथा रुद्रदेवने त्रिशूलके अग्रभागपर रखकर जिनकी सदा रक्षा की है, वे ही सतीदेवी लोकहितका कार्य सम्पादित करनेके लिये दक्षसे प्रकट हुई थीं। उन्होंने भक्तोंके उद्धारके लिये अनेक लीलाएँ कीं। इस प्रकार देवी शिवा ही सती होकर भगवान् शंकरसे ब्याही गयीं; किंतु पिताके यज्ञमें पतिका अपमान देख उन्होंने अपने शरीरको त्याग दिया और फिर उसे ग्रहण नहीं किया। वे अपने परमपदको प्राप्त हो गयीं। फिर देवताओंकी प्रार्थनासे वे ही शिवा पार्वतीरूपमें प्रकट हुईं और बड़ी भारी तपस्या करके पुनः भगवान् शिवको उन्होंने प्राप्त कर लिया। मुनीश्वर! इस जगत्में उनके अनेक नाम प्रसिद्ध हुए। उनके कालिका, चण्डिका, भद्रा, चामुण्डा, विजया, जया, जयन्ती, भद्रकाली, दुर्गा, भगवती, कामाख्या, कामदा, अम्बा, मृडानी और सर्वमङ्गला आदि अनेक नाम हैं, जो भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। ये सभी नाम उनके गुण और कर्मोंके अनुसार हैं।

मुनिश्रेष्ठ नारद! इस प्रकार मैंने सृष्टिक्रमका तुमसे वर्णन किया है। ब्रह्माण्डका यह सारा भाग भगवान् शिवकी आज्ञासे मेरे द्वारा रचा गया है। भगवान् शिवको परब्रह्म परमात्मा कहा गया है। मैं, विष्णु तथा रुद्र—ये तीन देवता गुणभेदसे उन्हींके रूप बतलाये गये हैं। वे मनोरम शिवलोकमें शिवाके साथ स्वच्छन्द विहार करते हैं। भगवान् शिव स्वतन्त्र परमात्मा हैं। निर्गुण और सगुण भी वे ही हैं।

(अध्याय १६)

☆

यज्ञदत्त-कुमारको भगवान् शिवकी कृपासे कुबेरपदकी प्राप्ति तथा उनकी भगवान् शिवके साथ मैत्री

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो! ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर नारदजीने विनयपूर्वक उन्हें

प्रणाम किया और पुनः पूछा—'भगवन्! भक्तवत्सल भगवान् शंकर कैलास पर्वतपर कब गये और महात्मा कुबेरके साथ उनकी मैत्री कब हुई? परिपूर्ण मङ्गलविग्रह महादेवजीने वहाँ क्या किया? यह सब मुझे बताइये। इसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है।'

ब्रह्माजीने कहा—नारद! सुनो, चन्द्रमौलि भगवान् शंकरके चरित्रका वर्णन

करता हूँ। वे कैसे कैलास पर्वतपर गये और कुबेरकी उनके साथ किस प्रकार मैत्री हुई, यह सब सुनाता हूँ। काम्पिल्य नगरमें यज्ञदत्त नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहते थे, जो बड़े सदाचारी थे। उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम गुणनिधि था। वह बड़ा ही दुराचारी और जुआरी हो गया था। पिताने अपने उस पुत्रको त्याग दिया। वह घरसे निकल गया और कई दिनोंतक भूखा भटकता रहा। एक दिन वह नैवेद्य चुरानेकी इच्छासे एक शिवमन्दिरमें गया। वहाँ उसने अपने वस्त्रको जलाकर उजाला किया। यह मानो उसके द्वारा भगवान् शिवके लिये दीपदान किया गया। तत्पश्चात् वह चोरीमें पकड़ा गया और उसे प्राणदण्ड मिला। अपने कुकर्मोंके कारण वह यमदूतों-द्वारा बाँधा गया। इतनेमें ही भगवान् शंकरके पार्षद वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने उसे उनके बन्धनसे छुड़ा दिया। शिवगणोंके सङ्गसे उसका हृदय शुद्ध हो गया था। अतः वह उन्हींके साथ तत्काल शिवलोकमें चला गया। वहाँ सारे दिव्य भोगोंका उपभोग तथा उमा-महेश्वरका सेवन करके कालान्तरमें वह कलिङ्गराज अरिंदमका पुत्र हुआ। वहाँ उसका नाम था दम। वह निरन्तर भगवान् शिवकी सेवामें लगा रहता था। बालक होनेपर भी वह दूसरे बालकोंके साथ शिवका भजन किया करता था। वह क्रमशः युवा-

वस्थाको प्राप्त हुआ और पिताके परलोकगमनके पश्चात् राजसिंहासनपर बैठा।

राजा दम बड़ी प्रसन्नताके साथ सब ओर शिवधर्मोंका प्रचार करने लगे। भूपाल दमका दमन करना दूसरोंके लिये सर्वथा कठिन था। ब्रह्मन्! समस्त शिवालयोंमें दीपदान करनेके अतिरिक्त वे दूसरे किसी धर्मको नहीं जानते थे। उन्होंने अपने राज्यमें रहनेवाले समस्त ग्रामाध्यक्षोंको बुलाकर यह आज्ञा दे दी कि 'शिवमन्दिरमें दीपदान करना सबके लिये अनिवार्य होगा। जिस-जिस ग्रामाध्यक्षके गाँवके पास जितने शिवालय हों, वहाँ-वहाँ बिना कोई विचार किये सदा दीप जलाना चाहिये।' आजीवन इसी धर्मका पालन करनेके कारण राजा दमने बहुत बड़ी धर्मसम्पत्तिका संचय कर लिया। फिर वे काल-धर्मके अधीन हो गये। दीपदानकी वासनासे युक्त होनेके कारण उन्होंने शिवालयोंमें बहुत-से दीप जलवाये और उसके फलस्वरूप जन्मान्तरमें वे रत्नमय दीपोंकी प्रभाके आश्रय हो अलकापुरीके स्वामी हुए। इस प्रकार भगवान् शिवके लिये किया हुआ थोड़ा-सा भी पूजन या आराधन समयानुसार महान् फल देता है, ऐसा जानकर उत्तम सुखकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको शिवका भजन अवश्य करना चाहिये। वह दीक्षितका पुत्र, जो सदा सब प्रकारके अधर्मोंमें ही रचा-पचा रहता था, दैवयोगसे शिवालयमें धन चुरानेके लिये गया और उसने स्वार्थवश अपने कपड़ेको दीपककी बत्ती बनाकर उसके प्रकाशसे शिवलिङ्गके ऊपरका अँधेरा दूर कर दिया; इस सत्कर्मके फलस्वरूप वह कलिङ्ग-देशका राजा हुआ और धर्ममें उसका अनुराग हो गया। फिर दीपकी वासनाका उदय होनेसे शिवालयोंमें दीप जलवाकर उसने यह दिक्पालका पद पा लिया। मुनीश्वर! देखो तो सही, कहाँ उसका वह कर्म और कहाँ यह दिक्पालकी पदवी, जिसका यह मानवधर्मा प्राणी इस समय यहाँ उपभोग कर रहा है। तात! यह तो उसके ऊपर शिवके संतुष्ट होनेकी बात बतायी गयी। अब एकचित्त होकर यह सुनो कि किस प्रकार सदाके लिये उसकी भगवान् शिवके साथ मित्रता हो गयी। मैं इस प्रसङ्गका तुमसे वर्णन करता हूँ।

नारद! पहलेके पाद्मकल्पकी बात है, मुझ ब्रह्माके मानस पुत्र पुलस्त्यसे विश्रवाका जन्म हुआ और विश्रवाके पुत्र वैश्रवण (कुबेर) हुए। उन्होंने पूर्वकालमें अत्यन्त उग्र तपस्याके द्वारा त्रिनेत्रधारी महादेवकी आराधना करके विश्वकर्माकी बनायी हुई इस अलकापुरीका उपभोग किया। जब वह कल्प व्यतीत हो गया और मेघवाहनकल्प आरम्भ हुआ, उस समय वह यज्ञदत्तका पुत्र, जो प्रकाशका दान करनेवाला था, कुबेरके रूपमें अत्यन्त दुस्सह तपस्या करने लगा। दीपदानमात्रसे मिलनेवाली शिवभक्तिके प्रभावको जानकर वह शिवकी चित्प्रकाशिका काशिकापुरीमें गया और अपने चित्तरूपी रत्नमय प्रदीपोंसे ग्यारह रुद्रोंको उद्बोधित करके अनन्यभक्ति एवं स्नेहसे सम्पन्न हो वह तन्मयतापूर्वक शिवके ध्यानमें मग्न हो निश्चलभावसे बैठ गया। जो शिवकी एकताका महान् पात्र है, तपरूपी अग्निसे बढ़ा हुआ है, काम-क्रोधादि महाविघ्नरूपी पतङ्गोंके आघातसे शून्य है, प्राणनिरोधरूपी वायुशून्य स्थानमें निश्चलभावसे प्रकाशित है, निर्मल दृष्टिके कारण स्वरूपसे भी निर्मल है तथा

सद्भावरूपी पुष्पोंसे जिसकी पूजा की गयी है, ऐसे शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा करके वह तबतक तपस्यामें लगा रहा, जबतक उसके शरीरमें केवल अस्थि और चर्ममात्र ही अवशिष्ट नहीं रह गये। इस प्रकार उसने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की। तदनन्तर विशालाक्षी पार्वतीदेवीके साथ भगवान् विश्वनाथ कुबेरके पास आये। उन्होंने प्रसन्नचित्तसे अलकापतिकी ओर देखा। वे शिवलिङ्गमें मनको एकाग्र करके ठूँठे काठकी भाँति स्थिरभावसे बैठे थे। भगवान् शिवने उनसे कहा—'अलकापते! मैं वर देनेके लिये उद्यत हूँ। तुम अपना मनोरथ बताओ।'

यह वाणी सुनकर तपस्याके धनी कुबेरने ज्यों ही आँखें खोलकर देखा, त्यों ही उमावल्लभ भगवान् श्रीकण्ठ सामने खड़े दिखायी दिये। वे उदयकालके सहस्रों सूर्योंसे भी अधिक तेजस्वी थे और उनके मस्तकपर चन्द्रमा अपनी चाँदनी बिखेर रहे थे। भगवान् शंकरके तेजसे उनकी आँखें चौंधिया गयीं। उनका तेज प्रतिहत हो गया और वे नेत्र बंद करके मनोरथसे भी परे विराजमान देवदेवेश्वर शिवसे बोले—'नाथ! मेरे नेत्रोंको वह दृष्टिशक्ति दीजिये, जिससे आपके चरणारविन्दोंका दर्शन हो सके। स्वामिन्! आपका प्रत्यक्ष दर्शन हो, यही मेरे लिये सबसे बड़ा वर है। ईश! दूसरे किसी वरसे मेरा क्या प्रयोजन है। चन्द्रशेखर! आपको नमस्कार है।'

कुबेरकी यह बात सुनकर देवाधिदेव उमापतिने अपनी हथेलीसे उनका स्पर्श करके उन्हें देखनेकी शक्ति प्रदान की। दृष्टिशक्ति मिल जानेपर यज्ञदत्तके उस पुत्रने आँखें फाड़-फाड़कर पहले उमाकी ओर ही देखना आरम्भ किया। वह मन-ही-मन सोचने लगा, 'भगवान् शंकरके समीप यह सर्वाङ्गसुन्दरी कौन है? इसने कौन-सा ऐसा तप किया है, जो मेरी भी तपस्यासे बढ़ गया है। यह रूप, यह प्रेम, यह सौभाग्य और यह असीम शोभा—सभी अद्भुत हैं।' वह ब्राह्मणकुमार बार-बार यही कहने लगा। जब बार-बार यही कहता हुआ वह क्रूर दृष्टिसे उनकी ओर देखने लगा, तब वामाके अवलोकनसे उसकी बायीं आँख फूट गयी। तदनन्तर देवी पार्वतीने महादेवजीसे कहा—'प्रभो! यह दुष्ट तपस्वी बार-बार मेरी ओर देखकर क्या बक रहा है? आप मेरी तपस्याके तेजको प्रकट कीजिये।' देवीकी यह बात सुनकर भगवान् शिवने हँसते हुए उनसे कहा—'उमे! यह तुम्हारा पुत्र है। यह तुम्हें क्रूर दृष्टिसे नहीं देखता, अपितु तुम्हारी तप:सम्पत्तिका वर्णन कर रहा है।' देवीसे ऐसा कहकर भगवान् शिव पुनः उस ब्राह्मणकुमारसे बोले—'वत्स! मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर तुम्हें वर देता हूँ। तुम निधियोंके स्वामी और गुह्यकोंके राजा हो जाओ। सुव्रत! यक्षों, किन्नरों और राजाओंके भी राजा होकर पुण्यजनोंके पालक और सबके लिये धनके दाता बनो। मेरे साथ तुम्हारी सदा मैत्री बनी रहेगी और मैं नित्य तुम्हारे निकट निवास करूँगा। मित्र! तुम्हारी प्रीति बढ़ानेके लिये मैं अलकाके पास ही रहूँगा। आओ, इन उमादेवीके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करो; क्योंकि ये तुम्हारी माता हैं। महाभक्त यज्ञदत्त-कुमार! तुम अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे इनके चरणोंमें गिर जाओ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार वर देकर भगवान् शिवने पार्वतीदेवीसे फिर कहा—'देवेश्वरी ! इसपर कृपा करो। तपस्विनि ! यह तुम्हारा पुत्र है।' भगवान् शंकरका यह कथन सुनकर जगदम्बा पार्वतीने प्रसन्नचित्त हो यज्ञदत्तकुमारसे कहा—'वत्स ! भगवान् शिवमें तुम्हारी सदा निर्मल भक्ति बनी रहे। तुम्हारी बायीं आँख तो फूट ही गयी। इसलिये एक ही पिङ्गलनेत्रसे युक्त रहो। महादेवजीने जो वर दिये हैं, वे सब उसी रूपमें तुम्हें सुलभ हों। बेटा ! मेरे रूपके प्रति ईर्ष्या करनेके कारण तुम कुबेर नामसे प्रसिद्ध होओगे।' इस प्रकार कुबेरको वर देकर भगवान् महेश्वर पार्वतीदेवीके साथ अपने विश्वेश्वरधाममें चले गये। इस तरह कुबेरने भगवान् शंकरकी मैत्री प्राप्त की और अलकापुरीके पास जो कैलास पर्वत है, वह भगवान् शंकरका निवास हो गया।

(अध्याय १७—१९)

☆

भगवान् शिवका कैलास पर्वतपर गमन तथा सृष्टिखण्डका उपसंहार

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मुने ! कुबेरके तपोबलसे भगवान् शिवका जिस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर शुभागमन हुआ, वह प्रसङ्ग सुनो। कुबेरको वर देनेवाले विश्वेश्वर शिव जब उन्हें निधिपति होनेका वर देकर अपने उत्तम स्थानको चले गये, तब उन्होंने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'ब्रह्माजीके ललाटसे जिनका प्रादुर्भाव हुआ है तथा जो प्रलयका कार्य सँभालते हैं, वे रुद्र मेरे पूर्ण स्वरूप हैं। अतः उन्हींके रूपमें मैं गुह्यकोंके निवासस्थान कैलास पर्वतको जाऊँगा। उन्हींके रूपमें मैं कुबेरका मित्र बनकर उसी पर्वतपर विलासपूर्वक रहूँगा और बड़ा भारी तप करूँगा।'

शिवकी इस इच्छाका चिन्तन करके उन रुद्रदेवने कैलास जानेके लिये उत्सुक डमरू बजाया। डमरूकी वह ध्वनि, जो उत्साह बढ़ानेवाली थी, तीनों लोकोंमें व्याप्त हो गयी। उसका विचित्र एवं गम्भीर शब्द आह्वानकी गतिसे युक्त था, अर्थात् सुननेवालोंको अपने पास आनेके लिये प्रेरणा दे रहा था। उस ध्वनिको सुनकर मैं तथा श्रीविष्णु आदि सभी देवता, ऋषि, मूर्तिमान् आगम, निगम और सिद्ध वहाँ आ पहुँचे। देवता और असुर आदि सब लोग बड़े उत्साहमें भरकर वहाँ आये। भगवान् शिवके समस्त पार्षद तथा सर्वलोकवन्दित महाभाग गणपाल जहाँ कहीं भी थे, वहाँसे आ गये।

इतना कहकर ब्रह्माजीने वहाँ आये हुए गणपालोंका नामोल्लेखपूर्वक विस्तृत परिचय दिया, फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया। वे बोले— वहाँ असंख्य महाबली गणपाल पधारे। वे सब-के-सब सहस्रों भुजाओंसे युक्त थे और मस्तकपर जटाका ही मुकुट धारण किये हुए थे। सभी चन्द्रचूड़, नीलकण्ठ और त्रिलोचन थे। हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुट आदिसे अलंकृत थे। वे मेरे, श्रीविष्णुके तथा इन्द्रके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। अणिमा आदि आठों सिद्धियोंसे घिरे थे तथा करोड़ों सूर्योंके समान उद्भासित हो रहे थे। उस समय भगवान् शिवने विश्वकर्माको उस पर्वतपर निवास-स्थान बनानेकी आज्ञा दी। अनेक

भक्तोंके साथ अपने और दूसरोंके रहनेके लिये यथायोग्य आवास तैयार करनेका आदेश दिया।

मुने! तब विश्वकर्माने भगवान् शिवकी आज्ञाके अनुसार उस पर्वतपर जाकर शीघ्र ही नाना प्रकारके गृहोंकी रचना की। फिर श्रीहरिकी प्रार्थनासे कुबेरपर अनुग्रह करके भगवान् शिव सानन्द कैलास पर्वतपर गये। उत्तम मुहूर्तमें अपने स्थानमें प्रवेश करके भक्तवत्सल परमेश्वर शिवने सबको प्रेमदान दे सनाथ किया, इसके बाद आनन्दसे भरे हुए श्रीविष्णु आदि समस्त देवताओं, मुनियों और सिद्धोंने शिवका प्रसन्नतापूर्वक अभिषेक किया। हाथोंमें नाना प्रकारकी भेंटें लेकर सबने क्रमशः उनका पूजन किया और बड़े उत्सवके साथ उनकी आरती उतारी। मुने! उस समय आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई, जो मङ्गलसूचक थी। सब ओर जय-जयकार और नमस्कारके शब्द गूँजने लगे। महान् उत्साह फैला हुआ था, जो सबके सुखको बढ़ा रहा था। उस समय सिंहासनपर बैठकर श्रीविष्णु आदि सभी देवताओंद्वारा की हुई यथोचित सेवाको बारंबार ग्रहण करते हुए भगवान् शिव बड़ी शोभा पा रहे थे। देवता आदि सब लोगोंने सार्थक एवं प्रिय वचनोंद्वारा लोककल्याणकारी भगवान् शंकरका पृथक्-पृथक् स्तवन किया। सर्वेश्वर प्रभुने प्रसन्नचित्तसे वह स्तवन सुनकर उन सबको प्रसन्नतापूर्वक मनोवाञ्छित वर एवं अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान कीं। मुने! तदनन्तर श्रीविष्णुके साथ मैं तथा अन्य सब देवता और मुनि मनोवाञ्छित वस्तु पाकर आनन्दित हो भगवान् शिवकी आज्ञासे अपने-अपने धामको चले गये। कुबेर भी शिवकी आज्ञासे प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको गये। फिर वे भगवान् शम्भु, जो सर्वथा स्वतन्त्र हैं, योगपरायण एवं ध्यानतत्पर हो पर्वतप्रवर कैलासपर रहने लगे। कुछ काल बिना पत्नीके ही बिताकर परमेश्वर शिवने दक्षकन्या सतीको पत्नीरूपमें प्राप्त किया। देवर्षे! फिर वे महेश्वर दक्षकुमारी सतीके साथ विहार करने लगे और लोकाचारपरायण हो सुखका अनुभव करने लगे। मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने तुमसे यह रुद्रके अवतारका वर्णन किया है, साथ ही उनके कैलासपर आगमन और कुबेरके साथ मैत्रीका भी प्रसङ्ग सुनाया है। कैलासके अन्तर्गत होनेवाली उनकी ज्ञानवर्द्धिनी लीलाका भी वर्णन किया, जो इहलोक और परलोकमें सदा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है। जो एकाग्रचित्त हो इस कथाको सुनता या पढ़ता है, वह इस लोकमें भोग पाकर परलोकमें मोक्ष लाभ करता है।

(अध्याय २०)

॥ रुद्रसंहिताका सृष्टिखण्ड सम्पूर्ण ॥

रुद्रसंहिता, द्वितीय (सती) खण्ड

नारदजीके प्रश्न और ब्रह्माजीके द्वारा उनका उत्तर, सदाशिवसे त्रिदेवोंकी उत्पत्ति तथा ब्रह्माजीसे देवता आदिकी सृष्टिके पश्चात् एक नारी और एक पुरुषका प्राकट्य

नारदजी बोले—महाभाग! महाप्रभो! विधात:! आपके मुखारविन्दसे मङ्गलकारिणी शम्भुकथा सुनते-सुनते मेरा जी नहीं भर रहा है। अत: भगवान् शिवका सारा शुभ चरित्र मुझसे कहिये। सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मदेव! मैं सतीकी कीर्तिसे युक्त शिवका दिव्य चरित्र सुनना चाहता हूँ। शोभाशालिनी सती किस प्रकार दक्षपत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुईं? महादेवजीने विवाहका विचार कैसे किया? पूर्वकालमें दक्षके प्रति रोष होनेके कारण सतीने अपने शरीरका त्याग कैसे किया? चेतनाकाशको प्राप्त होकर वे फिर हिमालयकी कन्या कैसे हुईं? पार्वतीने किस प्रकार उग्र तपस्या की और कैसे उनका विवाह हुआ? कामदेवका नाश करनेवाले भगवान् शंकरके आधे शरीरमें वे किस प्रकार स्थान पा सकीं? महामते! इन सब बातोंको आप विस्तारपूर्वक कहिये। आपके समान दूसरा कोई संशयका निवारण करनेवाला न है, न होगा।

ब्रह्माजीने कहा—मुने! देवी सती और भगवान् शिवका शुभ यश परमपावन, दिव्य तथा गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय है। तुम यह सब मुझसे सुनो। पूर्वकालमें भगवान् शिव निर्गुण, निर्विकल्प,

निराकार, शक्तिरहित, चिन्मय तथा सत् और असत्से विलक्षण स्वरूपमें प्रतिष्ठित थे। फिर वे ही प्रभु सगुण और शक्तिमान् होकर विशिष्ट रूप धारण करके स्थित हुए। उनके साथ भगवती उमा विराजमान थीं। विप्रवर ! वे भगवान् शिव दिव्य आकृतिसे सुशोभित हो रहे थे। उनके मनमें कोई विकार नहीं था। वे अपने परात्पर स्वरूपमें प्रतिष्ठित थे। मुनिश्रेष्ठ ! उनके बायें अङ्गसे भगवान् विष्णु, दायें अङ्गसे मैं ब्रह्मा और मध्य अङ्ग अर्थात् हृदयसे रुद्रदेव प्रकट हुए। मैं ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हुआ, भगवान् विष्णु जगत्का पालन करने लगे और स्वयं रुद्रने संहारका कार्य सँभाला। इस प्रकार भगवान् सदाशिव स्वयं ही तीन रूप धारण करके स्थित हुए। उन्हींकी आराधना करके मुझ लोकपितामह ब्रह्माने देवता, असुर और मनुष्य आदि सम्पूर्ण जीवोंकी सृष्टि की। दक्ष आदि प्रजापतियों और देवशिरोमणियोंकी सृष्टि करके मैं बहुत प्रसन्न हुआ तथा अपनेको सबसे अधिक ऊँचा मानने लगा। मुने ! जब मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, अङ्गिरा, क्रतु, वसिष्ठ, नारद, दक्ष और भृगु—इन महान् प्रभावशाली मानसपुत्रोंको मैंने उत्पन्न किया, तब मेरे हृदयसे अत्यन्त मनोहर रूपवाली एक सुन्दरी नारी उत्पन्न हुई, जिसका नाम 'संध्या' था। वह दिनमें क्षीण हो जाती, परंतु सायंकालमें उसका रूप-सौन्दर्य खिल उठता था। वह मूर्तिमती सायं-संध्या ही थी और निरन्तर किसी मन्त्रका जप करती रहती थी। सुन्दर भौंहोंवाली वह नारी सौन्दर्यकी चरम सीमाको पहुँची हुई थी और मुनियोंके भी मनको मोहे लेती थी।

इसी तरह मेरे मनसे एक मनोहर पुरुष भी प्रकट हुआ, जो अत्यन्त अद्भुत था। उसके शरीरका मध्यभाग (कटिप्रदेश) पतला था। दाँतोंकी पंक्तियाँ बड़ी सुन्दर थीं। उसके अङ्गोंसे मतवाले हाथीकी-सी गन्ध प्रकट होती थी। नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान शोभा पाते थे। अङ्गोंमें केसर लगा था, जिसकी सुगन्ध नासिकाको तृप्त कर रही थी। उस पुरुषको देखकर दक्ष आदि मेरे सभी पुत्र अत्यन्त उत्सुक हो उठे। उनके मनमें विस्मय भर गया था। जगत्की सृष्टि करनेवाले मुझ जगदीश्वर ब्रह्माकी ओर देखकर उस पुरुषने विनयसे गर्दन झुका दी और मुझे प्रणाम करके कहा।

वह पुरुष बोला—ब्रह्मन् ! मैं कौन-सा कार्य करूँगा ? मेरे योग्य जो काम हो, उसमें मुझे लगाइये; क्योंकि विधाता ! आज आप ही सबसे अधिक माननीय और योग्य पुरुष हैं। यह लोक आपसे ही शोभित हो रहा है।

ब्रह्माजीने कहा—भद्रपुरुष ! तुम अपने इसी स्वरूपसे तथा फूलके बने हुए पाँच बाणोंसे स्त्रियों और पुरुषोंको मोहित करते हुए सृष्टिके सनातन कार्यको चलाओ। इस चराचर त्रिभुवनमें ये देवता आदि कोई भी जीव तुम्हारा तिरस्कार करनेमें समर्थ नहीं होंगे। तुम छिपे रूपसे प्राणियोंके हृदयमें प्रवेश करके सदा स्वयं उनके सुखका हेतु बनकर सृष्टिका सनातन कार्य चालू रखो। समस्त प्राणियोंका जो मन है, वह तुम्हारे पुष्पमय बाणका सदा अनायास ही अद्भुत लक्ष्य बन जायगा और तुम निरन्तर उन्हें मदमत्त किये रहोगे। यह मैंने तुम्हारा कर्म बताया है, जो सृष्टिका प्रवर्तक होगा और

तुम्हारे ठीक-ठीक नाम क्या होंगे, इस बातको मेरे ये पुत्र बतायेंगे।

सुरश्रेष्ठ! ऐसा कहकर अपने पुत्रोंके मुखकी ओर दृष्टिपात करके मैं क्षणभरके लिये अपने कमलमय आसनपर चुपचाप बैठ गया। (अध्याय १-२)

☆

कामदेवके नामोंका निर्देश, उसका रतिके साथ विवाह तथा कुमारी संध्याका चरित्र—वसिष्ठ मुनिका चन्द्रभाग पर्वतपर उसको तपस्याकी विधि बताना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर मेरे अभिप्रायको जाननेवाले मरीचि आदि मेरे पुत्र सभी मुनियोंने उस पुरुषका उचित नाम रखा। दक्ष आदि प्रजापतियोंने उसका मुँह देखते ही परोक्षके भी सारे वृत्तान्त जानकर उसे रहनेके लिये स्थान और पत्नी प्रदान की। मेरे पुत्र मरीचि आदि द्विजोंने उस पुरुषके नाम निश्चित करके उससे यह युक्तियुक्त बात कही।

ऋषि बोले—तुम जन्म लेते ही हमारे मनको भी मथने लगे हो। इसलिये लोकमें

'मन्मथ' नामसे विख्यात होओगे। मनोभव! तीनों लोकोंमें तुम इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले हो, तुम्हारे समान सुन्दर दूसरा कोई नहीं है; अतः कामरूप होनेके कारण तुम 'काम' नामसे भी विख्यात होओ। लोगोंको मदमत्त बना देनेके कारण तुम्हारा एक नाम 'मदन' होगा। तुम बड़े दर्पसे उत्पन्न हुए हो, इसलिये 'दर्पक' कहलाओगे और सदर्प होनेके कारण ही जगत्में 'कंदर्प' नामसे भी तुम्हारी ख्याति होगी। समस्त देवताओंका सम्मिलित बल-पराक्रम भी तुम्हारे समान नहीं होगा। अतः सभी स्थानोंपर तुम्हारा अधिकार होगा और तुम सर्वव्यापी होओगे। जो आदि प्रजापति हैं, वे ही ये पुरुषोंमें श्रेष्ठ दक्ष तुम्हारी इच्छाके अनुरूप पत्नी स्वयं देंगे। वह तुम्हारी कामिनी (तुमसे अनुराग रखनेवाली) होगी।

ब्रह्माजीने कहा—मुने! तदनन्तर मैं वहाँसे अदृश्य हो गया। इसके बाद दक्ष मेरी बातका स्मरण करके कंदर्पसे बोले—'कामदेव! मेरे शरीरसे उत्पन्न हुई मेरी यह कन्या सुन्दर रूप और उत्तम गुणोंसे सुशोभित है। इसे तुम अपनी पत्नी बनानेके लिये ग्रहण करो। यह गुणोंकी दृष्टिसे सर्वथा तुम्हारे योग्य है। महातेजस्वी मनोभव! यह सदा तुम्हारे साथ रहनेवाली और तुम्हारी

रुचिके अनुसार चलनेवाली होगी। अर्थात् यह सदा तुम्हारे अधीन रहेगी।

ऐसा कहकर दक्षने अपने शरीरके पसीनेसे प्रकट हुई उस कन्याका नाम 'रति' रखकर उसे अपने आगे बैठाया और कंदर्पको संकल्पपूर्वक सौंप दिया। नारद! दक्षकी वह पुत्री रति बड़ी रमणीय और मुनियोंके मनको भी मोह लेनेवाली थी। उसके साथ विवाह करके कामदेवको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। अपनी रति नामक सुन्दरी स्त्रीको देखकर उसके हाव-भाव आदिसे अनुरञ्जित हो कामदेव मोहित हो गया। तात! उस समय बड़ा भारी उत्सव होने लगा, जो सबके सुखको बढ़ानेवाला था। प्रजापति दक्ष इस बातको सोचकर बड़े

प्रसन्न थे कि मेरी पुत्री इस विवाहसे सुखी है। कामदेवको भी बड़ा सुख मिला। उसके सारे दुःख दूर हो गये। दक्षकन्या रति भी कामदेवको पाकर बहुत प्रसन्न हुई। जैसे संध्याकालमें मनोहारिणी विद्युन्मालाके साथ मेघ शोभा पाता है, उसी प्रकार रतिके साथ प्रिय वचन बोलनेवाला कामदेव बड़ी शोभा पा रहा था। इस प्रकार रतिके प्रति भारी मोहसे युक्त रतिपति कामदेवने उसे उसी तरह अपने हृदयके सिंहासनपर बिठाया, जैसे योगी पुरुष योगविद्याको हृदयमें धारण करता है। इसी प्रकार पूर्ण चन्द्रमुखी रति भी उस श्रेष्ठ पतिको पाकर उसी तरह सुशोभित हुई, जैसे श्रीहरिको पाकर पूर्णचन्द्रानना लक्ष्मी शोभा पाती हैं।

सूतजी कहते हैं—ब्रह्माजीका यह कथन सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारद मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और भगवान् शंकरका स्मरण करके हर्षपूर्वक बोले—'महाभाग! विष्णुशिष्य! महामते! विधातः! आपने चन्द्रमौलि शिवकी यह अद्भुत लीला कही है। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि विवाहके पश्चात् जब कामदेव प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चला गया, दक्ष भी अपने घरको पधारे तथा आप और आपके मानसपुत्र भी अपने-अपने धामको चले गये, तब पितरोंको उत्पन्न करनेवाली ब्रह्मकुमारी संध्या कहाँ गयी? उसने क्या किया और किस पुरुषके साथ उसका विवाह हुआ? संध्याका यह सब चरित्र विशेषरूपसे बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—मुने! संध्याका वह सारा शुभ चरित्र सुनो, जिसे सुनकर समस्त कामिनियाँ सदाके लिये सती-साध्वी हो सकती हैं। वह संध्या, जो पहले मेरी मानस-पुत्री थी, तपस्या करके शरीरको त्यागकर

मुनिश्रेष्ठ मेधातिथिकी बुद्धिमती पुत्री होकर अरुन्धतीके नामसे विख्यात हुई। उत्तम व्रतका पालन करके उस देवीने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके कहनेसे श्रेष्ठ व्रतधारी महात्मा वसिष्ठको अपना पति चुना। यह सौम्य स्वरूपवाली देवी सबकी वन्दनीया और पूजनीया श्रेष्ठ पतिव्रताके रूपमें विख्यात हुई।

नारदजीने पूछा—भगवन्! संध्याने कैसे, किसलिये और कहाँ तप किया? किस प्रकार शरीर त्यागकर वह मेधातिथिकी पुत्री हुई? ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवताओंके बताये हुए श्रेष्ठ व्रतधारी महात्मा वसिष्ठको उसने किस तरह अपना पति बनाया? पितामह! यह सब मैं विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ। अरुन्धतीके इस कौतूहलपूर्ण चरित्रका आप यथार्थरूपसे वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—मुने! संध्याके मनमें एक बार सकाम भाव आ गया था, इसलिये उस साध्वीने यह निश्चय किया कि 'वैदिकमार्गके अनुसार मैं अग्निमें अपने इस शरीरकी आहुति दे दूँगी। आजसे इस भूतलपर कोई भी देहधारी उत्पन्न होते ही कामभावसे युक्त न हो, इसके लिये मैं कठोर तपस्या करके मर्यादा स्थापित करूँगी (तरुणावस्थासे पूर्व किसीपर भी कामका प्रभाव नहीं पड़ेगा, ऐसी सीमा निर्धारित करूँगी)। इसके बाद इस जीवनको त्याग दूँगी।'

मन-ही-मन ऐसा विचार करके संध्या चन्द्रभाग नामक उस श्रेष्ठ पर्वतपर चली गयी, जहाँसे चन्द्रभागा नदीका प्रादुर्भाव हुआ है। मनमें तपस्याका दृढ़ निश्चय ले संध्याको श्रेष्ठ पर्वतपर गयी हुई जान मैंने अपने समीप बैठे हुए वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान्, सर्वज्ञ, जितात्मा एवं ज्ञानयोगी पुत्र वसिष्ठसे कहा—'बेटा वसिष्ठ! मनस्विनी संध्या तपस्याकी अभिलाषासे चन्द्रभाग नामक पर्वतपर गयी है। तुम जाओ और उसे विधिपूर्वक दीक्षा दो। तात! वह तपस्याके भावको नहीं जानती है। इसलिये जिस तरह तुम्हारे यथोचित उपदेशसे उसे अभीष्ट लक्ष्यकी प्राप्ति हो सके, वैसा प्रयत्न करो।'

नारद! मैंने दयापूर्वक जब वसिष्ठको इस प्रकार आज्ञा दी, तब वे 'जो आज्ञा' कहकर एक तेजस्वी ब्रह्मचारीके रूपमें संध्याके पास गये। चन्द्रभाग पर्वतपर एक देवसरोवर है, जो जलाशयोचित गुणोंसे परिपूर्ण हो मानसरोवरके समान शोभा पाता है। वसिष्ठने उस सरोवरको देखा और उसके तटपर बैठी हुई संध्यापर भी दृष्टिपात किया। कमलोंसे प्रकाशित होनेवाला वह सरोवर

तटपर बैठी हुई संध्यासे उपलक्षित हो उसी तरह सुशोभित हो रहा था, जैसे प्रदोषकालमें उदित हुए चन्द्रमा और नक्षत्रोंसे युक्त आकाश शोभा पाता है। सुन्दर भाववाली संध्याको वहाँ बैठी देख मुनिने कौतूहल-पूर्वक उस बृहल्लोहित नामवाले सरोवरको अच्छी तरह देखा। उसी प्राकारभूत पर्वतके शिखरसे दक्षिण समुद्रकी ओर जाती हुई चन्द्रभागा नदीका भी उन्होंने दर्शन किया। जैसे गङ्गा हिमालयसे निकलकर समुद्रकी ओर जाती है, उसी प्रकार चन्द्रभागके पश्चिम शिखरका भेदन करके वह नदी समुद्रकी ओर जा रही थी। उस चन्द्रभाग पर्वतपर बृहल्लोहित सरोवरके किनारे बैठी हुई संध्याको देखकर वसिष्ठजीने आदरपूर्वक पूछा।

वसिष्ठजी बोले—भद्रे ! तुम इस निर्जन पर्वतपर किसलिये आयी हो ? किसकी पुत्री हो और तुमने यहाँ क्या करनेका विचार किया है ? मैं यह सब सुनना चाहता हूँ। यदि छिपाने योग्य बात न हो तो बताओ।

महात्मा वसिष्ठकी यह बात सुनकर संध्याने उन महात्माकी ओर देखा। वे अपने तेजसे प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो ब्रह्मचर्य देह धारण करके आ गया हो। वे मस्तकपर जटा धारण किये बड़ी शोभा पा रहे थे। संध्याने उन तपोधनको आदरपूर्वक प्रणाम करके कहा।

संध्या बोली—ब्रह्मन् ! मैं ब्रह्माजीकी पुत्री हूँ। मेरा नाम संध्या है और मैं तपस्या करनेके लिये इस निर्जन पर्वतपर आयी हूँ। यदि मुझे उपदेश देना आपको उचित जान पड़े तो आप मुझे तपस्याकी विधि बताइये। मैं यही करना चाहती हूँ। दूसरी कोई भी गोपनीय बात नहीं है। मैं तपस्याके भावको—उसके करनेके नियमको बिना जाने ही तपोवनमें आ गयी हूँ। इसलिये चिन्तासे सूखी जा रही हूँ और मेरा हृदय काँपता है।

संध्याकी बात सुनकर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीने, जो स्वयं सारे कार्योंके ज्ञाता थे, उससे दूसरी कोई बात नहीं पूछी। वह मन-ही-मन तपस्याका निश्चय कर चुकी थी और उसके लिये अत्यन्त उद्यमशील थी। उस समय वसिष्ठने मनसे भक्तवत्सल भगवान् शंकरका स्मरण करके इस प्रकार कहा।

वसिष्ठजी बोले—शुभानने ! जो सबसे महान् और उत्कृष्ट तेज है, जो उत्तम और महान् तप है तथा जो सबके परमाराध्य परमात्मा हैं, उन भगवान् शम्भुको तुम हृदयमें धारण करो। जो अकेले ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके आदिकारण हैं, उन त्रिलोकीके आदिस्रष्टा, अद्वितीय पुरुषोत्तम शिवका भजन करो। आगे बताये जानेवाले मन्त्रसे देवेश्वर शम्भुकी आराधना करो। उससे तुम्हें सब कुछ मिल जायगा, इसमें संशय नहीं है। 'ॐ नमः शंकराय ॐ' इस मन्त्रका निरन्तर जप करते हुए मौन तपस्या आरम्भ करो और जो मैं नियम बताता हूँ, उन्हें सुनो। तुम्हें मौन रहकर ही स्नान करना होगा, मौनालम्बनपूर्वक ही महादेवजीकी पूजा करनी होगी। प्रथम दो बार छठे समयमें तुम केवल जलका पूर्ण आहार कर सकती हो। जब तीसरी बार छठा समय आये, तब केवल उपवास किया करो। इस तरह तपस्याकी समाप्तितक छठे कालमें

जलाहार एवं उपवासकी क्रिया होती रहेगी। देवि! इस प्रकार की जानेवाली मौन तपस्या ब्रह्मचर्यका फल देनेवाली तथा सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली होती है। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है। अपने चित्तमें ऐसा शुभ उद्देश्य लेकर इच्छानुसार शंकरजीका चिन्तन करो, वे प्रसन्न होनेपर तुम्हें अवश्य ही अभीष्ट फल प्रदान करेंगे।

इस तरह संध्याको तपस्या करनेकी विधिका उपदेश दे मुनिवर वसिष्ठ यथोचितरूपसे उससे विदा ले वहीं अन्तर्धान हो गये।

(अध्याय ३—५)

☆

संध्याकी तपस्या, उसके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उससे संतुष्ट हुए शिवका उसे अभीष्ट वर दे मेधातिथिके यज्ञमें भेजना

ब्रह्माजी कहते हैं—मेरे पुत्रोंमें श्रेष्ठ महाप्राज्ञ नारद! तपस्याके नियमका उपदेश दे जब वसिष्ठजी अपने घर चले गये, तब तपके उस विधानको समझकर संध्या मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई। फिर तो वह सानन्द मनसे तपस्विनीके योग्य वेष बनाकर बृहल्लोहित सरोवरके तटपर ही तपस्या करने लगी। वसिष्ठजीने तपस्याके लिये जिस मन्त्रको साधन बताया था, उसीसे उत्तम भक्तिभावके साथ वह भगवान् शंकरकी आराधना करने लगी। उसने भगवान् शिवमें अपने चित्तको लगा दिया और एकाग्र मनसे वह बड़ी भारी तपस्या करने लगी। उस तपस्यामें लगे हुए उसके चार युग व्यतीत हो गये। तब भगवान् शिव उसकी तपस्यासे संतुष्ट हो बड़े प्रसन्न हुए तथा बाहर-भीतर और आकाशमें अपने स्वरूपका दर्शन कराकर जिस रूपका वह चिन्तन करती थी, उसी रूपसे उसकी आँखोंके सामने प्रकट हो गये। उसने मनसे जिनका चिन्तन किया था, उन्हीं प्रभु शंकरको अपने सामने खड़ा देख वह अत्यन्त आनन्दमें निमग्न हो गयी। भगवान्‌का मुखारविन्द बड़ा प्रसन्न दिखायी देता था। उनके स्वरूपसे शान्ति बरस रही थी। वह सहसा भयभीत हो सोचने लगी कि 'मैं भगवान् हरसे क्या कहूँ? किस तरह इनकी स्तुति करूँ?' इसी चिन्तामें पड़कर उसने अपने दोनों नेत्र बंद कर लिये। नेत्र बंद कर लेनेपर भगवान् शिवने उसके हृदयमें प्रवेश करके

उसे दिव्य ज्ञान दिया, दिव्य वाणी और दिव्य दृष्टि प्रदान की। जब उसे दिव्य ज्ञान, दिव्य दृष्टि और दिव्य वाणी प्राप्त हो गयी, तब वह कठिनाईसे ज्ञात होनेवाले जगदीश्वर शिवको प्रत्यक्ष देखकर उनकी स्तुति करने लगी।

संध्या बोली—जो निराकार और परम ज्ञानगम्य हैं, जो न तो स्थूल हैं, न सूक्ष्म हैं और न उच्च ही हैं तथा जिनके स्वरूपका योगीजन अपने हृदयके भीतर चिन्तन करते हैं, उन्हीं लोकस्रष्टा आप भगवान् शिवको नमस्कार है। जिन्हें शर्व कहते हैं, जो शान्तस्वरूप, निर्मल, निर्विकार और ज्ञानगम्य हैं, जो अपने ही प्रकाशमें स्थित हो प्रकाशित होते हैं, जिनमें विकारका अत्यन्त अभाव है, जो आकाशमार्गकी भाँति निर्गुण, निराकार बताये गये हैं तथा जिनका रूप अज्ञानान्धकारमार्गसे सर्वथा परे है, उन नित्यप्रसन्न आप भगवान् शिवको मैं प्रणाम करती हूँ। जिनका रूप एक (अद्वितीय), शुद्ध, बिना मायाके प्रकाशमान, सच्चिदानन्दमय, सहज निर्विकार, नित्यानन्दमय, सत्य, ऐश्वर्यसे युक्त, प्रसन्न तथा लक्ष्मीको देनेवाला है, उन आप भगवान् शिवको नमस्कार है। जिनके स्वरूपकी ज्ञानरूपसे ही उद्भावना की जा सकती है, जो इस जगत्से सर्वथा भिन्न है एवं सत्त्वप्रधान, ध्यानके योग्य, आत्मस्वरूप, सारभूत, सबको पार लगानेवाला तथा पवित्र वस्तुओंमें भी परम पवित्र है, उन आप महेश्वरको मेरा नमस्कार है। आपका जो स्वरूप शुद्ध, मनोहर, रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित तथा स्वच्छ कर्पूरके समान गौरवर्ण है, जिसने अपने हाथोंमें वर, अभय, शूल और मुण्ड धारण कर रखा है, उस दिव्य, चिन्मय, सगुण, साकार विग्रहसे सुशोभित आप योगयुक्त भगवान् शिवको नमस्कार है। आकाश, पृथ्वी, दिशाएँ, जल, तेज तथा काल—ये जिनके रूप हैं, उन आप परमेश्वरको नमस्कार है।*

प्रधान (प्रकृति) और पुरुष जिनके शरीररूपसे प्रकट हुए हैं अर्थात् वे दोनों जिनके शरीर हैं, इसीलिये जिनका यथार्थ रूप अव्यक्त (बुद्धि आदिसे परे) है, उन भगवान् शंकरको बारंबार नमस्कार है। जो ब्रह्मा होकर जगत्‌की सृष्टि करते हैं, जो विष्णु होकर संसारका पालन करते हैं तथा जो रुद्र होकर अन्तमें इस सृष्टिका संहार करेंगे, उन्हीं आप भगवान् सदाशिवको बारंबार नमस्कार है। जो कारणके भी कारण हैं, दिव्य अमृतरूप ज्ञान तथा अणिमा आदि ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हैं, समस्त लोकान्तरोंका वैभव देनेवाले हैं, स्वयं

---

* संध्योवाच—

निराकारं ज्ञानगम्यं परं यन्नैव स्थूलं नापि सूक्ष्मं न चोच्चम्। अन्तश्चिन्त्यं योगिभिस्तस्य रूपं तस्मै तुभ्यं लोककर्त्रे नमोऽस्तु॥
शर्वं शान्तं निर्मलं निर्विकारं ज्ञानगम्यं स्वप्रकाशेऽविकारम्। खाध्वप्रख्यं ध्वान्तमार्गात्परस्तात् रूपं यस्य त्वां नमामि प्रसन्नम्॥
एकं शुद्धं दीप्यमानं विनाजं चिदानन्दं सहजं चाविकारि। नित्यानन्दं सत्यभूतिप्रसन्नं यस्य श्रीदं रूपमस्मै नमस्ते॥
विद्याकारोद्भावनीयं प्रभिन्नं सत्त्वच्छन्दं ध्येयमात्मस्वरूपम्। सारं पारं पावनानां पवित्रं तस्मै रूपं यस्य चैवं नमस्ते॥
यत्त्वाकारं शुद्धरूपं मनोज्ञं रत्नाकल्पं स्वच्छकर्पूरगौरम्। इष्टाभीती शूलमुण्डे दधानं हस्तैर्नमो योगयुक्ताय तुभ्यम्॥
गगनं भूर्दिशश्चैव सलिलं ज्योतिरेव च। पुनः कालश्च रूपाणि यस्य तुभ्यं नमोऽस्तु ते॥

(शि० पु० रु० सं० स० खं० ५।१२—१७)

प्रकाशरूप हैं तथा प्रकृतिसे भी परे हैं, उन परमेश्वर शिवको नमस्कार है, नमस्कार है। यह जगत् जिनसे भिन्न नहीं कहा जाता, जिनके चरणोंसे पृथ्वी तथा अन्यान्य अङ्गोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, कामदेव एवं अन्य देवता प्रकट हुए हैं और जिनकी नाभिसे अन्तरिक्षका आविर्भाव हुआ है, उन्हीं आप भगवान् शम्भुको मेरा नमस्कार है। प्रभो ! आप ही सबसे उत्कृष्ट परमात्मा हैं, आप ही नाना प्रकारकी विद्याएँ हैं, आप ही हर (संहारकर्ता) हैं, आप ही सद्ब्रह्म तथा परब्रह्म हैं, आप सदा विचारमें तत्पर रहते हैं। जिनका न आदि है, न मध्य है और न अन्त ही है, जिनसे सारा जगत् उत्पन्न हुआ है तथा जो मन और वाणीके विषय नहीं हैं, उन महादेवजीकी स्तुति मैं कैसे कर सकूँगी ? *

ब्रह्मा आदि देवता तथा तपस्याके धनी मुनि भी जिनके रूपोंका वर्णन नहीं कर सकते, उन्हीं परमेश्वरका वर्णन अथवा स्तवन मैं कैसे कर सकती हूँ ? प्रभो ! आप निर्गुण हैं, मैं मूढ़ स्त्री आपके गुणोंको कैसे जान सकती हूँ ? आपका रूप तो ऐसा है, जिसे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी नहीं जानते हैं। महेश्वर ! आपको नमस्कार है। तपोमय ! आपको नमस्कार है। देवेश्वर शम्भो ! मुझपर प्रसन्न होइये। आपको बारंबार मेरा नमस्कार है। †

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! संध्याका यह स्तुतिपूर्ण वचन सुनकर उसके द्वारा भलीभाँति प्रशंसित हुए भक्तवत्सल परमेश्वर शंकर बहुत प्रसन्न हुए। उसका शरीर वल्कल और मृगचर्मसे ढका हुआ था। मस्तकपर पवित्र जटाजूट शोभा पा रहा था। उस समय पालेके मारे हुए कमलके समान उसके कुम्हलाये हुए मुँहको देखकर भगवान् हर दयासे द्रवित हो उससे इस प्रकार बोले।

महेश्वरने कहा—भद्रे ! मैं तुम्हारी इस उत्तम तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ। शुद्ध बुद्धिवाली देवि ! तुम्हारे इस स्तवनसे भी मुझे बड़ा संतोष प्राप्त हुआ है। अतः इस समय अपनी इच्छाके अनुसार कोई वर माँगो। जिस वरसे तुम्हें प्रयोजन हो तथा जो तुम्हारे मनमें हो, उसे मैं यहाँ अवश्य पूर्ण करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारे व्रत-नियमसे बहुत प्रसन्न हूँ।

---

* प्रधानपुरुषौ यस्य कायत्वेन विनिर्गतौ। तस्मादव्यक्तरूपाय शंकराय नमो नमः॥
यो ब्रह्मा कुरुते सृष्टिं यो विष्णुः कुरुते स्थितिम्। संहरिष्यति यो रुद्रस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः॥
नमो नमः कारणकारणाय दिव्यामृतज्ञानविभूतिदाय। समस्तलोकान्तरभूतिदाय प्रकाशरूपाय परात्पराय॥
यस्यापरं नो जगदुच्यते पदात् क्षितिर्दिशः सूर्य इन्दुर्मनोजः। बहिर्मुखा नाभितश्चान्तरिक्षं तस्मै तुभ्यं शम्भवे मे नमोऽस्तु॥
त्वं परः परमात्मा च त्वं विद्या विविधा हरः। सद्ब्रह्म च परं ब्रह्म विचारणपरायणः॥
यस्य नादिर्न मध्यं च नान्तमस्ति जगद्यतः। कथं स्तोष्यामि तं देवं वाङ्मनोगोचरं हरम्॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ६।१८—२३)

† यस्य ब्रह्मादयो देवा मुनयश्च तपोधनाः। न विप्रण्वन्ति रूपाणि वर्णनीयः कथं स मे॥
स्त्रिया मया ते किं ज्ञेया निर्गुणस्य गुणाः प्रभो। नैव जानन्ति यद्रूपं सेन्द्रा अपि सुरासुराः॥
नमस्तुभ्यं महेशान नमस्तुभ्यं तपोमय। प्रसीद शम्भो देवेश भूयो भूयो नमोऽस्तु ते॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ६।२४—२६)

प्रसन्नचित्त महेश्वरका यह वचन सुनकर अत्यन्त हर्षसे भरी हुई संध्या उन्हें बारंबार प्रणाम करके बोली—महेश्वर ! यदि आप मुझे प्रसन्नतापूर्वक वर देना चाहते हैं, यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ; यदि पापसे शुद्ध हो गयी हूँ तथा देव ! यदि इस समय आप मेरी तपस्यासे प्रसन्न हैं तो मेरा माँगा हुआ यह पहला वर सफल करें। देवेश्वर ! इस आकाशमें पृथ्वी आदि किसी भी स्थानमें जो प्राणी हैं, वे सब-के-सब जन्म लेते ही कामभावसे युक्त न हो जायँ। नाथ ! मेरी सकाम दृष्टि कहीं न पड़े। मेरे जो पति हों, वे भी मेरे अत्यन्त सुहृद् हों। पतिके अतिरिक्त जो भी पुरुष मुझे सकामभावसे देखे, उसके पुरुषत्वका नाश हो जाय—वह तत्काल नपुंसक हो जाय।

निष्पाप संध्याका यह वचन सुनकर प्रसन्न हुए भक्तवत्सल भगवान् शंकरने कहा—देवि ! संध्ये ! सुनो। भद्रे ! तुमने जो-जो वर माँगा है, वह सब तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर मैंने दे दिया। प्राणियोंके जीवनमें मुख्यत: चार अवस्थाएँ होती हैं—पहली शैशवावस्था, दूसरी कौमारावस्था, तीसरी यौवनावस्था और चौथी वृद्धावस्था। तीसरी अवस्था प्राप्त होनेपर देहधारी जीव कामभावसे युक्त होंगे। कहीं-कहीं दूसरी अवस्थाके अन्तिम भागमें ही प्राणी सकाम हो जायँगे। तुम्हारी तपस्याके प्रभावसे मैंने जगत्‌में सकामभावके उदयकी यह मर्यादा स्थापित कर दी है, जिससे देहधारी जीव जन्म लेते ही कामासक्त न हो जायँ। तुम भी इस लोकमें वैसे दिव्य सतीभावको प्राप्त करो, जैसा तीनों लोकोंमें दूसरी किसी स्त्रीके लिये सम्भव नहीं होगा। पाणिग्रहण करनेवाले पतिके सिवा जो कोई भी पुरुष सकाम होकर तुम्हारी ओर देखेगा, वह तत्काल नपुंसक होकर दुर्बलताको प्राप्त हो जायगा। तुम्हारे पति महान् तपस्वी तथा दिव्यरूपसे सम्पन्न एक महाभाग महर्षि होंगे, जो तुम्हारे साथ सात कल्पोंतक जीवित रहेंगे। तुमने मुझसे जो-जो वर माँगे थे, वे सब मैंने पूर्ण कर दिये। अब मैं तुमसे दूसरी बात कहूँगा, जो पूर्वजन्मसे सम्बन्ध रखती है। तुमने पहलेसे ही यह प्रतिज्ञा कर रखी है कि मैं अग्निमें अपने शरीरको त्याग दूँगी। उस प्रतिज्ञाको सफल करनेके लिये मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ। उसे निस्संदेह करो। मुनिवर मेधातिथिका एक यज्ञ चल रहा है, जो बारह वर्षोंतक चालू रहनेवाला है। उसमें अग्नि पूर्णतया प्रज्वलित है। तुम बिना विलम्ब किये उसी अग्निमें अपने शरीरका उत्सर्ग कर दो। इसी पर्वतकी उपत्यकामें चन्द्रभागा नदीके तटपर तापसाश्रममें मुनिवर मेधातिथि महायज्ञका अनुष्ठान करते हैं। तुम स्वच्छन्दतापूर्वक वहाँ जाओ। मुनि तुम्हें वहाँ देख नहीं सकेंगे। मेरी कृपासे तुम मुनिकी अग्निसे प्रकट हुई पुत्री होओगी। तुम्हारे मनमें जिस किसी स्वामीको प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उसे हृदयमें धारणकर, उसीका चिन्तन करते हुए तुम अपने शरीरको उस यज्ञकी अग्निमें होम दो। संध्ये ! जब तुम इस पर्वतपर चार युगोंतकके लिये कठोर तपस्या कर रही थी, उन्हीं दिनों उस चतुर्युगीका सत्ययुग बीत जानेपर त्रेताके प्रथम भागमें प्रजापति दक्षके बहुत-सी कन्याएँ हुईं। उन्होंने अपनी उन सुशीला कन्याओंका यथायोग्य वरोंके साथ विवाह कर दिया। उनमेंसे सत्ताईस कन्याओंका

विवाह उन्होंने चन्द्रमाके साथ किया। चन्द्रमा अन्य सब पत्नियोंको छोड़कर केवल रोहिणीसे प्रेम करने लगे। इसके कारण क्रोधसे भरे हुए दक्षने जब चन्द्रमाको शाप दे दिया, तब समस्त देवता तुम्हारे पास आये। परंतु संध्ये! तुम्हारा मन तो मुझमें लगा हुआ था, अतः तुमने ब्रह्माजीके साथ आये हुए उन देवताओंपर दृष्टिपात ही नहीं किया। तब ब्रह्माजीने आकाशकी ओर देखकर और चन्द्रमा पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त करें, यह उद्देश्य मनमें रखकर उन्हें शापसे छुड़ानेके लिये एक नदीकी सृष्टि की, जो चन्द्र या चन्द्रभागा नदीके नामसे विख्यात हुई। चन्द्रभागाके प्रादुर्भावकालमें ही महर्षि मेधातिथि यहाँ उपस्थित हुए थे। तपस्याके द्वारा उनकी समानता करनेवाला न तो कोई हुआ है, न है और न होगा ही। उन महर्षिने महान् विधि-विधानके साथ दीर्घकालतक चलनेवाले ज्योतिष्टोम नामक यज्ञका आरम्भ किया है। उसमें अग्निदेव पूर्णरूपसे प्रज्वलित हो रहे हैं। उसी आगमें तुम अपने शरीरको डाल दो और परम पवित्र हो जाओ। ऐसा करनेसे इस समय तुम्हारी वह प्रतिज्ञा पूर्ण हो जायगी।

इस प्रकार संध्याको उसके हितका उपदेश देकर देवेश्वर भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये।

(अध्याय ६)

☆

संध्याकी आत्माहुति, उसका अरुन्धतीके रूपमें अवतीर्ण होकर मुनिवर वसिष्ठके साथ विवाह करना, ब्रह्माजीका रुद्रके विवाहके लिये प्रयत्न और चिन्ता तथा भगवान् विष्णुका उन्हें 'शिवा' की आराधनाके लिये उपदेश देकर चिन्तामुक्त करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! जब वर देकर भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये, तब संध्या भी उसी स्थानपर गयी, जहाँ मुनि मेधातिथि यज्ञ कर रहे थे। भगवान् शंकरकी कृपासे उसे किसीने वहाँ नहीं देखा। उसने उस तेजस्वी ब्रह्मचारीका स्मरण किया, जिसने उसके लिये तपस्याकी विधिका उपदेश दिया था। महामुने! पूर्वकालमें महर्षि वसिष्ठने मुझ परमेष्ठीकी आज्ञासे एक तेजस्वी ब्रह्मचारीका वेष धारण करके उसे तपस्या करनेके लिये उपयोगी नियमोंका उपदेश दिया था। संध्या अपनेको तपस्याका उपदेश देनेवाले उन्हीं ब्रह्मचारी ब्राह्मण वसिष्ठको पतिरूपसे मनमें रखकर उस महायज्ञमें प्रज्वलित अग्निके समीप गयी। उस समय भगवान् शंकरकी कृपासे मुनियोंने उसे नहीं देखा। ब्रह्माजीकी वह पुत्री बड़े हर्षके साथ उस अग्निमें प्रविष्ट हो गयी। उसका पुरोडाशमय[1] शरीर तत्काल दग्ध हो गया। उस पुरोडाशकी अलक्षित गन्ध सब ओर फैल गयी। अग्निने भगवान् शंकरकी

---

१. यज्ञभाग।

आज्ञासे उसके सुवर्ण-जैसे शरीरको जलाकर शुद्ध करके पुनः सूर्य-मण्डलमें पहुँचा दिया। तब सूर्यने पितरों और देवताओंकी तृप्तिके लिये उसे दो भागोंमें विभक्त करके अपने रथमें स्थापित कर दिया।

मुनीश्वर! उसके शरीरका ऊपरी भाग प्रातःसंध्या हुआ, जो दिन और रातके बीचमें पड़नेवाली आदिसंध्या है तथा उसके शरीरका शेष भाग सायंसंध्या हुआ, जो दिन और रातके मध्यमें होनेवाली अन्तिम संध्या है! सायंसंध्या सदा ही पितरोंको प्रसन्नता प्रदान करनेवाली होती है। सूर्योदयसे पहले जब अरुणोदय हो— प्राचीके क्षितिजमें लाली छा जाय, तब प्रातःसंध्या प्रकट होती है, जो देवताओंको प्रसन्न करनेवाली है। जब लाल कमलके समान सूर्य अस्त हो

जाते हैं, उसी समय सदा सायंसंध्याका उदय होता है, जो पितरोंको आनन्द प्रदान करनेवाली है। परम दयालु भगवान् शिवने उसके मनसहित प्राणोंको दिव्य शरीरसे युक्त देहधारी बना दिया। जब मुनिके यज्ञकी समाप्तिका अवसर आया, तब वह अग्निकी ज्वालामें महर्षि मेधातिथिको तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाली पुत्रीके रूपमें प्राप्त हुई। मुनिने बड़े आमोदके साथ उस समय उस पुत्रीको ग्रहण किया। मुने! उन्होंने यज्ञके लिये उसे नहलाकर अपनी गोदमें बिठा लिया। शिष्योंसे घिरे हुए महामुनि मेधातिथिको वहाँ बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने उसका नाम 'अरुन्धती' रखा। वह किसी भी कारणसे धर्मका अवरोध नहीं करती थी; अतः उसी गुणके कारण उसने स्वयं यह त्रिभुवन-विख्यात नाम प्राप्त किया। देवर्षे! यज्ञको समाप्त करके कृतकृत्य हो वे मुनि पुत्रीकी प्राप्ति होनेसे बहुत प्रसन्न थे और अपने शिष्योंके साथ आश्रममें रहकर सदा उसीका लालन-पालन करते थे। देवी अरुन्धती चन्द्रभागा नदीके तटपर तापसारण्यके भीतर मुनिवर मेधातिथिके उस आश्रममें धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। जब वह विवाहके योग्य हो गयी, तब मैंने, विष्णु तथा महेश्वरने मिलकर मुझ ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठके साथ उसका विवाह करा दिया। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशके हाथोंसे निकले हुए जलसे शिप्रा आदि सात परम पवित्र नदियाँ उत्पन्न हुईं।

मुने! मेधातिथिकी पुत्री महासाध्वी अरुन्धती समस्त पतिव्रताओंमें श्रेष्ठ थी, वह महर्षि वसिष्ठको पतिरूपमें पाकर उनके साथ बड़ी शोभा पाने लगी। उससे शक्ति

आदि शुभ एवं श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए। मुनिश्रेष्ठ! वह प्रियतम पति वसिष्ठको पाकर विशेष शोभा पाने लगी। मुनिशिरोमणे! इस प्रकार मैंने तुम्हारे समक्ष संध्याके पवित्र चरित्रका वर्णन किया है, जो समस्त कामनाओंके फलोंको देनेवाला, परम पावन और दिव्य है। जो स्त्री या शुभ व्रतका आचरण करनेवाला पुरुष इस प्रसङ्गको सुनता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

प्रजापति ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर नारदजीका मन प्रसन्न हो गया और वे इस प्रकार बोले।

नारदजीने कहा—ब्रह्मन्! आपने अरुन्धतीकी तथा पूर्वजन्ममें उसकी स्वरूपभूता संध्याकी बड़ी उत्तम दिव्य कथा सुनायी है, जो शिवभक्तिकी वृद्धि करनेवाली है। धर्मज्ञ! अब आप भगवान् शिवके उस परम पवित्र चरित्रका वर्णन कीजिये, जो दूसरोंके पापोंका विनाश करनेवाला, उत्तम एवं मङ्गलदायक है। जब कामदेव रतिसे विवाह करके हर्षपूर्वक चला गया, दक्ष आदि अन्य मुनि भी जब अपने-अपने स्थानको पधारे और जब संध्या तपस्या करनेके लिये चली गयी, उसके बाद वहाँ क्या हुआ?

ब्रह्माजीने कहा—विप्रवर नारद! तुम धन्य हो, भगवान् शिवके सेवक हो; अतः शिवकी लीलासे युक्त जो उनका शुभ चरित्र है, उसे भक्तिपूर्वक सुनो। तात! पूर्वकालमें मैं एक बार जब मोहमें पड़ गया और भगवान् शंकरने मेरा उपहास किया, तब मुझे बड़ा क्षोभ हुआ था। वस्तुतः शिवकी मायाने मुझे मोह लिया था, इसलिये मैं भगवान् शिवके प्रति ईर्ष्या करने लगा। किस प्रकार, सो बताता हूँ; सुनो। मैं उस स्थानपर गया, जहाँ दक्षराज मुनि उपस्थित थे। वहीं रतिके साथ कामदेव भी था। नारद! उस समय मैंने बड़ी प्रसन्नताके साथ दक्ष तथा दूसरे पुत्रोंको सम्बोधित करके वार्तालाप आरम्भ किया। उस वार्तालापके समय मैं शिवकी मायासे पूर्णतया मोहित था; अतः मैंने कहा—'पुत्रो! तुम्हें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे महादेवजी किसी कमनीय कान्तिवाली स्त्रीका पाणिग्रहण करें।' इसके बाद मैंने भगवान् शिवको मोहित करनेका भार रतिसहित कामदेवको सौंपा। कामदेवने मेरी आज्ञा मानकर कहा—'प्रभो! सुन्दरी स्त्री ही मेरा अस्त्र है, अतः शिवजीको मोहित करनेके लिये किसी नारीकी सृष्टि कीजिये।' यह सुनकर मैं चिन्तामें पड़ गया और लंबी साँस खींचने लगा। मेरे उस निःश्वाससे राशि-राशि पुष्पोंसे विभूषित वसन्तका प्रादुर्भाव हुआ। वसन्त और मलयानिल—ये दोनों मदनके सहायक हुए। इनके साथ जाकर कामदेवने वामदेवको मोहनेकी बारंबार चेष्टा की, परंतु उसे सफलता न मिली। जब वह निराश होकर लौट आया, तब उसकी बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। उस समय मेरे मुखसे जो निःश्वास वायु चली, उससे मारगणोंकी उत्पत्ति हुई। उन्हें मदनकी सहायताके लिये आदेश देकर मैंने पुनः उन सबको शिवजीके पास भेजा, परंतु महान् प्रयत्न करनेपर भी वे भगवान् शिवको मोहमें न डाल सके। काम सपरिवार लौट

आया और मुझे प्रणाम करके अपने स्थानको चला गया।

उसके चले जानेपर मैं मन-ही-मन सोचने लगा कि निर्विकार तथा मनको वशमें रखनेवाले योगपरायण भगवान् शंकर किसी स्त्रीको अपनी सहधर्मिणी बनाना कैसे स्वीकार करेंगे। यही सोचते-सोचते मैंने भक्तिभावसे उन भगवान् श्रीहरिका स्मरण किया, जो साक्षात् शिवस्वरूप तथा मेरे शरीरके जन्मदाता हैं। मैंने दीन वचनोंसे युक्त शुभ स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति की। उस स्तुतिको सुनकर भगवान् शीघ्र ही मेरे सामने प्रकट हो गये। उनके चार भुजाएँ शोभा पाती थीं। नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान सुन्दर थे। उन्होंने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म ले रखे थे। उनके श्याम शरीरपर पीताम्बरकी बड़ी शोभा हो रही थी। वे भगवान् श्रीहरि भक्त-प्रिय हैं—अपने भक्त उन्हें बहुत प्यारे हैं। सबके उत्तम शरणदाता उन श्रीहरिको उस रूपमें देखकर मेरे नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बह चली और मैं गद्गद कण्ठसे बारंबार उनकी स्तुति करने लगा। मेरे उस स्तोत्रको सुनकर अपने भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले भगवान् विष्णु बहुत प्रसन्न हुए और शरणमें आये हुए मुझ ब्रह्मासे बोले—'महाप्राज्ञ विधातः! लोकस्रष्टा ब्रह्मन्! तुम धन्य हो। बताओ, तुमने किसलिये आज मेरा स्मरण किया है और किस निमित्तसे यह स्तुति की जा रही है? तुमपर कौन-सा महान् दुःख आ पड़ा है? उसे मेरे सामने इस समय कहो। मैं वह सारा दुःख मिटा दूँगा। इस विषयमें कोई संदेह या अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।'

तब ब्रह्माजीने सारा प्रसङ्ग सुनाकर कहा—'केशव! यदि भगवान् शिव किसी तरह पत्नीको ग्रहण कर लें तो मैं सुखी हो जाऊँगा, मेरे अन्तःकरणका सारा दुःख दूर हो जायगा। इसीके लिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ।'

मेरी यह बात सुनकर भगवान् मधुसूदन हँस पड़े और मुझ लोकस्रष्टा ब्रह्माका हर्ष बढ़ाते हुए मुझसे शीघ्र ही यों बोले—"विधातः! तुम मेरा वचन सुनो। यह तुम्हारे भ्रमका निवारण करनेवाला है। मेरा वचन ही वेद-शास्त्र आदिका वास्तविक सिद्धान्त है। शिव ही सबके कर्ता-भर्ता (पालक) और हर्ता (संहारक) हैं। वे ही परात्पर हैं। परब्रह्म, परेश, निर्गुण, नित्य, अनिर्देश्य, निर्विकार, अद्वितीय, अच्युत, अनन्त, सबका अन्त करनेवाले, स्वामी और सर्वव्यापी परमात्मा एवं परमेश्वर हैं। सृष्टि, पालन और संहारके कर्ता, तीनों गुणोंको आश्रय देनेवाले, व्यापक, ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामसे प्रसिद्ध, रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुणसे परे, मायासे ही भेदयुक्त प्रतीत होनेवाले, निरीह, मायारहित, मायाके स्वामी या प्रेरक, चतुर, सगुण, स्वतन्त्र, आत्मानन्दस्वरूप, निर्विकल्प, आत्माराम, निर्द्वन्द्व, भक्तपरवश, सुन्दर विग्रहसे सुशोभित योगी, नित्य योगपरायण, योग-मार्गदर्शक, गर्वहारी, लोकेश्वर और सदा दीनवत्सल हैं। तुम उन्हींकी शरणमें जाओ। सर्वात्मना शम्भुका भजन करो। इससे संतुष्ट होकर वे तुम्हारा कल्याण करेंगे। ब्रह्मन्! यदि तुम्हारे मनमें यह विचार हो कि शंकर पत्नीका पाणिग्रहण करें तो शिवाको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे शिवका स्मरण करते हुए

उत्तम तपस्या करो। अपने उस मनोरथको हृदयमें रखते हुए देवी शिवाका ध्यान करो। वे देवेश्वरी यदि प्रसन्न हो जायँ तो सारा कार्य सिद्ध कर देंगी। यदि शिवा सगुणरूपसे अवतार ग्रहण करके लोकमें किसीकी पुत्री हो मानव-शरीर ग्रहण करें तो वे निश्चय ही महादेवजीकी पत्नी हो सकती हैं। ब्रह्मन्! तुम दक्षको आज्ञा दो, वे भगवान् शिवके लिये पत्नीका उत्पादन करनेके निमित्त स्वतः भक्तिभावसे प्रयत्नपूर्वक तपस्या करें। तात! शिवा और शिव दोनोंको भक्तके अधीन जानना चाहिये। वे निर्गुण परब्रह्मस्वरूप होते हुए भी स्वेच्छासे सगुण हो जाते हैं।

'विधे! भगवान् शिवकी इच्छासे प्रकट हुए हम दोनोंने जब उनसे प्रार्थना की थी, तब पूर्वकालमें भगवान् शंकरने जो बात कही थी, उसे याद करो। ब्रह्मन्! अपनी शक्तिसे सुन्दर लीला-विहार करनेवाले निर्गुण शिवने स्वेच्छासे सगुण होकर मुझको और तुमको प्रकट करनेके पश्चात् तुम्हें तो सृष्टि-कार्य करनेका आदेश दिया और उमासहित उन अविनाशी सृष्टिकर्ता प्रभुने मुझे उस सृष्टिके पालनका कार्य सौंपा। फिर नाना लीला-विशारद उन दयालु स्वामीने हँसकर आकाशकी ओर देखते हुए बड़े प्रेमसे कहा—विष्णो! मेरा उत्कृष्ट रूप इन विधाताके अङ्गसे इस लोकमें प्रकट होगा, जिसका नाम रुद्र होगा। रुद्रका रूप ऐसा ही होगा, जैसा मेरा है। वह मेरा पूर्णरूप होगा, तुम दोनोंको सदा उसकी पूजा करनी चाहिये। वह तुम दोनोंके सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाला होगा। वही जगत्‌का प्रलय करनेवाला होगा। वह समस्त गुणोंका द्रष्टा, निर्विशेष एवं उत्तम योगका पालक होगा। यद्यपि तीनों देवता मेरे ही रूप हैं, तथापि विशेषतः रुद्र मेरा पूर्णरूप होगा। पुत्रो! देवी उमाके भी तीन रूप होंगे। एक रूपका नाम लक्ष्मी होगा, जो इन श्रीहरिकी पत्नी होंगी। दूसरा रूप ब्रह्मपत्नी सरस्वती हैं। तीसरा रूप सतीके नामसे प्रसिद्ध होगा। सती उमाका पूर्णरूप होंगी। वे ही भावी रुद्रकी पत्नी होंगी।'

''ऐसा कहकर भगवान् महेश्वर हमपर कृपा करनेके पश्चात् वहाँसे अन्तर्धान हो गये और हम दोनों सुखपूर्वक अपने-अपने कार्यमें लग गये। ब्रह्मन्! समय पाकर मैं और तुम दोनों सपत्नीक हो गये और साक्षात् भगवान् शंकर रुद्रनामसे अवतीर्ण हुए। वे इस समय कैलास पर्वतपर निवास करते हैं। प्रजेश्वर! अब शिवा भी सती नामसे अवतीर्ण होनेवाली हैं। अतः तुम्हें उनके उत्पादनके लिये ही यत्न करना चाहिये।''

ऐसा कहकर मुझपर बड़ी भारी दया करके भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये और मुझे उनकी बातें सुनकर बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ।

(अध्याय ७—१०)

दक्षकी तपस्या और देवी शिवाका उन्हें वरदान देना

नारदजीने पूछा—पूज्य पिताजी! दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले दक्षने तपस्या करके देवीसे कौन-सा वर प्राप्त किया तथा वे देवी किस

प्रकार दक्षकी कन्या हुईं ?

ब्रह्माजीने कहा—नारद ! तुम धन्य हो ! इन सभी मुनियोंके साथ भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गको सुनो। मेरी आज्ञा पाकर उत्तम बुद्धिवाले महाप्रजापति दक्षने क्षीरसागरके उत्तर तटपर स्थित हो देवी जगदम्बिकाको पुत्रीके रूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा तथा उनके प्रत्यक्ष दर्शनकी कामना लिये उन्हें हृदय-मन्दिरमें विराजमान करके तपस्या प्रारम्भ की। दक्षने मनको संयममें रखकर दृढ़तापूर्वक कठोर व्रतका पालन करते हुए शौच-संतोषादि नियमोंसे युक्त हो तीन हजार दिव्य वर्षोंतक तप किया। वे कभी जल पीकर रहते, कभी हवा पीते और कभी सर्वथा उपवास करते थे। भोजनके नामपर कभी सूखे पत्ते चबा लेते थे।

मुनिश्रेष्ठ नारद ! तदनन्तर यम-नियमादिसे युक्त हो जगदम्बाकी पूजामें लगे हुए दक्षको देवी शिवाने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। जगन्मयी जगदम्बाका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर प्रजापति दक्षने अपने-आपको कृतकृत्य माना। वे कालिका देवी सिंहपर आरूढ़ थीं। उनकी अङ्गकान्ति श्याम थी। मुख बड़ा ही मनोहर था। वे चार भुजाओंसे युक्त थीं और हाथोंमें वरद, अभय, नील कमल और खड्ग धारण किये हुए थीं। उनकी मूर्ति बड़ी मनोहारिणी थी। नेत्र कुछ-कुछ लाल थे। खुले हुए केश बड़े सुन्दर दिखायी देते थे। उत्तम प्रभासे प्रकाशित होनेवाली उन जगदम्बाको भलीभाँति प्रणाम करके दक्ष विचित्र वचनावलियोंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे।

दक्षने कहा—जगदम्ब ! महामाये ! जगदीशे ! महेश्वरि ! आपको नमस्कार है। आपने कृपा करके मुझे अपने स्वरूपका दर्शन कराया है। भगवति ! आद्ये ! मुझपर प्रसन्न होइये। शिवरूपिणि ! प्रसन्न होइये। भक्तवरदायिनि ! प्रसन्न होइये। जगन्माये ! आपको मेरा नमस्कार है।*

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! संयत चित्तवाले दक्षके इस प्रकार स्तुति करनेपर महेश्वरी शिवाने स्वयं ही उनके अभिप्रायको जान लिया तो भी दक्षसे इस प्रकार कहा—'दक्ष ! तुम्हारी इस उत्तम भक्तिसे मैं बहुत संतुष्ट हूँ। तुम अपना मनोवाञ्छित वर माँगो। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।'

* प्रसीद भगवत्याद्ये प्रसीद शिवरूपिणि। प्रसीद भक्तवरदे जगन्माये नमोऽस्तु ते॥

(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ स॰ खं॰ १२। १४)

जगदम्बाकी यह बात सुनकर प्रजापति दक्ष बहुत प्रसन्न हुए और उन शिवाको बारंबार प्रणाम करते हुए बोले।

दक्षने कहा—जगदम्ब ! महामाये ! यदि आप मुझे वर देनेके लिये उद्यत हैं तो मेरी बात सुनिये और प्रसन्नतापूर्वक मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये। मेरे स्वामी जो भगवान् शिव हैं, वे रुद्र-नाम धारण करके ब्रह्माजीके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए हैं। वे परमात्मा शिवके पूर्णावतार हैं। परंतु आपका कोई अवतार नहीं हुआ। फिर उनकी पत्नी कौन होगी ? अतः शिवे ! आप भूतलपर अवतीर्ण होकर उन महेश्वरको अपने रूप-लावण्यसे मोहित कीजिये। देवि ! आपके सिवा दूसरी कोई स्त्री रुद्रदेवको कभी मोहित नहीं कर सकती। इसलिये आप मेरी पुत्री होकर इस समय महादेवजीकी पत्नी होइये। इस प्रकार सुन्दर लीला करके आप हरमोहिनी (भगवान् शिवको मोहित करनेवाली) बनिये। देवि ! यही मेरे लिये वर है। यह केवल मेरे ही स्वार्थकी बात हो, ऐसा नहीं सोचना चाहिये। इसमें मेरे ही साथ सम्पूर्ण जगत्‌का भी हित है। ब्रह्मा, विष्णु और शिवमेंसे ब्रह्माजीकी प्रेरणासे मैं यहाँ आया हूँ।

प्रजापति दक्षका यह वचन सुनकर जगदम्बिका शिवा हँस पड़ीं और मन-ही-मन भगवान् शिवका स्मरण करके यों बोलीं।

देवीने कहा—तात ! प्रजापते ! दक्ष ! मेरी उत्तम बात सुनो। मैं सत्य कहती हूँ, तुम्हारी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हो तुम्हें सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तु देनेके लिये उद्यत हूँ। दक्ष ! यद्यपि मैं महेश्वरी हूँ, तथापि तुम्हारी भक्तिके अधीन हो तुम्हारी पत्नीके गर्भसे तुम्हारी पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण होऊँगी—इसमें संशय नहीं है। अनघ ! मैं अत्यन्त दुस्सह तपस्या करके ऐसा प्रयत्न करूँगी जिससे महादेवजीका वर पाकर उनकी पत्नी हो जाऊँ। इसके सिवा और किसी उपायसे कार्य सिद्ध नहीं हो सकता; क्योंकि वे भगवान् सदाशिव सर्वथा निर्विकार हैं, ब्रह्मा और विष्णुके भी सेव्य हैं तथा नित्य परिपूर्णरूप ही हैं। मैं सदा उनकी दासी और प्रिया हूँ। प्रत्येक जन्ममें वे नानारूपधारी शम्भु ही मेरे स्वामी होते हैं। भगवान् सदाशिव अपने दिये हुए वरके प्रभावसे ब्रह्माजीकी भ्रुकुटिसे रुद्ररूपमें अवतीर्ण हुए हैं। मैं भी उनके वरसे उनकी आज्ञाके अनुसार यहाँ अवतार लूँगी। तात ! अब तुम अपने घरको जाओ। इस कार्यमें जो मेरी दूती अथवा सहायिका होगी, उसे मैंने जान लिया है। अब शीघ्र ही मैं तुम्हारी पुत्री होकर महादेवजीकी पत्नी बनूँगी।

दक्षसे यह उत्तम वचन कहकर मन-ही-मन शिवकी आज्ञा प्राप्त करके देवी शिवाने शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए फिर कहा— 'प्रजापते ! परंतु मेरा एक प्रण है, उसे तुम्हें सदा मनमें रखना चाहिये। मैं उस प्रणको सुना देती हूँ। तुम उसे सत्य समझो, मिथ्या न मानो। यदि कभी मेरे प्रति तुम्हारा आदर घट जायगा, तब उसी समय मैं अपने शरीरको त्याग दूँगी, अपने स्वरूपमें लीन हो जाऊँगी अथवा दूसरा शरीर धारण कर लूँगी। मेरा यह कथन सत्य है। प्रजापते ! प्रत्येक सर्ग या कल्पके लिये तुम्हें यह वर दे दिया गया—मैं तुम्हारी पुत्री होकर भगवान्

शिवकी पत्नी होऊँगी।'

मुख्य प्रजापति दक्षसे ऐसा कहकर महेश्वरी शिवा उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं। दुर्गाजीके अन्तर्धान होनेपर दक्ष भी अपने आश्रमको लौट गये और यह सोचकर प्रसन्न रहने लगे कि देवी शिवा मेरी पुत्री होनेवाली हैं।

(अध्याय ११-१२)

☆

ब्रह्माजीकी आज्ञासे दक्षद्वारा मैथुनी सृष्टिका आरम्भ, अपने पुत्र हर्यश्वों और शबलाश्वोंको निवृत्तिमार्गमें भेजनेके कारण दक्षका नारदको शाप देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! प्रजापति दक्ष अपने आश्रमपर जाकर मेरी आज्ञा पा हर्षभरे मनसे नाना प्रकारकी मानसिक सृष्टि करने लगे। उस प्रजासृष्टिको बढ़ती हुई न देख प्रजापति दक्षने अपने पिता मुझ ब्रह्मासे कहा।

दक्ष बोले—ब्रह्मन्! तात! प्रजानाथ! प्रजा बढ़ नहीं रही है। प्रभो! मैंने जितने जीवोंकी सृष्टि की थी, वे सब उतने ही रह गये हैं। प्रजानाथ! मैं क्या करूँ? जिस उपायसे ये जीव अपने-आप बढ़ने लगें, वह मुझे बताइये। तदनुसार मैं प्रजाकी सृष्टि करूँगा, इसमें संशय नहीं है।

ब्रह्माजीने (मैंने) कहा—तात! प्रजापते दक्ष! मेरी उत्तम बात सुनो और उसके अनुसार कार्य करो। सुरश्रेष्ठ भगवान् शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे। प्रजेश! प्रजापति पञ्चजन (वीरण) की जो परम सुन्दरी पुत्री असिक्नी है, उसे तुम पत्नीरूपसे ग्रहण करो। स्त्रीके साथ मैथुन-धर्मका आश्रय ले तुम पुनः इस प्रजासर्गको बढ़ाओ। असिक्नी-जैसी कामिनीके गर्भसे तुम बहुत-सी संतानें उत्पन्न कर सकोगे।

तदनन्तर मैथुन-धर्मसे प्रजाकी उत्पत्ति करनेके उद्देश्यसे प्रजापति दक्षने मेरी आज्ञाके अनुसार वीरण प्रजापतिकी पुत्रीके साथ विवाह किया। अपनी पत्नी वीरिणीके गर्भसे प्रजापति दक्षने दस हजार पुत्र उत्पन्न किये, जो हर्यश्व कहलाये। मुने! वे सब-के-सब पुत्र समान धर्मका आचरण करनेवाले हुए। पिताकी भक्तिमें तत्पर रहकर वे सदा वैदिक मार्गपर ही चलते थे। एक समय पिताने उन्हें प्रजाकी सृष्टि करनेका आदेश दिया। तात! तब वे सभी दाक्षायण नामधारी पुत्र सृष्टिके उद्देश्यसे तपस्या करनेके लिये पश्चिम दिशाकी ओर गये। वहाँ नारायण-सर नामक परम पावन तीर्थ है, जहाँ दिव्य सिन्धु नद और समुद्रका संगम हुआ है। उस तीर्थजलका ही निकटसे स्पर्श करते उनका अन्तःकरण शुद्ध एवं ज्ञानसे सम्पन्न हो गया। उनकी आन्तरिक मलराशि धुल गयी और वे परमहंस-धर्ममें स्थित हो गये। दक्षके वे सभी पुत्र पिताके आदेशमें बँधे हुए थे। अतः मनको सुस्थिर करके प्रजाकी वृद्धिके लिये वहाँ तप करने लगे। वे सभी सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे।

नारद! जब तुम्हें पता लगा कि हर्यश्वगण सृष्टिके लिये तपस्या कर रहे हैं, तब भगवान् लक्ष्मीपतिके हार्दिक अभिप्रायको जानकर तुम स्वयं उनके पास गये और आदरपूर्वक यों बोले—'दक्षपुत्र हर्यश्वगण! तुमलोग पृथ्वीका अन्त देखे

बिना सृष्टि-रचना करनेके लिये कैसे उद्यत हो गये?'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! हर्यश्व आलस्यसे दूर रहनेवाले थे और जन्मकालसे ही बड़े बुद्धिमान् थे। वे सब-के-सब तुम्हारा उपर्युक्त कथन सुनकर स्वयं उसपर विचार करने लगे। उन्होंने यह विचार किया कि 'जो उत्तम शास्त्ररूपी पिताके निवृत्तिपरक आदेशको नहीं समझता, वह केवल रज आदि गुणोंपर विश्वास करनेवाला पुरुष सृष्टिनिर्माणका कार्य कैसे आरम्भ कर सकता है।' ऐसा निश्चय करके वे उत्तम बुद्धि और एकचित्तवाले दक्षकुमार नारदको प्रणाम और उनकी परिक्रमा करके ऐसे पथपर चले गये, जहाँ जाकर कोई वापस नहीं लौटता है। नारद! तुम भगवान् शंकरके मन हो और मुने! तुम समस्त लोकोंमें अकेले विचरा करते हो। तुम्हारे मनमें कोई विकार नहीं है; क्योंकि तुम सदा महेश्वरकी मनोवृत्तिके अनुसार ही कार्य करते हो। जब बहुत समय बीत गया, तब मेरे पुत्र प्रजापति दक्षको यह पता लगा कि मेरे सभी पुत्र नारदसे शिक्षा पाकर नष्ट हो गये (मेरे हाथसे निकल गये)। इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे बार-बार कहने लगे—उत्तम संतानोंका पिता होना शोकका ही स्थान है (क्योंकि श्रेष्ठ पुत्रोंके बिछुड़ जानेसे पिताको बड़ा कष्ट होता है)। शिवकी मायासे मोहित होनेसे दक्षको पुत्रवियोगके कारण बहुत शोक होने लगा। तब मैंने आकर अपने बेटे दक्षको बड़े प्रेमसे समझाया और सान्त्वना दी। दैवका विधान प्रबल होता है—इत्यादि बातें बताकर उनके मनको शान्त किया। मेरे सान्त्वना देनेपर दक्ष पुनः पञ्चजनकन्या असिक्नीके गर्भसे शबलाश्व नामके एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। पिताका आदेश पाकर वे पुत्र भी प्रजासृष्टिके लिये दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञापालनका नियम ले उसी स्थानपर गये, जहाँ उनके सिद्धिको प्राप्त हुए बड़े भाई गये थे। नारायणसरोवरके जलका स्पर्श होनेमात्रसे उनके सारे पाप नष्ट हो गये, अन्तःकरणमें शुद्धता आ गयी और वे उत्तम व्रतके पालक शबलाश्व ब्रह्म (प्रणव) का जप करते हुए वहाँ बड़ी भारी तपस्या करने लगे। उन्हें प्रजासृष्टिके लिये उद्यत जान तुम पुनः पहलेकी ही भाँति ईश्वरीय गतिका स्मरण करते हुए उनके पास गये और वही बात कहने लगे, जो उनके भाइयोंसे पहले कह चुके थे। मुने! तुम्हारा दर्शन अमोघ है, इसलिये तुमने उनको भी भाइयोंका ही मार्ग दिखाया। अतएव वे भाइयोंके ही पथपर ऊर्ध्वगतिको प्राप्त हुए। उसी समय प्रजापति दक्षको बहुत-से उत्पात दिखायी दिये। इससे मेरे पुत्र दक्षको बड़ा विस्मय हुआ और वे मन-ही-मन दुःखी हुए। फिर उन्होंने पूर्ववत् तुम्हारी ही करतूतसे अपने पुत्रोंका नाश हुआ सुना, इससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे पुत्रशोकसे मूर्च्छित हो अत्यन्त कष्टका अनुभव करने लगे। फिर दक्षने तुमपर बड़ा क्रोध किया और कहा—'यह नारद बड़ा दुष्ट है।' दैववश उसी समय तुम दक्षपर अनुग्रह करनेके लिये वहाँ आ पहुँचे। तुम्हें देखते ही शोकावेशसे युक्त हुए दक्षके ओठ रोषसे फड़कने लगे। तुम्हें सामने पाकर वे धिक्कारने और निन्दा करने लगे।

दक्षने कहा—ओ नीच! तुमने यह क्या किया? तुमने झूठ-मूठ साधुओंका

बाना पहन रखा है। इसीके द्वारा ठगकर हमारे भोले-भाले बालकोंको जो तुमने भिक्षुओंका मार्ग दिखाया है, यह अच्छा नहीं किया। तुम निर्दय और शठ हो। इसीलिये तुमने हमारे इन बालकोंके, जो अभी ऋषि[1]-ऋण, देव[2]-ऋण और पितृ[3]-ऋणसे मुक्त नहीं हो पाये थे, लोक और परलोक दोनोंके श्रेयका नाश कर डाला। जो पुरुष इन तीनों ऋणोंको उतारे बिना ही मोक्षकी इच्छा मनमें

लिये माता-पिताको त्यागकर घरसे निकल जाता है—संन्यासी हो जाता है, वह अधोगतिको प्राप्त होता है। तुम निर्दय और बड़े निर्लज्ज हो। बच्चोंकी बुद्धिमें भेद पैदा करनेवाले हो और अपने सुयशको स्वयं ही नष्ट कर रहे हो। मूढ़मते ! तुम भगवान् विष्णुके पार्षदोंमें व्यर्थ ही घूमते-फिरते हो। अधमाधम ! तुमने बारंबार मेरा अमङ्गल किया है। अतः आजसे तीनों लोकोंमें विचरते हुए तुम्हारा पैर कहीं स्थिर नहीं रहेगा अथवा कहीं भी तुम्हें ठहरनेके लिये सुस्थिर ठौर-ठिकाना नहीं मिलेगा।'

नारद ! यद्यपि तुम साधु पुरुषोंद्वारा सम्मानित हो, तथापि उस समय दक्षने शोकवश तुम्हें वैसा शाप दे दिया। वे ईश्वरकी इच्छाको नहीं समझ सके। शिवकी मायाने उन्हें अत्यन्त मोहित कर दिया था। मुने ! तुमने उस शापको चुपचाप ग्रहण कर लिया और अपने चित्तमें विकार नहीं आने दिया। यही ब्रह्मभाव है। ईश्वरकोटिके महात्मा पुरुष स्वयं शापको मिटा देनेमें समर्थ होनेपर भी उसे सह लेते हैं। (अध्याय १३)

☆

दक्षकी साठ कन्याओंका विवाह, दक्ष और वीरिणीके यहाँ देवी शिवाका अवतार, दक्षद्वारा उनकी स्तुति तथा सतीके सद्गुणों एवं चेष्टाओंसे माता-पिताकी प्रसन्नता

ब्रह्माजी कहते हैं—देवर्षे ! इसी समय दक्षके इस बर्तावको जानकर मैं भी वहाँ आ पहुँचा और पूर्ववत् उन्हें शान्त करनेके लिये सान्त्वना देने लगा। तुम्हारी प्रसन्नताको बढ़ाते हुए मैंने दक्षके साथ तुम्हारा सुन्दर स्नेहपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कराया। तुम मेरे पुत्र हो, मुनियोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण देवताओंके प्रिय हो। अतः बड़े प्रेमसे तुम्हें

१—३. ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायसे ऋषि-ऋण, यज्ञ और पूजा आदिसे देव-ऋण तथा पुत्रके उत्पादनसे पितृ-ऋणका निवारण होता है।

आश्वासन देकर मैं फिर अपने स्थानपर आ गया। तदनन्तर प्रजापति दक्षने मेरी अनुनयके अनुसार अपनी पत्नीके गर्भसे साठ सुन्दरी कन्याओंको जन्म दिया और आलस्यरहित हो धर्म आदिके साथ उन सबका विवाह कर दिया। मुनीश्वर ! मैं उसी प्रसङ्गको बड़े प्रेमसे कह रहा हूँ, तुम सुनो। मुने ! दक्षने अपनी दस कन्याएँ विधिपूर्वक धर्मको ब्याह दीं, तेरह कन्याएँ कश्यप मुनिको दे दीं और सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमाके साथ कर दिया। भूत (या बहुपुत्र), अङ्गिरा तथा कृशाश्वको उन्होंने दो-दो कन्याएँ दीं और शेष चार कन्याओंका विवाह तार्क्ष्य (या अरिष्टनेमि) के साथ कर दिया। इन सबकी संतान-परम्पराओंसे तीनों लोक भरे पड़े हैं। अतः विस्तार-भयसे उनका वर्णन नहीं किया जाता। कुछ लोग शिवा या सतीको दक्षकी ज्येष्ठ पुत्री बताते हैं। दूसरे लोग उन्हें मझली पुत्री कहते हैं तथा कुछ अन्य लोग सबसे छोटी पुत्री मानते हैं। कल्प-भेदसे ये तीनों मत ठीक हैं। पुत्र और पुत्रियोंकी उत्पत्तिके पश्चात् पत्नीसहित प्रजापति दक्षने बड़े प्रेमसे मन-ही-मन जगदम्बिकाका ध्यान किया। साथ ही गद्गदवाणीसे प्रेमपूर्वक उनकी स्तुति भी की। बारंबार अञ्जलि बाँध नमस्कार करके वे विनीत भावसे देवीको मस्तक झुकाते थे। इससे देवी शिवा संतुष्ट हुईं और उन्होंने अपने प्रणकी पूर्तिके लिये मन-ही-मन यह विचार किया कि अब मैं वीरिणीके गर्भसे अवतार लूँ। ऐसा विचार कर वे जगदम्बा दक्षके हृदयमें निवास करने लगीं। मुनिश्रेष्ठ ! उस समय दक्षकी बड़ी शोभा होने लगी। फिर उत्तम मुहूर्त देखकर दक्षने अपनी पत्नीमें प्रसन्नतापूर्वक गर्भाधान किया। तब दयालु शिवा दक्ष-पत्नीके चित्तमें निवास करने लगीं। उनमें गर्भधारणके सभी चिह्न प्रकट हो गये। तात ! उस अवस्थामें वीरिणीकी शोभा बढ़ गयी और उसके चित्तमें अधिक

हर्ष छा गया। भगवती शिवाके निवासके प्रभावसे वीरिणी महामङ्गलरूपिणी हो गयी। दक्षने अपने कुल-सम्प्रदाय, वेदज्ञान और हार्दिक उत्साहके अनुसार प्रसन्नता-पूर्वक पुंसवन आदि संस्कारसम्बन्धी श्रेष्ठ क्रियाएँ सम्पन्न कीं। उन कर्मोंके अनुष्ठानके समय महान् उत्सव हुआ। प्रजापतिने ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार धन दिया।

उस अवसरपर वीरिणीके गर्भमें देवीका निवास हुआ जानकर श्रीविष्णु आदि सब देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

उन सबने वहाँ आकर जगदम्बाका स्तवन किया और समस्त लोकोंका उपकार करनेवाली देवी शिवाको बारंबार प्रणाम किया। वे सब देवता प्रसन्नचित्त हो दक्ष प्रजापति तथा वीरिणीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके अपने-अपने स्थानको लौट गये। नारद! जब नौ महीने बीत गये, तब लौकिक गतिका निर्वाह कराकर दसवें महीनेके पूर्ण होनेपर चन्द्रमा आदि ग्रहों तथा ताराओंकी अनुकूलतासे युक्त सुखद मुहूर्तमें देवी शिवा शीघ्र ही अपनी माताके सामने प्रकट हुईं। उनके अवतार लेते ही प्रजापति दक्ष बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें महान् तेजसे देदीप्यमान देख उनके मनमें यह विश्वास हो गया कि साक्षात् ये शिवादेवी ही मेरी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुई हैं। उस समय आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी और मेघ जल बरसाने लगे। मुनीश्वर! सतीके जन्म लेते ही सम्पूर्ण दिशाओंमें तत्काल शान्ति छा गयी। देवता आकाशमें खड़े हो माङ्गलिक बाजे बजाने लगे। अग्निशालाओंकी बुझी हुई अग्नियाँ सहसा प्रज्वलित हो उठीं और सब कुछ परम मङ्गलमय हो गया। वीरिणीके गर्भसे साक्षात् जगदम्बाको प्रकट हुई देख दक्षने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बड़े भक्ति-भावसे उनकी बड़ी स्तुति की।

बुद्धिमान् दक्षके स्तुति करनेपर जगन्माता शिवा उस समय दक्षसे इस प्रकार बोलीं, जिससे माता वीरिणी न सुन सके।

देवी बोलीं—प्रजापते! तुमने पहले पुत्रीरूपमें मुझे प्राप्त करनेके लिये मेरी आराधना की थी, तुम्हारा यह मनोरथ आज सिद्ध हो गया। अब तुम उस तपस्याके फलको ग्रहण करो।

उस समय दक्षसे ऐसा कहकर देवीने अपनी मायासे शिशुरूप धारण कर लिया और शैशवभाव प्रकट करती हुई वे वहाँ रोने लगीं। उस बालिकाका रोदन सुनकर सभी स्त्रियाँ और दासियाँ बड़े वेगसे प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आ पहुँचीं। असिक्नीकी पुत्रीका अलौकिक रूप देखकर उन सभी स्त्रियोंको बड़ा हर्ष हुआ। नगरके सब लोग उस समय जय-जयकार करने लगे। गीत और वाद्योंके साथ बड़ा भारी उत्सव होने लगा। पुत्रीका मनोहर मुख देखकर सबको बड़ी ही प्रसन्नता हुई। दक्षने वैदिक और कुलोचित आचारका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया। ब्राह्मणोंको दान दिया और दूसरोंको भी धन बाँटा। सब ओर यथोचित गान और नृत्य होने लगे। भाँति-भाँतिके मङ्गल-कृत्योंके साथ बहुत-से बाजे बजने लगे। उस समय दक्षने समस्त सद्गुणोंकी सत्तासे प्रशंसित होनेवाली अपनी उस पुत्रीका नाम प्रसन्नता-पूर्वक 'उमा' रखा। तदनन्तर संसारमें लोगोंकी ओरसे उसके और भी नाम प्रचलित किये गये, जो सब-के-सब महान् मङ्गलदायक तथा विशेषतः समस्त दुःखोंका नाश करनेवाले हैं। वीरिणी और महात्मा दक्ष अपनी पुत्रीका पालन करने लगे तथा वह शुक्लपक्षकी चन्द्रकलाके समान दिनों-दिन बढ़ने लगी। द्विजश्रेष्ठ! बाल्यावस्थामें भी समस्त उत्तमोत्तम गुण उसमें उसी तरह प्रवेश करने लगे, जैसे शुक्लपक्षके बाल चन्द्रमामें भी समस्त मनोहारिणी कलाएँ प्रविष्ट हो जाती हैं। दक्षकन्या सती सखियोंके बीच बैठी-बैठी जब अपने भावमें निमग्न होती थी, तब बारंबार

भगवान् शिवकी मूर्तिको चित्रित करने लगती थी। मङ्गलमयी सती जब बाल्योचित सुन्दर गीत गाती, तब स्थाणु, हर एवं रुद्र नाम लेकर स्मरशत्रु शिवका स्मरण किया करती थी।

(अध्याय १४)

☆

सतीकी तपस्यासे संतुष्ट देवताओंका कैलासमें जाकर भगवान् शिवका स्तवन करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! एक दिन मैंने तुम्हारे साथ जाकर पिताके पास खड़ी हुई सतीको देखा। वह तीनों लोकोंकी सारभूता सुन्दरी थी। उसके पिताने मुझे नमस्कार करके तुम्हारा भी सत्कार किया। यह देख लोक-लीलाका अनुसरण करनेवाली सतीने भक्ति और प्रसन्नताके साथ मुझको और तुमको भी प्रणाम किया। नारद! तदनन्तर सतीकी ओर देखते हुए हम और तुम दक्षके दिये हुए शुभ आसनपर बैठ गये। तत्पश्चात् मैंने उस विनयशीला बालिकासे कहा—'सती! जो केवल तुम्हें ही चाहते हैं और तुम्हारे मनमें भी एकमात्र जिनकी ही कामना है, उन्हीं सर्वज्ञ जगदीश्वर महादेवजीको तुम पतिरूपमें प्राप्त करो। शुभे! जो तुम्हारे सिवा दूसरी किसी स्त्रीको पत्नीरूपमें न तो ग्रहण कर सके हैं, न करते हैं और न भविष्यमें ही ग्रहण करेंगे, वे ही भगवान् शिव तुम्हारे पति हों। वे तुम्हारे ही योग्य हैं, दूसरेके नहीं।'

नारद! सतीसे ऐसा कहकर मैं दक्षके घरमें देरतक ठहरा रहा। फिर उनसे विदा ले मैं और तुम दोनों अपने-अपने स्थानको चले आये। मेरी बातको सुनकर दक्षको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी सारी मानसिक चिन्ता दूर हो गयी और उन्होंने अपनी पुत्रीको परमेश्वरी समझकर गोदमें उठा लिया। इस प्रकार कुमारोचित सुन्दर लीला-विहारोंसे सुशोभित होती हुई भक्तवत्सला सती, जो स्वेच्छासे मानवरूप धारण करके प्रकट हुई थीं, कौमारावस्था पार कर गयीं। बाल्यावस्था बिताकर किंचित् युवावस्थाको प्राप्त हुई सती अत्यन्त तेज एवं शोभासे सम्पन्न हो सम्पूर्ण अङ्गोंसे मनोहर दिखायी देने लगीं। लोकेश दक्षने देखा कि सतीके शरीरमें युवावस्थाके लक्षण प्रकट होने लगे हैं। तब उनके मनमें यह चिन्ता हुई कि मैं महादेवजीके साथ इनका विवाह कैसे करूँ? सती स्वयं भी महादेवजीको पानेकी प्रतिदिन अभिलाषा रखती थीं। अतः पिताके मनोभावको समझकर वे माताके निकट गयीं। विशाल बुद्धिवाली सती-रूपिणी परमेश्वरी शिवाने अपनी माता वीरिणीसे भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके निमित्त तपस्या करनेके लिये आज्ञा माँगी। माताकी आज्ञा मिल गयी। अतः दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाली सतीने महेश्वरको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये अपने घरपर ही उनकी आराधना आरम्भ की।

आश्विन मासमें नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) तिथियोंमें उन्होंने भक्तिपूर्वक गुड़, भात और नमक चढ़ाकर भगवान् शिवका पूजन किया और उन्हें

नमस्कार करके उसी नियमके साथ उस मासको व्यतीत किया। कार्तिक मासकी चतुर्दशीको सजाकर रखे हुए मालपूओं और खीरसे परमेश्वर शिवकी आराधना करके वे निरन्तर उनका चिन्तन करने लगीं। मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको तिल, जौ और चावलसे हरकी पूजा करके ज्योतिर्मय दीप दिखाकर अथवा आरती करके सती दिन बिताती थीं। पौष मासके शुक्लपक्षकी सप्तमीको रातभर जागरण करके प्रातःकाल खिचड़ीका नैवेद्य लगा वे शिवकी पूजा करती थीं। माघकी पूर्णिमाको रातमें जागरण करके सबेरे नदीमें नहातीं और गीले वस्त्रसे ही तटपर बैठकर भगवान् शंकरकी पूजा करती थीं। फाल्गुन मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको रातमें जागरण करके उस रात्रिके चारों पहरोंमें शिवजीकी विशेष पूजा करतीं और नटोंद्वारा नाटक भी करातीं थीं। चैत्र मासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको वे दिन-रात शिवका स्मरण करती हुई समय बितातीं और ढाकके फूलों तथा दवनोंसे भगवान् शिवकी पूजा करती थीं। वैशाख शुक्ला तृतीयाको सती तिलका आहार करके रहतीं और नये जौके भातसे रुद्रदेवकी पूजा करके उस महीनेको बिताती थीं। ज्येष्ठकी पूर्णिमाको रातमें सुन्दर वस्त्रों तथा भटकटैयाके फूलोंसे शंकरजीकी पूजा करके वे निराहार रहकर ही यह मास व्यतीत करती थीं। आषाढ़के शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको काले वस्त्र और भटकटैयाके फूलोंसे वे रुद्रदेवका पूजन करती थीं। श्रावण मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी एवं चतुर्दशीको वे यज्ञोपवीतों, वस्त्रों तथा कुशके पवित्रोंसे शिवकी पूजा किया करती थीं। भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी त्रयोदशी तिथिको नाना प्रकारके फूलों और फलोंसे शिवका पूजन करके सती चतुर्दशी तिथिको केवल जलका आहार किया करतीं। भाँति-भाँतिके फलों, फूलों और उस समय उत्पन्न होनेवाले अन्नोंद्वारा वे शिवकी पूजा करतीं और महीनेभर अत्यन्त नियमित आहार करके केवल जपमें लगी रहती थीं। सभी महीनोंमें सारे दिन सती शिवकी आराधनामें ही संलग्न रहती थीं। अपनी इच्छासे मानवरूप धारण करनेवाली वे देवी दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करती थीं। इस प्रकार नन्दाव्रतको पूर्णरूपसे

समाप्त करके भगवान् शिवमें अनन्यभाव रखनेवाली सती एकाग्रचित्त हो बड़े प्रेमसे भगवान् शिवका ध्यान करने लगीं तथा उस ध्यानमें ही निश्चलभावसे स्थित हो गयीं।

मुने! इसी समय सब देवता और ऋषि भगवान् विष्णु और मुझको आगे करके सतीकी तपस्या देखनेके लिये गये। वहाँ आकर देवताओंने देखा, सती मूर्तिमती दूसरी सिद्धिके समान जान पड़ती हैं। वे भगवान् शिवके ध्यानमें निमग्न हो उस समय सिद्धावस्थाको पहुँच गयी थीं। समस्त देवताओंने बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ दोनों हाथ जोड़कर सतीको नमस्कार किया, मुनियोंने भी मस्तक झुकाये तथा श्रीहरि आदिके मनमें प्रीति उमड़ आयी। श्रीविष्णु आदि सब देवता और मुनि आश्चर्यचकित हो सती देवीकी तपस्याकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। फिर देवीको प्रणाम करके वे देवता और मुनि तुरंत ही गिरिश्रेष्ठ कैलासको गये, जो भगवान् शिवको बहुत ही प्रिय है। सावित्रीके साथ मैं और लक्ष्मीके साथ भगवान् वासुदेव भी प्रसन्नतापूर्वक महादेवजीके निकट गये। वहाँ जाकर भगवान् शिवको देखते ही बड़े वेगसे प्रणाम करके सब देवताओंने दोनों हाथ जोड़ विनीतभावसे नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करके अन्तमें कहा—

प्रभो! आपकी सत्त्व, रज और तम नामक जो तीन शक्तियाँ हैं, उनके राग आदि वेग असह्य हैं। वेदत्रयी अथवा लोकत्रयी आपका स्वरूप है। आप शरणागतोंके पालक हैं तथा आपकी शक्ति बहुत बड़ी है—उसकी कहीं कोई सीमा नहीं है; आपको नमस्कार है। दुर्गापते! जिनकी इन्द्रियाँ दुष्ट हैं—वशमें नहीं हो पातीं, उनके लिये आपकी प्राप्तिका कोई मार्ग सुलभ नहीं है। आप सदा भक्तोंके उद्धारमें तत्पर रहते हैं, आपका तेज छिपा हुआ है; आपको नमस्कार है। आपकी मायाशक्तिरूपा जो अहंबुद्धि है, उससे आत्माका स्वरूप ढक गया है; अतएव यह मूढबुद्धि जीव अपने स्वरूपको नहीं जान पाता। आपकी महिमाका पार पाना अत्यन्त कठिन (ही नहीं, सर्वथा असम्भव) है। हम आप महाप्रभुको मस्तक झुकाते हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके श्रीविष्णु आदि सब देवता उत्तम भक्तिसे मस्तक झुकाये प्रभु शिवजीके आगे चुपचाप खड़े हो गये।

(अध्याय १५)

☆

ब्रह्माजीका रुद्रदेवसे सतीके साथ विवाह करनेका अनुरोध, श्रीविष्णुद्वारा अनुमोदन और श्रीरुद्रकी इसके लिये स्वीकृति

ब्रह्माजी कहते हैं—श्रीविष्णु आदि देवताओंद्वारा की हुई उस स्तुतिको सुनकर सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे हँसने लगे। मुझ ब्रह्मा और विष्णुको अपनी-अपनी पत्नीके साथ आया हुआ देख महादेवजीने हमलोगोंसे यथोचित वार्तालाप किया और हमारे आगमनका कारण पूछा।

रुद्र बोले—हे हरे! हे विधे! तथा हे देवताओ और महर्षियो! आज निर्भय होकर यहाँ अपने आनेका ठीक-ठीक कारण बताओ। तुमलोग किसलिये यहाँ आये हो और कौन-सा कार्य आ पड़ा है? यह सब मैं सुनना चाहता हूँ; क्योंकि

तुम्हारे द्वारा की गयी स्तुतिसे मेरा मन बहुत प्रसन्न है।

मुने ! महादेवजीके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् विष्णुकी आज्ञासे मैंने वार्तालाप आरम्भ किया।

मुझ ब्रह्माने कहा—देवदेव ! महादेव ! करुणासागर ! प्रभो ! हम दोनों इन देवताओं और ऋषियोंके साथ जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हैं, उसे सुनिये। वृषभध्वज ! विशेषतः आपके ही लिये हमारा यहाँ आगमन हुआ है; क्योंकि हम तीनों सहार्थी हैं—सृष्टिचक्रके संचालनरूप प्रयोजनकी सिद्धिके लिये एक-दूसरेके सहायक हैं। सहार्थीको सदा परस्पर यथायोग्य सहयोग करना चाहिये अन्यथा यह जगत् टिक नहीं सकता। महेश्वर ! कुछ ऐसे असुर उत्पन्न होंगे, जो मेरे हाथसे मारे जायँगे। कुछ भगवान् विष्णुके और कुछ आपके हाथों नष्ट होंगे। महाप्रभो ! कुछ असुर ऐसे होंगे, जो आपके वीर्यसे उत्पन्न हुए पुत्रके हाथसे ही मारे जा सकेंगे। प्रभो ! कभी कोई विरले ही असुर ऐसे होंगे, जो मायाके हाथोंद्वारा वधको प्राप्त होंगे। आप भगवान् शंकरकी कृपासे ही देवताओंको सदा उत्तम सुख प्राप्त होगा। घोर असुरोंका विनाश करके आप जगत्को सदा स्वास्थ्य एवं अभय प्रदान करेंगे अथवा यह भी सम्भव है कि आपके हाथसे कोई भी असुर न मारे जायँ; क्योंकि आप सदा योगयुक्त रहते हुए राग-द्वेषसे रहित हैं तथा एकमात्र दया करनेमें ही लगे रहते हैं। ईश ! यदि वे असुर भी आराधित हों—आपकी दयासे अनुगृहीत होते रहें तो सृष्टि और पालनका कार्य कैसे चल सकता है। अतः वृषभध्वज! आपको प्रतिदिन सृष्टि आदिके उपयुक्त कार्य करनेके लिये उद्यत रहना चाहिये। यदि सृष्टि, पालन और संहाररूप कर्म न करने हों तब तो हमने मायासे जो भिन्न-भिन्न शरीर धारण किये हैं, उनकी कोई उपयोगिता अथवा औचित्य ही नहीं है। वास्तवमें हम तीनों एक ही हैं, कार्यके भेदसे भिन्न-भिन्न देह धारण करके स्थित हैं। यदि कार्यभेद न सिद्ध हो, तब तो हमारे रूपभेदका कोई प्रयोजन ही नहीं है। देव ! एक ही परमात्मा महेश्वर तीन स्वरूपोंमें अभिव्यक्त हुए हैं। इस रूपभेदमें उनकी अपनी माया ही कारण है। वास्तवमें प्रभु स्वतन्त्र हैं। वे लीलाके उद्देश्यसे ही ये सृष्टि आदि कार्य करते हैं। भगवान् श्रीहरि उनके बायें अङ्गसे प्रकट हुए हैं, मैं ब्रह्मा उनके दायें अङ्गसे प्रकट हुआ हूँ और आप रुद्रदेव उन सदाशिवके हृदयसे आविर्भूत हुए हैं; अतः आप ही शिवके पूर्ण रूप हैं। प्रभो ! इस प्रकार अभिन्नरूप होते हुए भी हम तीन रूपोंमें प्रकट हैं। सनातनदेव ! हम तीनों उन्हीं भगवान् सदाशिव और शिवाके पुत्र हैं, इस यथार्थ तत्त्वका आप हृदयसे अनुभव कीजिये। प्रभो ! मैं और श्रीविष्णु आपके आदेशसे प्रसन्नतापूर्वक लोककी सृष्टि और पालनके कार्य कर रहे हैं तथा कार्य-कारणवश सपत्नीक भी हो गये हैं; अतः आप भी विश्वहितके लिये तथा देवताओंको सुख पहुँचानेके लिये एक परम सुन्दरी रमणीको अपनी पत्नी बनानेके लिये ग्रहण करें। महेश्वर ! एक बात और है, उसे सुनिये; मुझे पहलेके वृत्तान्तका स्मरण हो आया है। पूर्वकालमें आपने ही शिवरूपसे जो बात हमारे सामने कही थी, वही इस समय सुना

रहा हूँ। आपने कहा था, 'ब्रह्मन्! मेरा ऐसा ही उत्तम रूप तुम्हारे अङ्गविशेष—ललाटसे प्रकट होगा, जिसकी लोकमें 'रुद्र' नामसे प्रसिद्धि होगी। तुम ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हो गये, श्रीहरि जगत्‌का पालन करनेवाले हुए और मैं सगुण रुद्ररूप होकर संहार करनेवाला होऊँगा। एक स्त्रीके साथ विवाह करके लोकके उत्तम कार्यकी सिद्धि करूँगा।' अपनी कही हुई इस बातको याद करके आप अपनी ही पूर्व प्रतिज्ञाको पूर्ण कीजिये। स्वामिन्! आपका यह आदेश है कि मैं सृष्टि करूँ, श्रीहरि पालन करें और आप स्वयं संहारके हेतु बनकर प्रकट हों; सो आप साक्षात् शिव ही संहारकर्ताके रूपमें प्रकट हुए हैं। आपके बिना हम दोनों अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हैं; अतः आप एक ऐसी कामिनीको स्वीकार करें, जो लोकहितके कार्यमें तत्पर रहे। शम्भो! जैसे लक्ष्मी भगवान् विष्णुकी और सावित्री मेरी सहधर्मिणी हैं, उसी प्रकार आप इस समय अपनी जीवनसहचरी प्राणवल्लभाको ग्रहण करें।

मेरी यह बात सुनकर लोकेश्वर महादेवजीके मुखपर मुसकराहट दौड़ गयी। वे श्रीहरिके सामने मुझसे इस प्रकार बोले।

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! हरे! तुम दोनों मुझे सदा ही अत्यन्त प्रिय हो। तुम दोनोंको देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिलता है। तुमलोग समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ तथा त्रिलोकीके स्वामी हो। लोकहितके कार्यमें मन लगाये रहनेवाले तुम दोनोंका वचन मेरी दृष्टिमें अत्यन्त गौरवपूर्ण है। किंतु सुरश्रेष्ठगण! मेरे लिये विवाह करना उचित नहीं होगा; क्योंकि मैं तपस्यामें संलग्न रहकर सदा संसारसे विरक्त ही रहता हूँ और योगीके रूपमें मेरी प्रसिद्धि है। जो निवृत्तिके सुन्दर मार्गपर स्थित है, अपने आत्मामें ही रमण करता—आनन्द मानता है, निरञ्जन (मायासे निर्लिप्त) है, जिसका शरीर अवधूत (दिगम्बर) है, जो ज्ञानी, आत्मदर्शी और कामनासे शून्य है, जिसके मनमें कोई विकार नहीं है, जो भोगोंसे दूर रहता है तथा जो सदा अपवित्र और अमङ्गलवेशधारी है, उसे संसारमें कामिनीसे क्या प्रयोजन है—यह इस समय मुझे बताओ तो सही!* मुझे तो सदा केवल योगमें लगे रहनेपर ही आनन्द आता है। ज्ञानहीन पुरुष ही योगको छोड़कर भोगको अधिक महत्त्व देता है। संसारमें विवाह करना पराये बन्धनमें बँधना है। इसे बहुत बड़ा बन्धन समझना चाहिये। इसलिये मैं सत्य-सत्य कहता हूँ, विवाहके लिये मेरे मनमें थोड़ी-सी भी अभिरुचि नहीं है। आत्मा ही अपना उत्तम अर्थ या स्वार्थ है। उसका भलीभाँति चिन्तन करनेके कारण मेरी लौकिक स्वार्थमें प्रवृत्ति नहीं होती। तथापि जगत्‌के हितके लिये तुमने जो कुछ कहा है, उसे करूँगा। तुम्हारे वचनको गरिष्ठ मानकर अथवा अपनी कही हुई बातको पूर्ण करनेके लिये मैं अवश्य विवाह करूँगा; क्योंकि मैं सदा भक्तोंके वशमें

* यो निवृत्तिसुमार्गस्थः स्वात्मारामो निरञ्जनः। अवधूततनुर्ज्ञानी स्वद्रष्टा कामवर्जितः॥
अविकारी ह्यभोगी च सदा शुचिरमङ्गलः। तस्य प्रयोजनं लोके कामिन्या किं वदाधुना॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० १५। ३१-३२)

रहता हूँ। परंतु मैं जैसी नारीको प्रिय पत्नीके रूपमें ग्रहण करूँगा और जैसी शर्तके साथ करूँगा, उसे सुनो। हरे! ब्रह्मन्! मैं जो कुछ कहता हूँ, वह सर्वथा उचित ही है। जो नारी मेरे तेजको विभागपूर्वक ग्रहण कर सके, जो योगिनी तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली हो, उसीको तुम पत्नी बनानेके लिये मुझे बताओ। जब मैं योगमें तत्पर रहूँ, तब उसे भी योगिनी बनकर रहना होगा और जब मैं कामासक्त होऊँ, तब उसे भी कामिनीके रूपमें ही मेरे पास रहना होगा। वेदवेत्ता विद्वान् जिन्हें अविनाशी बतलाते हैं, उन ज्योतिःस्वरूप सनातन शिवका मैं सदा चिन्तन करता हूँ और करता रहूँगा। ब्रह्मन्! उन सदाशिवके चिन्तनमें जब मैं न लगा होऊँ तभी उस भामिनीके साथ मैं समागम कर सकता हूँ। जो मेरे शिवचिन्तनमें विघ्न डालनेवाली होगी, वह जीवित नहीं रह सकती, उसे अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा। तुम, विष्णु और मैं तीनों ही ब्रह्मस्वरूप शिवके अंशभूत हैं। अतः महाभागगण! हमारे लिये उनका निरन्तर चिन्तन करना ही उचित है। कमलासन! उनके चिन्तनके लिये मैं बिना विवाहके भी रह लूँगा। (किंतु उनका चिन्तन छोड़कर विवाह नहीं करूँगा।) अतः तुम मुझे ऐसी पत्नी प्रदान करो, जो सदा मेरे कर्मके अनुकूल चल सके। ब्रह्मन्! उसमें भी मेरी एक और शर्त है, उसे तुम सुनो; यदि उस स्त्रीका मुझपर और मेरे वचनपर अविश्वास होगा तो मैं उसे त्याग दूँगा।

उनकी यह बात सुनकर मैंने और श्रीहरिने मन्द मुसकानके साथ मन-ही-मन प्रसन्नताका अनुभव किया; फिर मैं विनम्र होकर बोला— 'नाथ! महेश्वर! प्रभो! आपने जैसी नारीकी खोज आरम्भ की है, वैसी ही स्त्रीके विषयमें मैं आपको प्रसन्नतापूर्वक कह रहा हूँ। साक्षात् सदाशिवकी धर्मपत्नी जो उमा हैं, वे ही जगत्‌का कार्य सिद्ध करनेके लिये भिन्न-भिन्न रूपमें प्रकट हुई हैं। प्रभो! सरस्वती और लक्ष्मी—ये दो रूप धारण करके वे पहले ही यहाँ आ चुकी हैं। इनमें लक्ष्मी तो श्रीविष्णुकी प्राणवल्लभा हो गयीं और सरस्वती मेरी। अब हमारे लिये वे तीसरा रूप धारण करके प्रकट हुई हैं। प्रभो! लोकहितका कार्य करनेकी इच्छावाली देवी शिवा दक्षपुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं। उनका नाम सती है। सती ही ऐसी भार्या हो सकती हैं, जो सदा आपके लिये हितकारिणी हो। देवेश! महातेजस्विनी सती आपके लिये, आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये दृढ़तापूर्वक कठोर व्रतका पालन करती हुई तपस्या कर रही हैं। महेश्वर! आप उन्हें वर देनेके लिये जाइये, कृपा कीजिये और बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें उनकी तपस्याके अनुरूप वर देकर उनके साथ विवाह कीजिये। शंकर! भगवान् विष्णुकी, मेरी तथा इन सम्पूर्ण देवताओंकी यही इच्छा है। आप अपनी शुभ दृष्टिसे हमारी इस इच्छाको पूर्ण कीजिये, जिससे हम आदरपूर्वक इस उत्सवको देख सकें। ऐसा होनेसे तीनों लोकोंमें सुख देनेवाला परम मङ्गल होगा और सबकी सारी चिन्ता मिट जायगी, इसमें संशय नहीं है।'

तदनन्तर मेरी बात समाप्त होनेपर लीला-विग्रह धारण करनेवाले भक्तवत्सल

महेश्वरसे मधुसूदन अच्युतने इसीका समर्थन किया।

तब भक्तवत्सल भगवान् शिवने हँसकर कहा, 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा।' उनके ऐसा कहनेपर हम दोनों उनसे आज्ञा ले अपनी पत्नी तथा देवताओं और मुनियोंके साथ अत्यन्त प्रसन्न हो अपने अभीष्ट स्थानको चले आये। (अध्याय १६)

☆

सतीको शिवसे वरकी प्राप्ति तथा भगवान् शिवका ब्रह्माजीको दक्षके पास भेजकर सतीका वरण करना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! अथर सतीने आश्विन मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको उपवास करके भक्तिभावसे सर्वेश्वर शिवका पूजन किया। इस प्रकार नन्दाव्रत पूर्ण होनेपर नवमी तिथिको दिनमें ध्यानमग्न हुई सतीको भगवान् शिवने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उनका श्रीविग्रह सर्वाङ्गसुन्दर एवं गौरवर्णका था। उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। भालदेशमें चन्द्रमा शोभा दे रहा था। उनका चित्त प्रसन्न था और कण्ठमें नील चिह्न दृष्टिगोचर होता था। उनके चार भुजाएँ थीं। उन्होंने हाथोंमें त्रिशूल, ब्रह्मकपाल, वर तथा अभय धारण कर रखे थे। भस्ममय अङ्गरागसे उनका सारा शरीर उद्भासित हो रहा था। गङ्गाजी उनके मस्तककी शोभा बढ़ा रही थीं। उनके सभी अङ्ग बड़े मनोहर थे। वे महान् लावण्यके धाम जान पड़ते थे। उनके मुख करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान एवं आह्लादजनक थे। उनकी अङ्गकान्ति करोड़ों कामदेवोंको तिरस्कृत कर रही थी तथा उनकी आकृति स्त्रियोंके लिये सर्वथा ही प्रिय थी। सतीने ऐसे सौन्दर्य-माधुर्यसे युक्त प्रभु महादेवजीको प्रत्यक्ष देखकर उनके चरणोंकी वन्दना की। उस समय उनका मुख लज्जासे झुका हुआ था। तपस्याके पुञ्जका फल प्रदान करनेवाले महादेवजी उन्हींके लिये कठोर व्रत धारण करनेवाली सतीको पत्नी बनानेके लिये प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हुए भी उनसे इस प्रकार बोले।

महादेवजीने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाली दक्षनन्दिनि! मैं तुम्हारे इस व्रतसे बहुत प्रसन्न हूँ। इसलिये कोई वर माँगो। तुम्हारे मनको जो अभीष्ट होगा, वही वर मैं तुम्हें दूँगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! जगदीश्वर महादेवजी यद्यपि सतीके मनोभावको जानते थे तो भी उनकी बात सुननेके लिये बोले—'कोई वर माँगो।' परंतु सती लज्जाके अधीन हो गयी थीं; इसलिये उनके हृदयमें जो बात थी, उसे वे स्पष्ट शब्दोंमें कह न सकीं। उनका जो अभीष्ट मनोरथ था, वह लज्जासे आच्छादित हो गया। प्राणवल्लभ शिवका प्रिय वचन सुनकर सती अत्यन्त प्रेममें मग्न हो गयीं। इस बातको जानकर भक्तवत्सल भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए और शीघ्रतापूर्वक बारंबार कहने लगे—'वर माँगो, वर माँगो।' सत्पुरुषोंके आश्रयभूत अन्तर्यामी शम्भु सतीकी भक्तिके वशीभूत हो गये थे। तब सतीने अपनी लज्जाको रोककर महादेवजीसे कहा—'वर देनेवाले प्रभो! मुझे मेरी इच्छाके अनुसार

ऐसा वर दीजिये जो टल न सके।' भक्तवत्सल भगवान् शंकरने देखा सती अपनी बात पूरी नहीं कह पा रही हैं, तब वे स्वयं ही उनसे बोले—'देवि! तुम मेरी भार्या हो जाओ।' अपने अभीष्ट फलको प्रकट करनेवाले उनके इस वचनको सुनकर आनन्दमग्न हुई सती चुपचाप खड़ी रह गयीं; क्योंकि वे मनोवाञ्छित वर पा चुकी थीं। फिर दक्षकन्या प्रसन्न हो दोनों हाथ जोड़ मस्तक झुका भक्तवत्सल शिवसे बारंबार कहने लगीं।

सती बोलीं—देवाधिदेव महादेव! प्रभो! जगत्पते! आप मेरे पिताको कहकर वैवाहिक विधिसे मेरा पाणिग्रहण करें।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! सतीकी यह बात सुनकर भक्तवत्सल महेश्वरने प्रेमसे उनकी ओर देखकर कहा—'प्रिये! ऐसा ही होगा।' तब दक्षकन्या सती भी भगवान् शिवको प्रणाम करके भक्तिपूर्वक विदा माँग—जानेकी आज्ञा प्राप्त करके मोह और आनन्दसे युक्त हो माताके पास लौट गयीं। इधर भगवान् शिव भी हिमालयपर अपने आश्रममें प्रवेश करके दक्षकन्या सतीके वियोगसे कुछ कष्टका अनुभव करते हुए उन्हींका चिन्तन करने लगे। देवर्षे! फिर मनको एकाग्र करके लौकिक गतिका आश्रय ले भगवान् शंकरने मन-ही-मन मेरा स्मरण किया। त्रिशूलधारी महेश्वरके स्मरण करनेपर उनकी सिद्धिसे प्रेरित हो मैं तुरंत ही उनके सामने जा खड़ा हुआ। तात! हिमालयके शिखरपर जहाँ सतीके वियोगका अनुभव करनेवाले महादेवजी विद्यमान थे, वहीं मैं सरस्वतीके साथ उपस्थित हो गया। देवर्षे! सरस्वतीसहित मुझे आया देख सतीके प्रेमपाशमें बँधे हुए शिव उत्सुकतापूर्वक बोले।

शम्भुने कहा—ब्रह्मन्! मैं जबसे विवाहके कार्यमें स्वार्थबुद्धि कर बैठा हूँ, तबसे अब मुझे इस स्वार्थमें ही स्वत्व-सा प्रतीत होता है। दक्षकन्या सतीने बड़ी भक्तिसे मेरी आराधना की है। उसके नन्दाव्रतके प्रभावसे मैंने उसे अभीष्ट वर देनेकी घोषणा की। ब्रह्मन्! तब उसने मुझसे यह वर माँगा कि 'आप मेरे पति हो जाइये।' यह सुनकर सर्वथा संतुष्ट हो मैंने भी कह दिया कि 'तुम मेरी पत्नी हो जाओ।' तब दाक्षायणी सती मुझसे बोलीं—'जगत्पते! आप मेरे पिताको सूचित करके वैवाहिक विधिसे मुझे ग्रहण करें।' ब्रह्मन्! उसकी भक्तिसे संतोष होनेके कारण मैंने उसका यह अनुरोध भी स्वीकार कर लिया। विधातः! तब सती अपनी माताके घर चली गयी और मैं यहाँ चला आया। इसलिये अब तुम मेरी आज्ञासे दक्षके घर जाओ और ऐसा यत्न करो, जिससे प्रजापति दक्ष शीघ्र ही मुझे अपनी कन्याका दान कर दें।

उनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मैं कृतकृत्य और प्रसन्न हो गया तथा उन भक्तवत्सल विश्वनाथसे इस प्रकार बोला।

मुझ ब्रह्माने कहा—भगवन्! शम्भो! आपने जो कुछ कहा है, उसपर भलीभाँति विचार करके हमलोगोंने पहले ही उसे सुनिश्चित कर लिया है। वृषभध्वज! इसमें मुख्यतः देवताओंका और मेरा भी स्वार्थ है। दक्ष स्वयं ही आपको अपनी पुत्री प्रदान करेंगे, किंतु आपकी आज्ञासे मैं भी उनके सामने आपका संदेश कह दूँगा।

सर्वेश्वर महाप्रभु महादेवजीसे ऐसा कहकर मैं अत्यन्त वेगशाली रथके द्वारा दक्षके घर जा पहुँचा।

नारदजीने पूछा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाभाग! विधात:! बताइये—जब सती घरपर लौटकर आयीं, तब दक्षने उनके लिये क्या किया?

ब्रह्माजीने कहा—तपस्या करके मनोवाञ्छित वर पाकर सती जब घरको लौट गयीं, तब वहाँ उन्होंने माता-पिताको प्रणाम किया। सतीने अपनी सखीके द्वारा माता-पिताको तपस्या-सम्बन्धी सब समाचार कहलवाया। सखीने यह भी सूचित किया कि 'सतीको महेश्वरसे वरकी प्राप्ति हुई है, वे सतीकी भक्तिसे बहुत संतुष्ट हुए हैं।' सखीके मुँहसे सारा वृत्तान्त सुनकर

माता-पिताको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और उन्होंने महान् उत्सव किया। उदारचेता दक्ष और महामनस्विनी वीरिणीने ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार द्रव्य दिया तथा अन्यान्य अंधों और दीनोंको भी धन बाँटा। प्रसन्नता बढ़ानेवाली अपनी पुत्रीको हृदयसे लगाकर माता वीरिणीने उसका मस्तक सूँघा और आनन्दमग्न होकर उसकी बारंबार प्रशंसा की। तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होनेपर धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ दक्ष इस चिन्तामें पड़े कि 'मैं अपनी इस पुत्रीका विवाह भगवान् शंकरके साथ किस तरह करूँ? महादेवजी प्रसन्न होकर आये थे, पर वे तो चले गये। अब मेरी पुत्रीके लिये वे फिर कैसे यहाँ आयेंगे? यदि किसीको शीघ्र ही भगवान् शिवके निकट भेजा जाय तो यह भी उचित नहीं जान पड़ता; क्योंकि यदि वे इस तरह अनुरोध करनेपर भी मेरी पुत्रीको ग्रहण न करें तो मेरी याचना निष्फल हो जायगी।'

इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े हुए प्रजापति दक्षके सामने मैं सरस्वतीके साथ सहसा उपस्थित हुआ। मुझ पिताको आया देख दक्ष प्रणाम करके विनीतभावसे खड़े हो गये। उन्होंने मुझ स्वयंभूको यथायोग्य आसन दिया। तदनन्तर दक्षने जब मेरे आनेका कारण पूछा, तब मैंने सब बातें बताकर उनसे कहा—'प्रजापते! भगवान् शंकरने तुम्हारी पुत्रीको प्राप्त करनेके लिये निश्चय ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है; इस विषयमें जो श्रेष्ठ कृत्य हो, उसका निश्चय करो। जैसे सतीने नाना प्रकारके भावोंसे तथा सात्त्विक व्रतके द्वारा भगवान् शिवकी आराधना की है, उसी तरह वे भी सतीकी आराधना करते हैं। इसलिये दक्ष! भगवान् शिवके लिये ही संकल्पित एवं प्रकट हुई अपनी इस पुत्रीको तुम अविलम्ब उनकी

सेवामें सौंप दो, इससे तुम कृतकृत्य हो जाओगे। मैं नारदके साथ जाकर उन्हें तुम्हारे घर ले आऊँगा। फिर तुम उन्हींके लिये उत्पन्न हुई अपनी यह पुत्री उनके हाथमें दे दो।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मेरी यह बात सुनकर मेरे पुत्र दक्षको बड़ा हर्ष हुआ। वे अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—'पिताजी! ऐसा ही होगा।' मुने! तब मैं अत्यन्त हर्षित हो वहाँसे उस स्थानको लौटा, जहाँ लोक-कल्याणमें तत्पर रहनेवाले भगवान् शिव बड़ी उत्सुकतासे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। नारद! मेरे लौट आनेपर स्त्री और पुत्रीसहित प्रजापति दक्ष भी पूर्णकाम हो गये। वे इतने संतुष्ट हुए, मानो अमृत पीकर अघा गये हों।

(अध्याय १७)

☆

ब्रह्माजीसे दक्षकी अनुमति पाकर देवताओं और मुनियोंसहित भगवान् शिवका दक्षके घर जाना, दक्षद्वारा सबका सत्कार तथा सती और शिवका विवाह

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर मैं हिमालयके कैलास-शिखरपर रहनेवाले परमेश्वर महादेव शिवको लानेके लिये प्रसन्नतापूर्वक उनके पास गया और उनसे इस प्रकार बोला—''वृषभध्वज! सतीके लिये मेरे पुत्र दक्षने जो बात कही है, उसे सुनिये और जिस कार्यको वे अपने लिये असाध्य मानते थे, उसे सिद्ध हुआ ही समझिये। दक्षने कहा है कि 'मैं अपनी पुत्री भगवान् शिवके ही हाथमें दूँगा; क्योंकि उन्हींके लिये यह उत्पन्न हुई है। शिवके साथ सतीका विवाह हो यह कार्य तो मुझे स्वतः ही अभीष्ट है; फिर आपके भी कहनेसे इसका महत्त्व और अधिक बढ़ गया। मेरी पुत्रीने स्वयं इसी उद्देश्यसे भगवान् शिवकी आराधना की है और इस समय शिवजी भी मुझसे इसीके विषयमें अन्वेषण (पूछताछ) कर रहे हैं; इसलिये मुझे अपनी कन्या अवश्य ही भगवान् शिवके हाथमें देनी है। विधातः! वे भगवान् शंकर शुभ लग्न और शुभ मुहूर्तमें यहाँ पधारें। उस समय मैं उन्हें शिक्षाके तौरपर अपनी यह पुत्री दे दूँगा।' वृषभध्वज! मुझसे दक्षने ऐसी बात कही है। अतः आप शुभ मुहूर्तमें उनके घर चलिये और सतीको ले आइये।''

मुने! मेरी यह बात, सुनकर भक्तवत्सल रुद्र लौकिक गतिका आश्रय ले

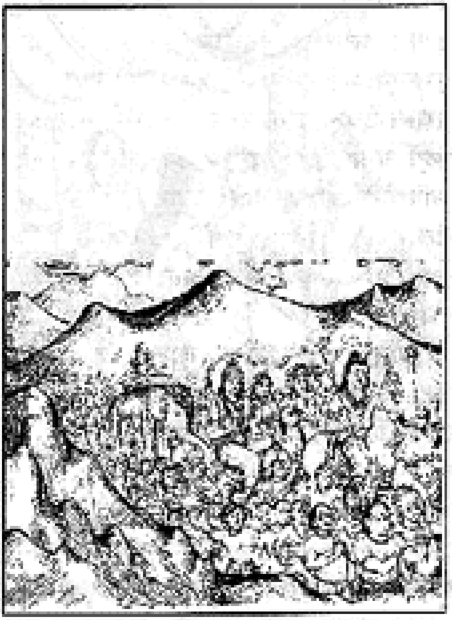

हँसते हुए मुझसे बोले—'संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी ! मैं तुम्हारे और नारदके साथ ही दक्षके घर चलूँगा ! अतः नारदका स्मरण करो। अपने मरीचि आदि मानस-पुत्रोंको भी बुला लो। विधे ! मैं उन सबके साथ दक्षके निवासस्थानपर चलूँगा। मेरे पार्षद भी मेरे साथ रहेंगे।'

नारद ! लोकाचारके निर्वाहमें लगे हुए भगवान् शिवके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मैंने तुम्हारा और मरीचि आदि पुत्रोंका भी स्मरण किया। मेरे याद करते ही तुम्हारे साथ मेरे सभी मानस-पुत्र मनमें आदरकी भावना लिये शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। उस समय तुम सब लोग हर्षसे उत्फुल्ल हो रहे थे। फिर रुद्रके स्मरण करनेपर शिवभक्तोंके सम्राट् भगवान् विष्णु भी अपने सैनिकों तथा कमलादेवीके साथ गरुड़पर आरूढ़ हो तुरंत वहाँ आ गये। तदनन्तर चैत्रमासके शुक्ल-पक्षकी त्रयोदशी तिथिमें रविवारको पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्रमें मुझ ब्रह्मा और विष्णु आदि समस्त देवताओंके साथ महेश्वरने विवाहके लिये यात्रा की। मार्गमें उन देवताओं और ऋषियोंके साथ यात्रा करते हुए भगवान् शंकर बड़ी शोभा पा रहे थे। वहाँ जाते हुए देवताओं, मुनियों तथा आनन्दमग्न मनवाले प्रमथगणोंका रास्तेमें बड़ा उत्सव हो रहा था। भगवान् शिवकी इच्छासे वृषभ, व्याघ्र, सर्प, जटा और चन्द्रकला आदि सब-के-सब उनके लिये यथायोग्य आभूषण बन गये। तदनन्तर वेगसे चलनेवाले बलवान् बलीवर्द नन्दिकेश्वरपर आरूढ़ हुए महादेवजी श्रीविष्णु आदि देवताओंको साथ लिये क्षणभरमें प्रसन्नतापूर्वक दक्षके घर जा पहुँचे।

वहाँ विनीतचित्तवाले प्रजापति दक्ष समस्त आत्मीय जनोंके साथ भगवान् शिवकी अगवानीके लिये उनके सामने आये। उस समय उनके समस्त अङ्गोंमें हर्षजनित रोमाञ्च हो आया था। स्वयं दक्षने अपने द्वारपर आये हुए समस्त देवताओंका सत्कार किया। वे सब लोग सुरश्रेष्ठ शिवको बिठाकर उनके पार्श्वभागमें स्वयं भी मुनियोंके साथ क्रमशः बैठ गये। इसके बाद दक्षने मुनियोंसहित समस्त देवताओंकी परिक्रमा की और उन सबके साथ भगवान् शिवको घरके भीतर ले आये। उस समय दक्षके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी। उन्होंने सर्वेश्वर शिवको उत्तम आसन देकर स्वयं ही विधिपूर्वक उनका पूजन किया। तत्पश्चात् श्रीविष्णुका, मेरा, ब्राह्मणोंका, देवताओंका और समस्त शिवगणोंका भी यथोचित विधिसे उत्तम भक्तिभावके साथ पूजन किया। इस तरह पूजनीय पुरुषों तथा अन्य लोगोंसहित उन सबका यथोचित आदर-सत्कार करके दक्षने मेरे मानस-पुत्र मरीचि आदि मुनियोंके साथ आवश्यक सलाह की। इसके बाद मेरे पुत्र दक्षने मुझ पितासे मेरे चरणोंमें प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक कहा—'प्रभो ! आप ही वैवाहिक कार्य करायें।'

तब मैं भी हर्षभरे हृदयसे 'बहुत अच्छा' कहकर उठा और वह सारा कार्य कराने लगा। तदनन्तर ग्रहोंके बलसे युक्त शुभ लग्न और मुहूर्तमें दक्षने हर्षपूर्वक अपनी पुत्री सतीका हाथ भगवान् शंकरके हाथमें दे दिया। उस समय हर्षसे भरे हुए भगवान् वृषभध्वजने भी वैवाहिक विधिसे सुन्दरी दक्षकन्याका पाणिग्रहण किया। फिर मैंने, श्रीहरिने, तुम तथा अन्य मुनियोंने, देवताओं

और प्रमथगणोंने भगवान् शिवको प्रणाम किया और सबने नाना प्रकारकी स्तुतियों-द्वारा उन्हें संतुष्ट किया। उस समय नाच-गानके साथ महान् उत्सव मनाया गया। समस्त देवताओं और मुनियोंको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। भगवान् शिवके लिये कन्यादान करके मेरे पुत्र दक्ष कृतार्थ हो गये। शिवा और शिव प्रसन्न हुए तथा सारा संसार मङ्गलका निकेतन बन गया।

(अध्याय १८)

☆

सती और शिवके द्वारा अग्निकी परिक्रमा, श्रीहरिद्वारा शिवतत्त्वका वर्णन, शिवका ब्रह्माजीको दिये हुए वरके अनुसार वेदीपर सदाके लिये अवस्थान तथा शिव और सतीका विदा हो कैलासपर जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! कन्यादान करके दक्षने भगवान् शंकरको नाना प्रकारकी वस्तुएँ दहेजमें दीं। यह सब करके वे बड़े प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने ब्राह्मणोंको भी नाना प्रकारके धन बाँटे। तत्पश्चात् लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णु शम्भुके पास आ हाथ जोड़कर खड़े हुए और यों बोले—'देवदेव महादेव ! दयासागर ! प्रभो ! तात ! आप सम्पूर्ण जगत्के पिता हैं और सती देवी सबकी माता हैं। आप दोनों सत्पुरुषोंके कल्याण तथा दुष्टोंके दमनके लिये सदा लीलापूर्वक अवतार ग्रहण करते हैं—यह सनातन श्रुतिका कथन है। आप चिकने नील अञ्जनके समान शोभावाली सतीके साथ जिस प्रकार शोभा पा रहे हैं, मैं उससे उलटे लक्ष्मीके साथ शोभा पा रहा हूँ—अर्थात् सती नीलवर्णा तथा आप गौरवर्ण हैं, उससे उलटे मैं नीलवर्ण तथा लक्ष्मी गौरवर्णा हैं।'

नारद ! मैं देवी सतीके पास आकर गृह्यसूत्रोक्त विधिसे विस्तारपूर्वक सारा अग्निकार्य कराने लगा। मुझ आचार्य तथा ब्राह्मणोंकी आज्ञासे शिवा और शिवने बड़े हर्षके साथ विधिपूर्वक अग्निकी परिक्रमा की। उस समय वहाँ बड़ा अद्भुत उत्सव मनाया गया। गाजे, बाजे और नृत्यके साथ होनेवाला वह उत्सव सबको बड़ा सुखद जान पड़ा।

तदनन्तर भगवान् विष्णु बोले—सदाशिव ! मैं आपकी आज्ञासे यहाँ शिवतत्त्वका वर्णन करता हूँ। समस्त देवता तथा दूसरे-दूसरे मुनि अपने मनको एकाग्र करके इस विषयको सुनें। भगवन् ! आप प्रधान और अप्रधान (प्रकृति और उससे अतीत) हैं। आपके अनेक भाग हैं। फिर भी आप भागरहित हैं। ज्योतिर्मय स्वरूप-वाले आप परमेश्वरके ही हम तीनों देवता अंश हैं। आप कौन, मैं कौन और ब्रह्मा कौन हैं ? आप परमात्माके ही ये तीन अंश हैं, जो सृष्टि, पालन और संहार करनेके कारण एक-दूसरेसे भिन्न प्रतीत होते हैं। आप अपने स्वरूपका चिन्तन कीजिये। आपने स्वयं ही लीलापूर्वक शरीर धारण किया है। आप निर्गुण ब्रह्मरूपसे एक हैं। आप ही सगुण ब्रह्म हैं और हम ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र—तीनों आपके अंश हैं। जैसे एक

ही शरीरके भिन्न-भिन्न अवयव मस्तक, ग्रीवा आदि नाम धारण करते हैं तथापि उस शरीरसे वे भिन्न नहीं हैं, उसी प्रकार हम तीनों अंश आप परमेश्वरके ही अङ्ग हैं। जो ज्योतिर्मय, आकाशके समान सर्वव्यापी एवं निर्लेप, स्वयं ही अपना धाम, पुराण, कूटस्थ, अव्यक्त, अनन्त, नित्य तथा दीर्घ आदि विशेषणोंसे रहित निर्विशेष ब्रह्म है, वही आप शिव हैं, अतः आप ही सब कुछ हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर! भगवान् विष्णुकी यह बात सुनकर महादेवजी बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर उस विवाह-यज्ञके स्वामी (यजमान) परमेश्वर शिव प्रसन्न हो लौकिकी गतिका आश्रय ले हाथ जोड़कर खड़े हुए मुझ ब्रह्मासे प्रेमपूर्वक बोले।

शिवने कहा—ब्रह्मन्! आपने सारा वैवाहिक कार्य अच्छी तरह सम्पन्न करा दिया। अब मैं प्रसन्न हूँ। आप मेरे आचार्य हैं। बताइये, आपको क्या दक्षिणा दूँ! सुरज्येष्ठ! आप उस दक्षिणाको माँगिये। महाभाग! यदि वह अत्यन्त दुर्लभ हो तो भी उसे शीघ्र कहिये। मुझे आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं है।

मुने! भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर मैं हाथ जोड़ विनीत चित्तसे उन्हें बारंबार प्रणाम करके बोला—'देवेश! यदि आप प्रसन्न हों और महेश्वर! यदि मैं वर पानेके योग्य होऊँ तो प्रसन्नतापूर्वक जो बात कहता हूँ, उसे आप पूर्ण कीजिये। महादेव! आप इसी रूपमें इसी वेदीपर सदा विराजमान रहें, जिससे आपके दर्शनसे मनुष्योंके पाप धुल जायँ। चन्द्रशेखर! आपका सांनिध्य होनेसे मैं इस वेदीके समीप आश्रम बनाकर तपस्या करूँ—यह मेरी अभिलाषा है। चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें रविवारके दिन इस भूतलपर जो मनुष्य भक्तिभावसे आपका दर्शन करे, उसके सारे पाप तत्काल नष्ट हो जायँ, विपुल पुण्यकी वृद्धि हो और समस्त रोगोंका सर्वथा नाश हो जाय। जो नारी दुर्भगा, वन्ध्या, कानी अथवा रूपहीना हो, वह भी आपके दर्शनमात्रसे ही अवश्य निर्दोष हो जाय।'

मेरी यह बात उनकी आत्माको सुख देनेवाली थी। इसे सुनकर भगवान् शिवने प्रसन्नचित्तसे कहा—'विधातः! ऐसा ही होगा। मैं तुम्हारे कहनेसे सम्पूर्ण जगत्के हितके लिये अपनी पत्नी सतीके साथ इस वेदीपर सुस्थिरभावसे स्थित रहूँगा।'

ऐसा कहकर पत्नीसहित भगवान् शिव अपनी अंशरूपिणी मूर्तिको प्रकट करके वेदीके मध्यभागमें विराजमान हो गये।

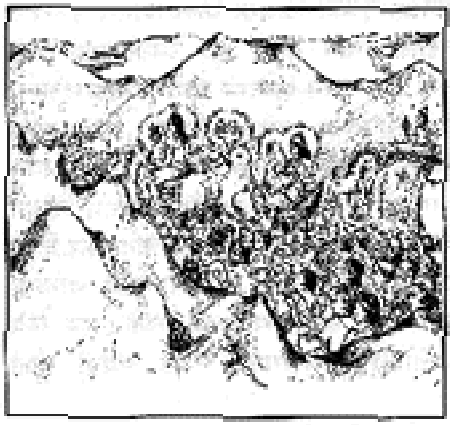

तत्पश्चात् स्वजनोंपर स्नेह रखनेवाले परमेश्वर शंकर दक्षसे विदा ले अपनी पत्नी सतीके साथ कैलास जानेको उद्यत हुए। उस समय उत्तम बुद्धिवाले दक्षने विनयसे मस्तक झुका हाथ जोड़ भगवान् वृषभध्वजकी प्रेम-

पूर्वक स्तुति की। फिर श्रीविष्णु आदि समस्त देवताओं, मुनियों और शिवगणोंने नमस्कारपूर्वक नाना प्रकारकी स्तुति करके बड़े आनन्दसे जय-जयकार किया। तदनन्तर दक्षकी आज्ञासे भगवान् शिवने प्रसन्नता-पूर्वक सतीको वृषभकी पीठपर बिठाया और स्वयं भी उसपर आरूढ़ हो वे प्रभु हिमालय पर्वतकी ओर चले। भगवान् शंकरके समीप वृषभपर बैठी हुई सुन्दर दाँत और मनोहर हासवाली सती अपने नीलश्याम वर्णके कारण चन्द्रमामें नीली रेखाके समान शोभा पा रही थीं। उस समय उन नवदम्पतिकी शोभा देख श्रीविष्णु आदि समस्त देवता, मरीचि आदि महर्षि तथा दूसरे लोग ठगे-से रह गये। हिल-डुल भी न सके तथा दक्ष भी मोहित हो गये। तत्पश्चात् कोई बाजे बजाने लगे और दूसरे लोग मधुर स्वरसे गीत गाने लगे। कितने ही लोग प्रसन्नतापूर्वक शिवके कल्याणमय उज्ज्वल यशका गान करते हुए उनके पीछे-पीछे चले। भगवान् शंकरने बीच रास्तेसे दक्षको प्रसन्नतापूर्वक लौटा दिया और स्वयं प्रेमाकुल हो प्रमथगणोंके साथ अपने धामको जा पहुँचे। यद्यपि भगवान् शिवने विष्णु आदि देवताओंको भी विदा कर दिया था, तो भी वे बड़ी प्रसन्नता और भक्तिके साथ पुनः उनके साथ हो लिये। उन सब देवताओं, प्रमथगणों तथा अपनी पत्नी सतीके साथ हर्षभरे शम्भु हिमालय पर्वतसे सुशोभित अपने कैलासधाममें जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देवताओं, मुनियों तथा दूसरे लोगोंका बहुत आदर-सम्मान करके उन्हें प्रसन्नतापूर्वक विदा किया। शम्भुकी आज्ञा ले वे विष्णु आदि सब देवता तथा मुनि नमस्कार और स्तुति करके मुखपर प्रसन्नताकी छाप लिये अपने-अपने धामको चले गये। सदाशिवका चिन्तन करनेवाले भगवान् शिव भी अत्यन्त आनन्दित हो हिमालयके शिखरपर रहकर अपनी पत्नी दक्षकन्या सतीके साथ विहार करने लगे।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! पूर्वकालमें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भगवान् शंकर और सतीका जिस प्रकार विवाह हुआ, यह सारा प्रसङ्ग मैंने तुमसे कह दिया। जो विवाहकालमें, यज्ञमें अथवा किसी भी शुभ कार्यके आरम्भमें भगवान् शंकरकी पूजा करके शान्तचित्तसे इस कथाको सुनता है, उसका सारा कर्म तथा वैवाहिक आयोजन बिना किसी विघ्न-बाधाके पूर्ण होता है और दूसरे शुभ कर्म भी सदा निर्विघ्न पूर्ण होते हैं। इस शुभ उपाख्यानको प्रेमपूर्वक सुनकर विवाहित होनेवाली कन्या भी सुख, सौभाग्य, सुशीलता और सदाचार आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न साध्वी स्त्री तथा पुत्रवती होती है।

(अध्याय १९-२०)

☆

सतीका प्रश्न तथा उसके उत्तरमें भगवान् शिवद्वारा ज्ञान एवं नवधा भक्तिके स्वरूपका विवेचन

कैलास तथा हिमालय पर्वतपर श्रीशिव और सतीके विविध विहारोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेके पश्चात् ब्रह्माजीने कहा—मुने! एक दिनकी बात है, देवी सती एकान्तमें

भगवान् शंकरसे मिलीं और उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ खड़ी हो गयीं। प्रभु शंकरको पूर्ण प्रसन्न जान नमस्कार करके विनीत भावसे खड़ी हुई दक्षकुमारी सती भक्तिभावसे अञ्जलि बाँधे बोलीं।

सतीने कहा—देवदेव महादेव! करुणासागर! प्रभो! दीनोद्धारपरायण! महायोगिन्! मुझपर कृपा कीजिये। आप परम पुरुष हैं। सबके स्वामी हैं। रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणसे परे हैं। निर्गुण भी हैं, सगुण भी हैं। सबके साक्षी, निर्विकार और महाप्रभु हैं। हर! मैं धन्य हूँ,जो आपकी कामिनी और आपके साथ सुन्दर विहार करनेवाली आपकी प्रिया हुई। स्वामिन्! आप अपनी भक्तवत्सलतासे ही प्रेरित होकर मेरे पति हुए हैं। नाथ! मैंने बहुत वर्षोंतक आपके साथ विहार किया है। महेशान! इससे मैं बहुत संतुष्ट हुई हूँ और अब मेरा मन उधरसे हट गया है। देवेश्वर हर! अब तो मैं उस परम तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहती हूँ, जो निरतिशय सुख प्रदान करनेवाला है तथा जिसके द्वारा जीव संसार-दुःखसे अनायास ही उद्धार पा सकता है। नाथ! जिस कर्मका अनुष्ठान करके विषयी जीव भी परम पदको प्राप्त कर ले और संसारबन्धनमें न बँधे, उसे आप बताइये, मुझपर कृपा कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार आदिशक्ति महेश्वरी सतीने केवल जीवोंके उद्धारके लिये जब उत्तम भक्तिभावके साथ भगवान् शंकरसे प्रश्न किया, तब उनके उस प्रश्नको सुनकर स्वेच्छासे शरीर धारण करनेवाले तथा योगके द्वारा भोगसे विरक्त चित्तवाले स्वामी शिवने अत्यन्त प्रसन्न होकर सतीसे इस प्रकार कहा।

शिव बोले—देवि! दक्षनन्दिनि! महेश्वरि! सुनो; मैं उसी परमतत्त्वका वर्णन करता हूँ, जिससे वासनाबद्ध जीव तत्काल मुक्त हो सकता है। परमेश्वरि! तुम विज्ञानको परमतत्त्व जानो। विज्ञान वह है, जिसके उदय होनेपर 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाता है, ब्रह्मके सिवा दूसरी किसी वस्तुका स्मरण नहीं रहता तथा उस विज्ञानी पुरुषकी बुद्धि सर्वथा शुद्ध हो जाती है। प्रिये! वह विज्ञान दुर्लभ है। इस त्रिलोकीमें उसका ज्ञाता कोई विरला ही होता है। वह जो और जैसा भी है, सदा मेरा स्वरूप ही है, साक्षात्परात्पर ब्रह्म है। उस विज्ञानकी माता है मेरी भक्ति, जो भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाली है। वह मेरी कृपासे सुलभ होती है। भक्ति नौ प्रकारकी बतायी गयी है। सती! भक्ति और ज्ञानमें कोई भेद नहीं है। भक्त और ज्ञानी दोनोंको ही सदा सुख प्राप्त होता है। जो भक्तिका विरोधी है, उसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं ही होती। देवि! मैं सदा भक्तके अधीन रहता हूँ और भक्तिके प्रभावसे जातिहीन नीच मनुष्योंके घरोंमें भी चला जाता हूँ, इसमें संशय नहीं है।* सती! वह भक्ति दो प्रकारकी है—

* भक्तौ ज्ञाने न भेदो हि तत्कर्तुः सर्वदा सुखम्। विज्ञानं न भवत्येव सति भक्तिविरोधिनः॥
भक्ताधीनः सदाहं वै तत्प्रभावाद् गृहेष्वपि। नीचानां जातिहीनानां यामि देवि न संशयः॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० २३। १६-१७)

सगुणा और निर्गुणा। जो वैधी (शास्त्रविधिसे प्रेरित) और स्वाभाविकी (हृदयके सहज अनुरागसे प्रेरित) भक्ति होती है, वह श्रेष्ठ है तथा इससे भिन्न जो कामनामूलक भक्ति होती है, वह निम्नकोटिकी मानी गयी है। पूर्वोक्त सगुणा और निर्गुणा—ये दोनों प्रकारकी भक्तियाँ नैष्ठिकी और अनैष्ठिकीके भेदसे दो भेदवाली हो जाती हैं। नैष्ठिकी भक्ति छः प्रकारकी जाननी चाहिये और अनैष्ठिकी एक ही प्रकारकी कही गयी है। विद्वान् पुरुष विहिता और अविहिता आदि भेदसे उसे अनेक प्रकारकी मानते हैं। इन द्विविध भक्तियोंके बहुत-से भेद-प्रभेद होनेके कारण इनके तत्त्वका अन्यत्र वर्णन किया गया है। प्रिये ! मुनियोंने सगुणा और निर्गुणा दोनों भक्तियोंके नौ अङ्ग बताये हैं। दक्षनन्दिनि ! मैं उन नवों अङ्गोंका वर्णन करता हूँ, तुम प्रेमसे सुनो। देवि ! श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, दास्य, अर्चन, सदा मेरा वन्दन, सख्य और आत्मसमर्पण—ये विद्वानोंने भक्तिके नौ अङ्ग माने हैं।* शिवे ! भक्तिके उपाङ्ग भी बहुत-से बताये गये हैं।

देवि ! अब तुम मन लगाकर मेरी भक्तिके पूर्वोक्त नवों अङ्गोंके पृथक्-पृथक् लक्षण सुनो; वे लक्षण भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। जो स्थिर आसनसे बैठकर तन-मन आदिसे मेरी कथा-कीर्तन आदिका नित्य सम्मान करता हुआ प्रसन्नता-पूर्वक अपने श्रवणपुटोंसे उसके अमृतोपम रसका पान करता है, उसके इस साधनको 'श्रवण' कहते हैं। जो हृदयाकाशके द्वारा मेरे दिव्य जन्म-कर्मोंका चिन्तन करता हुआ प्रेमसे वाणीद्वारा उनका उच्चस्वरसे उच्चारण करता है, उसके इस भजन-साधनको 'कीर्तन' कहते हैं। देवि ! मुझ नित्य महेश्वरको सदा और सर्वत्र व्यापक जानकर जो संसारमें निरन्तर निर्भय रहता है, उसीको स्मरण कहा गया है। अरुणोदयसे लेकर हर समय सेव्यकी अनुकूलताका ध्यान रखते हुए हृदय और इन्द्रियोंसे जो निरन्तर सेवा की जाती है, वही 'सेवन' नामक भक्ति है। अपनेको प्रभुका किंकर समझकर हृदयामृतके भोगसे स्वामीका सदा प्रिय सम्पादन करना 'दास्य' कहा गया है। अपने धन-वैभवके अनुसार शास्त्रीय विधिसे मुझ परमात्माको सदा पाद्य आदि सोलह उपचारोंका जो समर्पण करना है, उसे 'अर्चन' कहते हैं। मनसे ध्यान और वाणीसे वन्दनात्मक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक आठों अङ्गोंसे भूतलका स्पर्श करते हुए जो इष्टदेवको नमस्कार किया जाता है, उसे 'वन्दन' कहते हैं। ईश्वर मङ्गल या अमङ्गल जो कुछ भी करता है, वह सब मेरे मङ्गलके लिये ही है। ऐसा दृढ़ विश्वास रखना 'सख्य' भक्तिका लक्षण है।† देह आदि जो कुछ

* श्रवणं कीर्तनं चैव स्मरणं सेवनं तथा। दास्यं तथार्चनं देवि वन्दनं मम सर्वदा॥
सख्यमात्मार्पणं चेति नवाङ्गानि विदुर्बुधाः।

(शि० पु० रु० सं० स० खं० २३।२२)

† मङ्गलामङ्गलं यद् यत् करोतीतीश्वरो हि मे। सर्वं तन्मङ्गलायेति विश्वासः सख्यलक्षणम्॥

(शि० पु० रु० सं० स० खं० २३।३२)

भी अपनी कही जानेवाली वस्तु है, वह सब भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये उन्हींको समर्पित करके अपने निर्वाहके लिये भी कुछ बचाकर न रखना अथवा निर्वाहकी चिन्तासे भी रहित हो जाना 'आत्मसमर्पण' कहलाता है। ये मेरी भक्तिके नौ अङ्ग हैं, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। इनसे ज्ञानका प्राकट्य होता है तथा ये सब साधन मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरी भक्तिके बहुत-से उपाङ्ग भी कहे गये हैं, जैसे बिल्व आदिका सेवन आदि। इनको विचारसे समझ लेना चाहिये।

प्रिये! इस प्रकार मेरी साङ्गोपाङ्ग भक्ति सबसे उत्तम है। *यह ज्ञान-वैराग्यकी* जननी है और मुक्ति इसकी दासी है। यह सदा सब साधनोंसे ऊपर विराजमान है। इसके द्वारा सम्पूर्ण कर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है। यह भक्ति मुझे सदा तुम्हारे समान ही प्रिय है। जिसके चित्तमें नित्य-निरन्तर यह भक्ति निवास करती है, वह साधक मुझे अत्यन्त प्यारा है। देवेश्वरि! तीनों लोकों और चारों युगोंमें भक्तिके समान दूसरा कोई सुखदायक मार्ग नहीं है। कलियुगमें तो यह विशेष सुखद एवं सुविधाजनक है।* देवि! कलियुगमें प्रायः ज्ञान और वैराग्यके कोई ग्राहक नहीं हैं। इसलिये वे दोनों वृद्ध, उत्साहशून्य और जर्जर हो गये हैं। परंतु भक्ति कलियुगमें तथा अन्य सब युगोंमें भी प्रत्यक्ष फल देनेवाली है। भक्तिके प्रभावसे मैं सदा उसके वशमें रहता हूँ, इसमें संशय नहीं है। संसारमें जो भक्तिमान् पुरुष है, उसकी मैं सदा सहायता करता हूँ, उसके सारे विघ्नोंको दूर हटाता हूँ। उस भक्तका जो शत्रु होता है, वह मेरे लिये दण्डनीय है—इसमें संशय नहीं है।† देवि! मैं अपने भक्तोंका रक्षक हूँ। भक्तकी रक्षाके लिये ही मैंने कुपित हो अपने नेत्रजनित अग्निसे कालको भी दग्ध कर डाला था। प्रिये! भक्तके लिये मैं पूर्वकालमें सूर्यपर भी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा था और शूल लेकर मैंने उन्हें मार भगाया था। देवि! भक्तके लिये मैंने सैन्यसहित रावणको भी क्रोधपूर्वक *त्याग दिया और उसके प्रति कोई* पक्षपात नहीं किया। सती! देवेश्वरि! बहुत कहनेसे क्या लाभ, मैं सदा ही भक्तके अधीन रहता हूँ और भक्ति करनेवाले पुरुषके अत्यन्त वशमें हो जाता हूँ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार भक्तका महत्त्व सुनकर दक्षकन्या सतीको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शिवको मन-ही-मन प्रणाम किया। मुने! सती देवीने पुनः भक्तिकाण्डविषयक शास्त्रके विषयमें भक्तिपूर्वक पूछा। उन्होंने जिज्ञासा की कि जो लोकमें सुखदायक तथा जीवोंके उद्धारके साधनोंका प्रतिपादक है, वह शास्त्र कौन-सा है। उन्होंने यन्त्र-मन्त्र, शास्त्र, उसके माहात्म्य तथा अन्य जीवोद्धारक धर्ममय

---

* त्रैलोक्ये भक्तिसदृशः पन्था नास्ति सुखावहः। चतुर्युगेषु देवेशि कलौ तु सुविशेषतः॥
(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ स॰ खं॰ २३।३८)

† यो भक्तिमान् पुमाँल्लोके सदाहं तत्सहायकृत्। विघ्नहर्ता रिपुस्तस्य दण्ड्यो नात्र च संशयः॥
(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ स॰ खं॰ २३।४१)

साधनोंके विषयमें विशेषरूपसे जाननेकी इच्छा प्रकट की। सतीके इस प्रश्नको सुनकर शंकरजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने जीवोंके उद्धारके लिये सब शास्त्रोंका प्रेमपूर्वक वर्णन किया। महेश्वरने पाँचों अङ्गोंसहित तन्त्रशास्त्र, यन्त्रशास्त्र तथा भिन्न-भिन्न देवेश्वरोंकी महिमाका वर्णन किया। मुनीश्वर! इतिहास-कथासहित उन देवताओंके भक्तोंकी महिमाका, वर्णाश्रमधर्मोंका तथा राजधर्मोंका भी निरूपण किया। पुत्र और स्त्रीके धर्मकी महिमाका, कभी नष्ट न होनेवाले वर्णाश्रमधर्मका और जीवोंको सुख देनेवाले वैद्यकशास्त्र तथा ज्योतिषशास्त्रका भी वर्णन किया। महेश्वरने कृपा करके उत्तम सामुद्रिक शास्त्रका तथा और भी बहुत-से शास्त्रोंका तत्त्वतः वर्णन किया। इस प्रकार लोकोपकार करनेके लिये सद्गुणसम्पन्न शरीर धारण करनेवाले, त्रिलोक-सुखदायक और सर्वज्ञ सती-शिव हिमालयके कैलासशिखरपर तथा अन्यान्य स्थानोंमें नाना प्रकारकी लीलाएँ करते थे। ये दोनों दम्पति साक्षात् परब्रह्मस्वरूप हैं।

(अध्याय २१—२३)

☆

दण्डकारण्यमें शिवको श्रीरामके प्रति मस्तक झुकाते देख सतीका मोह तथा शिवकी आज्ञासे उनके द्वारा श्रीरामकी परीक्षा

नारदजी बोले—ब्रह्मन्! विधे! प्रजानाथ! महाप्राज्ञ! दयानिधे! आपने भगवान् शंकर तथा देवी सतीके मङ्गलकारी सुयशका श्रवण कराया है। अब इस समय पुनः प्रेमपूर्वक उनके उत्तम यशका वर्णन कीजिये। उन शिव-दम्पतिने वहाँ रहकर कौन-सा चरित्र किया था?

ब्रह्माजीने कहा—मुने! तुम मुझसे सती और शिवके चरित्रका प्रेमसे श्रवण करो। वे दोनों दम्पति वहाँ लौकिकी गतिका आश्रय ले नित्य-निरन्तर क्रीड़ा किया करते थे। तदनन्तर महादेवी सतीको अपने पति शंकरका वियोग प्राप्त हुआ, ऐसा कुछ श्रेष्ठ बुद्धिवाले विद्वानोंका कथन है। परंतु मुने! वास्तवमें उन दोनोंका परस्पर वियोग कैसे हो सकता है? क्योंकि वे दोनों वाणी और अर्थके समान एक-दूसरेसे सदा मिले-जुले हैं, शक्ति और शक्तिमान् हैं तथा चित्स्वरूप हैं। फिर भी उनमें लीला-विषयक रुचि होनेके कारण वह सब कुछ संघटित हो सकता है। सती और शिव यद्यपि ईश्वर हैं तो भी लौकिक रीतिका अनुसरण करके वे जो-जो लीलाएँ करते हैं, वे सब सम्भव हैं। दक्षकन्या सतीने जब देखा कि मेरे पतिने मुझे त्याग दिया है, तब वे अपने पिता दक्षके यज्ञमें गयीं और वहाँ भगवान् शंकरका अनादर देख उन्होंने अपने शरीरको त्याग दिया। वे ही सती पुनः हिमालयके घर पार्वतीके नामसे प्रकट हुईं और बड़ी भारी तपस्या करके उन्होंने विवाहके द्वारा पुनः भगवान् शिवको प्राप्त कर लिया।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर नारदजीने विधातासे शिवा और शिवके महान् यशके विषयमें इस प्रकार पूछा।

नारदजी बोले—महाभाग विष्णुशिष्य!

त्रिधातः! आप मुझे शिवा और शिवके भाव तथा आचारसे सम्बन्ध रखनेवाले उनके चरित्रको विस्तारपूर्वक सुनाइये। तात! भगवान् शंकरने अपने प्राणोंसे भी प्यारी धर्मपत्नी सतीका किसलिये त्याग किया? यह घटना तो मुझे बड़ी विचित्र जान पड़ती है। अतः इसे आप अवश्य कहें। अज! आपके पुत्र दक्षके यज्ञमें भगवान् शिवका अनादर कैसे हुआ? और वहाँ पिताके यज्ञमें जाकर सतीने अपने शरीरका त्याग किस प्रकार किया? उसके बाद वहाँ क्या हुआ? भगवान् महेश्वरने क्या किया? ये सब बातें मुझसे कहिये। इन्हें सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी श्रद्धा है।

ब्रह्माजीने कहा—मेरे पुत्रोंमें श्रेष्ठ! महाप्राज्ञ! तात नारद! तुम महर्षियोंके साथ बड़े प्रेमसे भगवान् चन्द्रमौलिका यह चरित्र सुनो। श्रीविष्णु आदि देवताओंसे सेवित परब्रह्म महेश्वरको नमस्कार करके मैं उनके महान् अद्भुत चरित्रका वर्णन आरम्भ करता हूँ। मुने! यह सब भगवान् शिवकी लीला ही है। वे प्रभु अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले, स्वतन्त्र और निर्विकार हैं। देवी सती भी वैसी ही हैं। अन्यथा वैसा कर्म करनेमें कौन समर्थ हो सकता है। परमेश्वर शिव ही परब्रह्म परमात्मा हैं।

एक समयकी बात है, तीनों लोकोंमें विचरनेवाले लीलाविशारद भगवान् रुद्र सतीके साथ बैलपर आरूढ़ हो इस भूतलपर भ्रमण कर रहे थे। घूमते-घूमते वे दण्डकारण्यमें आये। वहाँ उन्होंने लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामको देखा, जो रावणद्वारा छल-पूर्वक हरी गयी अपनी प्यारी पत्नी सीताकी खोज कर रहे थे। वे 'हा सीते!' ऐसा उच्च-स्वरसे पुकारते, जहाँ-तहाँ देखते और बारंबार रोते थे। उनके मनमें विरहका आवेश छा गया था। सूर्यवंशमें उत्पन्न, वीर भूपाल, दशरथनन्दन, भरताग्रज श्रीराम आनन्दरहित हो लक्ष्मणके साथ वनमें भ्रमण कर रहे थे और उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी। उस समय उदारचेता पूर्णकाम भगवान् शंकरने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया और जय-जयकार करके वे दूसरी ओर चल दिये। भक्तवत्सल शंकरने उस वनमें श्रीरामके सामने अपनेको प्रकट नहीं किया। भगवान् शिवकी मोहमें डालनेवाली ऐसी लीला देख सतीको बड़ा विस्मय हुआ। वे उनकी मायासे मोहित हो उनसे इस प्रकार बोलीं।

सतीने कहा—देवदेव सर्वेश! परब्रह्म परमेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता आपकी ही सदा सेवा करते हैं। आप ही सबके द्वारा प्रणाम करनेयोग्य हैं। सबको आपका ही सर्वदा सेवन और ध्यान करना चाहिये। वेदान्त-शास्त्रके द्वारा यत्नपूर्वक जाननेयोग्य निर्विकार परमप्रभु आप ही हैं। नाथ! ये दोनों पुरुष कौन हैं; इनकी आकृति विरहव्यथासे व्याकुल दिखायी देती है। ये दोनों धनुर्धर वीर वनमें विचरते हुए क्लेशके भागी और दीन हो रहे हैं। इनमें जो ज्येष्ठ है, उसकी अङ्गकान्ति नीलकमलके समान श्याम है। उसे देखकर किस कारणसे आप आनन्दविभोर हो उठे थे? आपका चित्त क्यों अत्यन्त प्रसन्न हो गया था? आप इस समय भक्तके समान विनम्र क्यों हो गये थे? स्वामिन्! कल्याणकारी शिव! आप मेरे संशयको सुनें। प्रभो! सेव्य स्वामी अपने सेवकको प्रणाम करे, यह उचित नहीं जान पड़ता।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! कल्याणमयी परमेश्वरी आदिशक्ति सती देवीने शिवकी मायाके वशीभूत होकर जब भगवान् शिवसे इस प्रकार प्रश्न किया, तब सतीकी यह बात सुनकर लीलाविशारद परमेश्वर शंकर हँसकर उनसे इस प्रकार बोले।

परमेश्वरने कहा—देवि ! सुनो, मैं प्रसन्नतापूर्वक यथार्थ बात कहता हूँ। इसमें छल नहीं है। वरदानके प्रभावसे ही मैंने इन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया है। प्रिये ! ये दोनों भाई वीरोंद्वारा सम्मानित हैं। इनके नाम हैं—श्रीराम और लक्ष्मण। इनका प्राकट्य सूर्यवंशमें हुआ है। ये दोनों राजा दशरथके विद्वान् पुत्र हैं। इनमें जो गोरे रंगके छोटे बन्धु हैं, वे साक्षात् शेषके अंश हैं। उनका नाम लक्ष्मण है। इनके बड़े भैयाका नाम श्रीराम है। इनके रूपमें भगवान् विष्णु ही अपने सम्पूर्ण अंशसे प्रकट हुए हैं। उपद्रव इनसे दूर ही रहते हैं। ये साधुपुरुषोंकी रक्षा और हमलोगोंके कल्याणके लिये इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं !

ऐसा कहकर सृष्टिकर्ता भगवान् शम्भु चुप हो गये। भगवान् शिवकी ऐसी बात सुनकर भी सतीके मनको इसपर विश्वास नहीं हुआ। क्यों न हो, भगवान् शिवकी माया बड़ी प्रबल है, वह सम्पूर्ण त्रिलोकीको मोहमें डाल देनेवाली है। सतीके मनमें मेरी बातपर विश्वास नहीं है, यह जानकर लीलाविशारद प्रभु सनातन शम्भु यों बोले।

शिवने कहा—देवि ! मेरी बात सुनो। यदि तुम्हारे मनमें मेरे कथनपर विश्वास नहीं है तो तुम वहाँ जाकर अपनी ही बुद्धिसे श्रीरामकी परीक्षा कर लो। प्यारी सती ! जिस प्रकार तुम्हारा मोह या भ्रम नष्ट हो जाय, वह करो। तुम वहाँ जाकर परीक्षा करो। तबतक मैं इस बरगदके नीचे खड़ा हूँ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भगवान् शिवकी आज्ञासे ईश्वरी सती वहाँ गयी और मन-ही-मन यह सोचने लगीं कि 'मैं वनचारी रामकी कैसे परीक्षा करूँ, अच्छा, मैं सीताका रूप धारण करके रामके पास चलूँ। यदि राम साक्षात् विष्णु हैं, तब तो सब कुछ जान लेंगे; अन्यथा वे मुझे नहीं पहचानेंगे।' ऐसा विचार सती सीता बनकर श्रीरामके समीप उनकी परीक्षा लेनेके लिये गयीं। वास्तवमें वे मोहमें पड़ गयी थीं। सतीको सीताके रूपमें सामने आयी देख शिव-शिवका जप करते हुए रघुकुलनन्दन श्रीराम सब कुछ जान गये और हँसते हुए उन्हें नमस्कार करके बोले।

श्रीरामने पूछा—सतीजी ! आपको नमस्कार है। आप प्रेमपूर्वक बतायें, भगवान् शम्भु कहाँ गये हैं ? आप पतिके बिना अकेली ही इस वनमें क्योंकर आयीं ? देवि ! आपने अपना रूप त्यागकर किसलिये यह नूतन रूप धारण किया है ? मुझपर कृपा करके इसका कारण बताइये।

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर सती उस समय आश्चर्यचकित हो गयीं। वे शिवजीकी कही हुई बातका स्मरण करके और उसे यथार्थ समझकर बहुत लज्जित हुईं। श्रीरामको साक्षात् विष्णु जान अपने रूपको प्रकट करके मन-ही-मन भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन कर प्रसन्नचित्त हुई सती उनसे इस तरह बोलीं—'रघुनन्दन ! स्वतन्त्र परमेश्वर भगवान् शिव

मेरे तथा अपने पार्षदोंके साथ पृथ्वीपर भ्रमण करते हुए इस वनमें आ गये थे। यहाँ उन्होंने सीताकी खोजमें लगे हुए लक्ष्मणसहित तुमको देखा। उस समय सीताके लिये तुम्हारे मनमें बड़ा क्लेश था और तुम विरहशोकसे पीड़ित दिखायी देते थे। उस अवस्थामें तुम्हें प्रणाम करके वे चले गये और उस वटवृक्षके नीचे अभी खड़े ही हैं। भगवान् शिव बड़े आनन्दके साथ तुम्हारे वैष्णव रूपकी उत्कृष्ट महिमाका गान कर रहे थे। यद्यपि उन्होंने तुम्हें चतुर्भुज विष्णुके रूपमें नहीं देखा तो भी तुम्हारा दर्शन करते ही वे आनन्दविभोर हो गये। इस निर्मल रूपकी ओर देखते हुए उन्हें बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। इस विषयमें मेरे पूछनेपर भगवान् शम्भुने जो बात कही, उसे सुनकर मेरे मनमें भ्रम उत्पन्न हो गया। अतः राघवेन्द्र ! मैंने उनकी आज्ञा लेकर तुम्हारी परीक्षा की है। श्रीराम ! अब मुझे ज्ञात हो गया कि तुम साक्षात् विष्णु हो। तुम्हारी सारी प्रभुता मैंने अपनी आँखों देख ली। अब मेरा संशय दूर हो गया तो भी महामते ! तुम मेरी बात सुनो। मेरे सामने यह सच-सच बताओ कि तुम भगवान् शिवके भी वन्दनीय कैसे हो गये ? मेरे मनमें यही एक संदेह है। इसे निकाल दो और शीघ्र ही मुझे पूर्ण शान्ति प्रदान करो।'

सतीका यह वचन सुनकर श्रीरामके नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान खिल उठे। उन्होंने मन-ही-मन अपने प्रभु भगवान् शिवका स्मरण किया। इससे उनके हृदयमें प्रेमकी बाढ़ आ गयी। मुने ! आज्ञा न होनेके कारण वे सतीके साथ भगवान् शिवके निकट नहीं गये तथा मन-ही-मन उनकी महिमाका वर्णन करके श्रीरघुनाथजीने सतीसे कहना प्रारम्भ किया।

(अध्याय २४)

☆

श्रीशिवके द्वारा गोलोकधाममें श्रीविष्णुका गोपेशके पदपर अभिषेक तथा उनके प्रति प्रणामका प्रसङ्ग सुनाकर श्रीरामका सतीके मनका संदेह दूर करना, सतीका शिवके द्वारा मानसिक त्याग

श्रीराम बोले—देवि ! प्राचीनकालमें एक समय परम स्रष्टा भगवान् शम्भुने अपने परात्पर धाममें विश्वकर्माको बुलाकर उनके द्वारा अपनी गोशालामें एक रमणीय भवन बनवाया, जो बहुत ही विस्तृत था। उसमें एक श्रेष्ठ सिंहासनका भी निर्माण कराया। उस सिंहासनपर भगवान् शंकरने विश्वकर्मा-द्वारा एक छत्र बनवाया, जो बहुत ही दिव्य, सदाके लिये अद्भुत और परम उत्तम था। तत्पश्चात् उन्होंने सब ओरसे इन्द्र आदि देवगणों, सिद्धों, गन्धर्वों, नागादिको तथा सम्पूर्ण उपदेवोंको भी शीघ्र वहाँ बुलवाया। समस्त वेदों और आगमोंको, पुत्रोंसहित ब्रह्माजीको, मुनियोंको तथा अप्सराओं-सहित समस्त देवियोंको, जो नाना प्रकारकी वस्तुओंसे सम्पन्न थीं, आमन्त्रित किया। इनके सिवा देवताओं, ऋषियों, सिद्धों और नागोंकी सोलह-सोलह कन्याओंको भी बुलवाया, जिनके हाथोंमें माङ्गलिक वस्तुएँ थीं। मुने ! वीणा, मृदङ्ग आदि नाना प्रकारके वाद्योंको बजवाकर सुन्दर गीतोंद्वारा महान् उत्सव रचाया। सम्पूर्ण

ओषधियोंके साथ राज्याभिषेकके योग्य द्रव्य एकत्र किये गये। प्रत्यक्ष तीर्थोंके जलोंसे भरे हुए पाँच कलश भी मँगवाये गये। इनके सिवा और भी बहुत-सी दिव्य सामग्रियोंको भगवान् शंकरने अपने पार्षदोंद्वारा मँगवाया और वहाँ उच्चस्वरसे वेदमन्त्रोंका घोष करवाया।

देवि! भगवान् विष्णुकी पूर्ण भक्तिसे महेश्वरदेव सदा प्रसन्न रहते थे। इसलिये उन्होंने प्रीतियुक्त हृदयसे श्रीहरिको वैकुण्ठसे बुलवाया और शुभ मुहूर्तमें श्रीहरिको उस श्रेष्ठ सिंहासनपर बिठाकर महादेवजीने स्वयं ही प्रेमपूर्वक उन्हें सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित किया। उनके मस्तकपर मनोहर मुकुट बाँधा गया और उनसे मङ्गल-कौतुक कराये गये। यह सब हो जानेके बाद महेश्वरने स्वयं ब्रह्माण्डमण्डपमें श्रीहरिका अभिषेक किया और उन्हें अपना वह सारा ऐश्वर्य प्रदान किया, जो दूसरोंके पास नहीं था। तदनन्तर स्वतन्त्र ईश्वर भक्तवत्सल शम्भुने श्रीहरिका स्तवन किया और अपनी पराधीनता (भक्तपरवशता) को सर्वत्र प्रसिद्ध करते हुए वे लोककर्ता ब्रह्मासे इस प्रकार बोले।

महेश्वरने कहा—लोकेश! आजसे मेरी आज्ञाके अनुसार ये विष्णु हरि स्वयं मेरे वन्दनीय हो गये। इस बातको सभी सुन रहे हैं। तात! तुम सम्पूर्ण देवता आदिके साथ इन श्रीहरिको प्रणाम करो और ये वेद मेरी आज्ञासे मेरी ही तरह इन श्रीहरिका वर्णन करें।

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—देवि! भगवान् विष्णुकी शिवभक्ति देखकर प्रसन्नचित्त हुए वरदायक भक्तवत्सल रुद्रदेवने उपर्युक्त बात कहकर स्वयं ही श्रीगरुडध्वजको प्रणाम किया। तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओं, मुनियों और सिद्ध आदिने भी उस समय श्रीहरिकी वन्दना की। इसके बाद अत्यन्त प्रसन्न हुए भक्तवत्सल महेश्वरने देवताओंके समक्ष श्रीहरिको बड़े-बड़े वर प्रदान किये।

महेश बोले—हरे! तुम मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण लोकोंके कर्ता, पालक और संहारक होओ। धर्म, अर्थ और कामके दाता तथा दुर्नीति अथवा अन्याय करनेवाले दुष्टोंको दण्ड देनेवाले होओ; महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न, जगत्पूज्य जगदीश्वर बने रहो। समराङ्गणमें तुम कहीं भी जीते नहीं जा सकोगे। मुझसे भी तुम कभी पराजित नहीं होओगे। तुम मुझसे मेरी दी हुई तीन प्रकारकी शक्तियाँ ग्रहण करो। एक तो इच्छा आदिकी सिद्धि, दूसरी नाना प्रकारकी लीलाओंको प्रकट करनेकी शक्ति और तीसरी तीनों लोकोंमें नित्य स्वतन्त्रता। हरे! जो तुमसे द्वेष करनेवाले हैं, वे निश्चय ही मेरे द्वारा प्रयत्नपूर्वक दण्डनीय होंगे। विष्णो! मैं तुम्हारे भक्तोंको उत्तम मोक्ष प्रदान करूँगा। तुम इस मायाको भी ग्रहण करो, जिसका निवारण करना देवता आदिके लिये भी कठिन है तथा जिससे मोहित होनेपर यह विश्व जडरूप हो जायगा। हरे! तुम मेरी बायीं भुजा हो और विधाता दाहिनी भुजा हैं। तुम इन विधाताके भी उत्पादक और पालक होओगे। मेरा हृदयरूप जो रुद्र है, वही मैं हूँ—इसमें संशय नहीं है। वह रुद्र तुम्हारा और ब्रह्मा आदि देवताओंका भी निश्चय ही पूज्य है। तुम यहाँ रहकर विशेषरूपसे सम्पूर्ण जगत्का पालन

करो। नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले विभिन्न अवतारोंद्वारा सदा सबकी रक्षा करते रहो। मेरे चिन्मय धाममें तुम्हारा जो यह परम वैभवशाली और अत्यन्त उज्ज्वल स्थान है, वह गोलोक नामसे विख्यात होगा। हरे! भूतलपर जो तुम्हारे अवतार होंगे, वे सबके रक्षक और मेरे भक्त होंगे। मैं उनका अवश्य दर्शन करूँगा। वे मेरे वरसे सदा प्रसन्न रहेंगे।

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—देवि! इस प्रकार श्रीहरिको अपना अखण्ड ऐश्वर्य सौंपकर उमावल्लभ भगवान् हर स्वयं कैलास पर्वतपर रहते हुए अपने पार्षदोंके साथ स्वच्छन्द क्रीडा करते हैं। तभीसे भगवान् लक्ष्मीपति वहाँ गोपवेष धारण करके आये और गोप-गोपी तथा गौओंके अधिपति होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ रहने लगे। वे श्रीविष्णु प्रसन्नचित्त हो समस्त जगत्‌की रक्षा करने लगे। वे शिवकी आज्ञासे नाना प्रकारके अवतार ग्रहण करके जगत्‌का पालन करते हैं। इस समय वे ही श्रीहरि भगवान् शंकरकी आज्ञासे चार भाइयोंके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। उन चार भाइयोंमें सबसे बड़ा मैं राम हूँ, दूसरे भरत हैं, तीसरे लक्ष्मण हैं और चौथे भाई शत्रुघ्न हैं। देवि! मैं पिताकी आज्ञासे सीता और लक्ष्मणके साथ वनमें आया था। यहाँ किसी निशाचरने मेरी पत्नी सीताको हर लिया है और मैं विरही होकर भाईके साथ इस वनमें अपनी प्रियाका अन्वेषण करता हूँ। जब आपका दर्शन प्राप्त हो गया, तब सर्वथा मेरा कुशल-मङ्गल ही होगा। माँ सती! आपकी कृपासे ऐसा होनेमें कोई संदेह नहीं है। देवि! निश्चय ही आपकी ओरसे मुझे सीताकी प्राप्तिविषयक वर प्राप्त होगा। आपके अनुग्रहसे उस दुःख देनेवाले पापी राक्षसको मारकर मैं सीताको अवश्य प्राप्त करूँगा। आज मेरा महान् सौभाग्य है जो आप दोनोंने मुझपर कृपा की। जिसपर आप दोनों दयालु हो जायँ, वह पुरुष धन्य और श्रेष्ठ है।

इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर कल्याणमयी सती देवीको प्रणाम करके रघुकुल-शिरोमणि श्रीराम उनकी आज्ञासे उस वनमें विचरने लगे। पवित्र हृदयवाले श्रीरामकी यह बात सुनकर सती मन-ही-मन शिवभक्तिपरायण रघुनाथजीकी प्रशंसा करती हुई बहुत प्रसन्न हुईं। पर अपने कर्मको याद करके उनके मनमें बड़ा शोक हुआ। उनकी अङ्गकान्ति फीकी पड़ गयी। वे उदास होकर शिवजीके पास लौटीं। मार्गमें जाती हुई देवी सती बारंबार चिन्ता करने लगीं कि मैंने भगवान् शिवकी बात नहीं मानी और श्रीरामके प्रति कुत्सित बुद्धि कर ली। अब शंकरजीके पास जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगी। इस प्रकार बारंबार विचार करके उन्हें उस समय बड़ा पश्चात्ताप हुआ। शिवके समीप जाकर सतीने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया। उनके मुखपर विषाद छा रहा था। वे शोकसे व्याकुल और निस्तेज हो गयी थीं। सतीको दुःखी देख भगवान् हरने उनका कुशल-समाचार पूछा और प्रेमपूर्वक कहा—'तुमने किस प्रकार परीक्षा ली?' उनकी यह बात सुनकर सती मस्तक झुकाये उनके पास खड़ी हो गयीं। उनका मन शोक और विषादमें डूबा हुआ था। भगवान् महेश्वरने ध्यान लगाकर सतीका सारा चरित्र जान लिया और उन्हें मनसे त्याग दिया।

वेदधर्मका प्रतिपालन करनेवाले परमेश्वर शिवने अपनी पहलेकी की हुई प्रतिज्ञाको नष्ट नहीं होने दिया। सतीका मनसे त्याग करके वे अपने निवासभूत कैलास पर्वतपर चले गये। मार्गमें महेश्वर और सतीको सुनाते हुए आकाशवाणी बोली—'परमेश्वर ! तुम धन्य हो और तुम्हारी यह प्रतिज्ञा भी धन्य है। तीनों लोकोंमें तुम्हारे-जैसा महायोगी और महाप्रभु दूसरा कोई नहीं है।'

यह आकाशवाणी सुनकर देवी सती-की कान्ति फीकी पड़ गयी। उन्होंने भगवान् शिवसे पूछा—'नाथ ! मेरे परमेश्वर ! आपने कौन-सी प्रतिज्ञा की है ? बताइये।' सतीके इस प्रकार पूछनेपर भी उनका हित चाहनेवाले प्रभुने पहले अपने विवाहके विषयमें भगवान् विष्णुके सामने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे नहीं बताया। मुने ! उस समय सतीने अपने प्राणवल्लभ पति भगवान्

शिवका ध्यान करके उस समस्त कारणको जान लिया, जिससे उनके प्रियतमने उन्हें त्याग दिया था। 'शम्भुने मेरा त्याग कर दिया' इस बातको जानकर दक्षकन्या सती शीघ्र ही अत्यन्त शोकमें डूब गयीं और बारंबार सिसकने लगीं। सतीके मनो-भावको जानकर शिवने उनके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, उसे गुप्त ही रखा और वे दूसरी-दूसरी बहुत-सी कथाएँ कहने लगे। नाना प्रकारकी कथाएँ कहते हुए वे सतीके साथ कैलासपर जा पहुँचे और श्रेष्ठ आसनपर स्थित हो चित्तवृत्तियोंके निरोधपूर्वक समाधि लगा अपने स्वरूपका ध्यान करने लगे। सती मनमें अत्यन्त विषाद ले अपने उस धाममें रहने लगीं। मुने ! शिवा और शिवके उस चरित्रको कोई नहीं जानता था। महामुने ! स्वेच्छासे शरीर धारण करके लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले उन दोनों प्रभुओंका इस प्रकार वहाँ रहते हुए दीर्घकाल व्यतीत हो गया। तत्पश्चात् उत्तम लीला करनेवाले महादेवजीने ध्यान तोड़ा। यह जानकर जगदम्बा सती वहाँ आयीं और उन्होंने व्यथित हृदयसे शिवके चरणोंमें प्रणाम किया। उदारचेता शम्भुने उन्हें अपने सामने बैठनेके लिये आसन दिया और बड़े प्रेमसे बहुत-सी मनोरम कथाएँ कहीं। उन्होंने वैसी ही लीला करके सतीके शोकको तत्काल दूर कर दिया। वे पूर्ववत् सुखी हो गयीं। फिर भी शिवने अपनी प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ा। तात ! परमेश्वर शिवके विषयमें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये। मुने ! मुनिलोग शिवा और शिवकी ऐसी ही कथा कहते हैं। कुछ मनुष्य उन दोनोंमें

वियोग मानते हैं। परंतु उनमें वियोग कैसे सम्भव है। शिवा और शिवके चरित्रको वास्तविकरूपसे कौन जानता है? वे दोनों सदा अपनी इच्छासे खेलते और भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करते हैं। सती और शिव वाणी और अर्थकी भाँति एक-दूसरेसे नित्य संयुक्त हैं। उन दोनोंमें वियोग होना असम्भव है। उनकी इच्छासे ही उनमें लीला-वियोग हो सकता है *।

(अध्याय २५)

☆

प्रयागमें समस्त महात्मा मुनियोंद्वारा किये गये यज्ञमें दक्षका भगवान् शिवको तिरस्कारपूर्वक शाप देना तथा नन्दीद्वारा ब्राह्मणकुलको शाप-प्रदान, भगवान् शिवका नन्दीको शान्त करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! पूर्वकालमें समस्त महात्मा मुनि प्रयागमें एकत्र हुए थे। वहाँ सम्मिलित हुए उन सब महात्माओंका विधि-विधानसे एक बहुत बड़ा यज्ञ हुआ। उस यज्ञमें सनकादि सिद्धगण, देवर्षि, प्रजापति, देवता तथा ब्रह्मका साक्षात्कार करनेवाले ज्ञानी भी पधारे थे। मैं भी मूर्तिमान् महातेजस्वी निगमों और आगमोंसे युक्त हो सपरिवार वहाँ गया था। अनेक प्रकारके उत्सवोंके साथ वहाँ उनका विचित्र समाज जुटा था। नाना शास्त्रोंके सम्बन्धमें ज्ञानचर्चा एवं वाद-विवाद हो रहे थे। मुने! उसी अवसरपर सती तथा पार्षदोंके साथ त्रिलोकहितकारी, सृष्टिकर्ता एवं सबके स्वामी भगवान् रुद्र भी वहाँ आ पहुँचे। भगवान् शिवको आया देख सम्पूर्ण देवताओं, सिद्धों तथा मुनियोंने और मैंने भी भक्तिभावसे उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। फिर शिवकी आज्ञा पाकर सब लोग प्रसन्नतापूर्वक यथास्थान बैठ गये। भगवान्‌का दर्शन पाकर सब लोग संतुष्ट थे और अपने सौभाग्यकी सराहना करते थे। इसी बीचमें प्रजापतियोंके भी पति प्रभु दक्ष, जो बड़े तेजस्वी थे, अकस्मात् घूमते हुए प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आये। वे मुझे प्रणाम करके मेरी आज्ञा ले वहाँ बैठे। दक्ष उन दिनों समस्त ब्रह्माण्डके अधिपति बनाये गये थे, अतएव सबके द्वारा सम्माननीय थे। परंतु अपने इस गौरवपूर्ण पदको लेकर उनके मनमें बड़ा अहंकार था; क्योंकि वे तत्त्वज्ञानसे शून्य थे। उस समय समस्त देवर्षियोंने नतमस्तक हो स्तुति और प्रणामके द्वारा दोनों हाथ जोड़कर उत्तम तेजस्वी दक्षका आदर-सत्कार किया। परंतु जो नाना प्रकारके लीलाविहार करनेवाले, सबके स्वामी और उत्कृष्ट लीलाकारी स्वतन्त्र परमेश्वर हैं, उन महेश्वरने उस समय दक्षको मस्तक नहीं झुकाया। वे अपने आसनपर बैठे ही रह गये (खड़े होकर दक्षका स्वागत नहीं किया)। महादेवजीको वहाँ मस्तक झुकाते न देख मेरे पुत्र प्रजापति दक्ष मन-ही-मन अप्रसन्न हो गये। उन्हें रुद्रपर

---

* वागर्थाविव सम्पृक्तौ सदा खलु सतीशिवौ। तयोर्वियोगोऽसम्भाव्यः सम्भवेदिच्छया तयोः॥

(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ स॰ खं॰ २५। ६६)

सहसा क्रोध हो आया, वे ज्ञानशून्य तथा महान् अहंकारी होनेके कारण महाप्रभु रुद्रको क्रूर दृष्टिसे देखकर सबको सुनाते हुए उच्चस्वरसे कहने लगे।

दक्षने कहा—ये सब देवता, असुर, श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा ऋषि मुझे विशेषरूपसे मस्तक झुकाते हैं। परंतु वह जो प्रेतों और पिशाचोंसे घिरा हुआ महामनस्वी बनकर बैठा है, वह दुष्ट मनुष्यके समान क्यों मुझे प्रणाम नहीं करता? श्मशानमें निवास करनेवाला यह निर्लज्ज जो मुझे इस समय प्रणाम नहीं करता, इसका क्या कारण है? इसके वेदोक्त कर्म लुप्त हो गये हैं। यह भूतों और पिशाचोंसे सेवित हो मतवाला बना फिरता है और शास्त्रीय विधिकी अवहेलना करके नीतिमार्गको सदा कलङ्कित किया करता है। इसके साथ रहनेवाले या इसका अनुसरण करनेवाले लोग पाखण्डी, दुष्ट, पापाचारी तथा ब्राह्मणको देखकर उद्दण्डता-पूर्वक उसकी निन्दा करनेवाले होते हैं। यह स्वयं ही स्त्रीमें आसक्त रहनेवाला तथा रतिकर्ममें ही दक्ष है। अतः मैं इसे शाप देनेको उद्यत हुआ हूँ। यह रुद्र चारों वर्णोंसे पृथक् और कुरूप है। इसे यज्ञसे बहिष्कृत कर दिया जाय। यह श्मशानमें निवास करनेवाला तथा उत्तम कुल और जन्मसे हीन है। इसलिये देवताओंके साथ यह यज्ञमें भाग न पाये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! दक्षकी कही हुई यह बात सुनकर भृगु आदि बहुत-से महर्षि रुद्रदेवको दुष्ट मानकर देवताओंके साथ उनकी निन्दा करने लगे।

दक्षकी बात सुनकर नन्दीको बड़ा रोष हुआ। उनके नेत्र चञ्चल हो उठे और वे दक्षको शाप देनेके विचारसे तुरंत इस प्रकार बोले।

नन्दीश्वरने कहा—अरे रे महामूढ़! दुष्टबुद्धि शठ दक्ष! तूने मेरे स्वामी महेश्वरको यज्ञसे बहिष्कृत क्यों कर दिया? जिनके स्मरणमात्रसे यज्ञ सफल और तीर्थ पवित्र हो जाते हैं, उन्हीं महादेवजीको तूने शाप कैसे दे दिया? दुर्बुद्धि दक्ष! तूने ब्राह्मणजातिकी चपलतासे प्रेरित हो इन रुद्रदेवको व्यर्थ ही शाप दे डाला है। महाप्रभु रुद्र सर्वथा निर्दोष हैं, तथापि तूने व्यर्थ ही उनका उपहास किया है। ब्राह्मणाधम! जिन्होंने इस जगत्की सृष्टि की, जो इसका पालन करते हैं और अन्तमें जिनके द्वारा इसका संहार होगा, उन्हीं इन महेश्वर-रूपको तूने शाप कैसे दे दिया।

नन्दीके इस प्रकार फटकारनेपर प्रजापति दक्ष रोषसे आग-बबूला हो गये

और उन्हें शाप देते हुए बोले—'अरे रुद्रगणो! तुम सब लोग वेदसे बहिष्कृत हो जाओ। वैदिक मार्गसे भ्रष्ट तथा महर्षियोंद्वारा परित्यक्त हो पाखण्डवादमें लग जाओ और शिष्टाचारसे दूर रहो। सिरपर जटा और शरीरमें भस्म एवं हड्डियोंके आभूषण धारण करके मद्यपानमें आसक्त रहो।'

जब दक्षने शिवके पार्षदोंको इस प्रकार शाप दे दिया, तब उस शापको सुनकर शिवके प्रियभक्त नन्दी अत्यन्त रोषके वशीभूत हो गये। शिलादपुत्र नन्दी भगवान् शिवके प्रिय पार्षद और तेजस्वी हैं। वे गर्वसे भरे हुए महादुष्ट दक्षको तत्काल इस प्रकार उत्तर देने लगे।

नन्दीश्वर बोले—अरे शठ! दुर्बुद्धि दक्ष! तुझे शिवके तत्त्वका बिल्कुल ज्ञान नहीं है। अतः तूने शिवके पार्षदोंको व्यर्थ ही शाप दिया है। अहंकारी दक्ष! जिनके चित्तमें दुष्टता भरी है, उन भृगु आदिने भी ब्राह्मणत्वके अभिमानमें आकर महाप्रभु महेश्वरका उपहास किया है। अतः यहाँ जो भगवान् रुद्रसे विमुख तुझ-जैसे दुष्ट ब्राह्मण विद्यमान हैं, उनको मैं रुद्रतेजके प्रभावसे ही शाप दे रहा हूँ। तुझ-जैसे ब्राह्मण कर्मफलके प्रशंसक वेदवादमें फँसकर वेदके तत्त्वज्ञानसे शून्य हो जायँ। वे ब्राह्मण सदा भोगोंमें तन्मय रहकर स्वर्गको ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ मानते हुए 'स्वर्गसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है' ऐसा कहते रहें तथा क्रोध, लोभ और मदसे युक्त हो निर्लज्ज भिक्षुक बने रहें। कितने ही ब्राह्मण वेदमार्गको सामने रखकर शूद्रोंका यज्ञ करानेवाले और दरिद्र होंगे। सदा दान लेनेमें ही लगे रहेंगे, दूषित दान ग्रहण करनेके कारण वे सब-के-सब नरकगामी होंगे। दक्ष! उनमेंसे कुछ ब्राह्मण तो ब्रह्मराक्षस भी होंगे। जो परमेश्वर शिवको सामान्य देवता समझकर उनसे द्रोह करता है, वह दुष्ट बुद्धिवाला प्रजापति दक्ष तत्त्वज्ञानसे विमुख हो जाय। यह विषयसुखकी इच्छासे कामनारूपी कपटसे युक्त धर्मवाले गृहस्थाश्रममें आसक्त रहकर कर्मकाण्डका तथा कर्मफलकी प्रशंसा करनेवाले सनातन वेदवादका ही विस्तार करता रहे। इसका आनन्ददायी मुख नष्ट हो जाय। यह आत्मज्ञानको भूलकर पशुके समान हो जाय तथा यह दक्ष कर्मभ्रष्ट हो शीघ्र ही बकरेके मुखसे युक्त हो जाय।

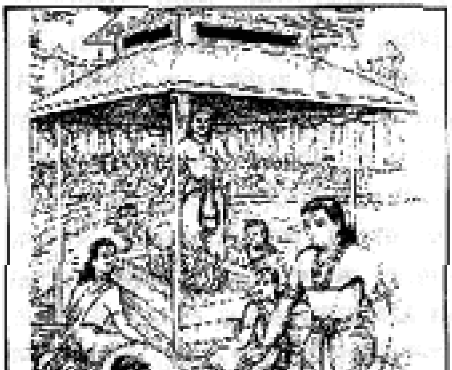

इस प्रकार कुपित हुए नन्दीने जब ब्राह्मणोंको और दक्षने महादेवजीको शाप दिया, तब वहाँ महान् हाहाकार मच गया। नारद! मैं वेदोंका प्रतिपादक होनेके कारण शिवतत्त्वको जानता हूँ। इसलिये दक्षका वह

शाप सुनकर मैंने बारंबार उसकी तथा भृगु आदि ब्राह्मणोंकी भी निन्दा की। सदाशिव महादेवजी भी नन्दीकी यह बात सुनकर हँसते हुए-से मधुर वाणीमें बोले—वे नन्दीको समझाने लगे।

सदाशिवने कहा—नन्दिन्! मेरी बात सुनो। तुम तो परम ज्ञानी हो। तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये। तुमने भ्रमसे यह समझकर कि मुझे शाप दिया गया, व्यर्थ ही ब्राह्मण-कुलको शाप दे डाला। वास्तवमें मुझे किसीका शाप छू ही नहीं सकता; अतः तुम्हें उत्तेजित नहीं होना चाहिये। वेद मन्त्राक्षरमय और सूक्तमय है। उसके प्रत्येक सूक्तमें समस्त देहधारियोंके आत्मा (परमात्मा) प्रतिष्ठित हैं। अतः उन मन्त्रोंके ज्ञाता नित्य आत्मवेत्ता हैं। इसलिये तुम रोषवश उन्हें शाप न दो। किसीकी बुद्धि कितनी ही दूषित क्यों न हो, वह कभी वेदोंको शाप नहीं दे सकता। इस समय मुझे शाप नहीं मिला है, इस बातको तुम्हें ठीक-ठीक समझना चाहिये। महामते! तुम सनकादि सिद्धोंको भी तत्त्वज्ञानका उपदेश देनेवाले हो। अतः शान्त हो जाओ। मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही यज्ञकर्म हूँ, यज्ञोंके अङ्गभूत समस्त उपकरण भी मैं ही हूँ। यज्ञकी आत्मा मैं हूँ। यज्ञपरायण यजमान भी मैं हूँ और यज्ञसे बहिष्कृत भी मैं ही हूँ। यह कौन, तुम कौन और ये कौन? वास्तवमें सब मैं ही हूँ। तुम अपनी बुद्धिसे इस बातका विचार करो। तुमने ब्राह्मणोंको व्यर्थ ही शाप दिया है। महामते! नन्दिन्! तुम तत्त्वज्ञानके द्वारा प्रपञ्च-रचनाका बाध करके आत्मनिष्ठ ज्ञानी एवं क्रोध आदिसे शून्य हो जाओ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! भगवान् शम्भुके इस प्रकार समझानेपर नन्दिकेश्वर विवेकपरायण हो क्रोधरहित एवं शान्त हो गये। भगवान् शिव भी अपने प्राणप्रिय पार्षद नन्दीको शीघ्र ही तत्त्वका बोध कराकर प्रमथगणोंके साथ वहाँसे प्रसन्नता-पूर्वक अपने स्थानको चल दिये। इधर रोषावेशसे युक्त दक्ष भी ब्राह्मणोंसे घिरे हुए अपने स्थानको लौट गये। परंतु उनका चित्त शिवद्रोहमें ही तत्पर था। उस समय रुद्रको शाप दिये जानेकी घटनाका स्मरण करके दक्ष सदा महान् रोषसे भरे रहते थे। उनकी बुद्धिपर मूढ़ता छा गयी थी। वे शिवके प्रति श्रद्धाको त्यागकर शिवपूजकोंकी निन्दा करने लगे। तात नारद! इस प्रकार परमात्मा शम्भुके साथ दुर्व्यवहार करके दक्षने अपनी जिस दुष्टबुद्धिका परिचय दिया था, वह मैंने तुम्हें बता दी। अब तुम उनकी पराकाष्ठाको पहुँची हुई दुर्बुद्धिका वृत्तान्त सुनो, मैं बता रहा हूँ।

(अध्याय २६)

दक्षके द्वारा महान् यज्ञका आयोजन, उसमें ब्रह्मा, विष्णु, देवताओं और ऋषियोंका आगमन, दक्षद्वारा सबका सत्कार, यज्ञका आरम्भ, दधीचद्वारा भगवान् शिवको बुलानेका अनुरोध और दक्षके विरोध करनेपर शिव-भक्तोंका वहाँसे निकल जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! एक समय दक्षने एक बहुत बड़े यज्ञका आरम्भ किया।

उस यज्ञकी दीक्षा लेकर उन्होंने उस समय समस्त देवर्षियों, महर्षियों तथा देवताओंको बुलाया। वे सभी उस यज्ञमें पधारे। अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, भगवान् व्यास, भारद्वाज, गौतम, पैल, पराशर, गर्ग, भार्गव, ककुप, सित, सुमन्तु, त्रिक, कङ्क और वैशम्पायन—ये तथा दूसरे बहुसंख्यक मुनि अपने स्त्री-पुत्रोंको साथ ले मेरे पुत्र दक्षके यज्ञमें हर्षपूर्वक सम्मिलित हुए थे। इनके सिवा समस्त देवगण, महान् अभ्युदयशाली लोकपालगण और सभी उपदेवता अपनी उपकारक सैन्यशक्तिके साथ वहाँ पधारे थे। दक्षने प्रार्थना करके सदल-बल मुझ विश्वस्रष्टा ब्रह्माको भी सत्यलोकसे बुलवाया था। इसी तरह भाँति-भाँतिसे सादर प्रार्थना करके वैकुण्ठलोकसे भगवान् विष्णु भी उस यज्ञमें बुलाये गये थे। शिवद्रोही दुरात्मा दक्षने उन सबका बड़ा सत्कार किया। विश्वकर्माने अत्यन्त दीप्तिमान्, विशाल और बहुमूल्य दिव्य भवन बनाये थे। दक्षने वे ही भवन समागत अतिथियोंको ठहरनेके लिये दिये। सभी लोग सम्मानित हो उन सम्पूर्ण भवनोंमें यथायोग्य स्थान पाकर ठहरे हुए थे। दक्षका वह महायज्ञ उस समय कनखल नामक तीर्थमें हो रहा था। उसमें दक्षने भृगु आदि तपोधनोंको ऋत्विज् बनाया। सम्पूर्ण मरुद्गणोंके साथ स्वयं भगवान् विष्णु उसके अधिष्ठाता थे। मैं वेदत्रयीकी विधिको दिखाने या बतानेवाला ब्रह्मा बना था। इसी तरह सम्पूर्ण दिक्पाल अपने आयुधों और परिवारोंके साथ द्वारपाल एवं रक्षक बने थे और सदा कौतूहल पैदा करते थे। स्वयं यज्ञ सुन्दर रूप धारण करके दक्षके उस यज्ञ-मण्डलमें उपस्थित था। महामुनियोंमें श्रेष्ठ सभी महर्षि स्वयं वेदोंके धारण करनेवाले हुए थे। अग्निने भी उस यज्ञमहोत्सवमें शीघ्र ही हविष्य ग्रहण करनेके लिये अपने सहस्रों रूप प्रकट किये थे। वहाँ अट्ठासी हजार ऋत्विज् एक साथ हवन करते थे। चौंसठ हजार देवर्षि उद्गाता थे। अध्वर्यु एवं होता भी उतने ही थे। नारद आदि देवर्षि और सप्तर्षि पृथक्-पृथक् गाथा-गान कर रहे थे। दक्षने अपने उस महायज्ञमें गन्धर्वों, विद्याधरों, सिद्धों, बारह आदित्यों, उनके गणों, यज्ञों तथा नागलोकमें विचरनेवाले समस्त नागोंका भी बहुत बड़ी संख्यामें वरण किया था। ब्रह्मर्षि, राजर्षि और देवर्षियोंके समुदाय तथा बहुसंख्यक नरेश भी उसमें आमन्त्रित थे, जो अपने मित्रों, मन्त्रियों तथा सेनाओंके साथ आये थे। यजमान दक्षने उस यज्ञमें वसु आदि समस्त गणदेवताओंका भी वरण किया था। कौतुक और मङ्गलाचार करके जब दक्षने यज्ञकी दीक्षा ली तथा जब उनके लिये बारंबार स्वस्तिवाचन किया जाने लगा, तब वे अपनी पत्नीके साथ बड़ी शोभा पाने लगे।

इतना सब करनेपर भी दुरात्मा दक्षने उस यज्ञमें भगवान् शम्भुको नहीं आमन्त्रित किया। उनकी दृष्टिमें कपालधारी होनेके कारण वे निश्चय ही यज्ञमें भाग पानेयोग्य नहीं थे। सती प्रजापति दक्षकी प्रिय पुत्री थीं तो भी कपालीकी पत्नी होनेके कारण दोषदर्शी दक्षने उन्हें अपने यज्ञमें नहीं बुलाया। इस प्रकार जब दक्षका वह यज्ञ-महोत्सव आरम्भ हुआ और यज्ञ-मण्डपमें आये हुए सब ऋत्विज् अपने-अपने कार्यमें

संलग्न हो गये, उस समय वहाँ भगवान् शंकरको उपस्थित न देख शिवभक्त दधीचका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो उठा और वे यों बोले।

दधीचने कहा—मुख्य-मुख्य देवताओ तथा महर्षियो! आप सब लोग प्रशंसापूर्वक मेरी बात सुनें। इस यज्ञ-महोत्सवमें भगवान् शंकर नहीं आये हैं, इसका क्या कारण है? यद्यपि ये देवेश्वर, बड़े-बड़े मुनि और लोकपाल यहाँ पधारे हैं, तथापि उन महात्मा पिनाकपाणि शंकरके बिना यह यज्ञ अधिक शोभा नहीं पा रहा है। बड़े-बड़े विद्वान् कहते हैं कि मङ्गलमय भगवान् शिवकी कृपादृष्टिसे ही समस्त मङ्गल-कार्य सम्पन्न होते हैं। जिनका ऐसा प्रभाव है, वे पुराण-पुरुष, वृषभध्वज, परमेश्वर श्रीनीलकण्ठ यहाँ क्यों नहीं दिखायी दे रहे हैं? दक्ष! जिनके सम्पर्कमें आनेपर अथवा जिनके स्वीकार कर लेनेपर अमङ्गल भी मङ्गल हो जाते हैं तथा जिनके पंद्रह नेत्रोंसे देखे जानेपर बड़े-बड़े नगर तत्काल मङ्गलमय हो जाते हैं, उनका इस यज्ञमें पदार्पण होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये तुम्हें स्वयं ही परमेश्वर शिवको यहाँ शीघ्र बुलाना चाहिये अथवा ब्रह्मा, प्रभावशाली भगवान् विष्णु, देवराज इन्द्र, लोकपालगणों, ब्राह्मणों और सिद्धोंकी सहायतासे सर्वथा प्रयत्न करके इस समय यज्ञकी पूर्तिके लिये तुम्हें भगवान् शंकरको यहाँ ले आना चाहिये। आप सब लोग उस स्थानपर जायें, जहाँ महेश्वरदेव विराजमान हैं। वहाँसे दक्षनन्दिनी सतीके साथ भगवान् शम्भुको यहाँ तुरंत ले आयें। देवेश्वरो! जगदम्बासहित वे परमात्मा शिव यदि यहाँ आ गये तो उनसे सब कुछ पवित्र हो जायगा; उनके स्मरणसे, उनके नाम लेनेसे सारा कार्य पुण्यमय बन जाता है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके भगवान् वृषभध्वजको यहाँ ले आना चाहिये। भगवान् शंकरके यहाँ पदार्पण करते ही यह यज्ञ पवित्र हो जायगा; अन्यथा यह पूरा नहीं हो सकेगा—यह मैं सत्य कहता हूँ।

दधीचका यह वचन सुनकर दुष्ट बुद्धिवाले मूढ़ दक्षने हँसते हुए-से रोषपूर्वक कहा—'भगवान् विष्णु सम्पूर्ण देवताओंके मूल हैं, जिनमें सनातन धर्म प्रतिष्ठित है। जब इनको मैंने सादर बुला लिया है तब इस यज्ञकर्ममें क्या कमी हो सकती है? जिनमें वेद, यज्ञ और नाना प्रकारके समस्त कर्म प्रतिष्ठित हैं, वे भगवान् विष्णु तो यहाँ आ ही गये हैं। इनके सिवा सत्यलोकसे लोकपितामह ब्रह्मा वेदों, उपनिषदों और विविध आगमोंके साथ यहाँ पधारे हैं। देवगणोंके साथ स्वयं देवराज इन्द्रका भी शुभागमन हुआ है तथा आप-जैसे निष्पाप महर्षि भी यहाँ आ गये हैं। जो-जो महर्षि यज्ञमें सम्मिलित होनेके योग्य, शान्त और सुपात्र हैं, वेद और वेदार्थके तत्त्वको जाननेवाले हैं और दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करते हैं, वे सब और स्वयं आप भी जब यहाँ पदार्पण कर चुके हैं, तब हमें यहाँ रुद्रसे क्या प्रयोजन है? विप्रवर! मैंने ब्रह्माजीके कहनेसे ही अपनी कन्या रुद्रको ब्याह दी थी। वैसे मैं जानता हूँ, हर कुलीन नहीं हैं। उनके न माता है न पिता। वे भूतों, प्रेतों और पिशाचोंके स्वामी हैं। अकेले रहते हैं। उनका अतिक्रमण करना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है। वे आत्मप्रशंसक, मूढ़, जड,

मानी और ईर्ष्यालु हैं। इस यज्ञकर्ममें बुलाये जानेयोग्य नहीं हैं। इसलिये मैंने उनको यहाँ नहीं बुलाया है। अतः दधीचजी! आपको फिर कभी ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। मेरी प्रार्थना है कि आप सब लोग मिलकर मेरे इस महान् यज्ञको सफल बनावें।'

दक्षकी यह बात सुनकर दधीचने समस्त देवताओं और मुनियोंके सुनते हुए यह सारगर्भित बात कही।

दधीच बोले—दक्ष! उन भगवान् शिवके बिना यह महान् यज्ञ अयज्ञ हो गया—अब यह यज्ञ कहलानेयोग्य ही नहीं रह गया। विशेषतः इस यज्ञमें तुम्हारा विनाश हो जायगा।

ऐसा कहकर दधीच दक्षकी यज्ञ-शालासे अकेले ही निकल पड़े और तुरंत अपने आश्रमको चल दिये। तदनन्तर जो मुख्य-मुख्य शिवभक्त तथा शिवके मतका अनुसरण करनेवाले थे, वे भी दक्षको वैसा ही शाप देकर तुरंत वहाँसे निकले और अपने आश्रमोंको चले गये। मुनिवर दधीच तथा दूसरे ऋषियोंके उस यज्ञमण्डपसे निकल जानेपर दुष्टबुद्धि शिवद्रोही दक्षने उन मुनियोंका उपहास करते हुए कहा।

दक्ष बोले—जिन्हें शिव ही प्रिय हैं, वे नाममात्रके ब्राह्मण दधीच चले गये। उन्हींके समान जो दूसरे थे, वे भी मेरी यज्ञशालासे निकल गये। यह बड़ी शुभ बात हुई। मुझे सदा यही अभीष्ट है। देवेश! देवताओ और मुनियो! मैं सत्य कहता हूँ—जिनके चित्तकी विचारशक्ति नष्ट हो गयी है, जो मन्दबुद्धि हैं और मिथ्यावादमें लगे हुए हैं, ऐसे वेद-बहिष्कृत दुराचारी लोगोंको यज्ञकर्ममें त्याग ही देना चाहिये। विष्णु आदि आप सब देवता और ब्राह्मण वेदवादी हैं। अतः मेरे इस यज्ञको शीघ्र ही सफल बनावें।

ब्रह्माजी कहते हैं—दक्षकी यह बात सुनकर शिवकी मायासे मोहित हुए समस्त देवर्षि उस यज्ञमें देवताओंका पूजन और हवन करने लगे। मुनीश्वर नारद! इस प्रकार उस यज्ञको जो शाप मिला, उसका वर्णन किया गया। अब यज्ञके विध्वंसकी घटनाको बताया जाता है, आदरपूर्वक सुनो। (अध्याय २७)

☆

दक्षयज्ञका समाचार पा सतीका शिवसे वहाँ चलनेके लिये अनुरोध, दक्षके शिवद्रोहको जानकर भगवान् शिवकी आज्ञासे देवी सतीका पिताके यज्ञमण्डपकी ओर शिवगणोंके साथ प्रस्थान

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! जब देवर्षिगण बड़े उत्साह और हर्षके साथ दक्षके यज्ञमें जा रहे थे, उसी समय दक्षकन्या देवी सती गन्धमादन पर्वतपर चँदोवेसे युक्त धारागृहमें सखियोंसे घिरी हुई भाँति-भाँतिकी उत्तम क्रीडाएँ कर रही थीं। प्रसन्नतापूर्वक क्रीडामें लगी हुई देवी सतीने उस समय रोहिणीके साथ दक्षयज्ञमें जाते हुए चन्द्रमाको देखा। देखकर वे अपनी हितकारिणी प्राणप्यारी श्रेष्ठ सखी विजयासे बोलीं—'मेरी सखियोंमें श्रेष्ठ प्राणप्रिये विजये! जल्दी जाकर पूछ तो आ, ये चन्द्रदेव रोहिणीके साथ कहाँ जा रहे हैं?'

सतीके इस प्रकार आज्ञा देनेपर विजया

तुरंत उनके पास गयी और उसने यथोचित शिष्टाचारके साथ पूछा—'चन्द्रदेव ! आप कहाँ जा रहे हैं ? विजयाका यह प्रश्न सुनकर चन्द्रदेवने अपनी यात्राका उद्देश्य आदरपूर्वक बताया। दक्षके यहाँ होनेवाले यज्ञोत्सव आदिका सारा वृत्तान्त कहा। यह सब सुनकर विजया बड़ी उतावलीके साथ देवीके पास आयी और चन्द्रमाने जो कुछ कहा था, वह सब उसने कह सुनाया। उसे सुनकर कालिका सती देवीको बड़ा विस्मय हुआ। अपने यहाँ सूचना न मिलनेका क्या कारण है, यह बहुत सोचने-विचारनेपर भी उनकी समझमें नहीं आया। तब उन्होंने पार्षदोंसे घिरे अपने स्वामी भगवान् शिवके पास आकर भगवान् शंकरसे पूछा।

सती बोलीं—प्रभो ! मैंने सुना है कि मेरे पिताजीके यहाँ कोई बहुत बड़ा यज्ञ हो रहा है। उसमें बहुत बड़ा उत्सव होगा। उसमें सब देवर्षि एकत्र हो रहे हैं। देवदेवेश्वर ! पिताजीके उस महान् यज्ञमें चलनेकी रुचि आपको क्यों नहीं हो रही है ? इस विषयमें जो बात हो, वह सब बताइये। महादेव ! सुहृदोंका यह धर्म है कि वे सुहृदोंके साथ मिलें-जुलें। यह मिलन उनके महान् प्रेमको बढ़ानेवाला होता है। अतः प्रभो ! मेरे स्वामी ! आप मेरी प्रार्थना मानकर सर्वथा प्रयत्न करके मेरे साथ पिताजीकी यज्ञशालामें आज ही चलिये।

सतीकी यह बात सुनकर भगवान् महेश्वरदेव, जिनका हृदय दक्षके वाग्बाणोंसे घायल हो चुका था, मधुर वाणीमें बोले—'देवि ! तुम्हारे पिता दक्ष मेरे विशेष द्रोही हो गये हैं। जो प्रमुख देवता और ऋषि अभिमानी, मूढ़ और ज्ञानशून्य हैं, वे ही सब तुम्हारे पिताके यज्ञमें गये हैं। जो लोग बिना बुलाये दूसरेके घर जाते हैं, वे वहाँ अनादर पाते हैं, जो मृत्युसे भी बढ़कर कष्टदायक है। अतः प्रिये ! तुमको और मुझको तो विशेषरूपसे दक्षके यज्ञमें नहीं जाना चाहिये (क्योंकि वहाँ हमें बुलाया नहीं गया है)। यह मैंने सच्ची बात कही है।'

महात्मा महेश्वरके ऐसा कहनेपर सती रोषपूर्वक बोलीं—शम्भो ! आप सबके ईश्वर हैं। जिनके जानेसे यज्ञ सफल होता है, उन्हीं आपको मेरे दुष्ट पिताने इस समय आमन्त्रित नहीं किया है। प्रभो ! उस दुरात्माका अभिप्राय क्या है, यह सब मैं जानना चाहती हूँ। साथ ही वहाँ आये हुए सम्पूर्ण दुरात्मा देवर्षियोंके मनोभावका भी मैं पता लगाना चाहती हूँ। अतः प्रभो ! मैं आज ही पिताके यज्ञमें जाती हूँ। नाथ ! महेश्वर ! आप मुझे वहाँ जानेकी आज्ञा दे दें।

देवी सतीके ऐसा कहनेपर सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सृष्टिकर्ता एवं कल्याणस्वरूप साक्षात् भगवान् रुद्र उनसे इस प्रकार बोले।

शिवने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवि ! यदि इस प्रकार तुम्हारी रुचि वहाँ अवश्य जानेके लिये हो गयी है तो मेरी आज्ञासे तुम शीघ्र अपने पिताके यज्ञमें जाओ। यह नन्दी वृषभ सुसज्जित है, तुम एक महारानीके अनुरूप राजोपचार साथ ले सादर इसपर सवार हो बहुसंख्यक

प्रमथगणोंके साथ यात्रा करो। प्रिये! इस त्रिभूषित वृषभपर आरूढ़ होओ।

रुद्रके इस प्रकार आदेश देनेपर सुन्दर

आभूषणोंसे अलंकृत सती देवी सब साधनोंसे युक्त हो पिताके घरकी ओर चलीं। परमात्मा शिवने उन्हें सुन्दर वस्त्र, आभूषण तथा परम उज्ज्वल छत्र, चामर आदि महाराजोचित उपचार दिये। भगवान् शिवकी आज्ञासे साठ हजार रुद्रगण बड़ी प्रसन्नता और महान् उत्साहके साथ कौतूहलपूर्वक सतीके साथ गये। उस समय वहाँ यज्ञके लिये यात्रा करते समय सब ओर महान् उत्सव होने लगा। महादेवजीके गणोंने शिवप्रिया सतीके लिये बड़ा भारी उत्सव रचाया। वे सभी गण कौतूहलपूर्ण कार्य करने तथा सती और शिवके यशको गाने लगे। शिवके प्रिय और महान् वीर प्रमथगण प्रसन्नतापूर्वक उछलते-कूदते चल रहे थे। जगदम्बाके यात्राकालमें सब प्रकारसे बड़ी भारी शोभा हो रही थी। उस समय जो सुखद जय-जयकार आदिका शब्द प्रकट हुआ, उससे तीनों लोक गूँज उठे।

(अध्याय २८)

यज्ञशालामें शिवका भाग न देखकर सतीके रोषपूर्ण वचन, दक्षद्वारा शिवकी निन्दा सुन दक्ष तथा देवताओंको धिक्कार-फटकारकर सतीद्वारा अपने प्राण-त्यागका निश्चय

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! दक्षकन्या सती उस स्थानपर गयीं, जहाँ वह महान् प्रकाशसे युक्त यज्ञ हो रहा था। वहाँ देवता, असुर और मुनीन्द्र आदिके द्वारा कौतूहलपूर्ण कार्य हो रहे थे। सतीने वहाँ अपने पिताके भवनको नाना प्रकारकी आश्चर्यजनक वस्तुओंसे सम्पन्न, उत्तम प्रभासे परिपूर्ण, मनोहर तथा देवताओं और ऋषियोंके समुदायसे भरा हुआ देखा। देवी सती भवनके द्वारपर जाकर खड़ी हुईं और अपने वाहन नन्दीसे उतरकर अकेली ही शीघ्रतापूर्वक यज्ञशालाके भीतर चली गयीं। सतीको आयी देख उनकी यशस्विनी माता असिक्नी (वीरिणी) ने और बहिनोंने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया। परंतु दक्षने उन्हें देखकर भी कुछ आदर नहीं किया तथा उन्हींके भयसे शिवकी मायासे मोहित हुए दूसरे लोग भी उनके प्रति आदरका भाव

न दिखा सके। मुने! सब लोगोंके द्वारा तिरस्कार प्राप्त होनेसे सती देवीको बड़ा विस्मय हुआ तो भी उन्होंने अपने माता-पिताके चरणोंमें मस्तक झुकाया। उस यज्ञमें सतीने विष्णु आदि देवताओंके भाग देखे, परंतु शम्भुका भाग उन्हें कहीं नहीं दिखायी दिया। तब सतीने दुस्सह क्रोध प्रकट किया। वे अपमानित होनेपर भी रोषसे भरकर सब लोगोंकी ओर क्रूर दृष्टिसे देखती और दक्षको जलाती हुई-सी बोलीं।

सतीने कहा—प्रजापते! आपने परम मङ्गलकारी भगवान् शिवको इस यज्ञमें क्यों नहीं बुलाया? जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् पवित्र होता है, जो स्वयं ही यज्ञ, यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, यज्ञके अङ्ग, यज्ञकी दक्षिणा और यज्ञकर्ता यजमान हैं, उन भगवान् शिवके बिना यज्ञकी सिद्धि कैसे हो सकती है? अहो! जिनके स्मरण करने-मात्रसे सब कुछ पवित्र हो जाता है, उन्हींके बिना किया हुआ यह सारा यज्ञ अपवित्र हो जायगा। द्रव्य, मन्त्र आदि, हव्य और कव्य—ये सब जिनके स्वरूप हैं, उन्हीं भगवान् शिवके बिना इस यज्ञका आरम्भ कैसे किया गया? क्या आपने भगवान् शिवको सामान्य देवता समझकर उनका अनादर किया है? आज आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। इसलिये आप पिता होकर भी मुझे अधम जैंच रहे हैं। अरे! ये विष्णु और ब्रह्मा आदि देवता तथा मुनि अपने प्रभु भगवान् शिवके आये बिना इस यज्ञमें कैसे चले आये?

ऐसा कहनेके बाद शिवस्वरूपा परमेश्वरी सतीने भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि सब देवताओंको तथा समस्त ऋषियोंको बड़े कड़े शब्दोंमें फटकारा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार क्रोधसे भरी हुई जगदम्बा सतीने वहाँ व्यथित हृदयसे अनेक प्रकारकी बातें कहीं। श्रीविष्णु आदि समस्त देवता और मुनि जो वहाँ उपस्थित थे, सतीकी बात सुनकर चुप रह गये। अपनी पुत्रीके वैसे वचन सुनकर कुपित हुए दक्षने सतीकी ओर क्रूर दृष्टिसे देखा और इस प्रकार कहा।

दक्ष बोले—भद्रे! तुम्हारे बहुत कहनेसे क्या लाभ। इस समय यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं है। तुम जाओ या ठहरो, यह तुम्हारी इच्छापर निर्भर है। तुम यहाँ आयी ही क्यों? समस्त विद्वान् जानते हैं कि तुम्हारे पति शिव अमङ्गलरूप हैं। वे कुलीन भी नहीं हैं। वेदसे बहिष्कृत हैं और भूतों, प्रेतों तथा पिशाचोंके स्वामी हैं। वे बहुत ही कुवेष धारण किये रहते हैं। इसीलिये रुद्रको इस यज्ञके लिये नहीं बुलाया गया है। बेटी! मैं रुद्रको अच्छी तरह जानता हूँ। अतः जान-बूझकर ही मैंने देवर्षियोंकी सभामें उनको आमन्त्रित नहीं किया है। रुद्रको शास्त्रके अर्थका ज्ञान नहीं है। वे उद्दण्ड और दुरात्मा हैं। मुझ मूढ़ पापीने ब्रह्माजीके कहनेसे उनके साथ तुम्हारा विवाह कर दिया था। अतः शुचिस्मिते! तुम क्रोध छोड़कर स्वस्थ (शान्त) हो जाओ। इस यज्ञमें तुम आ ही गयी तो स्वयं अपना भाग (या दहेज) ग्रहण करो।

दक्षके ऐसा कहनेपर उनकी त्रिभुवन-पूजिता पुत्री सतीने शिवकी निन्दा करनेवाले अपने पिताकी ओर जब दृष्टिपात किया, तब उनका रोष और भी बढ़ गया। वे मन-ही-मन सोचने लगीं कि 'अब मैं शंकरजीके

पास कैसे जाऊँगी। यदि शंकरजीके दर्शनकी इच्छासे यहाँ गयी और उन्होंने यहाँका समाचार पूछा तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी?' तदनन्तर तीनों लोकोंकी जननी सती रोषावेशसे युक्त हो लंबी साँस खींचती हुई अपने दुष्टहृदय पिता दक्षसे बोलीं।

सतीने कहा—जो महादेवजीकी निन्दा करता है अथवा जो उनकी होती हुई निन्दाको सुनता है, वे दोनों तबतक नरकमें पड़े रहते हैं, जबतक चन्द्रमा और सूर्य विद्यमान हैं।* अतः तात! मैं अपने इस शरीरको त्याग दूँगी, जलती आगमें प्रवेश कर जाऊँगी। अपने स्वामीका अनादर सुनकर अब मुझे अपने इस जीवनकी रक्षासे क्या प्रयोजन। यदि कोई समर्थ हो तो वह स्वयं विशेष यत्न करके शम्भुकी निन्दा करनेवाले पुरुषकी जीभको बलपूर्वक काट डाले। तभी वह शिव-निन्दा-श्रवणके पापसे शुद्ध हो सकता है, इसमें संशय नहीं है। यदि कुछ कर सकनेमें असमर्थ हो तो बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह दोनों कान बंद करके वहाँसे निकल जाय। इससे वह शुद्ध रहता है—दोषका भागी नहीं होता। ऐसा श्रेष्ठ विद्वान् कहते हैं।

इस प्रकार धर्मनीति बतानेपर सतीको अपने आनेके कारण बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने व्यथित चित्तसे भगवान् शंकरके वचनका स्मरण किया। फिर सती अत्यन्त कुपित हो दक्षसे, उन विष्णु आदि समस्त देवताओंसे तथा मुनियोंसे भी निडर होकर बोलीं।

सतीने कहा—तात! तुम भगवान् शंकरके निन्दक हो। इसके लिये तुम्हें पश्चात्ताप होगा। यहाँ महान् दुःख भोगकर अन्तमें तुम्हें यातना भोगनी पड़ेगी। इस लोकमें जिनके लिये न कोई प्रिय है न अप्रिय, उन निर्वैर परमात्मा शिवके प्रतिकूल तुम्हारे सिवा दूसरा कौन चल सकता है। जो दुष्ट लोग हैं, वे सदा ईर्ष्यापूर्वक यदि महापुरुषोंकी निन्दा करें तो उनके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। परंतु जो महात्माओंके चरणोंकी रजसे अपने अज्ञानान्धकारको दूर कर चुके हैं, उन्हें महापुरुषोंकी निन्दा शोभा नहीं देती। जिनका 'शिव' यह दो अक्षरोंका नाम कभी बातचीतके प्रसङ्गसे मनुष्योंकी वाणी-द्वारा एक बार भी उच्चारित हो जाय तो वह सम्पूर्ण पापराशिको शीघ्र ही नष्ट कर देता है, उन्हीं पवित्र कीर्तिवाले निर्मल शिवसे तुम द्वेष करते हो? आश्चर्य है। वास्तवमें तुम अशिव (अमङ्गल)-रूप हो। महापुरुषोंके मनरूपी मधुकर ब्रह्मानन्दमय रसका पान करनेकी इच्छासे जिनके सर्वार्थदायक चरण-कमलोंका निरन्तर सेवन किया करते हैं, उन्हींसे तुम मूर्खतावश द्रोह करते हो? जिन्हें तुम नामसे शिव और कामसे अशिव बताते हो, उन्हें क्या तुम्हारे सिवा दूसरे विद्वान् नहीं जानते। ब्रह्मा आदि देवता, सनक आदि मुनि तथा अन्य ज्ञानी क्या उनके स्वरूपको नहीं समझते। उदारबुद्धि भगवान् शिव जटा फैलाये, कपाल धारण किये श्मशानमें भूतोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते तथा भस्म

---

* यो निन्दति महादेवं निन्द्यमानं शृणोति वा। तावुभौ नरकं यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० २९। ३८)

एवं नरमुण्डोंकी माला धारण करते हैं—इस बातको जानकर भी जो मुनि और देवता उनके चरणोंसे गिरे हुए निर्माल्यको बड़े आदरके साथ अपने मस्तकपर चढ़ाते हैं, इसका क्या कारण है ? यही कि वे भगवान् शिव ही साक्षात् परमेश्वर हैं। प्रवृत्ति (यज्ञ-यागादि) और निवृत्ति— (शम-दम आदि)—दो प्रकारके कर्म बताये गये हैं। मनीषी पुरुषोंको उनका विचार करना चाहिये। वेदमें विवेचनपूर्वक उनके रागी और विरागी—दो प्रकारके अलग-अलग अधिकारी बताये गये हैं। परस्परविरोधी होनेके कारण उक्त दोनों प्रकारके कर्मोंका एक साथ एक ही कर्ताके द्वारा आचरण नहीं किया जा सकता। भगवान् शंकर तो परब्रह्म परमात्मा हैं, उनमें इन दोनों ही प्रकारके कर्मोंका प्रवेश नहीं है। उन्हें कोई कर्म प्राप्त नहीं होता, उन्हें किसी भी प्रकारके कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं है। पिताजी ! हमारा ऐश्वर्य अव्यक्त है। उसका कोई लक्षण व्यक्त नहीं है, सदा आत्मज्ञानी महापुरुष ही उसका सेवन करते हैं। तुम्हारे पास वह ऐश्वर्य नहीं है। यज्ञशालाओंमें रहकर वहाँके अन्नसे तृप्त होनेवाले कर्मठ लोगोंको जो भोग प्राप्त होता है, उससे यह ऐश्वर्य बहुत दूर है। जो महापुरुषोंकी निन्दा करनेवाला और दुष्ट है, उसके जन्मको धिक्कार है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि उसके सम्बन्धको विशेषरूपसे प्रयत्न करके त्याग दे ! जिस समय भगवान् शिव तुम्हारे साथ मेरा सम्बन्ध दिखलाते हुए मुझे दाक्षायणी कहकर पुकारेंगे, उस समय मेरा मन सहसा अत्यन्त दुःखी हो जायगा। इसलिये तुम्हारे अङ्गसे उत्पन्न हुए सदा शवके तुल्य घृणित इस शरीरको इस समय मैं निश्चय ही त्याग दूँगी और ऐसा करके सुखी हो जाऊँगी। हे देवताओ और मुनियो ! तुम सब लोग मेरी बात सुनो। तुम्हारे हृदयमें दुष्टता आ गयी है। तुमलोगोंका यह कर्म सर्वथा अनुचित है। तुम सब लोग मूढ़ हो; क्योंकि शिवकी निन्दा और कलह तुम्हें प्रिय है। अतः भगवान् हरसे तुम्हें इस कुकर्मका निश्चय ही पूरा-पूरा दण्ड मिलेगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उस यज्ञमें दक्ष तथा देवताओंसे ऐसा कहकर सती देवी चुप हो गयीं और मन-ही-मन अपने प्राणवल्लभ शम्भुका स्मरण करने लगीं।

(अध्याय २९)

☆

सतीका योगाग्निसे अपने शरीरको भस्म कर देना, दर्शकोंका हाहाकार, शिवपार्षदोंका प्राणत्याग तथा दक्षपर आक्रमण, ऋभुओंद्वारा उनका भगाया जाना तथा देवताओंकी चिन्ता

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मौन हुई सतीदेवी अपने पतिका सादर स्मरण करके शान्तचित्त हो सहसा उत्तर दिशामें भूमिपर बैठ गयीं। उन्होंने विधिपूर्वक जलका आचमन करके वस्त्र ओढ़ लिया और पवित्रभावसे आँखें मूँदकर पतिका चिन्तन करती हुई वे योगमार्गमें स्थित हो गयीं। उन्होंने आसनको स्थिरकर प्राणायामद्वारा प्राण और अपानको एकरूप करके नाभिचक्रमें स्थित किया। फिर उदान वायुको

बलपूर्वक नाभिचक्रसे ऊपर उठाकर बुद्धिके साथ हृदयमें स्थापित किया। तत्पश्चात् शंकरकी प्राणवल्लभा अनिन्दिता सती उस हृदयस्थित वायुको कण्ठमार्गसे भ्रुकुटियोंके बीचमें ले गयीं। इस प्रकार दक्षपर कुपित हो सहसा अपने शरीरको त्यागनेकी इच्छासे सतीने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें योगमार्गके अनुसार वायु और अग्निकी धारणा की। तदनन्तर अपने पतिके चरणारविन्दोंका चिन्तन करती हुई सतीने अन्य सब वस्तुओंका ध्यान भुला दिया। उनका चित्त योगमार्गमें स्थित हो गया था। इसलिये वहाँ उन्हें पतिके चरणोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखायी दिया। मुनिश्रेष्ठ! सतीका निष्पाप शरीर तत्काल गिरा और उनकी इच्छाके अनुसार योगाग्निसे जलकर उसी क्षण भस्म हो गया। उस समय वहाँ आये हुए देवता आदिने जब यह घटना देखी, तब वे बड़े जोरसे हाहाकार करने लगे। उनका वह महान्, अद्भुत, विचित्र एवं भयंकर हाहाकार आकाशमें और पृथ्वीतलपर सब ओर फैल गया। लोग कह रहे थे—'हाय! महान् देवता भगवान् शंकरकी परम प्रेयसी सती देवीने किस दुष्टके दुर्व्यवहारसे कुपित हो अपने प्राण त्याग दिये। अहो! ब्रह्माजीके पुत्र इस दक्षकी बड़ी भारी दुष्टता तो देखो। सारा चराचर जगत् जिसकी संतान है, उसीकी पुत्री मनस्विनी सती देवी, जो सदा ही मान पानेके योग्य थीं, उसके द्वारा ऐसी निरादृत हुईं कि प्राणोंसे ही हाथ धो बैठीं। भगवान् वृषभध्वजकी प्रिया सती सदा सभी सत्पुरुषोंके द्वारा निरन्तर सम्मान पानेकी अधिकारिणी थीं। वास्तवमें उसका हृदय बड़ा ही असहिष्णु है। वह प्रजापति दक्ष ब्राह्मणद्रोही है। इसलिये सारे संसारमें उसे महान् अपयश प्राप्त होगा। उसकी अपनी ही पुत्री उसीके अपराधसे जब प्राणत्याग करनेको उद्यत हो गयी, तब भी उस महानरकभोगी शंकरद्रोहीने उसे रोकातक नहीं!'

जिस समय सब लोग ऐसा कह रहे थे,

उसी समय शिवजीके पार्षद सतीका यह अद्भुत प्राणत्याग देख तुरंत ही क्रोधपूर्वक अस्त्र-शस्त्र ले दक्षको मारनेके लिये उठ खड़े हुए। यज्ञमण्डपके द्वारपर खड़े हुए वे भगवान् शंकरके समस्त साठ हजार पार्षद, जो बड़े भारी बलवान् थे, अत्यन्त रोषसे भर गये और 'हमें धिक्कार है, धिक्कार है', ऐसा कहते हुए भगवान् शंकरके गणोंके वे सभी वीर यूथपति बारंबार उच्चस्वरसे हाहाकार करने लगे। देवर्षे! कितने ही पार्षद तो वहाँ शोकसे ऐसे व्याकुल हो गये कि वे अत्यन्त तीखे प्राणनाशक शस्त्रोंद्वारा अपने ही मस्तक और मुख आदि अङ्गोंपर आघात करने लगे। इस प्रकार बीस हजार पार्षद उस समय दक्षकन्या सतीके साथ ही नष्ट हो

गये। यह एक अद्भुत-सी बात हुई। नष्ट होनेसे बचे हुए महात्मा शंकरके वे प्रमथगण क्रोधयुक्त दक्षको मारनेके लिये हथियार लिये उठ खड़े हुए। मुने! उन आक्रमणकारी पार्षदोंका वेग देखकर भगवान् भृगुने यज्ञमें विघ्न डालनेवालोंका नाश करनेके लिये नियत 'अपहता असुराः रक्षा्ँसि वेदिषदः' इस यजुर्मन्त्रसे दक्षिणाग्निमें आहुति दी। भृगुके आहुति देते ही यज्ञकुण्डसे ऋभु नामक सहस्रों महान् देवता, जो बड़े प्रबल वीर थे, वहाँ प्रकट हो गये। मुनीश्वर! उन सबके हाथमें जलती हुई लकड़ियाँ थीं। उनके साथ प्रमथगणोंका अत्यन्त विकट युद्ध हुआ, जो सुननेवालोंके भी रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। उन ब्रह्मतेजसे सम्पन्न महावीर ऋभुओंकी सब ओरसे ऐसी मार पड़ी, जिससे प्रमथगण बिना अधिक प्रयासके ही भाग खड़े हुए। इस प्रकार उन देवताओंने उन शिवगणोंको तुरंत मार भगाया। यह अद्भुत-सी घटना भगवान् शिवकी महाशक्तिमती इच्छासे ही हुई। यह सब देखकर ऋषि, इन्द्रादि देवता, मरुद्गण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार और लोकपाल चुप ही रहे। कोई सब ओरसे आ-आकर वहाँ भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करते थे कि किसी तरह विघ्न टल जाय। वे उद्विग्न हो बारंबार विघ्न-निवारणके लिये आपसमें सलाह करने लगे। प्रमथगणोंके नाश होने और भगाये जानेसे जो भावी परिणाम होनेवाला था, उसका भलीभाँति विचार करके उत्तम बुद्धिवाले श्रीविष्णु आदि देवता अत्यन्त उद्विग्न हो उठे थे। मुने! इस प्रकार दुरात्मा शंकर-द्रोही ब्रह्मबन्धु दक्षके यज्ञमें उस समय बड़ा भारी विघ्न उपस्थित हो गया।

(अध्याय ३०)

☆

आकाशवाणीद्वारा दक्षकी भर्त्सना, उनके विनाशकी सूचना तथा समस्त देवताओंको यज्ञमण्डपसे निकल जानेकी प्रेरणा

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर! इसी बीचमें वहाँ दक्ष तथा देवता आदिके सुनते हुए आकाशवाणीने यह यथार्थ बात कही—'रे-रे दुराचारी दक्ष! ओ दम्भाचारपरायण महामूढ़! यह तूने कैसा अनर्थकारी कर्म कर डाला? ओ मूर्ख! शिवभक्तराज दधीचके कथनको भी तूने प्रामाणिक नहीं माना, जो तेरे लिये सब प्रकारसे आनन्ददायक और मङ्गलकारी था। वे ब्राह्मण देवता तुझे दुस्सह शाप देकर तेरी यज्ञशालासे निकल गये तो भी तुझ मूढ़ने अपने मनमें कुछ भी नहीं समझा। उसके बाद तेरे घरमें मङ्गलमयी सती देवी स्वतः पधारीं, जो तेरी अपनी ही पुत्री थीं; किंतु तूने उनका भी परम आदर नहीं किया! ऐसा क्यों हुआ? ज्ञानदुर्बल दक्ष! तूने सती और महादेवजीकी पूजा नहीं की, यह क्या किया? 'मैं ब्रह्माजीका बेटा हूँ' ऐसा समझकर तू व्यर्थ ही घमंडमें भरा रहता है और इसीलिये तुझपर मोह छा गया है। वे सती देवी ही सत्पुरुषोंकी आराध्या देवी हैं अथवा सदा आराधना करनेके योग्य हैं, वे समस्त पुण्योंका फल देनेवाली, तीनों लोकोंकी माता, कल्याणस्वरूपा और

भगवान् शंकरके आधे अङ्गमें निवास करनेवाली हैं। वे सती देवी ही पूजित होनेपर सदा सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करनेवाली हैं। वे ही महेश्वरकी शक्ति हैं और अपने भक्तोंको सब प्रकारके मङ्गल देती हैं। वे सती देवी ही पूजित होनेपर सदा संसारका भय दूर करती हैं, मनोवाञ्छित फल देती हैं तथा वे ही समस्त उपद्रवोंको नष्ट करनेवाली देवी हैं। वे सती ही सदा पूजित होनेपर कीर्ति और सम्पत्ति प्रदान करती हैं। वे ही पराशक्ति तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली परमेश्वरी हैं। वे सती ही जगत्‌को जन्म देनेवाली माता, जगत्‌की रक्षा करनेवाली अनादि शक्ति और प्रलयकालमें जगत्‌का संहार करनेवाली हैं। वे जगन्माता सती ही भगवान् विष्णुकी मातारूपसे सुशोभित होनेवाली तथा ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, अग्नि एवं सूर्यदेव आदिकी जननी मानी गयी हैं। वे सती ही तप, धर्म और दान आदिका फल देनेवाली हैं। वे ही शम्भुशक्ति महादेवी हैं तथा दुष्टोंका हनन करनेवाली परात्पर शक्ति हैं। ऐसी महिमावाली सती देवी जिनकी सदा प्रिय धर्मपत्नी हैं, उन भगवान् महादेवको तूने यज्ञमें भाग नहीं दिया! अरे! तू कैसा मूढ़ और कुविचारी है।

''भगवान् शिव ही सबके स्वामी तथा परात्पर परमेश्वर हैं। वे समस्त देवताओंके सम्यक् सेव्य हैं और सबका कल्याण करनेवाले हैं। इन्हींके दर्शनकी इच्छासे सिद्ध पुरुष तपस्या करते हैं और इन्हींके साक्षात्कारकी अभिलाषा मनमें लेकर योगीलोग योग-साधनामें प्रवृत्त होते हैं। अनन्त धन-धान्य और यज्ञ-याग आदिका सबसे महान् फल यही बताया गया है कि भगवान् शंकरका दर्शन सुलभ हो। शिव ही जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाले हैं। वे ही समस्त विद्याओंके पति एवं सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। आदिविद्याके श्रेष्ठ स्वामी और समस्त मङ्गलोंके भी मङ्गल वे ही हैं। दुष्ट दक्ष! तूने उनकी शक्तिका आज सत्कार नहीं किया है। इसीलिये इस यज्ञका विनाश हो जायगा। पूजनीय व्यक्तियोंकी पूजा न करनेसे अमङ्गल होता ही है। तूने परम पूज्य शिवस्वरूपा सतीका पूजन नहीं किया है। शेषनाग अपने सहस्र मस्तकोंसे प्रतिदिन प्रसन्नतापूर्वक जिनके चरणोंकी रज धारण करते हैं, उन्हीं भगवान् शिवकी शक्ति सती देवी थीं। जिनके चरणकमलोंका निरन्तर ध्यान और सादर पूजन करके ब्रह्माजी ब्रह्मत्वको प्राप्त हुए हैं, उन्हीं भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी सती देवी थीं। जिनके चरणकमलोंका निरन्तर ध्यान और सादर पूजन करके इन्द्र आदि लोकपाल अपने-अपने उत्तम पदको प्राप्त हुए हैं, वे भगवान् शिव सम्पूर्ण जगत्‌के पिता हैं और शक्तिस्वरूपा सती देवी जगत्‌की माता कही गयी हैं। मूढ़ दक्ष! तूने उन माता-पिताका सत्कार नहीं किया, फिर तेरा कल्याण कैसे होगा।

''तुझपर दुर्भाग्यका आक्रमण हो गया और विपत्तियाँ टूट पड़ीं; क्योंकि तूने उन भवानी सती और भगवान् शंकरकी भक्ति-भावसे आराधना नहीं की। 'कल्याणकारी शम्भुका पूजन न करके भी मैं कल्याणका भागी हो सकता हूँ' यह तेरा कैसा गर्व है? वह दुर्वार गर्व आज नष्ट हो जायगा। इन देवताओंमेंसे कौन ऐसा है, जो सर्वेश्वर शिवसे विमुख होकर तेरी सहायता करेगा?

मुझे तो ऐसा कोई देवता नहीं दिखायी देता। यदि देवता इस समय तेरी सहायता करेंगे तो जलती आगसे खेलनेवाले पतङ्गोंके समान नष्ट हो जायँगे। आज तेरा मुँह जल जाय, तेरे यज्ञका नाश हो जाय और जितने तेरे सहायक हैं वे भी आज शीघ्र ही जल मरें। इस दुरात्मा दक्षकी जो सहायता करनेवाले हैं, उन समस्त देवताओंके लिये आज शपथ है। वे तेरे अमङ्गलके लिये ही तेरी सहायतासे विरत हो जायँ। समस्त देवता आज इस यज्ञमण्डपसे निकलकर अपने-अपने स्थानको चले जायँ, अन्यथा सब लोगोंका सब प्रकारसे नाश हो जायगा। अन्य सब मुनि और नाग आदि भी इस यज्ञसे निकल जायँ, अन्यथा आज सब लोगोंका सर्वथा नाश हो जायगा। श्रीहरे! और विधातः! आपलोग भी इस यज्ञमण्डपसे शीघ्र निकल जाइये।''

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! सम्पूर्ण यज्ञशालामें बैठे हुए लोगोंसे ऐसा कहकर सबका कल्याण करनेवाली वह आकाशवाणी मौन हो गयी। (अध्याय ३१)

☆

गणोंके मुखसे और नारदसे भी सतीके दग्ध होनेकी बात सुनकर दक्षपर कुपित हुए शिवका अपनी जटासे वीरभद्र और महाकालीको प्रकट करके उन्हें यज्ञ-विध्वंस करने और विरोधियोंको जला डालनेकी आज्ञा देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! वह आकाशवाणी सुनकर सब देवता आदि भयभीत तथा विस्मित हो गये। उनके मुखसे कोई बात नहीं निकली। वे इस तरह खड़े या बैठे रह गये, मानो उनपर विशेष मोह छा गया हो। भृगुके मन्त्रबलसे भाग जानेके कारण जो वीर शिवगण नष्ट होनेसे बच गये थे, वे भगवान् शिवकी शरणमें गये। उन सबने अमित तेजस्वी भगवान् रुद्रको भलीभाँति सादर प्रणाम करके वहाँ यज्ञमें जो कुछ हुआ था, वह सारी घटना उनसे कह सुनायी।

गण बोले—महेश्वर! दक्ष बड़ा दुरात्मा और घमंडी है। उसने वहाँ जानेपर सतीदेवीका अपमान किया और देवताओंने भी उनका आदर नहीं किया। अत्यन्त गर्वसे भरे हुए उस दुष्ट दक्षने आपके लिये यज्ञमें भाग नहीं दिया। दूसरे देवताओंके लिये दिया और आपके विषयमें उच्च स्वरसे दुर्वचन कहे। प्रभो! यज्ञमें आपका भाग न देखकर सतीदेवी कुपित हो उठीं और पिताकी बारंबार निन्दा करके उन्होंने तत्काल अपने शरीरको योगाग्निद्वारा जलाकर भस्म कर दिया। यह देख दस हजारसे अधिक पार्षद लज्जावश शस्त्रोंद्वारा अपने ही अङ्गोंको काट-काटकर वहाँ मर गये। शेष हमलोग दक्षपर कुपित हो उठे और सबको भय पहुँचाते हुए वेगपूर्वक उस यज्ञका विध्वंस करनेको उद्यत हो गये; परंतु विरोधी भृगुने अपने प्रभावसे हमें तिरस्कृत कर दिया। हम उनके मन्त्रबलका सामना न कर सके। प्रभो! विश्वम्भर! वे ही हमलोग आज आपकी शरणमें आये हैं। दयालो! वहाँ प्राप्त हुए भयसे आप हमें बचाइये,

निर्भय कीजिये। महाप्रभो! उस यज्ञमें दक्ष आदि सभी दुष्टोंने घमंडमें आकर आपका विशेषरूपसे अपमान किया है। कल्याणकारी शिव! इस प्रकार हमने अपना, सतीदेवीका और मूढ़ बुद्धिवाले दक्ष आदिका भी सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा करें।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! अपने पार्षदोंकी यह बात सुनकर भगवान् शिवने वहाँकी सारी घटना जाननेके लिये शीघ्र ही तुम्हारा स्मरण किया। देवर्षे! तुम दिव्य दृष्टिसे सम्पन्न हो। अतः भगवान्‌के स्मरण करनेपर तुम तुरंत वहाँ आ पहुँचे और शंकरजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके खड़े हो गये। स्वामी शिवने तुम्हारी प्रशंसा करके तुमसे दक्षयज्ञमें गयी हुई सतीका समाचार तथा दूसरी घटनाओंको पूछा। तात! शम्भुके पूछनेपर शिवमें मन लगाये

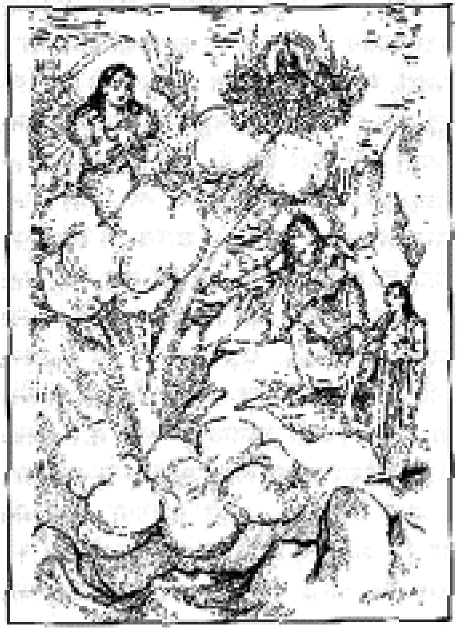

रखनेवाले तुमने शीघ्र ही वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया, जो दक्षयज्ञमें घटित हुआ था। मुने! तुम्हारे मुखसे निकली हुई बात सुनकर उस समय महान् रौद्र पराक्रमसे सम्पन्न सर्वेश्वर रुद्रने तुरंत ही बड़ा भारी क्रोध प्रकट किया। लोकसंहारकारी रुद्रने अपने सिरसे एक जटा उखाड़ी और उसे रोषपूर्वक उस पर्वतके ऊपर दे मारा। मुने! भगवान् शंकरके पटकनेसे उस जटाके दो टुकड़े हो गये और महाप्रलयके समान भयंकर शब्द प्रकट हुआ। देवर्षे! उस जटाके पूर्वभागसे महाभयंकर महाबली वीरभद्र प्रकट हुए, जो समस्त शिवगणोंके अगुआ हैं। वे भूमण्डलको सब ओरसे व्याप्त करके उससे भी दस अंगुल अधिक होकर खड़े हुए। वे देखनेमें प्रलयाग्निके समान जान पड़ते थे। उनका शरीर बहुत ऊँचा था। वे एक हजार भुजाओंसे युक्त थे। उन सर्वसमर्थ महारुद्रके क्रोधपूर्वक प्रकट हुए निःश्वाससे सौ प्रकारके ज्वर और तेरह प्रकारके संनिपात रोग पैदा हो गये। तात! उस जटाके दूसरे भागसे महाकाली उत्पन्न हुईं, जो बड़ी भयंकर दिखायी देती थीं। वे करोड़ों भूतोंसे घिरी हुई थीं। जो ज्वर पैदा हुए, वे सब-के-सब शरीरधारी, क्रूर और समस्त लोकोंके लिये भयंकर थे। वे अपने तेजसे प्रज्वलित हो सब ओर दाह उत्पन्न करते हुए-से प्रतीत होते थे। वीरभद्र बातचीत करनेमें बड़े कुशल थे। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर परमेश्वर शिवको प्रणाम करके कहा।

वीरभद्र बोले—महारुद्र! सोम, सूर्य और अग्निको तीन नेत्रोंके रूपमें धारण करनेवाले प्रभो! शीघ्र आज्ञा दीजिये।

मुझे इस समय कौन-सा कार्य करना होगा ? ईशान ! क्या मुझे आधे ही क्षणमें सारे समुद्रोंको सुखा देना है ? या इतने ही समयमें सम्पूर्ण पर्वतोंको पीस डालना है ? हर ! मैं एक ही क्षणमें ब्रह्माण्डको भस्म कर डालूँ या समस्त देवताओं और मुनीश्वरोंको जलाकर राख कर दूँ ? शंकर ! ईशान ! क्या मैं समस्त लोकोंको उलट-पलट दूँ या सम्पूर्ण प्राणियोंका विनाश कर डालूँ ? महेश्वर ! आपकी कृपासे कहीं कोई भी ऐसा कार्य नहीं है, जिसे मैं न कर सकूँ। पराक्रमके द्वारा मेरी समानता करनेवाला वीर न पहले कभी हुआ है और न आगे होगा। शंकर ! आप किसी तिनकेको भेज दें तो वह भी बिना किसी यत्नके क्षणभरमें बड़े-से-बड़ा कार्य सिद्ध कर सकता है, इसमें संशय नहीं है। शम्भो ! यद्यपि आपकी लीलामात्रसे सारा कार्य सिद्ध हो जाता है, तथापि जो मुझे भेजा जा रहा है, यह मुझपर आपका अनुग्रह ही है। शम्भो ! मुझमें भी जो ऐसी शक्ति है, वह आपकी कृपासे ही प्राप्त हुई है। शंकर ! आपकी कृपाके बिना किसीमें भी कोई शक्ति नहीं हो सकती। वास्तवमें आपकी आज्ञाके बिना कोई तिनके आदिको भी हिलानेमें समर्थ नहीं है, यह निस्संदेह कहा जा सकता है। महादेव ! मैं आपके चरणोंमें बारंबार प्रणाम करता हूँ। हर ! आप अपने अभीष्ट कार्यकी सिद्धिके लिये आज मुझे शीघ्र भेजिये। शम्भो ! मेरे दाहिने अङ्ग बारंबार फड़क रहे हैं। इससे सूचित होता है कि मेरी विजय अवश्य होगी। अतः प्रभो ! मुझे भेजिये। शंकर ! आज मुझे कोई अभूतपूर्व एवं विशेष हर्ष तथा उत्साहका अनुभव हो रहा है और मेरा चित्त आपके चरण-कमलमें लगा हुआ है। अतः पग-पगपर मेरे लिये शुभ परिणामका विस्तार होगा। शम्भो ! आप शुभके आधार हैं। जिसकी आपमें सुदृढ़ भक्ति है, उसीको सदा विजय प्राप्त होती है और उसीका दिनोंदिन शुभ होता है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उसकी यह बात सुनकर सर्वमङ्गलाके पति भगवान् शिव बहुत संतुष्ट हुए और 'वीरभद्र ! तुम्हारी जय हो' ऐसा आशीर्वाद देकर वे फिर बोले।

महेश्वरने कहा—मेरे पार्षदोंमें श्रेष्ठ वीरभद्र ! ब्रह्माजीका पुत्र दक्ष बड़ा दुष्ट है। उस मूर्खको बड़ा घमंड हो गया है। अतः इन दिनों वह विशेषरूपसे मेरा विरोध करने लगा है। दक्ष इस समय एक यज्ञ करनेके लिये उद्यत है। तुम याग-परिवारसहित उस यज्ञको भस्म करके फिर शीघ्र मेरे स्थानपर लौट आओ। यदि देवता, गन्धर्व, यक्ष अथवा अन्य कोई तुम्हारा सामना करनेके लिये उद्यत हों तो उन्हें भी आज ही शीघ्र और सहसा भस्म कर डालना। दधीचकी दिलायी हुई मेरी शपथका उल्लङ्घन करके जो देवता आदि वहाँ ठहरे हुए हैं, उन्हें तुम निश्चय ही प्रयत्नपूर्वक जलाकर भस्म कर देना। जो मेरी शपथका उल्लङ्घन करके गर्वयुक्त हो वहाँ ठहरे हुए हैं, वे सब-के-सब मेरे द्रोही हैं। अतः उन्हें अग्निमयी मायासे जला डालो। दक्षकी यज्ञशालामें जो अपनी पत्नियों और सारभूत उपकरणोंके साथ बैठे हों, उन सबको जलाकर भस्म कर देनेके पश्चात् फिर शीघ्र लौट आना। तुम्हारे वहाँ जानेपर विश्वेदेव आदि देवगण भी यदि सामने आ तुम्हारी सादर स्तुति करें तो भी तुम उन्हें शीघ्र आगकी ज्वालासे जलाकर

ही छोड़ना। वीर! वहाँ दक्ष आदि सब लोगोंको पत्नी और बन्धु-बान्धवोंसहित जलाकर (कलशोंमें रखे हुए) जलको लीलापूर्वक पी जाना।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! जो वैदिक मर्यादाके पालक, कालके भी शत्रु तथा सबके ईश्वर हैं, वे भगवान् रुद्र रोषसे लाल आँखें किये महावीर वीरभद्रसे ऐसा कहकर चुप हो गये।

(अध्याय ३२)

☆

प्रमथगणोंसहित वीरभद्र और महाकालीका दक्षयज्ञ-विध्वंसके लिये प्रस्थान, दक्ष तथा देवताओंको अपशकुन एवं उत्पातसूचक लक्षणोंका दर्शन एवं भय होना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! महेश्वरके इस वचनको आदरपूर्वक सुनकर वीरभद्र बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने महेश्वरको प्रणाम किया। तत्पश्चात् उन देवाधिदेव शूलीकी उपर्युक्त आज्ञाको शिरोधार्य करके वीरभद्र वहाँसे शीघ्र ही दक्षके यज्ञमण्डपकी ओर चले। भगवान् शिवने केवल शोभाके लिये उनके साथ करोड़ों महावीर गणोंको भेज दिया, जो प्रलयाग्निके समान तेजस्वी थे। वे कौतूहलकारी प्रबल वीर प्रमथगण वीर-भद्रके आगे और पीछे भी चल रहे थे। कालके भी काल भगवान् रुद्रके वीरभद्र-सहित जो लाखों पार्षदगण थे, उन सबका स्वरूप रुद्रके ही समान था। उन गणोंके साथ महात्मा वीरभद्र भगवान् शिवके समान ही वेश-भूषा धारण किये रथपर बैठकर यात्रा कर रहे थे। उनके एक सहस्र भुजाएँ थीं। शरीरमें नागराज लिपटे हुए थे। वीरभद्र बड़े प्रबल और भयंकर दिखायी देते थे। उनका रथ बहुत ही विशाल था। उसमें दस हजार सिंह जोते जाते थे, जो प्रयत्नपूर्वक उस रथको खींचते थे। उसी प्रकार बहुत-से प्रबल सिंह, शार्दूल, मगर, मत्स्य और सहस्रों हाथी उस रथके पार्श्वभागकी रक्षा करते थे। काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्डमर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी—इन नव दुर्गाओंके साथ तथा समस्त भूतगणोंके साथ महाकाली दक्षका विनाश करनेके लिये चलीं। डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रमथ, गुह्यक, कूष्माण्ड, पर्पट, चटक, ब्रह्मराक्षस, भैरव तथा क्षेत्रपाल आदि—ये सभी वीर भगवान् शिवकी आज्ञाका पालन एवं दक्षके यज्ञका विनाश करनेके लिये तुरंत चल दिये। इनके सिवा चौसठ गणोंके साथ योगिनियोंका मण्डल भी सहसा कुपित हो दक्षयज्ञका विनाश करनेके लिये वहाँसे प्रस्थित हुआ। इस प्रकार कोटि-कोटि गण एवं विभिन्न प्रकारके गणाधीश वीरभद्रके साथ चले। उस समय भेरियोंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी। नाना प्रकारके शब्द करनेवाले शङ्ख बज उठे। भिन्न-भिन्न प्रकारकी सींगें बजने लगीं। महामुने! सेनासहित वीरभद्रकी यात्राके समय वहाँ बहुत-से सुखद शकुन होने लगे।

इस प्रकार जब प्रमथगणोंसहित

वीरभद्रने प्रस्थान किया, तब उधर दक्ष तथा देवताओंको बहुत-से अशुभ लक्षण दिखायी देने लगे। देवर्षे! यज्ञ-विध्वंसकी सूचना देनेवाले त्रिविध उत्पात प्रकट होने लगे। दक्षकी बायीं आँख, बायीं भुजा और बायीं जाँघ फड़कने लगी। तात! वाम अङ्गोंका वह फड़कना सर्वथा अशुभसूचक था और नाना प्रकारके कष्ट मिलनेकी सूचना दे रहा था। उस समय दक्षकी यज्ञशालामें धरती डोलने लगी। दक्षको दोपहरके समय दिनमें ही अद्भुत तारे दीखने लगे। दिशाएँ मलिन हो गयीं। सूर्यमण्डल चितकबरा दीखने लगा। उसपर हजारों घेरे पड़ गये, जिससे वह भयंकर जान पड़ता था। बिजली और अग्निके समान दीप्तिमान् तारे टूट-टूटकर गिरने लगे तथा और भी बहुत-से भयानक अपशकुन होने लगे।

इसी बीचमें वहाँ आकाशवाणी प्रकट हुई जो सम्पूर्ण देवताओं और विशेषतः दक्षको अपनी बात सुनाने लगी।

आकाशवाणी बोली—ओ दक्ष! आज तेरे जन्मको धिक्कार है! तू महामूढ़ और पापात्मा है। भगवान् हरकी ओरसे आज तुझे महान् दुःख प्राप्त होगा, जो किसी तरह टल नहीं सकता। अब यहाँ तेरा हाहाकार भी नहीं सुनायी देगा। जो मूढ़ देवता आदि तेरे यज्ञमें स्थित हैं, उनको भी महान् दुःख होगा—इसमें संशय नहीं है।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! आकाशवाणीकी यह बात सुनकर और पूर्वोक्त अशुभसूचक लक्षणोंको देखकर दक्ष तथा दूसरे देवता आदिको भी अत्यन्त भय प्राप्त हुआ। उस समय दक्ष मन-ही-मन अत्यन्त व्याकुल हो काँपने लगे और अपने प्रभु लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। वे भयसे अधीर हो बेसुध हो रहे थे। उन्होंने स्वजनवत्सल देवाधिदेव भगवान् विष्णुको प्रणाम किया और उनकी स्तुति करके कहा।

(अध्याय ३३-३४)

☆

दक्षकी यज्ञकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुसे प्रार्थना, भगवान्‌का शिवद्रोहजनित संकटको टालनेमें अपनी असमर्थता बताते हुए दक्षको समझाना तथा सेनासहित वीरभद्रका आगमन

दक्ष बोले—देवदेव! हरे! विष्णो! दीनबन्धो! कृपानिधे! आपको मेरी और मेरे यज्ञकी रक्षा करनी चाहिये। प्रभो! आप ही यज्ञके रक्षक हैं, यज्ञ ही आपका कर्म है और आप यज्ञस्वरूप हैं। आपको ऐसी कृपा करनी चाहिये, जिससे यज्ञका विनाश न हो।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर! इस तरह अनेक प्रकारसे सादर प्रार्थना करके दक्ष भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें गिर पड़े। उनका चित्त भयसे व्याकुल हो रहा था। तब जिनके मनमें घबराहट आ गयी थी, उन प्रजापति दक्षको उठाकर और उनकी पूर्वोक्त बात सुनकर भगवान् विष्णुने देवाधिदेव शिवका स्मरण किया। अपने प्रभु एवं महान् ऐश्वर्यसे युक्त परमेश्वर शिवका स्मरण करके

शिवतत्त्वके ज्ञाता श्रीहरि दक्षको समझाते हुए बोले।

श्रीहरिने कहा—दक्ष! मैं तुमसे तत्त्वकी बात बता रहा हूँ। तुम मेरी बात ध्यान देकर सुनो। मेरा यह वचन तुम्हारे लिये सर्वथा हितकर तथा महामन्त्रके समान सुखदायक होगा। दक्ष! तुम्हें तत्त्वका ज्ञान नहीं है। इसलिये तुमने सबके अधिपति परमात्मा शंकरकी अवहेलना की है। ईश्वरकी अवहेलनासे सारा कार्य सर्वथा निष्फल हो जाता है। केवल इतना ही नहीं, पग-पगपर विपत्ति भी आती है। जहाँ अपूज्य पुरुषोंकी पूजा होती है और पूजनीय पुरुषकी पूजा नहीं की जाती, वहाँ दरिद्रता, मृत्यु तथा भय—ये तीन संकट अवश्य प्राप्त होंगे।* इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नसे तुम्हें भगवान् वृषभध्वजका सम्मान करना चाहिये। महेश्वरका अपमान करनेसे ही तुम्हारे ऊपर महान् भय उपस्थित हुआ है। हम सब लोग प्रभु होते हुए भी आज तुम्हारी दुर्नीतिके कारण जो संकट आया है, उसे टालनेमें समर्थ नहीं हैं। यह मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर दक्ष चिन्तामें डूब गये। उनके चेहरेका रंग उड़ गया और वे चुपचाप पृथ्वीपर खड़े रह गये। इसी समय भगवान् रुद्रके भेजे हुए गणनायक वीरभद्र अपनी सेनाके साथ यज्ञस्थलमें जा पहुँचे। वे *सब-के-सब बड़े शूरवीर, निर्भय तथा रुद्रके* समान ही पराक्रमी थे। भगवान् शंकरकी आज्ञासे आये हुए उन गणोंकी गणना असम्भव थी। वे वीरशिरोमणि रुद्रसैनिक जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे। उनके उस महानादसे तीनों लोक गूँज उठे। आकाश धूलसे ढक गया और दिशाएँ अन्धकारसे आवृत हो गयीं। सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वी अत्यन्त भयसे व्याकुल हो पर्वत, वन और काननोंसहित काँपने लगी तथा सम्पूर्ण समुद्रोंमें ज्वार आ गया। इस प्रकार समस्त लोकोंका विनाश करनेमें समर्थ उस विशाल सेनाको देखकर समस्त देवता आदि चकित हो गये। सेनाके उद्योगको देख दक्षके मुँहसे खून निकल आया। वे अपनी स्त्रीको साथ

*ईश्वरावज्ञया सर्वं कार्यं भवति सर्वथा। विफलं केवलं नैव विपत्तिश्च पदे पदे॥
अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते। त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दारिद्र्यं मरणं भयम्॥
(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ स॰ खं॰ ३५। ८-९)

ले भगवान् विष्णुके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े और इस प्रकार बोले।

दक्षने कहा—विष्णो! महाप्रभो! आपके बलसे ही मैंने इस महान् यज्ञका आरम्भ किया है। सत्कर्मकी सिद्धिके लिये आप ही प्रमाण माने गये हैं। विष्णो! आप कर्मोंके साक्षी तथा यज्ञोंके प्रतिपालक हैं। महाप्रभो! आप वेदोक्त धर्म तथा ब्रह्माजीके रक्षक हैं। अतः प्रभो! आपको मेरे इस यज्ञकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि आप सबके प्रभु हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—दक्षकी अत्यन्त दीनतापूर्ण बात सुनकर भगवान् विष्णु उस समय शिवतत्त्वसे विमुख हुए दक्षको समझानेके लिये इस प्रकार बोले।

श्रीविष्णुने कहा—दक्ष! इसमें संदेह नहीं कि मुझे तुम्हारे यज्ञकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि धर्म-परिपालनविषयक जो मेरी सत्य प्रतिज्ञा है, वह सर्वत्र विख्यात है। परंतु दक्ष! मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे तुम सुनो। इस समय अपनी क्रूरतापूर्ण बुद्धिको त्याग दो। देवताओंके क्षेत्र नैमिषारण्यमें जो अद्भुत घटना घटित हुई थी, उसका तुम्हें स्मरण नहीं हो रहा है। क्या तुम अपनी कुबुद्धिके कारण उसे भूल गये? यहाँ कौन भगवान् रुद्रके कोपसे तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ है। दक्ष! तुम्हारी रक्षा किसको अभिमत नहीं है? परंतु जो तुम्हारी रक्षा करनेको उद्यत होता है, वह अपनी दुर्बुद्धिका ही परिचय देता है। दुर्मते! क्या कर्म है और क्या अकर्म, इसे तुम नहीं समझ पा रहे हो। केवल कर्म ही कभी कुछ करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। जिसके सहयोगसे कर्ममें कुछ करनेकी सामर्थ्य आती है, उसीको तुम स्वकर्म समझो। भगवान् शिवके बिना दूसरा कोई कर्ममें कल्याण करनेकी शक्ति देनेवाला नहीं है। जो शान्त हो ईश्वरमें मन लगाकर उनकी भक्तिपूर्वक कार्य करता है, उसीको भगवान् शिव तत्काल उस कर्मका फल देते हैं। जो मनुष्य केवल ज्ञानका सहारा ले अनीश्वरवादी हो जाते या ईश्वरको नहीं मानते हैं, वे शतकोटि कल्पोंतक नरकमें ही पड़े रहते हैं।* फिर वे कर्मपाशमें बँधे हुए जीव प्रत्येक जन्ममें नरकोंकी यातना भोगते हैं; क्योंकि वे केवल सकाम कर्मके ही स्वरूपका आश्रय लेनेवाले होते हैं।

ये शत्रुमर्दन वीरभद्र, जो यज्ञशालाके आँगनमें आ पहुँचे हैं, भगवान् रुद्रकी क्रोधाग्निसे प्रकट हुए हैं। इस समय समस्त रुद्रगणोंके नायक ये ही हैं। ये हमलोगोंके विनाशके लिये आये हैं, इसमें संशय नहीं है। कोई भी कार्य क्यों न हो; वस्तुतः इनके लिये कुछ भी अशक्य है ही नहीं। ये महान् सामर्थ्यशाली वीरभद्र सब देवताओंको अवश्य जलाकर ही शान्त होंगे—इसमें संशय नहीं जान पड़ता। मैं भ्रमसे महादेवजीकी शपथका उल्लङ्घन करके जो यहाँ ठहरा रहा, उसके कारण तुम्हारे साथ मुझे भी इस कष्टका सामना करना ही पड़ेगा।

भगवान् विष्णु इस प्रकार कह ही रहे थे कि वीरभद्रके साथ शिवगणोंकी सेनाका समुद्र उमड़ आया। समस्त देवता आदिने उसे देखा। (अध्याय ३५)

☆

* केवलं ज्ञानमाश्रित्य निरीश्वरपरा नराः। निरयं ते च गच्छन्ति कल्पकोटिशतानि च॥

(शि० पु० रु० सं० स० खं० ३५। ३१)

देवताओंका पलायन, इन्द्र आदिके पूछनेपर बृहस्पतिका रुद्रदेवकी अजेयता बताना, वीरभद्रका देवताओंको युद्धके लिये ललकारना, श्रीविष्णु और वीरभद्रकी बातचीत तथा विष्णु आदिका अपने लोकमें जाना एवं दक्ष और यज्ञका विनाश करके वीरभद्रका कैलासको लौटना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उस समय देवताओंके साथ शिवगणोंका घोर युद्ध आरम्भ हो गया। उसमें सारे देवता पराजित हुए और भागने लगे। वे एक-दूसरेका साथ छोड़कर स्वर्गलोकमें चले गये। उस समय केवल महाबली इन्द्र आदि लोकपाल ही उस दारुण संग्राममें धैर्य धारण करके उत्सुकतापूर्वक खड़े रहे। तदनन्तर इन्द्र आदि सब देवता मिलकर उस समराङ्गणमें बृहस्पतिजीको विनीतभावसे नमस्कार करके पूछने लगे।

लोकपाल बोले—गुरुदेव बृहस्पते ! तात ! महाप्राज्ञ ! दयानिधे ! शीघ्र बताइये, हम जानना चाहते हैं कि हमारी विजय कैसे होगी ?

उनकी यह बात सुनकर बृहस्पतिने प्रयत्नपूर्वक भगवान् शम्भुका स्मरण किया और ज्ञानदुर्बल महेन्द्रसे कहा।

बृहस्पति बोले—इन्द्र ! भगवान् विष्णुने पहले जो कुछ कहा था, वह सब इस समय घटित हो गया। मैं उसीको स्पष्ट कर रहा हूँ। सावधान होकर सुनो। समस्त कर्मोंका फल देनेवाला जो कोई ईश्वर है, वह कर्ताका ही आश्रय लेता है—कर्म करनेवालेको ही उस कर्मका फल देता है। जो कर्म करता ही नहीं, उसको फल देनेमें वह भी समर्थ नहीं है (अतः जो ईश्वरको जानकर उसका आश्रय लेकर सत्कर्म करता है, उसीको उस कर्मका फल मिलता है, ईश्वरद्रोहीको नहीं)। न मन्त्र, न ओषधियाँ, न समस्त आभिचारिक कर्म, न लौकिक पुरुष, न कर्म, न वेद, न पूर्व और उत्तरमीमांसा तथा न नाना वेदोंसे युक्त अन्यान्य शास्त्र ही ईश्वरको जाननेमें समर्थ होते हैं—ऐसा प्राचीन विद्वानोंका कथन है। अनन्यशरण भक्तोंको छोड़कर दूसरे लोग सम्पूर्ण वेदोंका दस हजार बार स्वाध्याय करके भी महेश्वरको भलीभाँति नहीं जान सकते—यह महाश्रुतिका कथन है। अवश्य भगवान् शिवके अनुग्रहसे ही सर्वथा शान्त, निर्विकार एवं उत्तम दृष्टिसे सदाशिवके तत्त्वका साक्षात्कार (ज्ञान) हो सकता है। सुरेश्वर ! क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य, इसका विवेचन करना अभीष्ट होनेपर मैं जो इसमें सिद्धिका उत्तम अंश है, उसीका प्रतिपादन करूँगा। तुम अपने हितके लिये उसे ध्यान देकर सुनो। इन्द्र ! तुम लोकपालोंके साथ आज नादान बनकर दक्ष-यज्ञमें आ गये। बताओ तो, यहाँ क्या पराक्रम करोगे ? भगवान् रुद्र जिनके सहायक हैं, ऐसे ये परम क्रोधी रुद्रगण इस यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये आये हैं और अपना काम पूरा करेंगे—इसमें संशय नहीं है। मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि इस यज्ञके विघ्नका निवारण करनेके लिये वस्तुतः तुममेंसे किसीके पास भी सर्वथा कोई उपाय नहीं है।

बृहस्पतिकी यह बात सुनकर वे इन्द्र-

सहित समस्त लोकपाल बड़ी चिन्तामें पड़ गये। तब महावीर रुद्रगणोंसे घिरे हुए वीरभद्रने मन-ही-मन भगवान् शंकरका स्मरण करके इन्द्र आदि लोकपालोंको डाँटा और इसके पश्चात् रुद्रगणोंके नायक वीरभद्रने रोषसे भरकर तुरंत ही सम्पूर्ण देवताओंको तीखे बाणोंसे घायल कर दिया। उन बाणोंकी चोट खाकर इन्द्र आदि समस्त सुरेश्वर भागते हुए दसों दिशाओंमें चले गये। जब लोकपाल चले गये और देवता भाग खड़े हुए तब वीरभद्र अपने गणोंके साथ यज्ञशालाके समीप गये। उस समय वहाँ विद्यमान समस्त ऋषि अत्यन्त भयभीत हो परमेश्वर श्रीहरिसे रक्षाकी प्रार्थना करनेके लिये सहसा नतमस्तक हो शीघ्र बोले—'देवदेव! रमानाथ! सर्वेश्वर! महाप्रभो! आप दक्षके यज्ञकी रक्षा कीजिये। आप ही यज्ञ हैं, इसमें संशय नहीं है। यज्ञ आपका कर्म, रूप और अङ्ग है। आप यज्ञके रक्षक हैं। अतः दक्ष-यज्ञकी रक्षा कीजिये। आपके सिवा दूसरा कोई इसका रक्षक नहीं है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऋषियोंका यह वचन सुनकर मेरे सहित भगवान् विष्णु वीरभद्रके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे चले। श्रीहरिको युद्धके लिये उद्यत देख शत्रुमर्दन वीरभद्र, जो वीर प्रमथगणोंसे घिरे हुए थे, कड़े शब्दोंमें भगवान् विष्णुको डाँटने लगे।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! वीरभद्रकी यह बात सुनकर बुद्धिमान् देवेश्वर विष्णु वहाँ प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए बोले।

श्रीविष्णुने कहा—वीरभद्र! आज तुम्हारे सामने मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सुनो—मैं भगवान् शंकरका सेवक हूँ, तुम मुझे रुद्रदेवसे विमुख न कहो। दक्ष अज्ञानी है। कर्मकाण्डमें ही इसकी निष्ठा है। इसने मूढ़तावश पहले मुझसे बारंबार अपने यज्ञमें चलनेके लिये प्रार्थना की थी। मैं भक्तके अधीन ठहरा, इसलिये चला आया। भगवान् महेश्वर भी भक्तके अधीन रहते हैं। तात! दक्ष मेरा भक्त है। इसीलिये मुझे यहाँ आना पड़ा है। रुद्रके क्रोधसे उत्पन्न हुए वीर! तुम रुद्र-तेजःस्वरूप हो, उत्तम प्रतापके आश्रय हो, मेरी प्रतिज्ञा सुनो। मैं तुम्हें आगे बढ़नेसे रोकता हूँ और तुम मुझे रोको। परिणाम वही होगा, जो होनेवाला होगा। मैं पराक्रम करूँगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर महाबाहु वीरभद्र हँसकर बोला—'आप मेरे प्रभुके प्रिय भक्त हैं, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है।' इतना कहकर गणनायक वीरभद्र हँस पड़ा और विनयसे नतमस्तक हो बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रीविष्णुदेवसे कहने लगा।

वीरभद्रने कहा—महाप्रभो! मैंने आपके भावकी परीक्षाके लिये कड़ी बातें कही थीं। इस समय यथार्थ बात कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। हरे! जैसे शिव हैं, वैसे आप हैं। जैसे आप हैं, वैसे शिव हैं। ऐसा वेद कहते हैं और वेदोंका यह कथन शिवकी आज्ञाके अनुसार ही है।* रमानाथ! भगवान् शिवकी आज्ञासे हम

* यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिवः। इति वेदा वर्णयन्ति शिवशासनतो हरे॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० ३६। ६६)

सब लोग उनके सेवक ही हैं; तथापि मैंने जो बात कही है, वह इस वाद-विवादके अवसरके अनुरूप ही है। आप मेरी हर बातको आपके प्रति आदरके भावसे ही कही गयी समझिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—वीरभद्रका यह वचन सुनकर भगवान् श्रीहरि हँस पड़े और उसके लिये हितकर वचन बोले।

श्रीविष्णुने कहा—महावीर! तुम मेरे साथ निःशङ्क होकर युद्ध करो। तुम्हारे अस्त्रोंसे शरीरके भर जानेपर ही मैं अपने आश्रमको जाऊँगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—ऐसा कहकर भगवान् विष्णु चुप हो गये और युद्धके लिये कमर कसकर डट गये। महाबली वीरभद्र भी अपने गणोंके साथ युद्धके लिये तैयार हो गये।

नारद! तदनन्तर भगवान् विष्णु और वीरभद्रमें घोर युद्ध हुआ। अन्तमें वीरभद्रने भगवान् विष्णुके चक्रको स्तम्भित कर दिया तथा शार्ङ्गधनुषके तीन टुकड़े कर डाले। तब मेरे द्वारा एवं सरस्वतीद्वारा बोधित हुए श्रीविष्णुने उस महान् गणनायक वीरभद्रको असह्य तेजसे सम्पन्न जानकर वहाँसे अन्तर्धान होनेका विचार किया। दूसरे देवता भी यह जान गये कि सतीके प्रति जो अन्याय हुआ है, उसीका यह सब भावी परिणाम है। दूसरोंके लिये इस संकटका सामना करना अत्यन्त कठिन है। यह जानकर वे सब देवता अपने सेवकोंके साथ स्वतन्त्र सर्वेश्वर शिवका स्मरण करके अपने-अपने लोकको चले गये। मैं भी पुत्रके दुःखसे पीड़ित हो सत्यलोकमें चला आया और अत्यन्त दुःखसे आतुर हो सोचने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिये। मेरे तथा श्रीविष्णुके चले जानेपर मुनियोंसहित समस्त यज्ञके आधार रहनेवाले देवता शिवगणोंद्वारा पराजित हो भाग गये। उस उपद्रवको देखकर और उस महायज्ञका विध्वंस निकट जानकर वह यज्ञ भी अत्यन्त भयभीत हो मृगका रूप धारण करके वहाँसे भागा। मृगके रूपमें आकाशकी ओर भागते देख वीरभद्रने उसे पकड़ लिया और उसका मस्तक काट डाला। फिर उन्होंने मुनियों तथा देवताओंके अङ्ग-भङ्ग कर दिये और बहुतोंको मार डाला। प्रतापी मणिभद्रने भृगुको उठाकर पटक दिया और उनकी छातीको पैरसे दबाकर तत्काल उनकी दाढ़ी-मूँछ नोच ली। चण्डने बड़े वेगसे पूषाके दाँत उखाड़ लिये; क्योंकि पूर्वकालमें जिस समय महादेवजीको दक्षके द्वारा गालियाँ दी जा रही थीं, उस समय वे दाँत दिखा-दिखाकर हँसे थे। नन्दीने भगको रोषपूर्वक पृथ्वीपर दे मारा और उनकी दोनों आँखें निकाल लीं; क्योंकि जब दक्ष शिवजीको शाप दे रहे थे, उस समय वे आँखोंके संकेतसे अपना अनुमोदन सूचित कर रहे थे। वहाँ रुद्र-गणनायकोंने स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा देवियोंकी बड़ी विडम्बना (दुर्दशा) की। वहाँ जो मन्त्र-तन्त्र तथा दूसरे लोग थे, उनका भी बहुत तिरस्कार किया। ब्रह्मपुत्र दक्ष भयके मारे अन्तर्वेदीके भीतर छिप गये। वीरभद्र उनका पता लगाकर उन्हें बलपूर्वक पकड़ लाये। फिर उनके दोनों गाल पकड़कर उन्होंने उनके मस्तकपर तलवारसे आघात किया। परंतु योगके प्रभावसे दक्षका सिर अभेद्य हो गया था, इसलिये कट नहीं सका। जब वीरभद्रको

ज्ञात हुआ कि सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंसे इनके मस्तकका भेदन नहीं हो सकता, तब उन्होंने दक्षकी छातीपर पैर रखकर दबाया और दोनों हाथोंसे गर्दन मरोड़कर तोड़ डाली। फिर शिवद्रोही दुष्ट दक्षके उस सिरको गणनायक वीरभद्रने अग्निकुण्डमें डाल दिया। तदनन्तर जैसे सूर्य घोर अन्धकार-राशिका नाश करके उदयाचलपर आरूढ़ होते हैं, उसी प्रकार वीरभद्र दक्ष और उनके यज्ञका विध्वंस करके कृतकार्य हो तुरंत ही वहाँसे उत्तम कैलास पर्वतको चले गये। वीरभद्रको काम पूरा करके आया देख परमेश्वर शिव मन-ही-मन बहुत संतुष्ट हुए और उन्होंने उन्हें वीर प्रमथगणोंका अध्यक्ष बना दिया।

(अध्याय ३६-३७)

☆

श्रीविष्णुकी पराजयमें दधीच मुनिके शापको कारण बताते हुए दधीच और क्षुवके विवादका इतिहास, मृत्युञ्जय-मन्त्रके अनुष्ठानसे दधीचकी अवध्यता तथा श्रीहरिका क्षुवको दधीचकी पराजयके लिये यत्न करनेका आश्वासन

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! अमित बुद्धिमान् ब्रह्माजीकी कही हुई यह कथा सुनकर द्विजश्रेष्ठ नारद विस्मयमें पड़ गये। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक प्रश्न किया।

नारदजीने पूछा—पिताजी! भगवान् विष्णु शिवजीको छोड़कर अन्य देवताओंके साथ दक्षके यज्ञमें क्यों चले गये, जिसके कारण वहाँ उनका तिरस्कार हुआ? क्या वे प्रलयकारी पराक्रमवाले भगवान् शंकरको नहीं जानते थे? फिर उन्होंने अज्ञानी पुरुषकी भाँति रुद्रगणोंके साथ युद्ध क्यों किया? करुणानिधे! मेरे मनमें यह बहुत बड़ा संदेह है। आप कृपा करके मेरे इस संशयको नष्ट कर दीजिये और प्रभो! मनमें उत्साह पैदा करनेवाले शिवचरितको कहिये।

ब्रह्माजीने कहा—नारद! पूर्वकालमें राजा क्षुवकी सहायता करनेवाले श्रीहरिको दधीच मुनिने शाप दे दिया था, जिससे उस समय वे इस बातको भूल गये और वे दूसरे देवताओंको साथ ले दक्षके यज्ञमें चले गये। दधीचने क्यों शाप दिया, यह सुनो। प्राचीन कालमें क्षुव नामसे प्रसिद्ध एक महातेजस्वी राजा हो गये हैं। वे महाप्रभावशाली मुनीश्वर दधीचके मित्र थे। दीर्घकालकी तपस्याके प्रसङ्गसे क्षुव और दधीचमें विवाद आरम्भ हो गया, जो तीनों लोकोंमें महान् अनर्थकारीके रूपमें विख्यात हुआ। उस विवादमें वेदके विद्वान् शिवभक्त दधीच कहते थे कि शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय—इन तीनों वर्णोंसे ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है, इसमें संशय नहीं है। महामुनि दधीचकी वह बात सुनकर धन-वैभवके मदसे मोहित हुए राजा क्षुवने उसका इस प्रकार प्रतिवाद किया।

क्षुव बोले—राजा इन्द्र आदि आठ लोकपालोंके स्वरूपको धारण करता है। वह समस्त वर्णों और आश्रमोंका पालक

एवं प्रभु है। इसलिये राजा ही सबसे श्रेष्ठ है। राजाकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करनेवाली श्रुति भी कहती है कि राजा सर्वदेवमय है। मुने ! इस श्रुतिके कथनानुसार जो सबसे बड़ा देवता है, वह मैं ही हूँ। इस विवेचनसे ब्राह्मणकी अपेक्षा राजा ही श्रेष्ठ सिद्ध होता है। च्यवननन्दन ! आप इस विषयमें विचार करें और मेरा अनादर न करें; क्योंकि मैं सर्वथा आपके लिये पूजनीय हूँ।

राजा क्षुवका यह मत श्रुतियों और स्मृतियोंके विरुद्ध था। इसे सुनकर भृगुकुलभूषण मुनिश्रेष्ठ दधीचको बड़ा क्रोध हुआ। मुने ! अपने गौरवका विचार करके कुपित हुए महातेजस्वी दधीचने क्षुवके मस्तकपर बायें मुक्केसे प्रहार किया। उनके मुक्केकी मार खाकर ब्रह्माण्डके अधिपति कुत्सित बुद्धिवाले क्षुव अत्यन्त कुपित हो गरज उठे और उन्होंने वज्रसे दधीचको काट डाला। उस वज्रसे आहत हो भृगुवंशी दधीच पृथ्वीपर गिर पड़े। भार्गववंशधर दधीचने गिरते समय शुक्राचार्यका स्मरण किया। योगी शुक्राचार्यने आकर दधीचके शरीरको, जिसे क्षुवने काट डाला था, तुरंत जोड़ दिया। दधीचके अङ्गोंको पूर्ववत् जोड़कर शिवभक्तशिरोमणि तथा मृत्युञ्जय-विद्याके प्रवर्तक शुक्राचार्यने उनसे कहा।

शुक्र बोले—तात दधीच ! मैं सर्वेश्वर भगवान् शिवका पूजन करके तुम्हें श्रुतिप्रतिपादित महामृत्युञ्जय नामक श्रेष्ठ मन्त्रका उपदेश देता हूँ।

'त्र्यम्बकं यजामहे'—हम भगवान् त्र्यम्बकका यजन (आराधन) करते हैं। त्र्यम्बकका अर्थ है—तीनों लोकोंके पिता प्रभावशाली शिव। वे भगवान् सूर्य, सोम और अग्नि—तीनों मण्डलोंके पिता हैं। सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंके महेश्वर हैं। आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—इन तीन तत्त्वोंके; आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि—इन तीनों अग्नियोंके; सर्वत्र उपलब्ध होनेवाले पृथ्वी, जल एवं तेज—इन तीन मूर्त भूतोंके (अथवा सात्त्विक आदि भेदसे त्रिविध भूतोंके), त्रिदिव (स्वर्ग)के, त्रिभुजके, त्रिधाभूत सबके ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीनों देवताओंके महान् ईश्वर महादेवजी ही हैं। (यहाँतक मन्त्रके प्रथम चरणकी व्याख्या हुई।) मन्त्रका द्वितीय चरण है—'सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्'—जैसे फूलोंमें उत्तम गन्ध होती है, उसी प्रकार वे भगवान् शिव सम्पूर्ण भूतोंमें, तीनों गुणोंमें, समस्त कृत्योंमें, इन्द्रियोंमें, अन्यान्य देवोंमें और गणोंमें उनके प्रकाशक सारभूत आत्माके रूपमें व्याप्त हैं, अतएव सुगन्धयुक्त एवं सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर हैं। (यहाँतक 'सुगन्धिम्' पदकी व्याख्या हुई। अब 'पुष्टिवर्धनम्' की व्याख्या करते हैं—) उत्तम व्रतका पालन करनेवाले द्विजश्रेष्ठ ! महामुने नारद ! उन अन्तर्यामी पुरुष शिवसे प्रकृतिका पोषण होता है—महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण विकल्पोंकी पुष्टि होती है तथा मुझ ब्रह्माका, विष्णुका, मुनियोंका और इन्द्रियोंसहित देवताओंका भी पोषण होता है, इसलिये वे ही 'पुष्टिवर्धन' हैं। (अब मन्त्रके तीसरे और चौथे चरणकी व्याख्या करते हैं।) उन दोनों चरणोंका स्वरूप यों है—उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो-र्मुक्षीयमामृतात्—अर्थात् 'प्रभो ! जैसे खरबूजा पक जानेपर लताबन्धनसे छूट जाता है, उसी तरह मैं मृत्युरूप बन्धनसे मुक्त हो

जाऊँ, अमृतपद (मोक्ष) से पृथक् न होऊँ।' वे रुद्रदेव अमृत-स्वरूप हैं; जो पुण्यकर्मसे, तपस्यासे, स्वाध्यायसे, योगसे अथवा ध्यानसे उनकी आराधना करता है, उसे नूतन जीवन प्राप्त होता है। इस सत्यके प्रभावसे भगवान् शिव स्वयं ही अपने भक्तको मृत्युके सूक्ष्म बन्धनसे मुक्त कर देते हैं; क्योंकि वे भगवान् ही बन्धन और मोक्ष देनेवाले हैं—ठीक उसी तरह, जैसे 'उर्वारुक अर्थात् ककड़ीका पौधा अपने फलको स्वयं ही लताके बन्धनमें बाँधे रखता है और पक जानेपर स्वयं ही उसे बन्धनसे मुक्त कर देता है।'

यह मृतसंजीवनी मन्त्र है, जो मेरे मतसे सर्वोत्तम है। तुम प्रेमपूर्वक नियमसे भगवान् शिवका स्मरण करते हुए इस मन्त्रका जप करो। जप और हवनके पश्चात् इसीसे अभिमन्त्रित किये हुए जलको दिन और रातमें पीओ तथा शिव-विग्रहके समीप बैठकर उन्हींका ध्यान करते रहो। इससे कहीं भी मृत्युका भय नहीं रहता। न्यास आदि सब कार्य करके विधिवत् भगवान् शिवकी पूजा करो। यह सब करके शान्तभावसे बैठकर भक्तवत्सल शंकरका ध्यान करना चाहिये। मैं भगवान् शिवका ध्यान बता रहा हूँ, जिसके अनुसार उनका चिन्तन करके मन्त्र-जप करना चाहिये। इस तरह निरन्तर जप करनेसे बुद्धिमान् पुरुष भगवान् शिवके प्रभावसे उस मन्त्रको सिद्ध कर लेता है।

मृत्युञ्जयका ध्यान

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ।
अक्षस्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्धस्थचन्द्रस्रवत्
पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युञ्जयम्॥

जो अपने दो करकमलोंमें रखे हुए दो कलशोंसे जल निकालकर उनसे ऊपरवाले दो हाथोंद्वारा अपने मस्तकको सींचते हैं। अन्य दो हाथोंमें दो घड़े लिये उन्हें अपनी गोदमें रखे हुए हैं तथा शेष दो हाथोंमें रुद्राक्ष एवं मृगमुद्रा धारण करते हैं, कमलके आसनपर बैठे हैं, सिरपर स्थित चन्द्रमासे निरन्तर झरते हुए अमृतसे जिनका सारा शरीर भीगा हुआ है तथा जो तीन नेत्र धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् मृत्युञ्जयका, जिनके साथ गिरिराजनन्दिनी उमा भी विराजमान हैं, मैं भजन (चिन्तन) करता हूँ।

ब्रह्माजी कहते हैं—तात! मुनिश्रेष्ठ दधीचको इस प्रकार उपदेश देकर शुक्राचार्य भगवान् शंकरका स्मरण करते हुए अपने स्थानको लौट गये। उनकी यह बात सुनकर महामुनि दधीच बड़े प्रेमसे शिवजीका स्मरण करते हुए तपस्याके लिये वनमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने विधिपूर्वक महामृत्युञ्जय मन्त्रका जप और प्रेमपूर्वक भगवान् शिवका चिन्तन करते हुए तपस्या प्रारम्भ की। दीर्घकालतक उस मन्त्रका जप और तपस्याद्वारा भगवान् शंकरकी आराधना करके दधीचने महामृत्युञ्जय शिवको संतुष्ट किया। महामुने! उस जपसे प्रसन्नचित्त हुए भक्तवत्सल भगवान् शिव दधीचके प्रेमवश उनके सामने प्रकट हो गये। अपने प्रभु शम्भुका साक्षात् दर्शन करके मुनीश्वर दधीचको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने विधिपूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ भक्तिभावसे शंकरका स्तवन किया। तात! मुने! तदनन्तर मुनिके प्रेमसे प्रसन्न हुए शिवने च्यवनकुमार दधीचसे कहा—'तुम

वर माँगो।' भगवान् शिवका यह वचन सुनकर भक्तशिरोमणि दधीच दोनों हाथ जोड़ नतमस्तक हो भक्तवत्सल शंकरसे बोले।

दधीचने कहा—देवदेव महादेव! मुझे तीन वर दीजिये। मेरी हड्डी वज्र हो जाय। कोई भी मेरा वध न कर सके और मैं सर्वत्र अदीन रहूँ—कभी मुझमें दीनता न आये।

दधीचका यह वचन सुनकर प्रसन्न हुए परमेश्वर शिवने 'तथास्तु' कहकर उन्हें वे तीनों वर दे दिये। शिवजीसे तीन वर पाकर वेदमार्गमें प्रतिष्ठित महामुनि दधीच आनन्दमग्न हो गये और शीघ्र ही राजा क्षुवके स्थानमें गये। महादेवजीसे अवध्यता, वज्रमय अस्थि और अदीनता पाकर दधीचने राजेन्द्र क्षुवके मस्तकपर लात मारी। फिर तो राजा क्षुवने भी क्रोध करके दधीचपर वज्रसे प्रहार किया। वे भगवान् विष्णुके गौरवसे अधिक गर्वमें भरे हुए थे। परंतु क्षुवका चलाया हुआ वह वज्र परमेश्वर शिवके प्रभावसे महात्मा दधीचका नाश न कर सका। इससे ब्रह्मकुमार क्षुवको बड़ा विस्मय हुआ। मुनीश्वर दधीचकी अवध्यता, अदीनता तथा वज्रसे भी बढ़-चढ़कर प्रभाव देखकर ब्रह्मकुमार क्षुवके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने शीघ्र ही वनमें जाकर इन्द्रके छोटे भाई मुकुन्दकी आराधना आरम्भ की। वे शरणागतपालक नरेश मृत्युञ्जयसेवक दधीचसे पराजित हो गये थे। क्षुवकी पूजासे गरुड़ध्वज भगवान् मधुसूदन बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने राजाको दिव्य दृष्टि प्रदान की। उस दिव्य दृष्टिसे ही जनार्दनदेवका दर्शन करके उन गरुड़ध्वजको क्षुवने प्रणाम किया और प्रिय वचनोंद्वारा उनकी स्तुति की। इस प्रकार देवेश्वर आदिसे प्रशंसित उन अजेय ईश्वर श्रीनारायणदेवका पूजन और स्तवन करके राजाने भक्तिभावसे उनकी ओर देखा तथा उन जनार्दनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम करनेके पश्चात् उन्हें अपना अभिप्राय सूचित किया।

राजा बोले—भगवन्! दधीच नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण हैं, जो धर्मके ज्ञाता हैं। उनके हृदयमें विनयका भाव है। वे पहले मेरे मित्र थे। इन दिनों रोग-शोकसे रहित मृत्युञ्जय महादेवजीकी आराधना करके वे उन्हीं कल्याणकारी शिवके प्रभावसे समस्त अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा सदाके लिये अवध्य हो गये हैं। एक दिन उन महातपस्वी दधीचने भरी सभामें आकर अपने बायें पैरसे मेरे मस्तकपर बड़े वेगसे अवहेलनापूर्वक प्रहार किया और बड़े गर्वसे कहा—'मैं किसीसे नहीं डरता।' हरे! वे मृत्युञ्जयसे उत्तम वर पाकर अनुपम गर्वसे भर गये हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! महात्मा दधीचकी अवध्यताका समाचार जानकर श्रीहरिने महादेवजीके अतुलित प्रभावका स्मरण किया। फिर वे ब्रह्मपुत्र राजा क्षुवसे बोले—'राजेन्द्र ! ब्राह्मणोंको कहीं थोड़ा-सा भी भय नहीं है। भूपते ! विशेषतः रुद्रभक्तोंके लिये तो भय नामकी कोई वस्तु है ही नहीं। यदि मैं तुम्हारी ओरसे कुछ करूँ तो ब्राह्मण दधीचको दुःख होगा और वह मुझ-जैसे देवताके लिये भी शापका कारण बन जायगा। राजेन्द्र ! दधीचके शापसे दक्षके यज्ञमें सुरेश्वर शिवसे मेरी पराजय होगी और फिर मेरा उत्थान भी होगा। महाराज ! इसलिये मैं तुम्हारे साथ रहकर कुछ करना नहीं चाहता, मैं अकेला ही तुम्हारे लिये दधीचको जीतनेका प्रयत्न करूँगा।'

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर क्षुव बोले—'बहुत अच्छा, ऐसा ही हो।' ऐसा कहकर वे उस कार्यके लिये मन-ही-मन उत्सुक हो प्रसन्नतापूर्वक वहीं ठहर गये।

(अध्याय ३८)

☆

श्रीविष्णु और देवताओंसे अपराजित दधीचका उनके लिये शाप और क्षुवपर अनुग्रह

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भक्तवत्सल भगवान् विष्णु राजा क्षुवका हित-साधन करनेके लिये ब्राह्मणका रूप धारणकर दधीचके आश्रमपर गये। वहाँ उन जगद्गुरु श्रीहरिने शिवभक्तशिरोमणि ब्रह्मर्षि दधीचको प्रणाम करके क्षुवके कार्यकी सिद्धिके लिये उद्यत हो उनसे यह बात कही।

श्रीविष्णु बोले—भगवान् शिवकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले अविनाशी ब्रह्मर्षि दधीच ! मैं तुमसे एक वर माँगता हूँ। उसे तुम मुझे दे दो।

क्षुवके कार्यकी सिद्धि चाहनेवाले देवाधिदेव श्रीहरिके इस प्रकार याचना करनेपर शैवशिरोमणि दधीचने शीघ्र ही भगवान् विष्णुसे इस प्रकार कहा।

दधीच बोले—ब्रह्मन् ! आप क्या चाहते हैं, यह मुझे ज्ञात हो गया। आप क्षुवका काम बनानेके लिये साक्षात् भगवान् श्रीहरि ही ब्राह्मणका रूप धारण करके यहाँ आये हैं। इसमें संदेह नहीं कि आप पूरे मायावी हैं। किंतु देवेश ! जनार्दन ! मुझे भगवान् रुद्रकी कृपासे भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंका ज्ञान सदा ही बना रहता है। सुव्रत ! मैं आपको जानता हूँ। आप पापहारी श्रीहरि एवं विष्णु हैं। यह ब्राह्मणका वेश छोड़िये। दुष्टबुद्धिवाले राजा क्षुवने आपकी आराधना की है। (इसीलिये आप पधारे हैं) भगवन् ! हरे ! आपकी भक्तवत्सलताको भी मैं जानता हूँ। यह छल छोड़िये। अपने रूपको ग्रहण कीजिये और भगवान् शंकरके स्मरणमें मन लगाइये। मैं भगवान् शंकरकी आराधनामें लगा रहता हूँ। ऐसी दशामें भी यदि मुझसे किसीको भय हो तो आप उसे यत्नपूर्वक सत्यकी शपथके साथ कहिये। मेरा मन शिवके स्मरणमें ही लगा रहता है। मैं कभी झूठ नहीं बोलता। इस

संसारमें किसी देवता या दैत्यसे भी मुझे भय नहीं होता ।

श्रीविष्णु बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले दधीच ! तुम्हारा भय सर्वथा नष्ट ही है; क्योंकि तुम शिवकी आराधनामें तत्पर रहते हो । इसीलिये सर्वज्ञ हो । परंतु मेरे कहनेसे तुम एक बार अपने प्रतिद्वन्द्वी राजा क्षुवसे जाकर कह दो कि 'राजेन्द्र ! मैं तुमसे डरता हूँ ।'

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर भी शैवशिरोमणि महामुनि दधीच निर्भय ही रहे और हँसकर बोले ।

दधीचने कहा—मैं देवाधिदेव पिनाकपाणि भगवान् शम्भुके प्रसादसे कहीं, कभी किसीसे और किंचिन्मात्र भी नहीं डरता—सदा ही निर्भय रहता हूँ ।

इसपर श्रीहरिने मुनिको दबानेकी चेष्टा की । देवताओंने भी उनका साथ दिया; किंतु सबके सभी अस्त्र कुण्ठित हो गये । तदनन्तर भगवान् श्रीविष्णुने अगणित गणोंकी सृष्टि की । परंतु महर्षिने उनको भी भस्म कर दिया । तब भगवान्‌ने अपनी अनन्त विष्णु-मूर्ति प्रकट की । यह सब देखकर च्यवनकुमारने वहाँ जगदीश्वर भगवान् विष्णुसे कहा ।

दधीच बोले—महाबाहो ! मायाको त्याग दीजिये । विचार करनेसे यह प्रतिभासमात्र प्रतीत होती है । माधव ! मैंने सहस्रों दुर्विज्ञेय वस्तुओंको जान लिया है । आप मुझमें अपने सहित सम्पूर्ण जगत्‌को देखिये । निरालस्य होकर मुझमें ब्रह्मा एवं रुद्रका भी दर्शन कीजिये । मैं आपको दिव्य दृष्टि देता हूँ ।

ऐसा कहकर भगवान् शिवके तेजसे पूर्ण शरीरवाले च्यवनकुमार दधीच मुनिने अपनी देहमें समस्त ब्रह्माण्डका दर्शन कराया । तब भगवान् विष्णुने उनपर पुनः कोप करना चाहा । इतनेमें ही मेरे साथ राजा क्षुव वहाँ आ पहुँचे । मैंने निश्चेष्ट खड़े हुए भगवान् पद्मनाभको तथा देवताओंको क्रोध करनेसे रोका । मेरी बात सुनकर इन लोगोंने ब्राह्मण दधीचको परास्त नहीं किया । श्रीहरि उनके पास गये और उन्होंने मुनिको प्रणाम किया । तदनन्तर क्षुव अत्यन्त दीन हो उन मुनीश्वर दधीचके निकट गये और उन्हें प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे ।

क्षुव बोले—मुनिश्रेष्ठ ! शिवभक्त-शिरोमणे ! मुझपर प्रसन्न होइये । परमेश्वर ! आप दुर्जनोंकी दृष्टिसे दूर रहनेवाले हैं । मुझपर कृपा कीजिये ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! राजा क्षुवकी यह बात सुनकर तपस्याकी निधि ब्राह्मण दधीचने उनपर अनुग्रह किया । तत्पश्चात् श्रीविष्णु आदिको देखकर वे मुनि क्रोधसे व्याकुल हो गये और मन-ही-मन शिवका स्मरण करके विष्णु तथा देवताओंको शाप देने लगे ।

दधीचने कहा—देवराज इन्द्रसहित देवताओ और मुनीश्वरो ! तुमलोग रुद्रकी क्रोधाग्निसे श्रीविष्णु तथा अपने गणोंसहित पराजित और ध्वस्त हो जाओ ।

देवताओंको इस तरह शाप दे क्षुवकी ओर देखकर देवताओं और राजाओंके पूजनीय द्विजश्रेष्ठ दधीचने कहा—'राजेन्द्र ! ब्राह्मण ही बली और प्रभावशाली होते हैं ।' ऐसा स्पष्टरूपसे कहकर ब्राह्मण दधीच अपने आश्रममें प्रविष्ट हो गये । फिर दधीचको नमस्कारमात्र करके क्षुव अपने

घर चले गये। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु देवताओंके साथ जैसे आये थे, उसी तरह अपने वैकुण्ठलोकको लौट गये। इस प्रकार यह स्थान स्थानेश्वर नामक तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। स्थानेश्वरकी यात्रा करके मनुष्य शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। तात ! मैंने तुम्हें संक्षेपसे क्षुव और दधीचके विवादकी कथा सुनायी और भगवान् शंकरको छोड़कर केवल ब्रह्मा और विष्णुको ही जो शाप प्राप्त हुआ, उसका भी वर्णन किया। जो क्षुव और दधीचके विवादसम्बन्धी इस प्रसङ्गका नित्य पाठ करता है, वह अपमृत्युको जीतकर देहत्यागके पश्चात् ब्रह्मलोकमें जाता है। जो इसका पाठ करके रणभूमिमें प्रवेश करता है, उसे कभी मृत्युका भय नहीं होता तथा वह निश्चय ही विजयी होता है।

(अध्याय ३९)

☆

देवताओंसहित ब्रह्माका विष्णुलोकमें जाकर अपना दुःख निवेदन करना, श्रीविष्णुका उन्हें शिवसे क्षमा माँगनेकी अनुमति दे उनको साथ ले कैलासपर जाना तथा भगवान् शिवसे मिलना

नारदजीने कहा—विधातः ! महाप्राज्ञ ! आप शिवतत्त्वका साक्षात्कार करानेवाले हैं। आपने यह बड़ी अद्भुत एवं रमणीय शिवलीला सुनायी है। तात ! वीर वीरभद्र जब दक्षके यज्ञका विनाश करके कैलास पर्वतपर चले गये, तब क्या हुआ ? यह हमें बताइये।

ब्रह्माजी बोले—नारद ! रुद्रदेवके सैनिकोंने जिनके अङ्ग-भङ्ग कर दिये थे, वे समस्त पराजित देवता और मुनि उस समय मेरे लोकमें आये। वहाँ मुझ स्वयम्भूको नमस्कार करके सबने बारंबार मेरा स्तवन किया। फिर अपने विशेष क्लेशको पूर्णरूपसे सुनाया। उसे सुनकर मैं पुत्रशोकसे पीड़ित हो गया और अत्यन्त व्यग्र हो व्यथित चित्तसे बड़ी चिन्ता करने लगा। फिर मैंने भक्तिभावसे भगवान् विष्णुका स्मरण किया। इससे मुझे समयोचित ज्ञान प्राप्त हुआ। तदनन्तर देवताओं और मुनियोंके साथ मैं विष्णुलोकमें गया और वहाँ भगवान् विष्णुको नमस्कार एवं नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करके उनसे अपना दुःख निवेदन किया। मैंने कहा—'देव ! जिस तरह भी यज्ञ पूर्ण हो, यजमान जीवित हो और समस्त देवता तथा मुनि सुखी हो जायँ, वैसा उपाय कीजिये। देवदेव ! रमानाथ ! देवसुखदायक विष्णो ! हम देवता और मुनि निश्चय ही आपकी शरणमें आये हैं।'

मुझ ब्रह्माकी यह बात सुनकर भगवान् लक्ष्मीपति विष्णु, जिनका मन सदा शिवमें लगा रहता है और जिनके हृदयमें कभी दीनता नहीं आती, शिवका स्मरण करके इस प्रकार बोले।

श्रीविष्णुने कहा—देवताओ ! परम समर्थ तेजस्वी पुरुषसे कोई अपराध बन जाय तो भी उसके बदलेमें अपराध करनेवाले मनुष्योंके लिये वह अपराध मङ्गलकारी नहीं हो सकता। विधातः ! समस्त देवता परमेश्वर शिवके अपराधी हैं;

क्योंकि इन्होंने भगवान् शम्भुको यज्ञका भाग नहीं दिया। अब तुम सब लोग शुद्ध हृदयसे शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाले उन भगवान् शिवके पैर पकड़कर उन्हें प्रसन्न करो। उनसे क्षमा माँगो। जिन भगवान्‌के कुपित होनेपर यह सारा जगत् नष्ट हो जाता है तथा जिनके शासनसे लोकपालोंसहित यज्ञका जीवन शीघ्र ही समाप्त हो जाता है, वे भगवान् महादेव इस समय अपनी प्राणवल्लभा सतीसे बिछुड़ गये हैं तथा अत्यन्त दुरात्मा दक्षने अपने दुर्वचनरूपी बाणोंसे उनके हृदयको पहलेसे ही घायल कर दिया है; अतः तुमलोग शीघ्र ही जाकर उनसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगो। विधे! उन्हें शान्त करनेका केवल यही सबसे बड़ा उपाय है। मैं समझता हूँ ऐसा करनेसे भगवान् शंकरको संतोष होगा। यह मैंने सच्ची बात कही है। ब्रह्मन्! मैं भी तुम सब लोगोंके साथ शिवके निवास-स्थानपर चलूँगा और उनसे क्षमा माँगूँगा।

देवता आदिसहित मुझ ब्रह्माको इस प्रकार आदेश देकर श्रीहरिने देवगणोंके साथ कैलास पर्वतपर जानेका विचार किया। तदनन्तर देवता, मुनि और प्रजापति आदि जिनके स्वरूप ही हैं, वे श्रीहरि उन सबको साथ ले अपने वैकुण्ठ-धामसे भगवान् शिवके शुभ निवास गिरिश्रेष्ठ कैलासको गये। कैलास भगवान् शिवको सदा ही अत्यन्त प्रिय है। मनुष्योंसे भिन्न किंनर, अप्सराएँ और योगसिद्ध महात्मा पुरुष उसका भलीभाँति सेवन करते हैं तथा वह पर्वत बहुत ही ऊँचा है। उसके निकट रुद्रदेवके मित्र कुबेरकी अलका नामक महादिव्य एवं रमणीय पुरी है, जिसे सब देवताओंने देखा। उस पुरीके पास ही सौगन्धिक वन भी देवताओंकी दृष्टिमें आया, जो सब प्रकारके वृक्षोंसे हरा-भरा एवं दिव्य था। उसके भीतर सर्वत्र सुगन्ध फैलानेवाले सौगन्धिक नामक कमल खिले हुए थे। उसके बाहरी भागमें नन्दा और अलकनन्दा—ये दो अत्यन्त पावन दिव्य सरिताएँ बहती हैं, जो दर्शनमात्रसे प्राणियोंके पाप हर लेती हैं। यक्षराज कुबेरकी अलकापुरी और सौगन्धिक वनको पीछे छोड़कर आगे बढ़ते हुए देवताओंने थोड़ी ही दूरपर शंकरजीके वटवृक्षको देखा। उसने चारों ओर अपनी अविचल छाया फैला रखी थी। वह वृक्ष सौ योजन ऊँचा था और उसकी शाखाएँ पचहत्तर योजनतक फैली हुई थीं। उसपर कोई घोंसला नहीं था और ग्रीष्मका ताप तो उससे सदा दूर ही रहता था। बड़े पुण्यात्मा पुरुषोंको ही उसका दर्शन हो सकता है। वह परम रमणीय और अत्यन्त पावन है। वह दिव्य वृक्ष भगवान् शम्भुका योगस्थल है। योगियोंके द्वारा सेव्य और परम उत्तम है। मुमुक्षुओंके आश्रयभूत उस महायोगमय वटवृक्षके नीचे विष्णु आदि सब देवताओंने भगवान् शंकरको विराजमान देखा। मेरे पुत्र महासिद्ध सनकादि, जो सदा शिव-भक्तिमें तत्पर रहनेवाले और शान्त हैं, बड़ी प्रसन्नताके साथ उनकी सेवामें बैठे थे। भगवान् शिवका श्रीविग्रह परम शान्त दिखायी देता था। उनके सखा कुबेर, जो गुह्यकों और राक्षसोंके स्वामी हैं, अपने सेवकगणों तथा कुटुम्बीजनोंके साथ सदा विशेषरूपसे उनकी सेवा किया करते हैं। वे परमेश्वर शिव उस समय तपस्वीजनोंको परमप्रिय

लगनेवाला सुन्दररूप धारण किये बैठे थे। भस्म आदिसे उनके अङ्गोंकी बड़ी शोभा हो रही थी। भगवान् शिव अपने वत्सल स्वभावके कारण सारे संसारके सुहृद् हैं। नारद! उस दिन वे एक कुशासनपर बैठे थे और सब संतोंके सुनते हुए तुम्हारे प्रश्न करनेपर तुम्हें उत्तम ज्ञानका उपदेश दे रहे थे। वे बायाँ चरण अपनी दायीं जाँघपर और बायाँ हाथ बायें घुटनेपर रखे, कलाईमें रुद्राक्षकी माला डाले सुन्दर तर्कमुद्रा* से विराजमान थे।

इस रूपमें भगवान् शिवका दर्शन करके उस समय विष्णु आदि सब देवताओंने दोनों हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर तुरंत उनके चरणोंमें प्रणाम किया। मेरे साथ भगवान् विष्णुको आया देख सत्पुरुषोंके आश्रयदाता भगवान् रुद्र उठकर खड़े हो गये और उन्होंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम भी किया। फिर विष्णु आदि सब देवताओंने जब भगवान् शिवको प्रणाम कर लिया, तब उन्होंने मुझे नमस्कार किया—ठीक उसी तरह, जैसे लोकोंको उत्तम गति प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णु प्रजापति कश्यपको प्रणाम करते हैं। तत्पश्चात् देवताओं, सिद्धों, गणाधीशों और महर्षियोंसे नमस्कृत तथा स्वयं भी (श्रीविष्णुको एवं मुझको) नमस्कार करनेवाले भगवान् शिवसे श्रीहरिने आदरपूर्वक वार्तालाप आरम्भ किया।

(अध्याय ४०)

☆

देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति, भगवान् शिवका देवता आदिके अङ्गोंके ठीक होने और दक्षके जीवित होनेका वरदान देना, श्रीहरि आदिके साथ यज्ञमण्डपमें पधारकर शिवका दक्षको जीवित करना तथा दक्ष और विष्णु आदिके द्वारा उनकी स्तुति

देवताओंने भगवान् शिवजीकी अत्यन्त विनयके साथ स्तुति करते हुए अन्तमें कहा—आप पर (उत्कृष्ट), परमेश्वर, परात्पर तथा परात्परतर हैं। आप सर्वव्यापी विश्वमूर्ति महेश्वरको नमस्कार है। आप विष्णुकलत्र, विष्णुक्षेत्र, भानु, भैरव, शरणागतवत्सल, त्र्यम्बक तथा विहरणशील हैं। आप मृत्युञ्जय हैं। शोक भी आपका ही रूप है, आप त्रिगुण एवं गुणात्मा हैं। चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि आपके नेत्र हैं। आप सबके कारण तथा धर्ममर्यादास्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आपने अपने ही तेजसे सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रखा है। आप निर्विकार, प्रकाशपूर्ण, चिदानन्दस्वरूप, परब्रह्म परमात्मा हैं। महेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और चन्द्र आदि समस्त देवता तथा मुनि आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। चूँकि आप अपने शरीरको आठ भागोंमें विभक्त करके समस्त संसारका पोषण करते हैं, इसलिये अष्टमूर्ति कहलाते हैं। आप ही सबके आदिकारण

---

* तर्जनीको अँगूठेसे जोड़कर और अन्य अँगुलियोंको आपसमें मिलाकर फैला देनेसे जो मुद्रा सिद्ध होती है, उसे 'तर्कमुद्रा' कहते हैं। इसीका नाम ज्ञानमुद्रा भी है।

करुणामय ईश्वर हैं। आपके भयसे यह वायु चलती है। आपके भयसे अग्नि जलानेका काम करती है, आपके भयसे सूर्य तपता है और आपके ही भयसे मृत्यु सब ओर दौड़ती फिरती है। दयासिन्धो ! महेशान ! परमेश्वर ! प्रसन्न होइये। हम नष्ट और अचेत हो रहे हैं। *अतः सदा ही हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।* नाथ ! कल्याणनिधे ! शम्भो ! आपने अबतक नाना प्रकारकी आपत्तियोंसे जिस तरह हमें सदा सुरक्षित रखा है, उसी तरह आज भी आप हमारी रक्षा कीजिये। नाथ ! दुर्गेश ! आप शीघ्र कृपा करके इस अपूर्ण यज्ञका और प्रजापति दक्षका भी उद्धार कीजिये। भगको अपनी आँखें मिल जायँ, यजमान दक्ष जीवित हो जायँ, पूषाके दाँत जम जायँ और भृगुकी दाढ़ी-मूँछ पहले-जैसी हो जाय। शंकर ! आयुधों और पत्थरोंकी वर्षासे जिनके अङ्ग-भङ्ग हो गये हैं, उन देवता आदिपर आप सर्वथा अनुग्रह करें, जिससे उन्हें पूर्णतः आरोग्य लाभ हो। नाथ ! यज्ञकर्म पूर्ण होनेपर जो कुछ शेष रहे, वह सब आपका पूरा-पूरा भाग हो (उसमें और कोई हस्तक्षेप न करे)। *रुद्रदेव ! आपके* भागसे ही यज्ञ पूर्ण हो, अन्यथा नहीं।

ऐसा कहकर मुझ ब्रह्माके साथ सभी देवता अपराध क्षमा करानेके लिये उद्यत हो हाथ जोड़ भूमिपर दण्डके समान पड़ गये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मुझ ब्रह्मा, लोकपाल, प्रजापति तथा मुनियोंसहित श्रीपति विष्णुके अनुनय-विनय करनेपर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये। देवताओंको आश्वासन दे हँसकर उनपर परम अनुग्रह करते हुए करुणानिधान परमेश्वर शिवने कहा।

श्रीमहादेवजी बोले—सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा और विष्णुदेव ! आप दोनों सावधान होकर मेरी बात सुनें, *मैं सच्ची बात कहता हूँ। तात !* आप दोनोंकी सभी बातोंको मैंने सदा माना है। दक्षके यज्ञका यह विध्वंस मैंने नहीं किया है। दक्ष स्वयं ही दूसरोंसे द्वेष करते हैं। दूसरोंके प्रति जैसा बर्ताव किया जायगा, वह अपने लिये ही फलित होगा। अतः ऐसा कर्म कभी नहीं करना चाहिये, जो दूसरोंको कष्ट देनेवाला हो*। दक्षका मस्तक जल गया है, इसलिये इनके सिरके स्थानमें बकरेका सिर जोड़ दिया जाय; भग देवता मित्रकी आँखसे अपने यज्ञभागको देखें। तात ! पूषा नामक देवता, जिनके दाँत टूट गये हैं, यजमानके दाँतोंसे भलीभाँति पिसे गये यज्ञान्नका भक्षण करें। यह मैंने सच्ची बात बतायी है। मेरा विरोध करनेवाले भृगुकी दाढ़ीके स्थानमें बकरेकी दाढ़ी लगा दी जाय। शेष सभी देवताओंके, जिन्होंने मुझे यज्ञभागके रूपमें यज्ञकी अवशिष्ट वस्तुएँ दी हैं, सारे अङ्ग पहलेकी भाँति ठीक हो जायँ। अध्वर्यु आदि याज्ञिकोंमेंसे, जिनकी भुजाएँ टूट गयी हैं, वे अश्विनी-कुमारोंकी भुजाओंसे और जिनके हाथ नष्ट हो गये हैं, वे पूषाके हाथोंसे अपने काम चलायें। यह मैंने आपलोगोंके प्रेमवश कहा है।

---

*परं द्वेष्टि परेषां यदात्मनस्तद्भविष्यति ॥ परेषां क्लेशदं कर्म न कार्यं तत्कदाचन ।

(शि० पु० रु० सं० स० खं० ४२ । ८-९)

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर वेदका अनुसरण करनेवाले सुरसम्राट् चराचरपति दयालु परमेश्वर महादेवजी चुप हो गये। भगवान् शंकरका यह भाषण सुनकर श्रीविष्णु और ब्रह्मासहित सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो उन्हें तत्काल साधुवाद देने लगे। तदनन्तर भगवान् शम्भुको आमन्त्रित करके मुझ ब्रह्मा और देवर्षियोंके साथ श्रीविष्णु अत्यन्त हर्षपूर्वक पुनः दक्षकी यज्ञशालाकी ओर चले। इस प्रकार उनकी प्रार्थनासे भगवान् शम्भु विष्णु आदि देवताओंके साथ कनखलमें स्थित प्रजापति दक्षकी यज्ञशालामें पधारे। उस समय रुद्रदेवने वहाँ यज्ञका और विशेषतः देवताओं तथा ऋषियोंका जो वीरभद्रके द्वारा

विध्वंस किया गया था, उसे देखा। स्वाहा, स्वधा, पूषा, तुष्टि, धृति, सरस्वती, अन्य समस्त ऋषि, पितर, अग्नि तथा अन्यान्य बहुत-से यक्ष, गन्धर्व और राक्षस वहाँ पड़े थे। उनमेंसे कुछ लोगोंके अङ्ग तोड़ डाले गये थे, कुछ लोगोंके बाल नोच लिये गये थे और कितने ही उस समराङ्गणमें अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे थे। उस यज्ञकी वैसी दुरवस्था देखकर भगवान् शंकरने अपने गणनायक महापराक्रमी वीरभद्रको बुलाकर हँसते हुए कहा—'महाबाहु वीरभद्र! यह तुमने कैसा काम किया? तात! तुमने थोड़ी ही देरमें देवता तथा ऋषि आदिको बड़ा भारी दण्ड दे दिया। वत्स! जिसने ऐसा द्रोहपूर्ण कार्य किया, इस विलक्षण यज्ञका आयोजन किया और जिसे ऐसा फल मिला, उस दक्षको तुम शीघ्र यहाँ ले आओ।'

भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर वीरभद्रने बड़ी उतावलीके साथ दक्षका धड़ लाकर उनके सामने डाल दिया। दक्षके उस शवको सिरसे रहित देख लोक-कल्याणकारी भगवान् शंकरने आगे खड़े हुए वीरभद्रसे हँसकर पूछा—'दक्षका सिर कहाँ है?' तब प्रभावशाली वीरभद्रने कहा—'प्रभो शंकर! मैंने तो उसी समय दक्षके सिरको आगमें होम दिया था।' वीरभद्रकी यह बात सुनकर भगवान् शंकरने देवताओंको प्रसन्नतापूर्वक वैसी ही आज्ञा दी, जो पहले दे रखी थी। भगवान् भवने उस समय जो कुछ कहा, उसकी मेरे द्वारा पूर्ति कराकर श्रीहरि आदि सब देवताओंने भृगु आदि सबको शीघ्र ही ठीक कर दिया। तदनन्तर शम्भुके आदेशसे प्रजापतिके धड़के साथ यज्ञपशु बकरेका सिर जोड़ दिया गया। उस सिरके जोड़े जाते

ही शम्भुकी शुभ दृष्टि पड़नेसे प्रजापतिके शरीरमें प्राण आ गये और वे तत्काल सोकर जगे हुए पुरुषकी भाँति उठकर खड़े हो गये। उठते ही उन्होंने अपने सामने करुणानिधि भगवान् शंकरको देखा। देखते ही दक्षके हृदयमें प्रेम उमड़ आया। उस प्रेमने उनके अन्तःकरणको निर्मल एवं प्रसन्न कर दिया। पहले महादेवजीसे द्वेष करनेके कारण उनका अन्तःकरण मलिन हो गया था। परंतु उस समय शिवके दर्शनसे वे तत्काल शरद्-ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति निर्मल हो गये। उनके मनमें भगवान् शिवकी स्तुति करनेका विचार उत्पन्न हुआ। परंतु वे अनुरागाधिक्यके कारण तथा अपनी मरी हुई पुत्रीका स्मरण करके व्याकुल हो जानेके कारण तत्काल उनका स्तवन न कर सके। थोड़ी देर बाद मन स्थिर होनेपर दक्षने लज्जित हो लोकशंकर शिवशंकरको प्रणाम किया और उनकी स्तुति आरम्भ की। उन्होंने भगवान् शंकरकी महिमा गाते हुए बारंबार उन्हें प्रणाम किया। फिर अन्तमें कहा—

'परमेश्वर! आपने ब्रह्मा होकर सबसे पहले आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये अपने मुखसे विद्या, तप और व्रत धारण करनेवाले ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था। जैसे ग्वाला लाठी लेकर गौओंकी रक्षा करता है, उसी प्रकार मर्यादाका पालन करनेवाले आप परमेश्वर दण्ड धारण किये उन साधु ब्राह्मणोंकी सभी विपत्तियोंसे रक्षा करते हैं। मैंने दुर्वचनरूपी बाणोंसे आप परमेश्वरको बींध डाला था। फिर भी आप मुझपर अनुग्रह करनेके लिये यहाँ आ गये। अब मेरी ही तरह अत्यन्त दैन्यपूर्ण आशावाले इन देवताओंपर भी कृपा कीजिये। भक्तवत्सल! दीनबन्धो! शम्भो! मुझमें आपको प्रसन्न करनेके लिये कोई गुण नहीं है। आप षड्विध ऐश्वर्यसे सम्पन्न परात्पर परमात्मा हैं। अतः अपने ही बहुमूल्य उदारतापूर्ण बर्तावसे मुझपर संतुष्ट हों।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार लोककल्याणकारी महाप्रभु महेश्वर शंकरकी स्तुति करके विनीतचित्त प्रजापति दक्ष चुप हो गये। तदनन्तर श्रीविष्णुने हाथ जोड़ भगवान् वृषभ-ध्वजको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्ण हृदय और बाष्पगद्गद वाणीद्वारा उनकी स्तुति आरम्भ की।

तदनन्तर मैंने कहा—देवदेव! महादेव! करुणासागर! प्रभो! आप स्वतन्त्र परमात्मा हैं, अद्वितीय एवं अविनाशी परमेश्वर हैं। देव! ईश्वर! आपने मेरे पुत्रपर अनुग्रह किया। अपने अपमानकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर दक्षके यज्ञका उद्धार कीजिये। देवेश्वर! आप प्रसन्न होइये और समस्त शापोंको दूर कर दीजिये। आप सज्ञान हैं। अतः आप ही मुझे कर्तव्यकी ओर प्रेरित करनेवाले हैं और आप ही अकर्तव्यसे रोकनेवाले हैं।

महामुने! इस प्रकार परम महेश्वरकी स्तुति करके मैं दोनों हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर खड़ा हो गया। तब सुन्दर विचार रखनेवाले इन्द्र आदि देवता और लोकपाल शंकरदेवकी स्तुति करने लगे। उस समय भगवान् शिवका मुखारविन्द प्रसन्नतासे

खिल उठा था। इसके बाद प्रसन्नचित्त हुए समस्त देवताओं, दूसरे-दूसरे सिद्धों, ऋषियों और प्रजापतियोंने भी शंकरजीका सहर्ष स्तवन किया। इसके अतिरिक्त उपदेवों, नागों, सदस्यों तथा ब्राह्मणोंने पृथक्-पृथक् प्रणामपूर्वक बड़े भक्तिभावसे उनकी स्तुति की

(अध्याय ४१-४२)

☆

भगवान् शिवका दक्षको अपनी भक्तवत्सलता, ज्ञानी भक्तकी श्रेष्ठता तथा तीनों देवताओंकी एकता बताना, दक्षका अपने यज्ञको पूर्ण करना, सब देवता आदिका अपने-अपने स्थानको जाना, सतीखण्डका उपसंहार और माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार श्रीविष्णुके, मेरे, देवताओं और ऋषियोंके तथा अन्य लोगोंके स्तुति करनेपर महादेवजी बड़े प्रसन्न हुए। फिर उन शम्भुने समस्त ऋषियों, देवता आदिको कृपादृष्टिसे देखकर तथा मुझ ब्रह्मा और विष्णुका समाधान करके दक्षसे इस प्रकार कहा।

महादेवजी बोले—प्रजापति दक्ष ! मैं जो कुछ कहता हूँ, सुनो। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। यद्यपि मैं सबका ईश्वर और स्वतन्त्र हूँ तो भी सदा ही अपने भक्तोंके अधीन रहता हूँ। चार प्रकारके पुण्यात्मा पुरुष मेरा भजन करते हैं। दक्ष प्रजापते ! उन चारों भक्तोंमें पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। उनमें पहला आर्त, दूसरा जिज्ञासु, तीसरा अर्थार्थी और चौथा ज्ञानी है। पहलेके तीन तो सामान्य श्रेणीके भक्त हैं। किंतु चौथाका अपना विशेष महत्त्व है। उन सब भक्तोंमें चौथा ज्ञानी ही मुझे अधिक प्रिय है। वह मेरा रूप माना गया है। उससे बढ़कर दूसरा कोई मुझे प्रिय नहीं है, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ।* मैं आत्मज्ञ हूँ। वेद-वेदान्तके पारगामी विद्वान् ज्ञानके द्वारा मुझे जान सकते हैं। जिनकी बुद्धि मन्द है, वे ही ज्ञानके बिना मुझे पानेका प्रयत्न करते हैं। कर्मके अधीन हुए मूढ़ मानव मुझे वेद, यज्ञ, दान और तपस्याद्वारा भी कभी नहीं पा सकते।

अतः दक्ष ! आजसे तुम बुद्धिके द्वारा मुझ परमेश्वरको जानकर ज्ञानका आश्रय ले समाहितचित्त होकर कर्म करो। प्रजापते ! तुम उत्तम बुद्धिके द्वारा मेरी दूसरी बात भी सुनो। मैं अपने सगुण स्वरूपके विषयमें भी इस गोपनीय रहस्यको धर्मकी दृष्टिसे तुम्हारे सामने प्रकट करता हूँ। जगत्‌का परम कारणरूप मैं ही ब्रह्मा और विष्णु हूँ। मैं

* चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनः सदा। उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठास्तेषां दक्ष प्रजापते॥
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी चैव चतुर्थकः। पूर्वे त्रयश्च सामान्याश्चतुर्थो हि विशिष्यते॥
तत्र ज्ञानी प्रियतरो मम रूपं च स स्मृतः। तस्मात्प्रियतरो नान्यः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

(शि० पु० रु० सं० स० खं० ४३। ४—६)

सबका आत्मा ईश्वर और साक्षी हूँ। स्वयम्प्रकाश तथा निर्विशेष हूँ! मुने! अपनी त्रिगुणात्मिका मायाको स्वीकार करके मैं ही जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करता हुआ उन क्रियाओंके अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण करता हूँ। उस अद्वितीय (भेदरहित) केवल (विशुद्ध) मुझ परब्रह्म परमात्मामें ही अज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, ईश्वर तथा अन्य समस्त जीवोंको भिन्नरूपसे देखता है। जैसे मनुष्य अपने सिर और हाथ आदि अङ्गोंमें 'ये मुझसे भिन्न हैं' ऐसी परकीय बुद्धि कभी नहीं करता, उसी तरह मेरा भक्त प्राणिमात्रमें मुझसे भिन्नता नहीं देखता। दक्ष! मैं, ब्रह्मा और विष्णु तीनों स्वरूपतः एक ही हैं तथा हम ही सम्पूर्ण जीवरूप हैं—ऐसा समझकर जो हम तीनों देवताओंमें भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है। जो नराधम हम तीनों देवताओंमें भेदबुद्धि रखता है, वह निश्चय ही जबतक चन्द्रमा और तारे रहते हैं, तबतक नरकमें निवास करता है।* दक्ष! यदि कोई विष्णुभक्त होकर मेरी निन्दा करेगा और मेरा भक्त होकर विष्णुकी निन्दा करेगा तो तुम्हें दिये हुए पूर्वोक्त सारे शाप उन्हीं दोनोंको प्राप्त होंगे और निश्चय ही उन्हें तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती।☆

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! भगवान् महेश्वरके इस सुखदायक वचनको सुनकर सब देवता, मुनि आदिको उस अवसरपर बड़ा हर्ष हुआ। कुटुम्बसहित दक्ष बड़ी प्रसन्नताके साथ शिवभक्तिमें तत्पर हो गया। वे देवता आदि भी शिवको ही सर्वेश्वर जानकर भगवान् शिवके भजनमें लग गये। जिसने जिस प्रकार परमात्मा शम्भुकी स्तुति की थी, उसे उसी प्रकार संतुष्टचित्त हुए शम्भुने वर दिया। मुने! तदनन्तर भगवान् शिवकी आज्ञा पाकर प्रसन्नचित्त हुए शिवभक्त दक्षने शिवके ही अनुग्रहसे अपना यज्ञ पूरा किया। उन्होंने देवताओंको तो यज्ञभाग दिये ही, शिवको भी पूर्ण भाग दिया। साथ ही ब्राह्मणोंको दान दिया! इस तरह उन्हें शम्भुका अनुग्रह प्राप्त हुआ। इस प्रकार महादेवजीके उस महान् कर्मका विधिपूर्वक वर्णन किया गया। प्रजापतिने ऋत्विजोंके सहयोगसे उस यज्ञकर्मको विधिवत् समाप्त किया। मुनीश्वर! इस प्रकार परब्रह्मस्वरूप शंकरके प्रसादसे वह दक्षका यज्ञ पूरा हुआ। तदनन्तर सब देवता और ऋषि संतुष्ट हो भगवान् शिवके यशका वर्णन करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये। दूसरे लोग भी उस समय वहाँसे सुखपूर्वक विदा हो गये। मैं और श्रीविष्णु भी अत्यन्त प्रसन्न हो भगवान् शिवके सर्वमङ्गलदायक सुयशका निरन्तर गान करते हुए अपने-अपने स्थानको सानन्द चले आये। सत्पुरुषोंके आश्रयभूत महादेवजी भी

---

* सर्वभूतात्मनामेकभावानां यो न पश्यति। त्रिसुराणां भिदां दक्ष स शान्तिमधिगच्छति॥
यः करोति त्रिदेवेषु भेदबुद्धिं नराधमः। नरके स वसेन्नूनं यावदाचन्द्रतारकम्॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० ४३। १६-१७)

☆ हरिभक्तो हि मां निन्देत्तथा शैवो भवेद्यदि। तयोः शापा भवेयुस्ते तत्त्वप्राप्तिर्भवेन्नहि॥
(शि० पु० रु० सं० स० खं० ४३। २१)

दक्षसे सम्मानित हो प्रीति और प्रसन्नताके साथ गणोंसहित अपने निवास-स्थान कैलास पर्वतको चले गये। अपने पर्वतपर आकर शम्भुने अपनी प्रिया सतीका स्मरण किया और प्रधान-प्रधान गणोंसे उनकी कथा कही।

इस प्रकार दक्षकन्या सती यज्ञमें अपने शरीरको त्यागकर फिर हिमालयकी पत्नी मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुईं, यह बात प्रसिद्ध है। फिर वहाँ तपस्या करके गौरी शिवाने भगवान् शिवका पतिरूपमें वरण किया। वे उनके वामाङ्गमें स्थान पाकर अद्भुत लीलाएँ करने लगीं। नारद ! इस तरह मैंने तुमसे सतीके परम अद्भुत दिव्य चरित्रका वर्णन किया है, जो भोग और मोक्षको देनेवाला तथा सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। यह उपाख्यान पापको दूर करनेवाला, पवित्र एवं परम पावन है। स्वर्ग, यश तथा आयुको देनेवाला तथा पुत्र-पौत्र-रूप फल प्रदान करनेवाला है। तात ! जो भक्तिमान् पुरुष भक्तिभावसे लोगोंको यह कथा सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण कर्मोंका फल पाकर परलोकमें परमगतिको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय ४३)

☆

॥रुद्रसंहिताका सतीखण्ड सम्पूर्ण॥

☆

रुद्रसंहिता, तृतीय (पार्वती) खण्ड

हिमालयके स्थावर-जंगम द्विविध स्वरूप एवं दिव्यत्वका वर्णन, मेनाके साथ उनका विवाह तथा मेना आदिको पूर्वजन्ममें प्राप्त हुए सनकादिके शाप एवं वरदानका कथन

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन्! पिताके यज्ञमें अपने शरीरका परित्याग करके दक्षकन्या जगदम्बा सती देवी किस प्रकार गिरिराज हिमालयकी पुत्री हुईं? किस तरह अत्यन्त उग्र तपस्या करके उन्होंने पुनः शिवको ही पतिरूपमें प्राप्त किया? यह मेरा प्रश्न है, आप इसपर भलीभाँति और विशेषरूपसे प्रकाश डालिये।

ब्रह्माजीने कहा—मुने! नारद! तुम पहले पार्वतीकी माताके जन्म, विवाह और अन्य भक्तिवर्धक पावन चरित्र सुनो। मुनिश्रेष्ठ! उत्तर दिशामें पर्वतोंका राजा हिमवान् नामक महान् पर्वत है, जो महातेजस्वी और समृद्धिशाली है। उसके दो रूप प्रसिद्ध हैं—एक स्थावर और दूसरा जंगम। मैं संक्षेपसे उसके सूक्ष्म (स्थावर) स्वरूपका वर्णन करता हूँ। वह रमणीय पर्वत नाना प्रकारके रत्नोंका आकर (खान) है और पूर्व तथा पश्चिम समुद्रके भीतर प्रवेश करके इस तरह खड़ा है, मानो भूमण्डलको नापनेके लिये कोई मानदण्ड हो। वह नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त है और अनेक शिखरोंके कारण विचित्र शोभासे सम्पन्न दिखायी देता है। सिंह, व्याघ्र आदि पशु सदा सुखपूर्वक उसका सेवन करते हैं। हिमका तो वह भंडार ही है, इसलिये अत्यन्त उग्र जान पड़ता है। भाँति-भाँतिके आश्चर्यजनक दृश्योंसे उसकी विचित्र शोभा होती है। देवता, ऋषि, सिद्ध और मुनि उस पर्वतका आश्रय लेकर रहते हैं। भगवान् शिवको वह बहुत ही प्रिय है, तपस्या करनेका स्थान है। स्वरूपसे ही वह अत्यन्त पवित्र और महात्माओंको भी पावन करनेवाला है। तपस्यामें वह अत्यन्त शीघ्र सिद्धि प्रदान करता है। अनेक प्रकारके धातुओंकी खान और शुभ है। वही दिव्य शरीर धारण करके सर्वाङ्ग-सुन्दर रमणीय देवताके रूपमें भी स्थित है। भगवान् विष्णुका अविकृत अंश है, इसीलिये वह शैलराज साधु-संतोंको अधिक प्रिय है।

एक समय गिरिवर हिमवान्‌ने अपनी कुल-परम्पराकी स्थिति और धर्मकी वृद्धिके लिये देवताओं तथा पितरोंका हित करनेकी अभिलाषासे अपना विवाह करनेकी इच्छा की। मुनीश्वर! उस अवसरपर सम्पूर्ण देवता अपने स्वार्थका विचार करके दिव्य पितरोंके पास आकर उनसे प्रसन्नता-पूर्वक बोले।

देवताओंने कहा—पितरो! आप सब लोग प्रसन्नचित्त होकर हमारी बात सुनें और यदि देवताओंका कार्य सिद्ध करना आपको भी अभीष्ट हो तो शीघ्र वैसा ही करें। आपकी ज्येष्ठ पुत्री जो मेना नामसे प्रसिद्ध है, वह मङ्गलरूपिणी है। उसका विवाह आपलोग अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक हिमवान् पर्वतसे कर दें। ऐसा करनेपर आप सब लोगोंको सर्वथा महान् लाभ होगा और देवताओंके दुःखोंका निवारण भी पग-पगपर होता रहेगा।

देवताओंकी यह बात सुनकर पितरोंने

परस्पर विचार करके स्वीकृति दे दी और अपनी पुत्री मेनाको विधिपूर्वक हिमालयके हाथमें दे दिया। उस परम मङ्गलमय विवाहमें बड़ा उत्सव मनाया गया। मुनीश्वर नारद! मेनाके साथ हिमालयके शुभ विवाहका यह सुखद प्रसङ्ग मैंने तुमसे प्रसन्नतापूर्वक कहा है। अब और क्या सुनना चाहते हो?

नारदजीने पूछा—विधे! विद्वन्! अब आदरपूर्वक मेरे सामने मेनाकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये। उसे किस प्रकार शाप प्राप्त हुआ था, यह कहिये और मेरे संदेहका निवारण कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—मुने! मैंने अपने दक्ष नामक जिस पुत्रकी पहले चर्चा की है, उनके साठ कन्याएँ हुई थीं, जो सृष्टिकी उत्पत्तिमें कारण बनीं। नारद! दक्षने कश्यप आदि श्रेष्ठ मुनियोंके साथ उनका विवाह किया था, यह सब वृत्तान्त तो तुम्हें विदित ही है। अब प्रस्तुत विषयको सुनो। उन कन्याओंमें एक स्वधा नामकी कन्या थी, जिसका विवाह उन्होंने पितरोंके साथ किया। स्वधाकी तीन पुत्रियाँ थीं, जो सौभाग्यशालिनी तथा धर्मकी मूर्ति थीं। उनमेंसे ज्येष्ठ पुत्रीका नाम 'मेना' था। मँझली 'धन्या'के नामसे प्रसिद्ध थी और सबसे छोटी कन्याका नाम 'कलावती' था। ये सारी कन्याएँ पितरोंकी मानसी पुत्रियाँ थीं—उनके मनसे प्रकट हुई थीं। इनका जन्म किसी माताके गर्भसे नहीं हुआ था, अतएव ये अयोनिजा थीं; केवल लोकव्यवहारसे स्वधाकी पुत्री मानी जाती थीं। इनके सुन्दर नामोंका कीर्तन करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्टको प्राप्त कर लेता है। ये सदा सम्पूर्ण जगत्‌की वन्दनीया लोकमाताएँ हैं और उत्तम अभ्युदयसे सुशोभित रहती हैं। सब-की-सब परम योगिनी, ज्ञाननिधि तथा तीनों लोकोंमें सर्वत्र जा सकनेवाली हैं। मुनीश्वर! एक समय वे तीनों बहिनें भगवान् विष्णुके निवासस्थान श्वेतद्वीपमें उनका दर्शन करनेके लिये गयीं। भगवान् विष्णुको प्रणाम और भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करके वे उन्हींकी आज्ञासे वहाँ ठहर गयीं। उस समय वहाँ संतोंका बड़ा भारी समाज एकत्र हुआ था।

मुने! उसी अवसरपर मेरे पुत्र सनकादि सिद्धगण भी वहाँ गये और श्रीहरिकी स्तुति-वन्दना करके उन्हींकी आज्ञासे वहाँ ठहर गये। सनकादि मुनि देवताओंके आदिपुरुष और सम्पूर्ण लोकोंमें वन्दित हैं। वे जब वहाँ आकर खड़े हुए, उस समय श्वेतद्वीपके सब लोग उन्हें देख प्रणाम करते हुए उठकर खड़े हो गये। परंतु ये तीनों बहिनें उन्हें देखकर भी वहाँ नहीं उठीं। इससे सनत्कुमारने उनको (मर्यादा-रक्षार्थ) उन्हें स्वर्गसे दूर होकर नर-स्त्री बननेका शाप दे दिया। फिर उनके प्रार्थना करनेपर वे प्रसन्न हो गये और बोले।

सनत्कुमारने कहा—पितरोंकी तीनों कन्याओ! तुम प्रसन्नचित्त होकर मेरी बात सुनो। यह तुम्हारे शोकका नाश करनेवाली और सदा ही तुम्हें सुख देनेवाली है। तुममेंसे जो ज्येष्ठ है, वह भगवान् विष्णुकी अंशभूत हिमालय गिरिकी पत्नी हो। उससे जो कन्या होगी, वह 'पार्वती'के नामसे विख्यात होगी। पितरोंकी दूसरी प्रिय कन्या, योगिनी धन्या राजा जनककी पत्नी होगी। उसकी कन्याके रूपमें महालक्ष्मी अवतीर्ण होंगी, जिनका नाम 'सीता' होगा। इसी प्रकार पितरोंकी छोटी पुत्री कलावती द्वापरके

अन्तिम भागमें वृषभानु वैश्यकी पत्नी होगी और उसकी प्रिय पुत्री 'राधा'के नामसे विख्यात होगी। योगिनी मेनका (मेना) पार्वतीजीके वरदानसे अपने पतिके साथ उसी शरीरसे कैलास नामक परमपदको प्राप्त हो जायगी। धन्या तथा उनके पति, जनककुलमें उत्पन्न हुए जीवन्मुक्त महायोगी राजा सीरध्वज, लक्ष्मीस्वरूपा सीताके प्रभावसे वैकुण्ठ धाममें जायँगे। वृषभानुके साथ वैवाहिक मङ्गलकृत्य सम्पन्न होनेके कारण जीवन्मुक्त योगिनी कलावती भी अपनी कन्या राधाके साथ गोलोकधाममें जायगी—इसमें संशय नहीं है। विपत्तिमें पड़े बिना कहाँ किनकी महिमा प्रकट होती है। उत्तम कर्म करनेवाले पुण्यात्मा पुरुषोंका संकट जब टल जाता है, तब उन्हें दुर्लभ सुखकी प्राप्ति होती है। अब तुमलोग प्रसन्नतापूर्वक मेरी दूसरी बात भी सुनो, जो सदा सुख देनेवाली है। मेनाकी पुत्री जगदम्बा पार्वती देवी अत्यन्त दुस्सह तप करके भगवान् शिवकी प्रिय पत्नी बनेंगी। धन्याकी पुत्री सीता भगवान् श्रीरामजीकी पत्नी होंगी और लोकाचारका आश्रय ले श्रीरामके साथ विहार करेंगी। साक्षात् गोलोक-धाममें निवास करनेवाली राधा ही कलावतीकी पुत्री होंगी। वे गुप्त स्नेहमें बँधकर श्रीकृष्णकी प्रियतमा बनेंगी।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार शापके व्याजसे दुर्लभ वरदान देकर सबके द्वारा प्रशंसित भगवान् सनत्कुमार मुनि भाइयोंसहित वहीं अन्तर्धान हो गये। तात! पितरोंकी मानसी पुत्री वे तीनों बहिनें इस प्रकार शापमुक्त हो सुख पाकर तुरंत अपने घरको चली गयीं। (अध्याय १-२)

☆

देवताओंका हिमालयके पास जाना और उनसे सत्कृत हो उन्हें उमाराधनकी विधि बता स्वयं भी एक सुन्दर स्थानमें जाकर उनकी स्तुति करना

नारदजी बोले—महामते! आपने मेनाके पूर्वजन्मकी यह शुभ एवं अद्भुत कथा कही है। उनके विवाहका प्रसङ्ग भी मैंने सुन लिया। अब आगेके उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—नारद! जब मेनाके साथ विवाह करके हिमवान् अपने घरको गये, तब तीनों लोकोंमें बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। हिमालय भी अत्यन्त प्रसन्न हो मेनाके साथ अपने सुखदायक सदनमें निवास करने लगे। मुने! उस समय श्रीविष्णु आदि समस्त देवता और महात्मा मुनि गिरिराजके पास गये। उन सब देवताओंको आया देख महान् हिमगिरिने प्रशंसापूर्वक उन्हें प्रणाम किया और अपने भाग्यकी सराहना करते हुए भक्तिभावसे उन सबका आदर-सत्कार किया। हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर वे बड़े प्रेमसे स्तुति करनेको उद्यत हुए। शैलराजके शरीरमें महान् रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहने लगे। मुने! हिमशैलने प्रसन्न मनसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और विनीतभावसे खड़े हो श्रीविष्णु आदि देवताओंसे कहा।

हिमाचल बोले—आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरी बड़ी भारी तपस्या

सफल हुई। आज मेरा ज्ञान सफल हुआ और आज मेरी सारी क्रियाएँ सफल हो गयीं। आज मैं धन्य हुआ। मेरी सारी भूमि धन्य हुई। मेरा कुल धन्य हुआ। मेरी स्त्री तथा मेरा सब कुछ धन्य हो गया, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि आप सब महान् देवता एक साथ मिलकर एक ही समय यहाँ पधारे हैं। मुझे अपना सेवक समझकर प्रसन्नतापूर्वक उचित कार्यके लिये आज्ञा दें।

हिमगिरिका यह वचन सुनकर वे सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और अपने कार्यकी सिद्धि मनाते हुए बोले।

देवताओंने कहा—महाप्राज्ञ हिमाचल! हमारा हितकारक वचन सुनो। हम सब लोग जिस कामके लिये यहाँ आये हैं, उसे प्रसन्नतापूर्वक बता रहे हैं। गिरिराज! पहले जो जगदम्बा उमा दक्षकन्या सतीके रूपमें प्रकट हुई थीं और रुद्रपत्नी होकर सुदीर्घकालतक इस भूतलपर क्रीडा करती रहीं, वे ही अम्बिका सती अपने पितासे अनादर पाकर अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण करके यज्ञमें शरीर त्याग अपने परम धामको पधार गयीं। हिमगिरे! यह कथा लोकमें विख्यात है और तुम्हें भी विदित है। यदि वे सती पुनः तुम्हारे घरमें प्रकट हो जायँ तो देवताओंका महान् लाभ हो सकता है।

ब्रह्माजी कहते हैं—श्रीविष्णु आदि देवताओंकी यह बात सुनकर गिरिराज हिमालय मन-ही-मन प्रसन्न हो आदरसे झुक गये और बोले—'प्रभो! ऐसा हो तो बड़े सौभाग्यकी बात है।' तदनन्तर वे देवता उन्हें बड़े आदरसे उमाको प्रसन्न करनेकी विधि बताकर स्वयं सदाशिव-पत्नी उमाकी शरणमें गये। एक सुन्दर स्थानमें स्थित हो समस्त देवताओंने जगदम्बाका स्मरण किया और बारंबार प्रणाम करके वे वहाँ श्रद्धापूर्वक उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—शिवलोकमें निवास करनेवाली देवि! उमे! जगदम्बे! सदाशिव-प्रिये! दुर्गे! महेश्वरि! हम आपको नमस्कार करते हैं। आप पावन शान्तस्वरूप श्रीशक्ति हैं, परमपावन पुष्टि हैं। अव्यक्त प्रकृति और महत्तत्त्व—ये आपके ही रूप हैं। हम भक्तिपूर्वक आपको नमस्कार करते हैं। आप कल्याणमयी शिवा हैं। आपके हाथ भी कल्याणकारी हैं। आप शुद्ध, स्थूल, सूक्ष्म और सबका परम आश्रय हैं। अन्तर्विद्या और सुविद्यासे अत्यन्त प्रसन्न रहनेवाली आप देवीको हम प्रणाम करते हैं। आप श्रद्धा हैं। आप धृति हैं। आप श्री हैं और आप ही सबमें व्याप्त रहनेवाली देवी हैं। आप ही सूर्यकी किरणें हैं और आप ही अपने प्रपञ्चको प्रकाशित करनेवाली हैं। ब्रह्माण्डरूप शरीरमें और जगत्के जीवोंमें रहकर जो ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्की पुष्टि करती हैं, उन आदिदेवीको हम नमस्कार करते हैं। आप ही वेदमाता गायत्री हैं, आप ही सावित्री और सरस्वती हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत्के लिये वार्ता नामक वृत्ति हैं और आप ही धर्मस्वरूपा वेदत्रयी हैं। आप ही सम्पूर्ण भूतोंमें निद्रा बनकर रहती हैं। उनकी क्षुधा और तृप्ति भी आप ही हैं। आप ही तृष्णा, कान्ति, छवि, तुष्टि और सदा सम्पूर्ण आनन्दको देनेवाली हैं। आप ही पुण्यकर्ताओंके यहाँ लक्ष्मी बनकर रहती हैं और आप ही पापियोंके घर सदा ज्येष्ठा (लक्ष्मीकी बड़ी बहिन दरिद्रता) के रूपमें वास करती हैं। आप ही सम्पूर्ण

जगत्‌की शान्ति हैं। आप ही धारण करनेवाली धात्री एवं प्राणोंका पोषण करनेवाली शक्ति हैं। आप ही पाँचों भूतोंके सारतत्त्वको प्रकट करनेवाली तत्त्वस्वरूपा हैं। आप ही नीतिज्ञोंकी नीति तथा व्यवसायरूपिणी हैं। आप ही सामवेदकी गीति हैं। आप ही ग्रन्थि हैं। आप ही यजुर्मन्त्रोंकी आहुति हैं। ऋग्वेदकी मात्रा तथा अथर्ववेदकी परम गति भी आप ही हैं। जो प्राणियोंके नाक, कान, नेत्र, मुख, भुजा, वक्षःस्थल और हृदयमें धृतिरूपसे स्थित हो सदा ही उनके लिये सुखका विस्तार करती हैं। जो निद्राके रूपमें संसारके लोगोंको अत्यन्त सुभग प्रतीत होती हैं, वे देवी उमा जगत्‌की स्थिति एवं पालनके लिये हम सबपर प्रसन्न हों।

इस प्रकार जगज्जननी सती-साध्वी महेश्वरी उमाकी स्तुति करके अपने हृदयमें विशुद्ध प्रेम लिये वे सब देवता उनके दर्शनकी इच्छासे वहाँ खड़े हो गये।

(अध्याय ३)

☆

उमा देवीका दिव्यरूपसे देवताओंको दर्शन देना, देवताओंका उनसे अपना अभिप्राय निवेदन करना और देवीका अवतार लेनेकी बात स्वीकार करके देवताओंको आश्वासन देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर दुर्गम पीड़ाका नाश करनेवाली जगज्जननी देवी दुर्गा उनके सामने प्रकट हुईं। वे परम अद्भुत दिव्य

रत्नमय रथपर बैठी हुई थीं। उस श्रेष्ठ रथमें घुँघुरू लगे हुए थे और मुलायम बिस्तर बिछे थे। उनके श्रीविग्रहका एक-एक अङ्ग करोड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान और रमणीय था। ऐसे अवयवोंसे वे अत्यन्त उद्भासित हो रही थीं। सब ओर फैली हुई अपनी तेजोराशिके मध्यभागमें वे विराजमान थीं। उनका रूप बहुत ही सुन्दर था और उनकी छविकी कहीं तुलना नहीं थी। सदाशिवके साथ विलास करनेवाली उन महामायाकी किसीके साथ समानता नहीं थी। शिवलोकमें निवास करनेवाली वे देवी त्रिविध चिन्मय गुणोंसे युक्त थीं। प्राकृत गुणोंका अभाव होनेसे उन्हें निर्गुणा कहा जाता है। वे नित्यरूपा हैं। वे दुष्टोंपर प्रचण्ड कोप करनेके कारण चण्डी कहलाती हैं, परंतु स्वरूपसे शिवा (कल्याणमयी) हैं। सबकी सम्पूर्ण पीड़ाओंका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण जगत्‌की माता हैं। वे ही

प्रलयकालमें महानिद्रा होकर सबको अपने अङ्कमें सुला लेती हैं तथा वे समस्त स्वजनों (भक्तों)का संसार-सागरसे उद्धार कर देती हैं। शिवादेवीकी तेजोराशिके प्रभावसे देवता उन्हें अच्छी तरह देख न सके। तब उनके दर्शनकी अभिलाषासे देवताओंने फिर उनका स्तवन किया। तदनन्तर दर्शनकी इच्छा रखनेवाले विष्णु आदि सब देवता उन जगदम्बाकी कृपा पाकर वहाँ उनका सुस्पष्ट दर्शन कर सके।

इसके बाद देवता बोले—अम्बिके! महादेवि! हम सदा आपके दास हैं। आप प्रसन्नतापूर्वक हमारा निवेदन सुनें। पहले आप दक्षकी पुत्रीरूपसे अवतीर्ण हो लोकमें रुद्रदेवकी वल्लभा हुई थीं। उस समय आपने ब्रह्माजीके तथा दूसरे देवताओंके महान् दुःखका निवारण किया था। तदनन्तर पितासे अनादर पाकर अपनी की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार आपने शरीरको त्याग दिया और स्वधाममें पधार आयीं। इससे भगवान् हरको भी बड़ा दुःख हुआ। महेश्वरि! आपके चले आनेसे देवताओंका कार्य पूरा नहीं हुआ। अतः हम देवता और मुनि व्याकुल होकर आपकी शरणमें आये हैं। महेशानि! शिवे! आप देवताओंका मनोरथ पूर्ण करें, जिससे सनत्कुमारका वचन सफल हो। देवि! आप भूतलपर अवतीर्ण हो पुनः रुद्रदेवकी पत्नी होइये और यथायोग्य ऐसी लीला कीजिये, जिससे देवताओंको सुख प्राप्त हो। देवि! इससे कैलास पर्वतपर निवास करनेवाले रुद्रदेव भी सुखी होंगे। आप ऐसी कृपा करें, जिससे सब सुखी हों और सबका सारा दुःख नष्ट हो जाय।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर विष्णु आदि सब देवता प्रेममें मग्न हो गये और भक्तिसे विनम्र होकर चुपचाप खड़े रहे। देवताओंकी यह स्तुति सुनकर शिवादेवीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके हेतुका विचार करके अपने प्रभु शिवका स्मरण करती हुई भक्तवत्सला दयामयी उमादेवी उस समय विष्णु आदि देवताओंको सम्बोधित करके हँसकर बोलीं।

उमाने कहा—हे हरे! हे विधे! और हे देवताओ तथा मुनियो! तुम सब लोग अपने मनसे व्यथाको निकाल दो और मेरी बात सुनो। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, इसमें संशय नहीं है। सब लोग अपने-अपने स्थानको जाओ और चिरकालतक सुखी रहो। मैं अवतार ले मेनाकी पुत्री होकर उन्हें सुख दूँगी और रुद्रदेवकी पत्नी हो जाऊँगी। यह मेरा अत्यन्त गुप्त मत है। भगवान् शिवकी लीला अद्भुत है। वह ज्ञानियोंको भी मोहमें डालनेवाली है। देवताओ! उस यज्ञमें जाकर पिताके द्वारा अपने स्वामीका अनादर देख जबसे मैंने दक्षजनित शरीरको त्याग दिया है, तभीसे वे मेरे स्वामी कालाग्नि रुद्रदेव तत्काल दिगम्बर हो गये। वे मेरी ही चिन्तामें डूबे रहते हैं। उनके मनमें यह विचार उठा करता है कि धर्मको जाननेवाली सती मेरा रोष देखकर पिताके यज्ञमें गयी और वहाँ मेरा अनादर देख मुझमें प्रेम होनेके कारण उसने अपना शरीर त्याग दिया। यही सोचकर वे घर-बार छोड़ अलौकिक वेष धारण करके योगी हो गये। मेरी स्वरूपभूता सतीके वियोगको वे महेश्वर सहन न कर सके। देवताओ! भगवान् रुद्रकी भी यह अत्यन्त इच्छा है कि भूतलपर मेना और

हिमाचलके घरमें मेरा अवतार हो; क्योंकि वे पुनः मेरा पाणिग्रहण करनेकी अधिक अभिलाषा रखते हैं। अतः मैं रुद्रदेवके संतोषके लिये अवतार लूँगी और लौकिक गतिका आश्रय लेकर हिमालय-पत्नी मेनाकी पुत्री होऊँगी।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर जगदम्बा शिवा उस समय समस्त देवताओंके देखते-देखते ही अदृश्य हो गयीं और तुरंत अपने लोकमें चली गयीं। तदनन्तर हर्षसे भरे हुए विष्णु आदि समस्त देवता और मुनि उस दिशाको प्रणाम करके अपने-अपने धाममें चले गये।

(अध्याय ४)

☆

मेनाको प्रत्यक्ष दर्शन देकर शिवादेवीका उन्हें अभीष्ट वरदानसे संतुष्ट करना तथा मेनासे मैनाकका जन्म

नारदजीने पूछा—पिताजी! जब देवी दुर्गा अन्तर्धान हो गयीं और देवगण अपने-अपने धामको चले गये, उसके बाद क्या हुआ?

ब्रह्माजीने कहा—मेरे पुत्रोंमें श्रेष्ठ विप्रवर नारद! जब विष्णु आदि देवसमुदाय हिमालय और मेनाको देवीकी आराधनाका उपदेश दे चले गये, तब गिरिराज हिमाचल और मेना दोनों दम्पतिने बड़ी भारी तपस्या आरम्भ की। वे दिन-रात शम्भु और शिवाका चिन्तन करते हुए भक्तियुक्त चित्तसे नित्य उनकी सम्यक् रीतिसे आराधना करने लगे। हिमवान्‌की पत्नी मेना बड़ी प्रसन्नतासे शिवसहित शिवादेवीकी पूजा करने लगीं। वे उन्हींके संतोषके लिये सदा ब्राह्मणोंको दान देती रहती थीं। मनमें संतानकी कामना ले मेना चैत्रमासके आरम्भसे लेकर सत्ताईस वर्षोंतक प्रतिदिन तत्परतापूर्वक शिवा-देवीकी पूजा और आराधनामें लगी रहीं। वे अष्टमीको उपवास करके नवमीको लड्डू, बलि-सामग्री, पीठी, खीर और गन्ध-पुष्प आदि देवीको भेंट करती थीं। गङ्गाके किनारे ओषधिप्रस्थमें उमाकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर नाना प्रकारकी वस्तुएँ समर्पित करके उसकी पूजा करती थीं। मेनादेवी कभी निराहार रहतीं, कभी व्रतके नियमोंका पालन करतीं, कभी जल पीकर रहतीं और कभी हवा पीकर ही रह जाती थीं। विशुद्ध तेजसे दमकती हुई दीप्तिमती मेनाने प्रेमपूर्वक शिवामें चित्त लगाये सत्ताईस वर्ष व्यतीत कर दिये। सत्ताईस वर्ष पूरे होनेपर जगन्मयी शंकरकामिनी जगदम्बा उमा अत्यन्त प्रसन्न हुईं। मेनाकी उत्तम भक्तिसे संतुष्ट हो वे परमेश्वरी देवी उनपर अनुग्रह करनेके लिये उनके सामने प्रकट हुईं। तेजोमण्डलके बीचमें विराजमान तथा दिव्य अवयवोंसे संयुक्त उमादेवी प्रत्यक्ष दर्शन दे मेनासे हँसती हुई बोलीं।

देवीने कहा—गिरिराज हिमालयकी रानी महासाध्वी मेना! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसे कहो। मेना! तुमने तपस्या, व्रत और समाधिके द्वारा जिस-जिस वस्तुके लिये प्रार्थना की है, वह सब मैं तुम्हें दूँगी। तब मेनाने प्रत्यक्ष प्रकट हुई कालिकादेवीको देखकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा।

मेना बोलीं—देवि ! इस समय मुझे आपके रूपका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है। अतः मैं आपकी स्तुति करना चाहती हूँ। कालिके ! इसके लिये आप प्रसन्न हों।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेनाके ऐसा कहनेपर सर्वमोहिनी कालिका देवीने मनमें अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी दोनों बाहोंसे खींचकर मेनाको हृदयसे लगा लिया। इससे उन्हें तत्काल महाज्ञानकी प्राप्ति हो गयी। फिर तो मेनादेवी प्रिय वचनोंद्वारा भक्ति-भावसे अपने सामने खड़ी हुई कालिकाकी स्तुति करने लगीं।

मेना बोलीं—जो महामाया जगत्को धारण करनेवाली चण्डिका, लोकधारिणी तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थोंको देनेवाली हैं, उन महादेवीको मैं प्रणाम करती हूँ। जो नित्य आनन्द प्रदान करनेवाली माया, योगनिद्रा, जगज्जननी तथा सुन्दर कमलोंकी मालासे अलंकृत हैं, उन नित्य-सिद्धा उमादेवीको मैं नमस्कार करती हूँ। जो सबकी मातामही, नित्य आनन्दमयी, भक्तोंके शोकका नाश करनेवाली तथा कल्पपर्यन्त नारियों एवं प्राणियोंकी बुद्धिरूपिणी हैं, उन देवीको मैं प्रणाम करती हूँ। आप यतियोंके अज्ञानमय बन्धनके नाशकी हेतुभूता ब्रह्मविद्या हैं। फिर मुझ-जैसी नारियाँ आपके प्रभावका क्या वर्णन कर सकती हैं। अथर्ववेदकी जो हिंसा (मारण आदिका प्रयोग) है, वह आप ही हैं। देवि ! आप मेरे अभीष्ट फलको सदा प्रदान कीजिये। भावहीन (आकाररहित) तथा अदृश्य नित्यानित्य तन्मात्राओंसे आप ही पञ्चभूतोंके समुदायको संयुक्त करती हैं। आप ही उनकी शाश्वत शक्ति हैं। आपका स्वरूप नित्य है। आप समय-समयपर योगयुक्त एवं समर्थ नारीके रूपमें प्रकट होती हैं। आप ही जगत्की योनि और आधार-शक्ति हैं। आप ही प्राकृत तत्त्वोंसे परे नित्या प्रकृति कही गयी हैं। जिसके द्वारा ब्रह्मके स्वरूपको वशमें किया जाता (जाना जाता) है, वह नित्या विद्या आप ही हैं। मातः ! आज मुझपर प्रसन्न होइये। आप ही अग्निके भीतर व्याप्त उग्र दाहिका शक्ति हैं। आप ही सूर्य-किरणोंमें स्थित प्रकाशिका शक्ति हैं। चन्द्रमामें जो आह्लादिका शक्ति है, वह भी आप ही हैं। ऐसी आप चण्डी देवीका मैं स्तवन और वन्दन करती हूँ। आप स्त्रियोंको बहुत प्रिय हैं। ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारियोंकी ध्येयभूता नित्या ब्रह्मशक्ति

भी आप ही हैं। सम्पूर्ण जगत्‌की वाञ्छा तथा श्रीहरिकी माया भी आप ही हैं। जो देवी इच्छानुसार रूप धारण करके सृष्टि, पालन और संहारमयी हो उन कार्योंका सम्पादन करती हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रके शरीरकी भी हेतुभूता हैं, वे आप ही हैं। देवि ! आज आप मुझपर प्रसन्न हों। आपको पुनः मेरा नमस्कार है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेनाके इस प्रकार स्तुति करनेपर दुर्गा कालिकाने पुनः उन मेनादेवीसे कहा—'तुम अपना मनोवाञ्छित वर माँग लो। हिमाचलप्रिये ! तुम मुझे प्राणोंके समान प्यारी हो। तुम्हारी जो इच्छा हो, वह माँगो। उसे मैं निश्चय ही दे दूँगी। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।'

महेश्वरी उमाका यह अमृतके समान मधुर वचन सुनकर हिमगिरिकामिनी मेना बहुत संतुष्ट हुईं और इस प्रकार बोलीं—'शिवे ! आपकी जय हो, जय हो। उत्कृष्ट ज्ञानवाली महेश्वरि ! जगदम्बिके ! यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ तो फिर आपसे श्रेष्ठ वर माँगती हूँ। जगदम्बे ! पहले तो मुझे सौ पुत्र हों। उन सबकी बड़ी आयु हो। वे बल-पराक्रमसे युक्त तथा ऋद्धि-सिद्धिसे सम्पन्न हों। उन पुत्रोंके पश्चात् मेरे एक पुत्री हो, जो स्वरूप और गुणोंसे सुशोभित होनेवाली हो; वह दोनों कुलोंको आनन्द देनेवाली तथा तीनों लोकोंमें पूजित हो। जगदम्बिके ! शिवे ! आप ही देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मेरी पुत्री तथा रुद्रदेवकी पत्नी होइये और तदनुसार लीला कीजिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेनकाकी बात सुनकर प्रसन्नहृदया देवी उमाने उनके मनोरथको पूर्ण करनेके लिये मुसकराकर कहा।

देवी बोलीं—पहले तुम्हें सौ बलवान् पुत्र प्राप्त होंगे। उनमें भी एक सबसे अधिक बलवान् और प्रधान होगा, जो सबसे पहले उत्पन्न होगा। तुम्हारी भक्तिसे संतुष्ट हो मैं स्वयं तुम्हारे यहाँ पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण होऊँगी और समस्त देवताओंसे सेवित हो उनका कार्य सिद्ध करूँगी।

ऐसा कहकर जगद्धात्री परमेश्वरी कालिका शिवा मेनकाके देखते-देखते वहीं अदृश्य हो गयीं। तात ! महेश्वरीसे अभीष्ट वर पाकर मेनकाको भी अपार हर्ष हुआ। उनका तपस्या-जनित सारा क्लेश नष्ट हो गया। मुने ! फिर कालक्रमसे मेनाके गर्भ रहा और वह प्रतिदिन बढ़ने लगा। समयानुसार उसने एक उत्तम पुत्रको उत्पन्न किया, जिसका नाम मैनाक था। उसने समुद्रके साथ उत्तम मैत्री बाँधी। वह अद्भुत पर्वत नागवधुओंके उपभोगका स्थल बना हुआ है। उसके समस्त अङ्ग श्रेष्ठ हैं। *हिमालयके सौ पुत्रोंमें वह सबसे श्रेष्ठ और* महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न है। अपनेसे या अपने बाद प्रकट हुए समस्त पर्वतोंमें एकमात्र मैनाक ही पर्वतराजके पदपर प्रतिष्ठित है।

(अध्याय ५)

देवी उमाका हिमवान्‌के हृदय तथा मेनाके गर्भमें आना, गर्भस्था देवीका देवताओंद्वारा स्तवन, उनका दिव्यरूपमें प्रादुर्भाव, माता मेनासे बातचीत तथा नवजात कन्याके रूपमें परिवर्तित होना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर मेना और हिमालय आदरपूर्वक देव-कार्यकी सिद्धिके लिये कन्याप्राप्तिके हेतु वहाँ जगज्जननी भगवती उमाका चिन्तन करने लगे। जो प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली हैं, वे महेश्वरी उमा अपने पूर्ण अंशसे गिरिराज हिमवान्‌के चित्तमें प्रविष्ट हुईं। इससे उनके शरीरमें अपूर्व एवं सुन्दर प्रभा उतर आयी। वे आनन्दमग्न हो अत्यन्त प्रकाशित होने लगे। उस अद्भुत तेजोराशिसे सम्पन्न महामना हिमालय अग्निके समान अधृष्य हो गये थे। तत्पश्चात् सुन्दर कल्याणकारी समयमें गिरिराज हिमालयने अपनी प्रिया मेनाके उदरमें शिवाके उस परिपूर्ण अंशका आधान किया। इस तरह गिरिराजकी पत्नी मेनाने हिमवान्‌के हृदयमें विराजमान करुणानिधान देवीकी कृपासे सुखदायक गर्भ धारण किया। सम्पूर्ण जगत्‌की निवासभूता देवीके गर्भमें आनेसे गिरिप्रिया मेना सदा तेजोमण्डलके बीचमें स्थित होकर अधिक शोभा पाने लगीं। अपनी प्रिया शुभाङ्गी मेनाको देखकर गिरिराज हिमवान् बड़ी प्रसन्नताका अनुभव करने लगे। गर्भमें जगदम्बाके आ जानेसे वे महान् तेजसे सम्पन्न हो गयी थीं। मुने! उस अवसरमें विष्णु आदि देवता और मुनियोंने वहाँ आकर गर्भमें निवास करनेवाली शिवा-देवीकी स्तुति की और तदनन्तर महेश्वरीकी नाना प्रकारसे स्तुति करके प्रसन्नचित्त हुए वे सब देवता अपने-अपने धामको चले गये। जब नवाँ महीना बीत गया और दसवाँ भी पूरा हो चला, तब जगदम्बा कालिकाने समय पूर्ण होनेपर गर्भस्थ शिशुकी जो गति होती है, उसीको धारण किया अर्थात् जन्म ले लिया। उस अवसरपर आद्याशक्ति सती-साध्वी शिवा पहले मेनाके सामने अपने ही रूपसे प्रकट हुईं। वसन्त ऋतुमें चैत्र मासकी नवमी तिथिको मृगशिरा नक्षत्रमें आधी रातके समय चन्द्रमण्डलसे आकाशगङ्गाकी भाँति मेनकाके उदरसे देवी शिवाका अपने ही स्वरूपमें प्रादुर्भाव हुआ। उस समय सम्पूर्ण संसारमें प्रसन्नता छा गयी। अनुकूल हवा चलने लगी, जो सुन्दर, सुगन्धित एवं गम्भीर थी। उस समय जलकी वर्षाके साथ फूलोंकी वृष्टि हुई। विष्णु आदि सब देवता वहाँ आये। सबने सुखी होकर प्रसन्नताके साथ जगदम्बाके दर्शन किये और शिव-लोकमें निवास करनेवाली दिव्यरूपा महामाया शिवकामिनी मङ्गलमयी कालिका माताका स्तवन किया।

नारद! जब देवतालोग स्तुति करके चले गये, तब मेनका उस समय प्रकट हुई नील कमल-दलके समान कान्तिवाली श्यामवर्णा देवीको देखकर अतिशय आनन्दका अनुभव करने लगीं। देवीके उस दिव्य रूपका दर्शन करके गिरिप्रिया मेनाको ज्ञान प्राप्त हो गया। वे उन्हें परमेश्वरी समझकर अत्यन्त हर्षसे उल्लसित हो उठीं और संतोषपूर्वक बोलीं।

मेनाने कहा—जगदम्बे ! महेश्वरि ! आपने बड़ी कृपा की, जो मेरे सामने प्रकट हुईं। अम्बिके ! आपकी बड़ी शोभा हो रही है। शिवे ! आप सम्पूर्ण शक्तियोंमें आद्याशक्ति तथा तीनों लोकोंकी जननी हैं। देवि ! आप भगवान् शिवको सदा ही प्रिय हैं तथा सम्पूर्ण देवताओंसे प्रशंसित पराशक्ति हैं। महेश्वरि ! आप कृपा करें और इसी रूपसे मेरे ध्यानमें स्थित हो जायँ। साथ ही मेरी पुत्रीके अनुरूप प्रत्यक्ष दर्शनीय रूप धारण करें।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! पर्वत-पत्नी मेनाकी यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई शिवादेवीने उस गिरिप्रियाको इस प्रकार उत्तर दिया।

देवी बोलीं—मेना ! तुमने पहले तत्परतापूर्वक मेरी बड़ी सेवा की थी। उस समय तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हो मैं वर देनेके लिये तुम्हारे निकट आयी। 'वर माँगो' मेरी इस वाणीको सुनकर तुमने जो वर माँगा, वह इस प्रकार है—'महादेवि ! आप मेरी पुत्री हो जायँ और देवताओंका हित-साधन करें।' तब मैंने 'तथास्तु' कहकर तुम्हें सादर यह वर दे दिया और मैं अपने धामको चली गयी। गिरिकामिनि ! उस वरके अनुसार समय पाकर आज मैं तुम्हारी पुत्री हुई हूँ। आज मैंने जो दिव्य रूपका दर्शन कराया है, इसका उद्देश्य इतना ही है कि तुम्हें मेरे स्वरूपका स्मरण हो जाय; अन्यथा मनुष्य-रूपमें प्रकट होनेपर मेरे विषयमें तुम अनजान ही बनी रहतीं। अब तुम दोनों दम्पति पुत्रीभावसे अथवा दिव्यभावसे मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए मुझमें स्नेह रखो। इससे मेरी उत्तम गति प्राप्त होगी। मैं पृथ्वीपर अद्भुत लीला करके देवताओंका कार्य सिद्ध करूँगी। भगवान् शम्भुकी पत्नी होऊँगी और सज्जनोंका संकटसे उद्धार करूँगी।

ऐसा कहकर जगन्माता शिवा चुप हो गयीं और उसी क्षण माताके देखते-देखते प्रसन्नतापूर्वक नवजात पुत्रीके रूपमें परिवर्तित हो गयीं।

(अध्याय ६)

☆

पार्वतीका नामकरण और विद्याध्ययन, नारदका हिमवान्‌के यहाँ जाना, पार्वतीका हाथ देखकर भावी फल बताना, चिन्तित हुए हिमवान्‌को आश्वासन दे पार्वतीका विवाह शिवजीके साथ करनेको कहना और उनके संदेहका निवारण करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेनाके सामने महातेजस्विनी कन्या होकर लौकिक गतिका आश्रय ले वह रोने लगी। उसका मनोहर रुदन सुनकर घरकी सब स्त्रियाँ हर्षसे खिल उठीं और बड़े वेगसे प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आ पहुँचीं। नील कमल-दलके समान श्याम कान्तिवाली उस परम तेजस्विनी और मनोरम कन्याको देखकर गिरिराज हिमालय अतिशय आनन्दमें निमग्न हो गये। तदनन्तर सुन्दर मुहूर्तमें मुनियोंके साथ हिमवान्‌ने अपनी पुत्रीके काली आदि सुखदायक नाम रखे। देवी शिवा गिरिराजके भवनमें

दिनोंदिन बढ़ने लगीं—ठीक उसी तरह, जैसे वर्षाके समयमें गङ्गाजीकी जलराशि और शरद्-ऋतुके शुक्लपक्षमें चाँदनी बढ़ती है। सुशीलता आदि गुणोंसे संयुक्त तथा बन्धुजनोंकी प्यारी उस कन्याको कुटुम्बके लोग अपने कुलके अनुरूप पार्वती नामसे पुकारने लगे। माताने कालिकाको 'उ मा' (अरी ! तपस्या मत कर) कहकर तप करनेसे रोका था। मुने ! इसलिये वह सुन्दर मुखवाली गिरिराजनन्दिनी आगे चलकर लोकमें उमाके नामसे विख्यात हो गयी। नारद ! तदनन्तर जब विद्याके उपदेशका समय आया, तब शिवादेवी अपने चित्तको एकाग्र करके बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रेष्ठ गुरुसे विद्या पढ़ने लगीं। पूर्वजन्मकी सारी विद्याएँ उन्हें उसी तरह प्राप्त हो गयीं, जैसे शरत्कालमें हंसोंकी पाँत अपने-आप स्वर्गङ्गाके तटपर पहुँच जाती है और रात्रिमें अपना प्रकाश स्वतः महौषधियोंको प्राप्त हो जाता है। मुने ! इस प्रकार मैंने शिवाकी किसी एक लीलाका ही वर्णन किया है। अब अन्य लीलाका वर्णन करूँगा, सुनो।

एक समयकी बात है तुम भगवान् शिवकी प्रेरणासे प्रसन्नतापूर्वक हिमाचलके घर गये। मुने ! तुम शिवतत्त्वके ज्ञाता और उनकी लीलाके जानकारोंमें श्रेष्ठ हो। नारद ! गिरिराज हिमालयने तुम्हें घरपर आया देख प्रणाम करके तुम्हारी पूजा की और अपनी पुत्रीको बुलाकर उससे तुम्हारे चरणोंमें प्रणाम करवाया। मुनीश्वर ! फिर स्वयं ही तुम्हें नमस्कार करके हिमाचलने अपने सौभाग्यकी सराहना की और अत्यन्त मस्तक झुका हाथ जोड़कर तुमसे कहा।

हिमालय बोले—हे मुने नारद ! हे ब्रह्मपुत्रोंमें श्रेष्ठ ज्ञानवान् प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं और कृपापूर्वक दूसरोंके उपकारमें लगे रहते हैं। मेरी पुत्रीकी जन्मकुण्डलीमें जो गुण-दोष हो, उसे बताइये। मेरी बेटी किसकी सौभाग्यवती प्रिय पत्नी होगी।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! तुम बातचीतमें कुशल और कौतुकी तो हो ही, गिरिराज हिमालयके ऐसा कहनेपर तुमने कालिकाका हाथ देखा और उसके सम्पूर्ण अङ्गोंपर विशेषरूपसे दृष्टिपात करके हिमालयसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

नारद बोले—शैलराज और मेना ! आपकी यह पुत्री चन्द्रमाकी आदिकलाके समान बढ़ी है। समस्त शुभ लक्षण इसके अङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। यह अपने पतिके लिये अत्यन्त सुखदायिनी होगी और माता-पिताकी भी कीर्ति बढ़ायेगी। संसारकी समस्त नारियोंमें यह परम साध्वी और स्वजनोंको सदा महान् आनन्द देनेवाली होगी। गिरिराज ! तुम्हारी पुत्रीके हाथमें

सब उत्तम लक्षण ही विद्यमान हैं। केवल एक रेखा विलक्षण है, उसका यथार्थ फल सुनो। इसे ऐसा पति प्राप्त होगा, जो योगी, नंग-धड़ंग रहनेवाला, निर्गुण और निष्काम होगा। उसके न माँ होगी न बाप। उसे मान-सम्मानका भी कोई खयाल नहीं रहेगा और वह सदा अमङ्गल वेष धारण करेगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तुम्हारी इस बातको सुन और सत्य मानकर मेना तथा हिमाचल दोनों पति-पत्नी बहुत दुःखित हुए, परंतु जगदम्बा शिवा तुम्हारे ऐसे वचनको सुनकर और लक्षणोंद्वारा उस भावी पतिको शिव मानकर मन-ही-मन हर्षसे खिल उठीं। 'नारदजीकी बात कभी झूठ नहीं हो सकती' यह सोचकर शिवा भगवान् शिवके युगल-चरणोंमें सम्पूर्ण हृदयसे अत्यन्त स्नेह करने लगीं। नारद! उस समय मन-ही-मन दुःखी हो हिमवान्‌ने तुमसे कहा— 'मुने! उस रेखाका फल सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है। मैं अपनी पुत्रीको उससे बचानेके लिये क्या उपाय करूँ?'

'मुने! तुम महान् कौतुक करनेवाले और वार्तालाप-विशारद हो।' हिमवान्‌की बात सुनकर अपने मङ्गलकारी वचनोंद्वारा उनका हर्ष बढ़ाते हुए तुमने इस प्रकार कहा।

नारद बोले—गिरिराज! तुम स्नेहपूर्वक सुनो, मेरी बात सच्ची है। वह झूठ नहीं होगी। हाथकी रेखा ब्रह्माजीकी लिपि है। निश्चय ही वह मिथ्या नहीं हो सकती। अतः शैलप्रवर! इस कन्याको वैसा ही पति मिलेगा, इसमें संशय नहीं। परंतु इस रेखाके कुफलसे बचनेके लिये एक उपाय भी है, उसे प्रेमपूर्वक सुनो। उसे करनेसे तुम्हें सुख मिलेगा। मैंने जैसे वरका निरूपण किया है, वैसे ही भगवान् शंकर हैं। वे सर्वसमर्थ हैं और लीलाके लिये अनेक रूप धारण करते रहते हैं। उनमें समस्त कुलक्षण सद्गुणोंके समान हो जायँगे। समर्थ पुरुषमें कोई दोष भी हो तो वह उसे दुःख नहीं देता। असमर्थके लिये ही वह दुःखदायक होता है। इस विषयमें सूर्य, अग्नि और गङ्गाका दृष्टान्त सामने रखना चाहिये। इसलिये तुम विवेकपूर्वक अपनी कन्या शिवाको भगवान् शिवके हाथमें सौंप दो। भगवान् शिव सबके ईश्वर, सेव्य, निर्विकार, सामर्थ्यशाली और अविनाशी हैं। वे जल्दी ही प्रसन्न हो जाते हैं। अतः शिवाको ग्रहण कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है। विशेषतः वे तपस्यासे वशमें हो जाते हैं। यदि शिवा तप करे तो सब काम ठीक हो जायगा। सर्वेश्वर शिव सब प्रकारसे समर्थ हैं। वे इन्द्रके वज्रका भी विनाश कर सकते हैं। ब्रह्माजी उनके अधीन हैं तथा वे सबको सुख देनेवाले हैं। पार्वती भगवान् शंकरकी प्यारी पत्नी होगी। वह सदा रुद्रदेवके अनुकूल रहेगी; क्योंकि वह महासाध्वी और उत्तम व्रतका पालन करनेवाली है तथा माता-पिताके सुखको बढ़ानेवाली है। वह तपस्या करके भगवान् शिवके मनको अपने वशमें कर लेगी और वे भगवान् भी इसके सिवा किसी दूसरी स्त्रीसे विवाह नहीं करेंगे। इन दोनोंका प्रेम एक-दूसरेके अनुरूप है। वैसा उच्चकोटिका प्रेम न तो किसीका हुआ है, न इस समय है और न आगे होगा। गिरिश्रेष्ठ! इन्हें देवताओंके कार्य करने हैं। उनके जो-जो काम नष्टप्राय हो गये हैं, उन सबका इनके द्वारा पुनः उज्जीवन या उद्धार होगा। अद्रिराज! आपकी कन्याको पाकर ही

भगवान् हर अर्द्धनारीश्वर होंगे। इन दोनोंका पुनः हर्षपूर्वक मिलन होगा। आपकी यह पुत्री अपनी तपस्याके प्रभावसे सर्वेश्वर महेश्वरको संतुष्ट करके उनके शरीरके आधे भागको अपने अधिकारमें कर लेगी, उनका अर्धाङ्ग बन जायगी। गिरिश्रेष्ठ! तुम्हें अपनी यह कन्या भगवान् शंकरके सिवा दूसरे किसीको नहीं देनी चाहिये। यह देवताओंका गुप्त रहस्य है, इसे कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिये।

हिमालयने कहा—ज्ञानी मुने नारद! मैं आपको एक बात बता रहा हूँ, उसे प्रेमपूर्वक सुनिये और आनन्दका अनुभव कीजिये। सुना जाता है, महादेवजी सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके अपने मनको संयममें रखते हुए नित्य तपस्या करते हैं। देवताओंकी भी दृष्टिमें नहीं आते। देवर्षे! ध्यानमार्गमें स्थित हुए वे भगवान् शम्भु परब्रह्ममें लगाये हुए अपने मनको कैसे हटायेंगे? ध्यान छोड़कर विवाह करनेको कैसे उद्यत होंगे? इस विषयमें मुझे महान् संदेह है। दीपककी लौके समान प्रकाशमान, अविनाशी, प्रकृतिसे परे, निर्विकार, निर्गुण, सगुण, निर्विशेष और निरीह जो परब्रह्म है, वही उनका अपना सदाशिव नामक स्वरूप है। अतः वे उसीका सर्वत्र साक्षात्कार करते हैं, किसी बाह्य—अनात्मवस्तुपर दृष्टि नहीं डालते। मुने! यहाँ आये हुए किंनरोंके मुखसे उनके विषयमें नित्य ऐसी ही बात सुनी जाती है। क्या वह बात मिथ्या ही है। विशेषतः यह बात भी सुननेमें आती है कि भगवान् हरने पूर्वकालमें सतीके समक्ष एक प्रतिज्ञा की थी। उन्होंने कहा था—'दक्षकुमारी प्यारी सती! मैं तुम्हारे सिवा दूसरी किसी स्त्रीका अपनी पत्नी बनानेके लिये न वरण करूँगा न ग्रहण। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।' इस प्रकार सतीके साथ उन्होंने पहले ही प्रतिज्ञा कर ली है। अब सतीके मर जानेपर वे दूसरी किसी स्त्रीको कैसे ग्रहण करेंगे?

यह सुनकर तुम (नारद) ने कहा—महामते! गिरिराज! इस विषयमें तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तुम्हारी यह पुत्री काली ही पूर्वकालमें दक्षकन्या सती हुई थी। उस समय इसीका सदा सर्वमङ्गलदायी सती नाम था। वे सती दक्षकन्या होकर रुद्रकी प्यारी पत्नी हुई थीं। उन्होंने पिताके यज्ञमें अनादर पाकर तथा भगवान् शंकरका भी अपमान हुआ देख क्रोधपूर्वक अपने शरीरको त्याग दिया था। वे ही सती फिर तुम्हारे घरमें उत्पन्न हुई हैं। तुम्हारी पुत्री साक्षात् जगदम्बा शिवा है। यह पार्वती भगवान् हरकी पत्नी होगी, इसमें संशय नहीं है।

नारद! ये सब बातें तुमने हिमवान्‌को विस्तारपूर्वक बतायीं। पार्वतीका वह पूर्वरूप और चरित्र प्रीतिको बढ़ानेवाला है। कालीके उस सम्पूर्ण पूर्ववृत्तान्तको तुम्हारे मुखसे सुनकर हिमवान् अपनी पत्नी और पुत्रके साथ तत्काल संदेहरहित हो गये। इसी तरह तुम्हारे मुखसे अपनी उस पूर्वकथाको सुनकर कालीने लज्जाके मारे मस्तक झुका लिया और उसके मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल गयी। गिरिराज हिमालय पार्वतीके उस चरित्रको सुनकर उसके माथेपर हाथ फेरने लगे और मस्तक सूँघकर उसे अपने आसनके पास ही बिठा लिया।

नारद! इसके पश्चात् तुम उसी क्षण

प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गलोकको चले गये और गिरिराज हिमवान् भी मन-ही-मन मनोहर आनन्दसे युक्त हो अपने सर्वसम्पत्तिशाली भवनमें प्रविष्ट हो गये। (अध्याय ७-८)

☆

मेना और हिमालयकी बातचीत, पार्वती तथा हिमवान्‌के स्वप्न तथा भगवान् शिवसे 'मंगल' ग्रहकी उत्पत्तिका प्रसंग

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! जब तुम स्वर्गलोकको चले गये, तबसे कुछ काल और व्यतीत हो जानेपर एक दिन मेनाने हिमवान्‌के निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया। फिर खड़ी हो वे गिरिकामिनी मेना अपने पतिसे विनयपूर्वक बोलीं।

मेनाने कहा—प्राणनाथ ! उस दिन नारद मुनिने जो बात कही थी, उसको स्त्री-स्वभावके कारण मैंने अच्छी तरह नहीं समझा; मेरी तो यह प्रार्थना है कि आप कन्याका विवाह किसी सुन्दर वरके साथ कर दीजिये। वह विवाह सर्वथा अपूर्व सुख देनेवाला होगा। गिरिजाका वर शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और कुलीन होना चाहिये। मेरी बेटी मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। वह उत्तम वर पाकर जिस प्रकार भी प्रसन्न और सुखी हो सके, वैसा कीजिये। आपको मेरा नमस्कार है।

ऐसा कहकर मेना अपने पतिके चरणोंपर गिर पड़ीं। उस समय उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। प्राज्ञशिरोमणि हिमवान्‌ने उन्हें उठाया और यथावत् समझाना आरम्भ किया।

हिमालय बोले—देवि मेनके ! मैं यथार्थ और तत्त्वकी बात बताता हूँ सुनो ! भ्रम छोड़ो। मुनिकी बात कभी झूठी नहीं हो सकती। यदि बेटीपर तुम्हें स्नेह है तो उसे सादर शिक्षा दो कि वह भक्तिपूर्वक सुस्थिर चित्तसे भगवान् शंकरके लिये तप करे। मेनके ! यदि भगवान् शिव प्रसन्न होकर कालीका पाणिग्रहण कर लेते हैं तो सब शुभ ही होगा। नारदजीका बताया हुआ अमङ्गल या अशुभ नष्ट हो जायगा। शिवके समीप सारे अमङ्गल सदा मङ्गलरूप हो जाते हैं। इसलिये तुम पुत्रीको शिवकी प्राप्तिके लिये तपस्या करनेकी शीघ्र शिक्षा दो।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! हिमवान्‌की यह बात सुनकर मेनाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे तपस्यामें रुचि उत्पन्न करनेके लिये पुत्रीको उपदेश देनेके निमित्त उसके पास गयीं। परंतु बेटीके सुकुमार अङ्गपर दृष्टिपात करके मेनाके मनमें बड़ी व्यथा हुई। उनके दोनों नेत्रोंमें तुरंत आँसू भर आये। फिर तो

गिरिप्रिया मेनामें अपनी पुत्रीको उपदेश देनेकी शक्ति नहीं रह गयी। अपनी माताकी उस चेष्टाको पार्वतीजी शीघ्र ही ताड़ गयीं। तब वे सर्वज्ञ परमेश्वरी कालिका देवी माताको बारंबार आश्वासन दे तुरंत बोलीं।

पार्वतीने कहा—मा! तुम बड़ी समझदार हो। मेरी यह बात सुनो। आज पिछली रात्रिके समय ब्राह्ममुहूर्तमें मैंने एक स्वप्न देखा है, उसे बताती हूँ। माताजी! स्वप्नमें एक दयालु एवं तपस्वी ब्राह्मणने मुझे शिवकी प्रसन्नताके लिये उत्तम तपस्या करनेका प्रसन्नतापूर्वक उपदेश दिया है।

नारद! यह सुनकर मेनकाने शीघ्र अपने पतिको बुलाया और पुत्रीके देखे हुए स्वप्नको पूर्णतः कह सुनाया। मेनकाके मुखसे पुत्रीके स्वप्नको सुनकर गिरिराज हिमालय बड़े प्रसन्न हुए और अपनी प्रिय पत्नीको समझाते हुए बोले।

गिरिराजने कहा—प्रिये! पिछली रातमें मैंने भी एक स्वप्न देखा है। मैं आदरपूर्वक उसे बताता हूँ। तुम प्रेमपूर्वक उसे सुनो। एक बड़े उत्तम तपस्वी थे। नारदजीने वरके जैसे लक्षण बताये थे, उन्हीं लक्षणोंसे युक्त शरीरको उन्होंने धारण कर रखा था। वे बड़ी प्रसन्नताके साथ मेरे नगरके निकट तपस्या करनेके लिये आये। उन्हें देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ और मैं अपनी पुत्रीको साथ लेकर उनके पास गया। उस समय मुझे ज्ञात हुआ कि नारदजीके बताये हुए वर भगवान् शम्भु ये ही हैं। तब मैंने उन तपस्वीकी सेवाके लिये अपनी पुत्रीको उपदेश देकर उनसे भी प्रार्थना की कि वे इसकी सेवा स्वीकार करें। परंतु उस समय उन्होंने मेरी बात नहीं मानी, इतनेमें ही वहाँ सांख्य और वेदान्तके अनुसार बहुत बड़ा विवाद छिड़ गया। तदनन्तर उनकी आज्ञासे मेरी बेटी वहीं रह गयी और अपने हृदयमें उन्हींकी कामना रखकर भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करने लगी। सुमुखि! यही मेरा देखा हुआ स्वप्न है, जिसे मैंने तुम्हें बता दिया। अतः प्रिये मेने! कुछ कालतक इस स्वप्नके फलकी परीक्षा या प्रतीक्षा करनी चाहिये, इस समय यही उचित जान पड़ता है। तुम निश्चित समझो, यही मेरा विचार है।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर नारद! ऐसा कहकर गिरिराज हिमवान् और मेनका शुद्ध हृदयसे उस स्वप्नके फलकी परीक्षा एवं प्रतीक्षा करने लगे।

देवर्षे! शिवभक्तशिरोमणे! भगवान् शंकरका यश परम पावन, मङ्गलकारी, भक्तिवर्धक और उत्तम है। तुम इसे आदरपूर्वक सुनो। दक्ष-यज्ञसे अपने निवासस्थान कैलास पर्वतपर आकर भगवान् शम्भु प्रियाविरहसे कातर हो गये और प्राणोंसे भी अधिक प्यारी सती देवीका हृदयसे चिन्तन करने लगे। अपने पार्षदोंको बुलाकर सतीके लिये शोक करते हुए उनके प्रेमवर्द्धक गुणोंका अत्यन्त प्रीतिपूर्वक वर्णन करने लगे। यह सब उन्होंने सांसारिक गतिको दिखानेके लिये किया। फिर, गृहस्थ-आश्रमकी सुन्दर स्थिति तथा नीति-रीतिका परित्याग करके वे दिगम्बर हो गये और सब लोकोंमें उन्मत्तकी भाँति भ्रमण करने लगे। लीलाकुशल होनेके कारण विरहीकी अवस्थाका प्रदर्शन करने लगे। सतीके विरहसे दुःखित हो कहीं भी उनका दर्शन न पाकर भक्तकल्याणकारी भगवान् शंकर पुनः कैलासगिरिपर लौट आये और

मनको यत्नपूर्वक एकाग्र करके उन्होंने समाधि लगा ली, जो समस्त दुःखोंका नाश करनेवाली है। समाधिमें वे अविनाशी स्वरूपका दर्शन करने लगे। इस तरह तीनों गुणोंसे रहित हो वे भगवान् शिव चिरकालतक सुस्थिर भावसे समाधि लगाये बैठे रहे। वे प्रभु स्वयं ही मायाके अधिपति निर्विकार परब्रह्म हैं। तदनन्तर जब असंख्य वर्ष व्यतीत हो गये, तब उन्होंने समाधि छोड़ी। उसके बाद तुरंत ही जो चरित्र हुआ, उसे मैं तुम्हें बताता हूँ। भगवान् शिवके ललाटसे उस समय श्रमजनित पसीनेकी एक बूँद पृथ्वीपर गिरी और तत्काल एक शिशुके रूपमें परिणत हो गयी। मुने! उस बालकके चार भुजाएँ थीं, शरीरकी कान्ति लाल थी और आकार मनोहर था। दिव्य द्युतिसे दीप्तिमान् वह शोभाशाली बालक अत्यन्त दुस्सह तेजसे सम्पन्न था, तथापि उस समय लोकाचार-परायण परमेश्वर शिवके आगे वह साधारण शिशुकी भाँति रोने लगा। यह देख पृथ्वी भगवान् शंकरसे भय मान उत्तम बुद्धिसे विचार करनेके पश्चात् सुन्दरी स्त्रीका रूप धारण करके वहीं प्रकट हो गयीं। उन्होंने उस सुन्दर बालकको तुरंत उठाकर अपनी गोदमें रख लिया और अपने ऊपर प्रकट होनेवाले दूधको ही स्तन्यके रूपमें उसे पिलाने लगीं। उन्होंने स्नेहसे उसका मुँह चूमा और अपना ही बालक मान हँस-हँसकर उसे खेलाने लगीं। परमेश्वर शिवका हितसाधन करनेवाली पृथ्वी देवी सच्चे भावसे स्वयं उसकी माता बन गयीं।

संसारकी सृष्टि करनेवाले, परम कौतुकी एवं विद्वान् अन्तर्यामी शम्भु वह चरित्र देखकर हँस पड़े और पृथ्वीको पहचानकर उनसे बोले—'धरणि! तुम धन्य हो! मेरे इस पुत्रका प्रेमपूर्वक पालन करो। यह श्रेष्ठ शिशु मुझ महातेजस्वी शम्भुके श्रमजल (पसीने) से तुम्हारे ही ऊपर उत्पन्न हुआ है। वसुधे! यह प्रियकारी बालक यद्यपि मेरे श्रमजलसे प्रकट हुआ है, तथापि तुम्हारे नामसे तुम्हारे ही पुत्रके रूपमें इसकी ख्याति होगी। यह सदा त्रिविध तापोंसे रहित होगा। अत्यन्त गुणवान् और भूमि देनेवाला होगा। यह मुझे भी सुख प्रदान करेगा। तुम इसे अपनी रुचिके अनुसार ग्रहण करो।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर भगवान् शिव चुप हो गये। उनके हृदयसे विरहका प्रभाव कुछ कम हो गया। उनमें विरह क्या था, वे लोकाचारका पालन कर रहे थे। वास्तवमें सत्पुरुषोंके प्रिय श्रीरुद्रदेव निर्विकार परमात्मा ही हैं। शिवकी उपर्युक्त आज्ञाको शिरोधार्य करके पुत्रसहित पृथ्वीदेवी शीघ्र ही अपने स्थानको चली गयीं। उन्हें आत्यन्तिक सुख मिला। वह बालक 'भौम' नामसे प्रसिद्ध हो युवा होनेपर तुरंत काशी चला गया और वहाँ उसने दीर्घकालतक भगवान् शंकरकी सेवा की। विश्वनाथजीकी कृपासे ग्रहकी पदवी पाकर वे भूमिकुमार शीघ्र ही श्रेष्ठ एवं दिव्यलोकमें चले गये, जो शुक्रलोकसे परे है। (अध्याय ९-१०)

☆

भगवान् शिवका गङ्गावतरण तीर्थमें तपस्याके लिये आना, हिमवान्‌द्वारा उनका स्वागत, पूजन और स्तवन तथा भगवान् शिवकी आज्ञाके अनुसार उनका उस स्थानपर दूसरोंको न जाने देनेकी व्यवस्था करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! हिमवान्‌की पुत्री लोकपूजित शक्तिस्वरूपा पार्वती हिमालयके घरमें रहकर बढ़ने लगीं। जब उनकी अवस्था आठ वर्षकी हो गयी, तब सतीके विरहसे कातर हुए शम्भुको उनके जन्मका समाचार मिला। नारद ! उस अद्भुत बालिका पार्वतीको हृदयमें रखकर वे मन-ही-मन बड़े आनन्दका अनुभव करने लगे। इसी बीचमें लौकिक गतिका आश्रय ले शम्भुने अपने मनको एकाग्र करनेके लिये तप करनेका विचार किया। नन्दी आदि कुछ शान्त पार्षदोंको साथ ले वे हिमालयके उत्तम शिखरपर गङ्गावतार[1] नामक तीर्थमें चले आये, जहाँ पूर्वकालमें ब्रह्मधामसे च्युत होकर समस्त पापराशिका विनाश करनेके लिये चली हुई परम पावनी गङ्गा पहले-पहल भूतलपर अवतीर्ण हुई थीं। जितेन्द्रिय हरने वहाँ रहकर तपस्या आरम्भ की। वे आलस्यरहित हो चेतन, ज्ञानस्वरूप, नित्य, ज्योतिर्मय, निरामय, जगन्मय, चिदानन्द-स्वरूप, द्वैतहीन तथा आश्रयरहित अपने आत्मभूत परमात्माका एकाग्रभावसे चिन्तन करने लगे। भगवान् हरके ध्यान-परायण होनेपर नन्दी-भृङ्गी आदि कुछ अन्य पार्षदगण भी ध्यानमें तत्पर हो गये। उस समय कुछ ही प्रमथगण परमात्मा शम्भुकी सेवा करते थे। वे सब-के-सब मौन रहते और एक शब्द भी नहीं बोलते थे। कुछ द्वारपाल हो गये थे।

इसी समय गिरिराज हिमवान् उस ओषधि-बहुल शिखरपर भगवान् शंकरका शुभागमन सुनकर उनके प्रति आदरकी भावनासे वहाँ आये। आकर सेवकोंसहित गिरिराजने भगवान् रुद्रको प्रणाम किया, उनकी पूजा की और अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़ उनका सुन्दर स्तवन किया। फिर हिमालयने कहा—

'प्रभो ! मेरे सौभाग्यका उदय हुआ है, जो आप यहाँ पधारे हैं। आपने मुझे सनाथ कर दिया। क्यों न हो, महात्माओंने यह ठीक ही

१. गङ्गोत्तरी।

वर्णन किया है कि आप दीनवत्सल हैं। आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मेरा जीवन सफल हुआ और आज मेरा सब कुछ सफल हो गया; क्योंकि आपने यहाँ पदार्पण करनेका कष्ट उठाया है। महेश्वर ! आप मुझे अपना दास समझकर शान्तभावसे मुझे सेवाके लिये आज्ञा दीजिये। मैं बड़ी प्रसन्नतासे अनन्यचित्त होकर आपकी सेवा करूँगा।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! गिरिराजका यह वचन सुनकर महेश्वरने किंचित् आँखें खोलीं और सेवकोंसहित हिमवान्‌को देखा। सेवकोंसहित गिरिराजको उपस्थित देख ध्यानयोगमें स्थित हुए जगदीश्वर वृषभध्वजने मुसकराते हुए-से कहा।

महेश्वर बोले—शैलराज ! मैं तुम्हारे शिखरपर एकान्तमें तपस्या करनेके लिये आया हूँ। तुम ऐसा प्रबन्ध करो, जिससे कोई भी मेरे निकट न आ सके। तुम महात्मा हो, तपस्याके धाम हो तथा मुनियों, देवताओं, राक्षसों और अन्य महात्माओंको भी सदा आश्रय देनेवाले हो। द्विज आदिका तुम्हारे ऊपर सदा ही निवास रहता है। तुम गङ्गासे अभिषिक्त होकर सदाके लिये पवित्र हो गये हो। दूसरोंका उपकार करनेवाले तथा सम्पूर्ण पर्वतोंके सामर्थ्यशाली राजा हो। गिरिराज ! मैं यहाँ गङ्गावतरण-स्थलमें तुम्हारे आश्रित होकर आत्मसंयमपूर्वक बड़ी प्रसन्नताके साथ तपस्या करूँगा। शैलराज ! गिरिश्रेष्ठ ! जिस साधनसे यहाँ मेरी तपस्या बिना किसी विघ्न-बाधाके चालू रह सके, उसे इस समय प्रयत्नपूर्वक करो। पर्वतप्रवर ! मेरी यही सबसे बड़ी सेवा है। तुम अपने घर जाओ और मैंने जो कुछ कहा है, उसका उत्तम प्रीतिसे यत्नपूर्वक प्रबन्ध करो।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर सृष्टिकर्ता जगदीश्वर भगवान् शम्भु चुप हो गये। उस समय गिरिराजने शम्भुसे प्रेमपूर्वक यह बात कही—'जगन्नाथ ! परमेश्वर ! आज मैंने अपने प्रदेशमें स्थित हुए आपका स्वागतपूर्वक पूजन किया है, यही मेरे लिये महान् सौभाग्यकी बात है। अब आपसे और क्या प्रार्थना करूँ। महेश्वर ! कितने ही देवता बड़े-बड़े यत्नका आश्रय ले महान् तप करके भी आपको नहीं पाते। वे ही आप यहाँ स्वयं उपस्थित हो गये। मुझसे बढ़कर श्रेष्ठ सौभाग्यशाली और पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि आप मेरे पृष्ठभागपर तपस्याके लिये उपस्थित हुए हैं। परमेश्वर ! आज मैं अपनेको देवराज इन्द्रसे भी अधिक भाग्यवान् मानता हूँ; क्योंकि सेवकोंसहित आपने यहाँ आकर मुझे अनुग्रहका भागी बना दिया। देवेश ! आप स्वतन्त्र हैं। यहाँ बिना किसी विघ्न-बाधाके उत्तम तपस्या कीजिये। प्रभो ! मैं आपका दास हूँ। अतः सदा आपकी आज्ञाके अनुसार सेवा करूँगा।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर गिरिराज हिमालय तुरंत अपने घरको लौट आये। उन्होंने अपनी प्रिया मेनाको बड़े आदरसे यह सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् शैलराजने साथ जानेवाले परिजनों तथा समस्त सेवक-गणोंको बुलाकर उन्हें ठीक-ठीक समझाया।

हिमालय बोले—आजसे कोई भी

गङ्गावतरण नामक स्थानमें, जो मेरे पृष्ठभागमें ही है, मेरी आज्ञा मानकर न जाय। यह मैं सच्ची बात कहता हूँ। यदि कोई वहाँ जायगा तो उस महादुष्टको मैं विशेष दण्ड दूँगा। मुने! इस प्रकार अपने समस्त गणोंको शीघ्र ही नियन्त्रित करके हिमवान्‌ने विघ्ननिवारणके लिये जो सुन्दर प्रयत्न किया, वह तुम्हें बताता हूँ, सुनो। (अध्याय ११)

☆

हिमवान्‌का पार्वतीको शिवकी सेवामें रखनेके लिये उनसे आज्ञा माँगना और शिवका कारण बताते हुए इस प्रस्तावको अस्वीकार कर देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर शैलराज हिमालय उत्तम फल-फूल लेकर अपनी पुत्रीके साथ हर्षपूर्वक भगवान् हरके समीप गये। वहाँ जाकर उन्होंने ध्यान-परायण त्रिलोकीनाथ शिवको प्रणाम किया और अपनी अद्भुत कन्या कालीको हृदयसे उनकी सेवामें अर्पित कर दिया। फल-फूल आदि सारी सामग्री उनके सामने रखकर पुत्रीको आगे करके शैलराजने शम्भुसे कहा—'भगवन्! मेरी पुत्री आप भगवान् चन्द्रशेखरकी सेवा करनेके लिये उत्सुक है। अतः आपके आराधनकी इच्छासे मैं इसको साथ लाया हूँ। यह अपनी दो सखियोंके साथ सदा आप शंकरकी ही सेवामें रहे। नाथ! यदि आपका मुझपर अनुग्रह है तो इस कन्याको सेवाके लिये आज्ञा दीजिये।'

तब भगवान् शंकरने उस परम मनोहर कामरूपिणी कन्याको देखकर आँखें मूँद लीं और अपने त्रिगुणातीत, अविनाशी, परमतत्त्वमय उत्तम रूपका ध्यान आरम्भ किया। उस समय सर्वेश्वर एवं सर्वव्यापी जटाजूटधारी वेदान्तवेद्य चन्द्रकलाविभूषण शम्भु उत्तम आसनपर बैठकर नेत्र बंद किये तप (ध्यान) में ही लग गये। यह देख हिमाचलने मस्तक झुकाकर पुनः उनके चरणोंमें प्रणाम किया। यद्यपि उनके हृदयमें दीनता नहीं थी, तो भी वे उस समय इस संशयमें पड़ गये कि न जाने भगवान् मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे या नहीं। वक्ताओंमें श्रेष्ठ गिरिराज हिमवान्‌ने जगत्‌के एकमात्र बन्धु भगवान् शिवसे इस प्रकार कहा।

हिमालय बोले—देवदेव! महादेव! करुणाकर! शंकर! विभो! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आँखें खोलकर मेरी ओर देखिये। शिव! शर्व! महेशान! जगत्‌को आनन्द प्रदान करनेवाले प्रभो! महादेव! आप सम्पूर्ण आपत्तियोंका निवारण करनेवाले हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। स्वामिन्! प्रभो! मैं अपनी इस पुत्रीके साथ प्रतिदिन आपका दर्शन करनेके लिये आऊँगा। इसके लिये आदेश दीजिये।

उनकी यह बात सुनकर देवदेव महेश्वरने आँखें खोलकर ध्यान छोड़ दिया और कुछ सोच-विचारकर कहा।

महेश्वर बोले—गिरिराज! तुम अपनी इस कुमारी कन्याको घरमें रखकर ही नित्य मेरे दर्शनको आ सकते हो, अन्यथा मेरा दर्शन नहीं हो सकता।

महेश्वरकी ऐसी बात सुनकर शिवाके पिता हिमवान् मस्तक झुकाकर उन भगवान् शिवसे बोले—'प्रभो! यह तो बताइये, किस कारणसे मैं इस कन्याके साथ आपके

दर्शनके लिये नहीं आ सकता। क्या यह

आपकी सेवाके योग्य नहीं है? फिर इसे नहीं लानेका क्या कारण है, यह मेरी समझमें नहीं आता।'

यह सुनकर भगवान् वृषभध्वज शम्भु हँसने लगे और विशेषतः दुष्ट योगियोंको लोकाचारका दर्शन कराते हुए वे हिमालयसे बोले— 'शैलराज! यह कुमारी सुन्दर कटिप्रदेशसे सुशोभित, तन्वङ्गी, चन्द्रमुखी और शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है। इसलिये इसे मेरे समीप तुम्हें नहीं लाना चाहिये। इसके लिये मैं तुम्हें बारंबार रोकता हूँ। वेदके पारंगत विद्वानोंने नारीको मायारूपिणी कहा है। विशेषतः युवती स्त्री तो तपस्वीजनोंके तपमें विघ्न डालनेवाली ही होती है। गिरिश्रेष्ठ! मैं तपस्वी, योगी और सदा मायासे निर्लिप्त रहनेवाला हूँ। मुझे युवती स्त्रीसे क्या प्रयोजन है। तपस्वियोंके श्रेष्ठ आश्रय हिमालय! इसलिये फिर तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये, क्योंकि तुम वेदोक्त धर्ममें प्रवीण, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और विद्वान् हो। अचलराज! स्त्रीके सङ्गसे मनमें शीघ्र ही विषयवासना उत्पन्न हो जाती है। उससे वैराग्य नष्ट होता है और वैराग्य न होनेसे पुरुष उत्तम तपस्यासे भ्रष्ट हो जाता है। इसलिये शैल! तपस्वीको स्त्रियोंका संग नहीं करना चाहिये, क्योंकि स्त्री महाविषय-वासनाकी जड़ एवं ज्ञान-वैराग्यका विनाश करनेवाली होती है।' *

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस तरहकी बहुत-सी बातें कहकर महायोगिशिरोमणि भगवान् महेश्वर चुप हो गये। देवर्षे! शम्भुका यह निरामय, निःस्पृह और निष्ठुर वचन सुनकर कालीके पिता हिमवान् चकित, कुछ-कुछ व्याकुल और चुप हो गये। तपस्वी शिवकी कही हुई बात सुनकर और गिरिराज हिमवान्‌को चकित हुआ जानकर भवानी पार्वती उस समय भगवान् शिवको प्रणाम करके विशद वचन बोलीं।

(अध्याय १२)

☆

* भवत्यचल तत्सङ्गाद् विषयोत्पत्तिराशु वै। विनश्यति च वैराग्यं ततो भ्रश्यति सत्तपः॥
अतस्तपस्विना शैल न कार्या स्त्रीषु संगतिः। महाविषयमूलं सा ज्ञानवैराग्यनाशिनी॥
(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ पा॰ सं॰ १२। ३१-३२)

पार्वती और शिवका दार्शनिक संवाद, शिवका पार्वतीको अपनी सेवाके लिये आज्ञा देना तथा पार्वतीद्वारा भगवान्‌की प्रतिदिन सेवा

भवानीने कहा—योगिन् ! आपने तपस्वी होकर गिरिराजसे यह क्या बात कह डाली ? प्रभो ! आप ज्ञानविशारद हैं, तो भी अपनी बातका उत्तर मुझसे सुनिये। शम्भो ! आप तपःशक्तिसे सम्पन्न होकर ही बड़ा भारी तप करते हैं। उस शक्तिके कारण ही आप महात्माको तपस्या करनेका विचार हुआ है। सभी कर्मोंको करनेकी जो वह शक्ति है, *उसे ही प्रकृति जानना चाहिये।* प्रकृतिसे ही सबकी सृष्टि, पालन और संहार होते हैं। भगवन् ! आप कौन हैं ? और सूक्ष्म प्रकृति क्या है ? इसका विचार कीजिये। प्रकृतिके बिना लिङ्गरूपी महेश्वर कैसे हो सकते हैं ? आप सदा प्राणियोंके लिये जो अर्चनीय, वन्दनीय और चिन्तनीय हैं, वह प्रकृतिके ही कारण है। इस बातको हृदयसे विचारकर ही आपको जो कहना हो, वह सब कहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! पार्वतीजीके इस वचनको सुनकर महती लीला करनेमें लगे हुए प्रसन्नचित्त महेश्वर हँसते हुए बोले।

महेश्वरने कहा—मैं उत्कृष्ट तपस्याद्वारा ही प्रकृतिका नाश करता हूँ और तत्त्वतः प्रकृतिरहित शम्भुके रूपमें स्थित होता हूँ। अतः सत्पुरुषोंको कभी या कहीं प्रकृतिका संग्रह नहीं करना चाहिये। लोकाचारसे दूर एवं निर्विकार रहना चाहिये।

नारद ! जब शम्भुने लौकिक व्यवहारके अनुसार यह बात कही, तब काली मन-ही-मन हँसकर मधुर वाणीमें बोलीं।

कालीने कहा—कल्याणकारी प्रभो ! योगिन् ! आपने जो बात कही है, क्या वह वाणी प्रकृति नहीं है ? फिर आप उससे परे क्यों नहीं हो गये ? (क्यों प्रकृतिका सहारा लेकर बोलने लगे ?) इन सब बातोंको विचार करके तात्त्विक दृष्टिसे जो यथार्थ बात हो, उसीको कहना चाहिये। यह सब कुछ सदा प्रकृतिसे बँधा हुआ है। इसलिये *आपको न तो बोलना चाहिये और न कुछ* करना ही चाहिये; क्योंकि कहना और करना—सब व्यवहार प्राकृत ही है। आप अपनी बुद्धिसे इसको समझिये। आप जो कुछ सुनते, खाते, देखते और करते हैं, वह सब प्रकृतिका ही कार्य है। झूठे वाद-विवाद करना व्यर्थ है। प्रभो ! शम्भो ! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं तो इस समय इस हिमवान् पर्वतपर आप तपस्या किस लिये करते हैं ? हर ! प्रकृतिने आपको निगल लिया है। *अतः आप अपने स्वरूपको नहीं जानते।* ईश ! आप यदि अपने स्वरूपको जानते हैं तो किस लिये तप करते हैं ? योगिन् ! मुझे आपके साथ वाद-विवाद करनेकी क्या आवश्यकता है ? प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध होनेपर विद्वान् पुरुष अनुमान प्रमाणको नहीं मानते। जो कुछ प्राणियोंकी इन्द्रियोंका विषय होता है, वह सब ज्ञानी पुरुषोंको बुद्धिसे विचारकर प्राकृत ही मानना चाहिये। योगीश्वर ! बहुत कहनेसे क्या लाभ ? *मेरी उत्तम बात सुनिये। मैं प्रकृति* हूँ। आप पुरुष हैं। यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है। मेरे अनुग्रहसे ही आप

सगुण और साकार माने गये हैं। मेरे बिना तो आप निरीह हैं। कुछ भी नहीं कर सकते हैं। आप जितेन्द्रिय होनेपर भी प्रकृतिके अधीन हो सदा नाना प्रकारके कर्म करते रहते हैं। फिर निर्विकार कैसे हैं? और मुझसे लिप्त कैसे नहीं? शंकर! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं और यदि आपका यह कथन सत्य है तो आपको मेरे समीप रहनेपर भी डरना नहीं चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—पार्वतीका यह सांख्य-शास्त्रके अनुसार कहा हुआ वचन सुनकर भगवान् शिव वेदान्तमतमें स्थित हो उनसे यों बोले।

श्रीशिवने कहा—सुन्दर भाषण करनेवाली गिरिजे! यदि तुम सांख्य-मतको धारण करके ऐसी बात कहती हो तो प्रतिदिन मेरी सेवा करो; परंतु वह सेवा शास्त्रनिषिद्ध नहीं होनी चाहिये।

गिरिजासे ऐसा कहकर भक्तोंपर अनुग्रह और उनका मनोरञ्जन करनेवाले भगवान् शिव हिमवान्‌से बोले।

शिवने कहा—गिरिराज! मैं यहीं तुम्हारे अत्यन्त रमणीय श्रेष्ठ शिखरकी भूमिपर उत्तम तपस्या तथा अपने आनन्दमय परमार्थस्वरूपका विचार करता हुआ विचरूँगा। पर्वतराज! आप मुझे यहाँ तपस्या करनेकी अनुमति दें। आपकी अनुज्ञाके बिना कोई तप नहीं किया जा सकता।

देवाधिदेव शूलधारी भगवान् शिवका यह कथन सुनकर हिमवान्‌ने उन्हें प्रणाम करके कहा—'महादेव! देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् तो आपका ही है। मैं तुच्छ होकर आपसे क्या कहूँ?'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! गिरिराज हिमवान्‌के ऐसा कहनेपर लोककल्याणकारी भगवान् शंकर हँस पड़े और आदरपूर्वक उनसे बोले—'अब तुम जाओ।' शंकरकी आज्ञा पाकर हिमवान् अपने घर लौट गये। वे गिरिजाके साथ प्रतिदिन उनके दर्शनके लिये आते थे। काली अपने पिताके बिना भी दोनों सखियोंके साथ नित्य शंकरजीके पास जातीं और भक्तिपूर्वक उनकी सेवामें लगी रहतीं। नन्दीश्वर आदि कोई भी गण उन्हें रोकता नहीं था। तात! महेश्वरके आदेशसे ही ऐसा होता था। प्रत्येक गण पवित्रतापूर्वक रहकर उनकी आज्ञाका पालन करता था। जो विचार करनेसे परस्पर अभिन्न सिद्ध होते हैं, उन्हीं शिवा और शिवने सांख्य और वेदान्त-मतमें स्थित हो जो कल्याणदायक संवाद किया, वह सर्वदा सुख देनेवाला है। वह संवाद मैंने यहाँ कह सुनाया। इन्द्रियातीत भगवान् शंकरने गिरिराजके कहनेसे उनका गौरव मानकर उनकी पुत्रीको अपने पास रहकर सेवा करनेके लिये स्वीकार कर लिया।

काली अपनी दो सखियोंके साथ चन्द्रशेखर महादेवजीकी सेवाके लिये प्रतिदिन आती-जाती रहती थीं। वे भगवान् शंकरके चरण धोकर उस चरणामृतका पान करती थीं। आगसे तपाकर शुद्ध किये हुए वस्त्रसे (अथवा गरम जलसे धोये हुए वस्त्रके द्वारा) उनके शरीरका मार्जन करतीं, उसे मलती-पोंछती थीं। फिर सोलह उपचारोंसे विधिवत् हरकी पूजा करके बारंबार उनके चरणोंमें प्रणाम करनेके पश्चात् प्रतिदिन पिताके घर लौट जाती रहीं। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार ध्यानपरायण

शंकरकी सेवामें लगी हुई शिवाका महान् समय व्यतीत हो गया, तो भी वे अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर पूर्ववत् उनकी सेवा करती रहीं। महादेवजीने जब फिर उन्हें अपनी सेवामें नित्य तत्पर देखा, तब वे दयासे द्रवित हो उठे और इस प्रकार विचार करने लगे—'यह काली जब तपश्चर्यायुक्त करेगी और इसमें गर्वका बीज नहीं रह जायगा, तभी मैं इसका पाणिग्रहण करूँगा।'

ऐसा विचार करके महालीला करनेवाले महायोगीश्वर भगवान् भूतनाथ तत्काल ध्यानमें स्थित हो गये। मुने! परमात्मा शिव जब ध्यानमें लग गये, तब उनके हृदयमें दूसरी कोई चिन्ता नहीं रह गयी। काली प्रतिदिन महात्मा शिवके रूपका निरन्तर चिन्तन करती हुई उत्तम भक्तिभावसे उनकी सेवामें लगी रही। ध्यानपरायण भगवान् हर शुद्ध भावसे वहाँ रहती हुई कालीको नित्य देखते थे। फिर भी पूर्व चिन्ताको भुलाकर उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते थे।

इसी बीचमें इन्द्र आदि देवताओं तथा मुनियोंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे कामदेवको वहाँ आदरपूर्वक भेजा। वे कामकी प्रेरणासे कालीका रुद्रके साथ संयोग कराना चाहते थे। उनके ऐसा करनेमें कारण यह था कि महापराक्रमी तारकासुरसे वे बहुत पीड़ित थे (और शंकरजीसे किसी महान् बलवान् पुत्रकी उत्पत्ति चाहते थे)। कामदेवने वहाँ पहुँचकर अपने सब उपायोंका प्रयोग किया, परंतु महादेवजीके मनमें तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ। उलटे उन्होंने कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया। मुने! तब सती पार्वतीने भी गर्वरहित हो उनकी आज्ञासे बहुत बड़ी तपस्या करके शिवको पतिरूपमें प्राप्त किया। फिर वे पार्वती और परमेश्वर परस्पर अत्यन्त प्रेमसे और प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे। उन दोनोंने परोपकारमें तत्पर रहकर देवताओंका महान् कार्य सिद्ध किया।

(अध्याय १३)

☆

तारकासुरके सताये हुए देवताओंका ब्रह्माजीको अपनी कष्टकथा सुनाना, ब्रह्माजीका उन्हें पार्वतीके साथ शिवके विवाहके लिये उद्योग करनेका आदेश देना, ब्रह्माजीके समझानेसे तारकासुरका स्वर्गको छोड़ना और देवताओंका वहाँ रहकर लक्ष्यसिद्धिके लिये यत्नशील होना

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर पार्वतीके विवाहके विस्तृत प्रसङ्गको उपस्थित करते हुए ब्रह्माजीने तारकासुरकी उत्पत्ति, उसके उग्र तप, मनोवाञ्छित वरप्राप्ति तथा देवता और असुर—सबको जीतकर स्वयं इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित हो जानेकी कथा सुनायी।

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने कहा—तारकासुर तीनों लोकोंको अपने वशमें करके जब स्वयं इन्द्र हो गया, तब उसके समान दूसरा कोई शासक नहीं रह गया। वह जितेन्द्रिय असुर त्रिभुवनका एकमात्र स्वामी होकर अद्भुत ढंगसे राज्यका संचालन करने लगा। उसने समस्त देवताओंको निकालकर उनकी जगह

दैत्योंको स्थापित कर दिया और विद्याधर आदि देवयोनियोंको स्वयं अपने कर्ममें लगाया। मुने! तदनन्तर तारकासुरके सताये हुए इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता अत्यन्त व्याकुल और अनाथ होकर मेरी शरणमें आये। उन सबने मुझ प्रजापतिको प्रणाम करके बड़ी भक्तिसे मेरा स्तवन किया और अपने दारुण दुःखकी बातें बताकर कहा— 'प्रभो! आप ही हमारी गति हैं। आप ही हमें कर्तव्यका उपदेश देनेवाले हैं और आप ही हमारे धाता एवं उद्धारक हैं। हम सब देवता तारकासुर नामक अग्निमें जलकर अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं। जैसे संनिपात रोगमें प्रबल औषधें भी निर्बल हो जाती हैं, उसी प्रकार उस असुरने हमारे सभी क्रूर उपायोंको बलहीन बना दिया है। भगवान् विष्णुके सुदर्शन चक्रपर ही हमारी विजयकी आशा अवलम्बित रहती है। परंतु वह भी उसके कण्ठपर कुण्ठित हो गया। उसके गलेमें पड़कर वह ऐसा प्रतीत होने लगा था, मानो उस असुरको फूलकी माला पहनायी गयी हो।

मुने! देवताओंका यह कथन सुनकर मैंने उन सबसे समयोचित बात कही— 'देवताओ! मेरे ही वरदानसे दैत्य तारकासुर इतना बढ़ गया है। अतः मेरे हाथों ही उसका वध होना उचित नहीं। जो जिससे पलकर बढ़ा हो, उसका उसीके द्वारा वध होना योग्य कार्य नहीं है। विषके वृक्षको भी यदि स्वयं सींचकर बड़ा किया गया हो तो उसे स्वयं काटना अनुचित माना गया है। तुमलोगोंका सारा कार्य करनेके योग्य भगवान् शंकर हैं। किंतु वे तुम्हारे कहनेपर भी स्वयं उस असुरका सामना नहीं कर सकते। तारक दैत्य स्वयं अपने पापसे नष्ट होगा। मैं जैसा उपदेश करता हूँ, तुम वैसा कार्य करो। मेरे वरके प्रभावसे न मैं तारकासुरका वध कर सकता हूँ, न भगवान् विष्णु कर सकते हैं और न भगवान् शंकर ही उसका वध कर सकते हैं। दूसरा कोई वीर पुरुष अथवा सारे देवता मिलकर भी उसे नहीं मार सकते, यह मैं सत्य कहता हूँ। देवताओ! यदि शिवजीके वीर्यसे कोई पुत्र उत्पन्न हो तो वही तारक दैत्यका वध कर सकता है, दूसरा नहीं। सुरश्रेष्ठगण! इसके लिये जो उपाय मैं बताता हूँ, उसे करो। महादेवजीकी कृपासे वह उपाय अवश्य सिद्ध होगा। पूर्वकालमें जिन दक्षकन्या सतीने दक्षके यज्ञमें अपने शरीरको त्याग दिया था, वही इस समय हिमालयपत्नी मेनकाके गर्भसे उत्पन्न हुई हैं। यह बात तुम्हें भी विदित ही है। महादेवजी उस कन्याका पाणिग्रहण अवश्य करेंगे, तथापि देवताओ! तुम स्वयं भी इसके लिये प्रयत्न करो। तुम अपने यत्नसे ऐसा उद्योग करो, जिससे मेनकाकुमारी पार्वतीमें भगवान् शंकर अपने वीर्यका आधान कर सकें। भगवान् शंकर ऊर्ध्वरेता हैं (उनका वीर्य ऊपरकी ओर उठा हुआ है) उनके वीर्यको प्रस्खलित करनेमें केवल पार्वती ही समर्थ हैं। दूसरी कोई अबला अपनी शक्तिसे ऐसा नहीं कर सकती। गिरिराजकी पुत्री वे पार्वती इस समय युवावस्थामें प्रवेश कर चुकी हैं और हिमालयपर तपस्यामें लगे हुए महादेवजीकी प्रतिदिन सेवा करती हैं। अपने पिता हिमवान्‌के कहनेसे काली शिवा अपनी दो सखियोंके साथ ध्यानपरायण परमेश्वर शिवकी साग्रह सेवा करती हैं। तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी पार्वती

शिवके सामने रहकर प्रतिदिन उनकी पूजा करती है, तथापि वे ध्यानमग्न महेश्वर मनसे भी ध्यानहीन स्थितिमें नहीं आते। अर्थात् ध्यान भङ्ग करके पार्वतीकी ओर देखनेका विचार भी मनमें नहीं लाते। देवताओ! चन्द्रशेखर शिव जिस प्रकार कालीको अपनी भार्या बनानेकी इच्छा करें, वैसी चेष्टा तुमलोग शीघ्र ही प्रयत्नपूर्वक करो। मैं उस दैत्यके स्थानपर जाकर तारकासुरको बुरे हठसे हटानेकी चेष्टा करूँगा। अतः अब तुमलोग अपने स्थानको जाओ।'

नारद! देवताओंसे ऐसा कहकर मैं शीघ्र ही तारकासुरसे मिला और बड़े प्रेमसे बुलाकर मैंने उससे इस प्रकार कहा—

'तारक! यह स्वर्ग हमारे तेजका सारतत्त्व है। परंतु तुम यहाँके राज्यका पालन कर रहे हो। जिसके लिये तुमने उत्तम तपस्या की थी, उससे अधिक चाहने लगे हो। मैंने तुम्हें इससे छोटा ही वर दिया था। स्वर्गका राज्य कदापि नहीं दिया था। इसलिये तुम स्वर्गको छोड़कर पृथ्वीपर राज्य करो। असुरश्रेष्ठ! देवताओंके योग्य जितने भी कार्य हैं, वे सब तुम्हें वहीं सुलभ होंगे। इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

ऐसा कहकर उस असुरको समझानेके बाद मैं शिवा और शिवका स्मरण करके वहाँसे अदृश्य हो गया। तारकासुर भी स्वर्गको छोड़कर पृथ्वीपर आ गया और शोणितपुरमें रहकर वह राज्य करने लगा। फिर सब देवता भी मेरी बात सुनकर मुझे प्रणाम करके इन्द्रके साथ प्रसन्नतापूर्वक बड़ी सावधानीके साथ इन्द्रलोकमें गये। वहाँ जाकर परस्पर मिलकर आपसमें सलाह करके वे सब देवता इन्द्रसे प्रेमपूर्वक बोले—'भगवन्! शिवकी शिवामें जैसे भी काममूलक रुचि हो, वैसा ब्रह्माजीका बताया हुआ सारा प्रयत्न आपको करना चाहिये।'

इस प्रकार देवराज इन्द्रसे सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करके वे देवता प्रसन्नतापूर्वक सब ओर अपने-अपने स्थानपर चले गये।

(अध्याय १४—१६)

☆

इन्द्रद्वारा कामका स्मरण, उसके साथ उनकी बातचीत तथा उनके कहनेसे कामका शिवको मोहनेके लिये प्रस्थान

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! देवताओंके चले जानेपर दुरात्मा तारक दैत्यसे पीड़ित हुए इन्द्रने कामदेवका स्मरण किया। कामदेव तत्काल वहाँ आ पहुँचा। तब इन्द्रने मित्रताका धर्म बतलाते हुए कामसे कहा—'मित्र! कालवशात् मुझपर असाध्य दुःख आ पड़ा है। उसे तुम्हारे बिना कोई भी दूर नहीं कर सकता। दाताकी परीक्षा दुर्भिक्षमें, शूरवीरकी परीक्षा रणभूमिमें, मित्रकी परीक्षा आपत्तिकालमें तथा स्त्रियोंके कुलकी परीक्षा पतिके असमर्थ हो जानेपर होती है। तात! संकट पड़नेपर विनयकी

परीक्षा होती है और परोक्षमें सत्य एवं उत्तम स्नेहकी, अन्यथा नहीं। यह मैंने सच्ची बात कही है।* मित्रवर ! इस समय मुझपर जो विपत्ति आयी है, उसका निवारण दूसरे किसीसे नहीं हो सकता। अतः आज तुम्हारी परीक्षा हो जायगी। यह कार्य केवल मेरा ही है और मुझे ही सुख देनेवाला है, ऐसी बात नहीं। अपितु यह समस्त देवता आदिका कार्य है, इसमें संशय नहीं है।'

इन्द्रकी यह बात सुनकर कामदेव मुसकराया और प्रेमपूर्ण गम्भीर वाणीमें बोला।

कामने कहा—देवराज ! आप ऐसी बात क्यों कहते हैं ? मैं आपको उत्तर नहीं दे रहा हूँ (*आवश्यक निवेदनमात्र कर रहा हूँ*)।

लोकमें कौन उपकारी मित्र है और कौन बनावटी—यह स्वयं देखनेकी वस्तु है, कहनेकी नहीं। जो संकटके समय बहुत बातें करता है, वह काम क्या करेगा ? तथापि महाराज ! प्रभो ! मैं कुछ कहता हूँ, उसे सुनिये। मित्र ! जो आपके इन्द्रपदको छीननेके लिये दारुण तपस्या कर रहा है, आपके उस शत्रुको मैं सर्वथा तपस्यासे भ्रष्ट कर दूँगा। जो काम जिससे पूरा हो सके, बुद्धिमान् पुरुष उसे उसी काममें लगाये। मेरे योग्य जो कार्य हो, वह सब आप मेरे जिम्मे कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—कामदेवका यह कथन सुनकर इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। वे कामिनियोंको सुख देनेवाले कामको प्रणाम करके उससे इस प्रकार बोले।

इन्द्रने कहा—तात ! मनोभव ! मैंने अपने मनमें जिस कार्यको पूर्ण करनेका उद्देश्य रखा है, उसे सिद्ध करनेमें केवल तुम्हीं समर्थ हो। दूसरे किसीसे उस कार्यका होना सम्भव नहीं है। मित्रवर ! मनोभव काम ! जिसके लिये आज तुम्हारे सहयोगकी अपेक्षा हुई है, उसे ठीक-ठीक बता रहा हूँ; सुनो। तारक नामसे प्रसिद्ध जो महान् दैत्य है, वह ब्रह्माजीका अद्भुत वर पाकर अजेय हो गया है और सभीको दुःख दे रहा है। वह सारे संसारको पीड़ा दे रहा है। उसके द्वारा बारंबार धर्मका नाश हुआ है। उससे सब देवता और समस्त ऋषि दुःखी हुए हैं। सम्पूर्ण देवताओंने पहले उसके साथ अपनी पूरी शक्ति लगाकर युद्ध किया था;

---

* दातुः परीक्षा दुर्भिक्षे रणे शूरस्य जायते। आपत्काले तु मित्रस्याशक्तौ स्त्रीणां कुलस्य हि॥
विनतेः संकटे प्राप्तेऽवितथस्य परोक्षतः। सुस्नेहस्य तथा तात नान्यथा सत्यमीरितम्॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० १७। १२-१३)

परंतु उसके ऊपर सबके अस्त्र-शस्त्र निष्फल हो गये। जलके स्वामी वरुणका पाश टूट गया। श्रीहरिका सुदर्शनचक्र भी वहाँ सफल नहीं हुआ। श्रीविष्णुने उसके कण्ठपर चक्र चलाया, किंतु वह वहाँ कुण्ठित हो गया। ब्रह्माजीने महायोगीश्वर भगवान् शम्भुके वीर्यसे उत्पन्न हुए बालकके हाथसे इस दुरात्मा दैत्यकी मृत्यु बतायी है। यह कार्य तुम्हें अच्छी तरह और प्रयत्नपूर्वक करना है। मित्रवर! उसके हो जानेसे हम देवताओंको बड़ा सुख मिलेगा। भगवान् शम्भु गिरिराज हिमालयपर उत्तम तपस्यामें लगे हैं। वे हमारे भी प्रभु हैं, कामनाके वशमें नहीं हैं, स्वतन्त्र परमेश्वर हैं। मैंने सुना है कि गिरिराजनन्दिनी पार्वती पिताकी आज्ञा पाकर अपनी दो सखियोंके साथ उनके समीप रहकर उनकी सेवामें रहती हैं। उनका यह प्रयत्न महादेवजीको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये ही है। परंतु भगवान् शिव अपने मनको संयम-नियमसे वशमें रखते हैं। मार! जिस तरह भी उनकी पार्वतीमें अत्यन्त रुचि हो जाय, तुम्हें वैसा ही प्रयत्न करना चाहिये। यही कार्य करके तुम कृतार्थ हो जाओगे और हमारा सारा दुःख नष्ट हो जायगा। इतना ही नहीं, लोकमें तुम्हारा स्थायी प्रताप फैल जायगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इन्द्रके ऐसा कहनेपर कामदेवका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने देवराजसे प्रेमपूर्वक कहा—'मैं इस कार्यको करूँगा। इसमें संशय नहीं है।' ऐसा कहकर शिवकी मायासे मोहित हुए कामने उस कार्यके लिये स्वीकृति दे दी और शीघ्र ही उसका भार ले लिया। वह अपनी पत्नी रति और वसन्तको साथ ले बड़ी प्रसन्नताके साथ उस स्थानपर गया, जहाँ साक्षात् योगीश्वर शिव उत्तम तपस्या कर रहे थे।

(अध्याय १७)

रुद्रकी नेत्राग्निसे कामका भस्म होना, रतिका विलाप, देवताओंकी प्रार्थनासे शिवका कामको द्वापरमें प्रद्युम्नरूपसे नूतन शरीरकी प्राप्तिके लिये वर देना और रतिका शम्बर-नगरमें जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! काम अपने साथी वसन्त आदिको लेकर वहाँ पहुँचा। उसने भगवान् शिवपर अपने बाण चलाये। तब शंकरजीके मनमें पार्वतीके प्रति आकर्षण होने लगा और उनका धैर्य छूटने लगा। अपने धैर्यका ह्रास होता देख महायोगी महेश्वर अत्यन्त विस्मित हो मन-ही-मन इस प्रकार चिन्तन करने लगे।

शिव बोले—मैं तो उत्तम तपस्या कर रहा था, उसमें विघ्न कैसे आ गये? किस कुकर्मीने यहाँ मेरे चित्तमें विकार पैदा कर दिया?

इस तरह विचार करके सत्पुरुषोंके आश्रयदाता महायोगी परमेश्वर शिव शङ्कायुक्त हो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखने लगे। इसी समय वामभागमें बाण खींचे खड़े हुए कामपर उनकी दृष्टि पड़ी। वह मूढचित्त मदन अपनी शक्तिके घमंडमें आकर पुनः अपना बाण छोड़ना ही चाहता था। नारद! इस अवस्थामें कामपर दृष्टि

पड़ते ही परमात्मा गिरीशको तत्काल रोष चढ़ आया। मुने! उधर आकाशमें बाणसहित धनुष लिये खड़े हुए कामने भगवान् शंकरपर अपना अमोघ अस्त्र छोड़ दिया, जिसका निवारण करना बहुत कठिन था। परंतु परमात्मा शिवपर वह अमोघ अस्त्र भी मोघ (व्यर्थ) हो गया, कुपित हुए परमेश्वरके पास जाते ही शान्त हो गया। भगवान् शिवपर अपने अस्त्रके व्यर्थ हो जानेपर मन्मथ (काम) को बड़ा भय हुआ। भगवान् मृत्युञ्जयको सामने देखकर वह काँप उठा और इन्द्र आदि समस्त देवताओंका स्मरण करने लगा। मुनिश्रेष्ठ! अपना प्रयास निष्फल हो जानेपर काम भयसे व्याकुल हो उठा था। मुनीश्वर! कामदेवके स्मरण करनेपर वे इन्द्र आदि सब देवता वहाँ आ पहुँचे और शम्भुको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे।

देवता स्तुति कर ही रहे थे कि कुपित हुए भगवान् हरके ललाटके मध्यभागमें स्थित तृतीय नेत्रसे बड़ी भारी आग तत्काल प्रकट होकर निकली। उसकी ज्वालाएँ ऊपरकी ओर उठ रही थीं। वह आग धू-धू करके जलने लगी। उसकी प्रभा प्रलयाग्निके समान जान पड़ती थी। वह आग तुरंत ही आकाशमें उछली और पृथ्वीपर गिर पड़ी। फिर अपने चारों ओर चक्कर काटती हुई धराशायिनी हो गयी। साधो! 'भगवन्! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये' यह बात जबतक देवताओंके मुखसे निकले, तबतक ही उस आगने कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया। उस वीर कामदेवके मारे जानेपर देवताओंको बड़ा दुःख हुआ। वे व्याकुल हो 'हाय! यह क्या हुआ?' ऐसा कह-कहकर जोर-जोरसे चीत्कार करते हुए रोने-बिलखने लगे।

उस समय विकृतचित्त हुई पार्वतीका सारा शरीर सफेद पड़ गया—काटो तो खून नहीं। वे सखियोंको साथ ले अपने भवनको चली गयीं। कामदेवके जल जानेपर रति वहाँ एक क्षणतक अचेत पड़ी रही। पतिकी मृत्युके दुःखसे वह इस तरह पड़ी थी, मानो मर गयी हो। थोड़ी देरमें जब होश हुआ, तब अत्यन्त व्याकुल हो रति उस समय तरह-तरहकी बातें कहकर विलाप करने लगी।

रति बोली—हाय! मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? देवताओंने यह क्या किया। मेरे उद्दण्ड स्वामीको बुलाकर नष्ट करा दिया। हाय! हाय! नाथ! स्मर! स्वामिन्! प्राणप्रिय! हा मुझे सुख देनेवाले प्रियतम! हा प्राणनाथ! यह यहाँ क्या हो गया?

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार रोती, बिलखती और अनेक प्रकारकी बातें कहती हुई रति हाथ-पैर पटकने और अपने सिरके बालोंको नोचने लगी। उस समय उसका विलाप सुनकर वहाँ रहनेवाले समस्त

वनवासी जीव तथा वृक्ष आदि स्थावर प्राणी भी बहुत दुःखी हो गये। इसी बीचमें इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता महादेवजीका स्मरण करते हुए रतिको आश्वासन दे इस प्रकार बोले।

देवताओंने कहा—तुम कामके शरीरका थोड़ा-सा भस्म लेकर उसे यत्नपूर्वक रखो और भय छोड़ो। हम सबके स्वामी महादेवजी कामदेवको पुनः जीवित कर देंगे और तुम फिर अपने प्रियतमको प्राप्त कर लोगी। कोई किसीको न तो सुख देनेवाला है और न कोई दुःख ही देनेवाला है। सब लोग अपनी-अपनी करनीका फल भोगते हैं। तुम देवताओंको दोष देकर व्यर्थ ही शोक करती हो।

इस प्रकार रतिको आश्वासन दे सब देवता भगवान् शिवके पास आये और उन्हें भक्तिभावसे प्रसन्न करके यों बोले।

देवताओंने कहा—भगवन्! शरणागत-वत्सल महेश्वर! आप कृपा करके हमारे इस शुभ वचनको सुनिये। शंकर! आप कामदेवकी करतूतपर भलीभाँति प्रसन्नतापूर्वक विचार कीजिये। महेश्वर! कामने जो यह कार्य किया है, इसमें इसका कोई स्वार्थ नहीं था। दुष्ट तारकासुरसे पीड़ित हुए हम सब देवताओंने मिलकर उससे यह काम कराया है। नाथ! शंकर! इसे आप अन्यथा न समझें। सब कुछ देनेवाले देव! गिरीश! सती-साध्वी रति अकेली अति दुःखी होकर विलाप कर रही है। आप उसे सान्त्वना प्रदान करें। शंकर! यदि इस क्रोधके द्वारा आपने कामदेवको मार डाला तो हम यही समझेंगे कि आप देवताओंसहित समस्त प्राणियोंका अभी संहार कर डालना चाहते हैं। रतिका दुःख देखकर देवता नष्टप्राय हो रहे हैं; इसलिये आपको रतिका शोक दूर कर देना चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! सम्पूर्ण देवताओंका यह वचन सुनकर भगवान् शिव प्रसन्न हो उनसे इस प्रकार बोले।

शिवने कहा—देवताओ और ऋषियो! तुम सब आदरपूर्वक मेरी बात सुनो। मेरे क्रोधसे जो कुछ हो गया है, वह तो अन्यथा नहीं हो सकता, तथापि रतिका शक्तिशाली पति *कामदेव तभीतक अनङ्ग* (शरीररहित) रहेगा, जबतक रुक्मिणीपति श्रीकृष्णका धरतीपर अवतार नहीं हो जाता। जब श्रीकृष्ण द्वारकामें रहकर पुत्रोंको उत्पन्न करेंगे; तब वे रुक्मिणीके गर्भसे कामको भी जन्म देंगे। उस कामका ही नाम उस समय 'प्रद्युम्न' होगा—इसमें संशय नहीं है। *उस पुत्रके जन्म लेते ही शम्बरासुर उसे हर* लेगा। हरणके पश्चात् दानवशिरोमणि शम्बर उस शिशुको समुद्रमें डाल देगा। फिर वह मूढ़ उसे मरा हुआ समझकर अपने नगरको लौट जायगा। रते! उस समयतक तुम्हें शम्बरासुरके नगरमें सुखपूर्वक निवास करना चाहिये। वहीं तुम्हें अपने पति प्रद्युम्नकी *प्राप्ति होगी। वहाँ तुमसे मिलकर* काम युद्धमें शम्बरासुरका वध करेगा और सुखी होगा। देवताओ! प्रद्युम्न-नामधारी काम अपनी कामिनी रतिको तथा शम्बरासुरके धनको लेकर उसके साथ पुनः नगरमें जायगा। मेरा यह कथन सर्वथा सत्य होगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! भगवान् शिवकी यह बात सुनकर देवताओंके चित्तमें

कुछ उल्लास हुआ और वे उन्हें प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ विनीतभावसे बोले।

देवताओंने कहा—देवदेव ! महादेव ! करुणासागर ! प्रभो ! आप कामदेवको शीघ्र जीवन-दान दें तथा रतिके प्राणोंकी रक्षा करें।

देवताओंकी यह बात सुनकर सबके स्वामी करुणासागर परमेश्वर शिव पुनः प्रसन्न होकर बोले—'देवताओ ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं कामको शिवके हृदयमें जीवित कर दूँगा। वह सदा मेरा गण होकर विहार करेगा। अब अपने स्थानको जाओ। मैं तुम्हारे दुःखका सर्वथा नाश करूँगा।'

ऐसा कहकर रुद्रदेव उस समय स्तुति करनेवाले देवताओंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। देवताओंका विस्मय दूर हो गया और वे सब-के-सब प्रसन्न हो गये। मुने ! तदनन्तर रुद्रकी बातपर भरोसा करके स्थिर रहनेवाले देवता रतिको उनका कथन सुनाकर आश्वासन दे अपने-अपने स्थानको चले गये। मुनीश्वर ! कामपत्नी रति शिवके बताये हुए शम्बरनगरको चली गयी तथा रुद्रदेवने जो समय बताया था, उसकी प्रतीक्षा करने लगी। (अध्याय १८-१९)

*

ब्रह्माजीका शिवकी क्रोधाग्निको वडवानलकी संज्ञा दे समुद्रमें स्थापित करके संसारके भयको दूर करना, शिवके विरहसे पार्वतीका शोक तथा नारदजीके द्वारा उन्हें तपस्याके लिये उपदेशपूर्वक पञ्चाक्षर-मन्त्रकी प्राप्ति

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! जब भगवान् रुद्रके तीसरे नेत्रसे प्रकट हुई अग्निने कामदेवको शीघ्र जलाकर भस्म कर दिया, तब वह बिना किसी प्रयोजनके ही प्रज्वलित हो सब ओर फैलने लगी। इससे चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें महान् हाहाकार मच गया। तात ! सम्पूर्ण देवता और ऋषि तुरंत मेरी शरणमें आये। उन सबने अत्यन्त व्याकुल होकर मस्तक झुका दोनों हाथ जोड़ मुझे प्रणाम किया और मेरी स्तुति करके वह दुःख निवेदन किया। वह सुनकर मैं भगवान् शिवका स्मरण करके उसके हेतुका भलीभाँति विचारकर तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये विनीतभावसे वहाँ पहुँचा ! वह अग्नि ज्वालामालाओंसे अत्यन्त उद्दीप्त हो जगत्‌को जला देनेके लिये उद्यत थी। परंतु भगवान् शिवकी कृपासे प्राप्त हुए उत्तम तेजके द्वारा मैंने उसे तत्काल स्तम्भित कर दिया। मुने ! त्रिलोकीको दग्ध करनेकी इच्छा रखनेवाली उस क्रोधमय अग्निको मैंने एक ऐसे घोड़ेके रूपमें परिणत कर दिया, जिसके मुखसे सौम्य ज्वाला प्रकट हो रही थी। भगवान् शिवकी इच्छासे उस वाडव शरीर (घोड़े) वाली अग्निको लेकर मैं लोकहितके लिये समुद्रतटपर गया। मुने ! मुझे आया देख समुद्र एक दिव्य पुरुषका रूप धारण करके हाथ जोड़े हुए मेरे पास आया। मुझ सम्पूर्ण लोकोंके पितामहकी भलीभाँति विधिवत् स्तुति-वन्दना करके सिन्धुने मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहा।

सागर बोला—सर्वेश्वर ब्रह्मन्! आप यहाँ किस लिये पधारे हैं? मुझे अपना सेवक समझ इस बातको प्रीतिपूर्वक कहिये।

सागरकी बात सुनकर भगवान् शंकरका स्मरण करके लोकहितका ध्यान

रखते हुए मैंने उससे प्रसन्नतापूर्वक कहा—'तात समुद्र! तुम बड़े बुद्धिमान् और सम्पूर्ण लोकोंके हितकारी हो। मैं शिवकी इच्छासे प्रेरित हो हार्दिक प्रीतिपूर्वक तुमसे कह रहा हूँ। यह भगवान् महेश्वरका क्रोध है, जो महान् शक्तिशाली अश्वके रूपमें यहाँ उपस्थित है। यह कामदेवको दग्ध करके तुरंत ही सम्पूर्ण जगत्‌को भस्म करनेके लिये उद्यत हो गया था। यह देख पीड़ित हुए देवताओंकी प्रार्थनासे मैं शंकरेच्छावश यहाँ गया और इस अग्निको स्तम्भित किया। फिर इसने घोड़ेका रूप धारण किया और इसे लेकर मैं यहाँ आया। जलाधार! मैं जगत्‌पर दया करके तुम्हें यह आदेश दे रहा हूँ—इस महेश्वरके क्रोधको, जो वाडवका रूप धारण करके मुखसे ज्वाला प्रकट करता हुआ खड़ा है, तुम प्रलयकालपर्यन्त धारण किये रहो। सरित्पते! जब मैं यहाँ आकर वास करूँगा, तब तुम भगवान् शंकरके इस अद्भुत क्रोधको छोड़ देना। तुम्हारा जल ही प्रतिदिन इसका भोजन होगा। तुम यत्नपूर्वक इसे ऊपर ही धारण किये रहना, जिससे यह तुम्हारी अनन्त जलराशिके भीतर न चला जाय।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मेरे ऐसा कहनेपर समुद्रने रुद्रकी क्रोधाग्निरूप वडवानलको धारण करना स्वीकार कर लिया, जो दूसरेके लिये असम्भव था। तदनन्तर वह वडवाग्नि समुद्रमें प्रविष्ट हुई और ज्वालामालाओंसे प्रदीप्त हो सागरकी जलराशिका दहन करने लगी। मुने! इससे संतुष्टचित्त होकर मैं अपने लोकको चला आया और वह दिव्यरूपधारी समुद्र मुझे प्रणाम करके अदृश्य हो गया। महामुने! रुद्रकी उस क्रोधाग्निके भयसे छूटकर सम्पूर्ण जगत् स्वस्थताका अनुभव करने लगा और देवता तथा मुनि सुखी हो गये।

नारदजी बोले—दयानिधे! मदन-दहनके पश्चात् गिरिराजनन्दिनी पार्वती देवीने क्या किया? वे अपनी दोनों सखियोंके साथ कहाँ गयीं? यह सब मुझे बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—भगवान् शंकरके नेत्रसे उत्पन्न हुई आगने जब कामदेवको दग्ध किया, तब वहाँ महान् अद्भुत शब्द प्रकट हुआ, जिससे सारा आकाश गूँज उठा। उस महान् शब्दके साथ ही कामदेवको दग्ध

हुआ देख भयभीत और व्याकुल हुई पार्वती दोनों सखियोंके साथ अपने घर चली गयीं। उस शब्दसे परिवारसहित हिमवान् भी बड़े विस्मयमें पड़ गये और वहाँ गयी हुई अपनी पुत्रीका स्मरण करके उन्हें बड़ा क्लेश हुआ। इतनेमें ही पार्वती दूरसे आती हुई दिखायी दीं। वे शम्भुके विरहसे रो रही थीं। अपनी पुत्रीको अत्यन्त विह्वल हुई देख शैलराज हिमवान्‌को बड़ा शोक हुआ और वे शीघ्र ही उसके पास जा पहुँचे। वे फिर हाथसे उसकी दोनों आँखें पोंछकर बोले—'शिवे! डरो मत, रोओ मत।' ऐसा कहकर अचलेश्वर हिमवान्‌ने अत्यन्त विह्वल हुई पार्वतीको शीघ्र ही गोदमें उठा लिया और उसे सान्त्वना देते हुए वे अपने घर ले आये।

कामदेवका दाह करके महादेवजी अदृश्य हो गये थे। अतः उनके विरहसे पार्वती अत्यन्त व्याकुल हो उठी थीं। उन्हें कहीं भी सुख या शान्ति नहीं मिलती थी। पिताके घर जाकर जब वे अपनी मातासे मिलीं, उस समय पार्वती शिवाने अपना नया जन्म हुआ माना। वे अपने रूपकी निन्दा करने लगीं और बोलीं—'हाय! मैं मारी गयी।' सखियोंके समझानेपर भी वे गिरिराजकुमारी कुछ समझ नहीं पाती थीं। वे सोते-जागते, खाते-पीते, नहाते-धोते, चलते-फिरते और सखियोंके बीचमें खड़े होते समय भी कभी किंचिन्मात्र भी सुखका अनुभव नहीं करती थीं। 'मेरे स्वरूपको तथा जन्म-कर्मको भी धिक्कार है' ऐसा कहती हुई वे सदा महादेवजीकी प्रत्येक चेष्टाका चिन्तन करती थीं। इस प्रकार पार्वती भगवान् शिवके विरहसे मन-ही-मन अत्यन्त क्लेशका अनुभव करती और किंचिन्मात्र भी सुख नहीं पाती थीं। वे सदा 'शिव, शिव' का जप किया करती थीं। शरीरसे पिताके घरमें रहकर भी वे चित्तसे पिनाकपाणि भगवान् शंकरके पास पहुँची रहती थीं। तात! शिवा शोकमग्न हो बारंबार मूर्च्छित हो जाती थीं। शैलराज हिमवान्, उनकी पत्नी मेनका तथा उनके मैनाक आदि सभी पुत्र, जो बड़े उदारचेता थे, उन्हें सदा सान्त्वना देते रहते थे। तथापि वे भगवान् शंकरको भूल न सकीं।

बुद्धिमान् देवर्षे! तदनन्तर एक दिन इन्द्रकी प्रेरणासे इच्छानुसार घूमते हुए तुम हिमालय पर्वतपर आये। उस समय महात्मा हिमवान्‌ने तुम्हारा स्वागत-सत्कार किया और कुशल-मङ्गल पूछा। फिर तुम उनके दिये हुए उत्तम आसनपर बैठे। तदनन्तर शैलराजने अपनी कन्याके चरित्रका आरम्भसे ही वर्णन किया। किस तरह उसने महादेवजीकी सेवा आरम्भ की और किस तरह उनके द्वारा कामदेवका दहन हुआ—यह सब कुछ बताया। मुने! यह सब सुनकर तुमने गिरिराजसे कहा—'शैलेश्वर! भगवान् शिवका भजन करो।' फिर उनसे विदा लेकर तुम उठे और मन-ही-मन शिवका स्मरण करके शैलराजको छोड़ शीघ्र ही एकान्तमें कालीके पास आ गये। मुने! तुम लोकोपकारी, ज्ञानी तथा शिवके प्रिय भक्त हो; समस्त ज्ञानवानोंके शिरोमणि हो, अतः कालीके पास आ उसे सम्बोधित करके उसीके हितमें स्थित हो उससे सादर यह सत्य वचन बोले।

नारदजीने (तुमने) कहा—कालिके! तुम मेरी बात सुनो। मैं दयावश सच्ची बात कह रहा हूँ। मेरा वचन तुम्हारे लिये सर्वथा

हितकर, निर्दोष तथा उत्तम काम्य वस्तुओंको देनेवाला होगा। तुमने यहाँ महादेवजीकी सेवा अवश्य की थी, परंतु वह बिना तपस्याके गर्वयुक्त होकर की थी। दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले शिवने तुम्हारे उसी गर्वको नष्ट किया है। शिवे ! तुम्हारे स्वामी महेश्वर विरक्त और महायोगी हैं। उन्होंने केवल कामदेवको जलाकर जो तुम्हें सकुशल छोड़ दिया है, उसमें यही कारण है कि वे भगवान् भक्तवत्सल हैं। अतः तुम उत्तम तपस्यामें संलग्न हो चिरकालतक महेश्वरकी आराधना करो। तपस्यासे तुम्हारा संस्कार हो जानेपर रुद्रदेव तुम्हें अपनी सहधर्मिणी बनायेंगे और तुम भी कभी उन कल्याणकारी शम्भुका परित्याग नहीं करोगी। देवि ! तुम हठपूर्वक शिवको अपनानेका यत्न करो। शिवके सिवा दूसरे किसीको अपना पति स्वीकार न करना।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तुम्हारी यह बात सुनकर गिरिराजकुमारी काली कुछ उल्लसित हो तुमसे हाथ जोड़ प्रसन्नतापूर्वक बोलीं।

शिवाने कहा—प्रभो ! आप सर्वज्ञ तथा जगत्‌का उपकार करनेवाले हैं। मुने ! मुझे रुद्रदेवकी आराधनाके लिये कोई मन्त्र दीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! पार्वतीका यह वचन सुनकर तुमने पञ्चाक्षर शिवमन्त्र (नमः शिवाय) का उन्हें विधिपूर्वक उपदेश किया। साथ ही उस मन्त्रराजमें श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिये तुमने उसका सबसे अधिक प्रभाव बताया।

नारद (तुम) बोले—देवि ! इस मन्त्रका परम अद्भुत प्रभाव सुनो। इसके श्रवणमात्रसे भगवान् शंकर प्रसन्न हो जाते हैं। यह मन्त्र सब मन्त्रोंका राजा और मनोवाञ्छित फलको देनेवाला है। भगवान् शंकरको बहुत ही प्रिय है तथा साधकको भोग और मोक्ष देनेमें समर्थ है। सौभाग्यशालिनि ! इस मन्त्रका विधिपूर्वक जप करनेसे तुम्हारे द्वारा आराधित हुए भगवान् शिव अवश्य और शीघ्र तुम्हारी आँखोंके सामने प्रकट हो जायँगे। शिवे ! शौच-संतोषादि नियमोंमें तत्पर रहकर भगवान् शिवके स्वरूपका चिन्तन करती हुई तुम पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करो। इससे आराध्यदेव शिव शीघ्र ही संतुष्ट होंगे। साध्वी ! इस तरह तपस्या करो। तपस्यासे महेश्वर वशमें हो सकते हैं। तपस्यासे ही सबको मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तुम भगवान् शिवके प्रिय भक्त और इच्छानुसार विचरनेवाले हो। तुमने कालीसे उपर्युक्त बात कहकर देवताओंके हितमें तत्पर हो स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। तुम्हारी बात सुनकर उस समय पार्वती बहुत प्रसन्न हुईं। उन्हें परम उत्तम पञ्चाक्षर-मन्त्र प्राप्त हो गया था।

(अध्याय २०-२१)

☆

श्रीशिवकी आराधनाके लिये पार्वतीजीकी दुष्कर तपस्या

ब्रह्माजी कहते हैं—देवर्षे ! तुम्हारे चले जानेपर प्रफुल्लचित्त हुई पार्वतीने महादेवजीको तपस्यासे ही साध्य माना और तपस्याके लिये ही मनमें निश्चय किया। तब उन्होंने अपनी सखी जया और विजयाके द्वारा पिता हिमाचल और माता मेनासे आज्ञा माँगी। पिताने तो स्वीकार कर लिया; परंतु माता मेनाने स्नेहवश अनेक प्रकारसे समझाया और घरसे दूर वनमें जाकर तप करनेसे पुत्रीको रोका। मेनाने तपस्याके लिये वनमें जानेसे रोकते हुए 'उ', 'मा' (बाहर न जाओ) ऐसा कहा; इसलिये उस समय शिवाका नाम उमा हो गया। मुने ! शैलराजकी प्यारी पत्नी मेनाने रोकनेसे शिवाको दुःखी हुई जान अपना विचार बदल दिया और पार्वतीको तपस्याके लिये जानेकी आज्ञा दे दी। मुनिश्रेष्ठ ! माताकी यह आज्ञा पाकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली पार्वतीने भगवान् शंकरका स्मरण करके अपने मनमें बड़े सुखका अनुभव किया। माता-पिताको प्रसन्नता-पूर्वक प्रणाम करके शिवके स्मरणपूर्वक दोनों सखियोंके साथ वे तपस्या करनेके लिये चली गयीं। अनेक प्रकारके प्रिय वस्त्रोंका परित्याग करके पार्वतीने कटि-प्रदेशमें सुन्दर मूँजकी मेखला बाँध शीघ्र ही वल्कल धारण कर लिये। हारका परिहार करके उत्तम मृगचर्मको हृदयसे लगाया। तत्पश्चात् वे तपस्याके लिये गङ्गावतरण (गङ्गोत्तरी) तीर्थकी ओर चलीं।

जहाँ ध्यान लगाते हुए भगवान् शंकरने कामदेवको दग्ध किया था, हिमालयका वह शिखर गङ्गावतरणके नामसे प्रसिद्ध है। वहीं परम उत्तम शृङ्गितीर्थमें पार्वतीने तपस्या प्रारम्भ की। गौरीके तप करनेसे ही उसका 'गौरी-शिखर' नाम हो गया। मुने ! शिवाने अपने तपकी परीक्षाके लिये वहाँ बहुत-से सुन्दर एवं पवित्र वृक्ष लगाये, जो फल देनेवाले थे। सुन्दरी पार्वतीने पहले भूमि-शुद्ध करके वहाँ एक वेदीका निर्माण किया। तदनन्तर ऐसी तपस्या आरम्भ की, जो मुनियोंके लिये भी दुष्कर थी। वे मनसहित सम्पूर्ण इन्द्रियोंको शीघ्र ही काबूमें करके उस वेदीपर उच्चकोटिकी तपस्या करने लगीं। ग्रीष्म ऋतुमें अपने चारों ओर दिन-रात आग जलाये रखकर वे बीचमें बैठतीं और निरन्तर पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करती रहती थीं। वर्षा ऋतुमें वेदीपर सुस्थिर आसनसे बैठकर अथवा किसी पत्थरकी चट्टानपर ही आसन लगाकर वे निरन्तर वर्षाकी जलधारासे भीगती रहती थीं। शीतकालमें निराहार रहकर भगवान् शंकरके भजनमें तत्पर हो वे सदा शीतल जलके भीतर खड़ी रहती तथा रातभर बरफकी चट्टानोंपर बैठा करती थीं। इस प्रकार तप करती हुई पञ्चाक्षर-मन्त्रके जपमें संलग्न हो शिवा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके दाता शिवका ध्यान करती थीं। प्रतिदिन अवकाश मिलनेपर वे सखियोंके साथ अपने लगाये हुए वृक्षोंको प्रसन्नतापूर्वक सींचतीं और वहाँ पधारे हुए अतिथिका आतिथ्य-सत्कार भी करती थीं।

शुद्ध चित्तवाली पार्वतीने प्रचण्ड आँधी, कड़ाकेकी सर्दी, अनेक प्रकारकी वर्षा तथा दुस्सह धूपका भी सेवन किया। उनके ऊपर वहाँ नाना प्रकारके दुःख आये, परंतु उन्होंने उन सबको कुछ नहीं गिना। मुने! वे केवल शिवमें मन लगाकर वहाँ सुस्थिरभावसे खड़ी या बैठी रहती थीं। उनका पहला वर्ष फलाहारमें बीता और दूसरा वर्ष उन्होंने केवल पत्ते चबाकर बिताया! इस तरह तपस्या करती हुई देवी पार्वतीने क्रमशः असंख्य वर्ष व्यतीत कर दिये। तदनन्तर हिमवान्‌की पुत्री शिवादेवी पत्ते खाना भी छोड़कर सर्वथा निराहार रहने लगीं, तो भी तपश्चर्यामें उनका अनुराग बढ़ता ही गया। हिमाचलपुत्री शिवाने भोजनके लिये पर्णका भी परित्याग कर दिया। इसलिये देवताओंने उनका नाम 'अपर्णा' रख दिया। इसके बाद पार्वती भगवान् शिवके स्मरणपूर्वक एक पैरसे खड़ी हो पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करती हुई बड़ी भारी तपस्या करने लगीं। उनके अङ्ग चीर और वल्कलसे ढके थे। वे मस्तकपर जटाओंका समूह धारण किये रहती थीं। इस प्रकार शिवके चिन्तनमें लगी हुई पार्वतीने अपनी तपस्याके द्वारा मुनियोंको जीत लिया। उस तपोवनमें महेश्वरके चिन्तनपूर्वक तपस्या करती हुई कालीके तीन हजार वर्ष बीत गये।

तदनन्तर जहाँ महादेवजीने साठ हजार वर्षोंतक तप किया था, उस स्थानपर क्षणभर ठहरकर शिवादेवी इस प्रकार चिन्ता करने लगीं—'क्या महादेवजी इस समय यह नहीं जानते कि मैं उनके लिये नियमोंके पालनमें तत्पर हो तपस्या कर रही हूँ? फिर क्या कारण है कि सुदीर्घकालसे तपस्यामें लगी हुई मुझ सेविकाके पास वे नहीं आये? लोकमें, वेदमें और मुनियोंद्वारा सदा गिरीशकी महिमाका गान किया जाता है। सब यही कहते हैं कि भगवान् शंकर सर्वज्ञ, सर्वात्मा, सर्वदर्शी, समस्त ऐश्वर्योंके दाता, दिव्य शक्तिसम्पन्न, सबके मनोभावोंको समझ लेनेवाले, भक्तोंको उनकी अभीष्ट वस्तु देनेवाले और सदा समस्त क्लेशोंका निवारण करनेवाले हैं। यदि मैं समस्त कामनाओंका परित्याग करके भगवान् वृषभध्वजमें अनुरक्त हुई हूँ तो वे कल्याणकारी भगवान् शिव यहाँ मुझपर प्रसन्न हों। यदि मैंने नारदतन्त्रोक्त शिवपञ्चाक्षर-मन्त्रका सदा उत्तम भक्तिभावसे विधिपूर्वक जप किया हो तो भगवान् शंकर मुझपर प्रसन्न हों। यदि मैं सर्वेश्वर शिवकी भक्तिसे युक्त एवं निर्विकार

होऊँ तो भगवान् शंकर मुझपर अत्यन्त प्रसन्न हों।'

इस तरह नित्य चिन्तन करती हुई जटा-वल्कलधारिणी निर्विकारा पार्वती मुँह नीचे किये सुदीर्घकालतक तपस्यामें लगी रहीं। उन्होंने ऐसी तपस्या की, जो मुनियोंके लिये भी दुष्कर थी। वहाँ उस तपस्याका स्मरण करके पुरुषोंको बड़ा विस्मय हुआ। महर्षे! पार्वतीकी तपस्याका जो दूसरा प्रभाव पड़ा था, उसे भी इस समय सुनो। जगदम्बा पार्वतीका वह महान् तप परम आश्चर्यजनक था। जो स्वभावतः एक-दूसरेके विरोधी थे, ऐसे प्राणी भी उस आश्रमके पास जाकर उनकी तपस्याके प्रभावसे विरोधरहित हो जाते थे। सिंह और गौ आदि सदा रागादि दोषोंसे संयुक्त रहनेवाले पशु भी पार्वतीके तपकी महिमासे वहाँ परस्पर बाधा नहीं पहुँचाते थे। मुनिश्रेष्ठ! इनके अतिरिक्त जो स्वभावतः एक-दूसरेके वैरी हैं, वे चूहे-बिल्ली आदि दूसरे-दूसरे जीव भी उस आश्रमपर कभी रोष आदि विकारोंसे युक्त नहीं होते थे। वहाँके सभी वृक्षोंमें सदा फल लगे रहते थे। भाँति-भाँतिके तृण और विचित्र पुष्प उस वनकी शोभा बढ़ाते थे। वहाँका सारा वनप्रान्त कैलासके समान हो गया। पार्वतीके तपकी सिद्धिका साकार रूप बन गया।

(अध्याय २२)

☆

पार्वतीकी तपस्याविषयक दृढ़ता, उनका पहलेसे भी उग्र तप, उससे त्रिलोकीका संतप्त होना तथा समस्त देवताओंके साथ ब्रह्मा और विष्णुका भगवान् शिवके स्थानपर जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनीश्वर! शिवकी प्राप्तिके लिये इस प्रकार तपस्या करती हुई पार्वतीके बहुत वर्ष बीत गये, तो भी भगवान् शंकर प्रकट नहीं हुए। तब हिमाचल, मेना, मेरु और मन्दराचल आदिने आकर पार्वतीको समझाया और शिवकी प्राप्तिको अत्यन्त दुष्कर बताकर उनसे यह अनुरोध किया कि तुम तपस्या छोड़कर घरको लौट चलो।

तब उन सबकी बात सुनकर पार्वतीने कहा—पिताजी! माताजी! तथा मेरे सभी बान्धव! मैंने पहले जो बात कही थी, उसे क्या आपलोगोंने भुला दिया है? अस्तु, इस समय भी मेरी जो प्रतिज्ञा है, उसे आपलोग सुन लें। जिन्होंने रोषसे कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया है वे महादेवजी यद्यपि विरक्त हैं, तो भी मैं अपनी तपस्यासे उन भक्तवत्सल भगवान् शंकरको अवश्य संतुष्ट करूँगी। आप सब लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घरको जायँ; महादेवजी संतुष्ट होंगे ही, इसमें अन्यथा विचारकी आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने कामदेवको जलाया है, जिन्होंने इस पर्वतके वनको भी जलाकर भस्म कर दिया है, उन भगवान् शंकरको मैं केवल तपस्यासे यहीं बुलाऊँगी। महाभागगण! आप यह जान लें कि महान् तपोबलसे ही भगवान् सदाशिवकी सेवा सुलभ हो सकती है। यह मैं आपलोगोंसे सत्य, सत्य कहती हूँ।

सुमधुर भाषण करनेवाली पर्वतराज-कुमारी शिवा माता मेनका, भाई मैनाक,

पिता हिमालय और मन्दराचल आदिसे उपर्युक्त बात कहकर शीघ्र ही चुप हो गयीं। शिवाके ऐसा कहनेपर वे चतुर-चालाक पर्वत, गिरिराज सुमेरु आदि गिरिजाकी बारंबार प्रशंसा करते हुए अत्यन्त विस्मित हो जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। उन सबके चले जानेपर सखियोंसे घिरी हुई पार्वती मनमें यथार्थ निश्चय करके पहलेसे भी अधिक उग्र तपस्या करने लगीं। मुनिश्रेष्ठ! देवताओं, असुरों, मनुष्यों और चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी उस महती तपस्यासे संतप्त हो उठी। उस समय समस्त देवता, असुर, यक्ष, किंनर, चारण, सिद्ध, साध्य, मुनि, विद्याधर, बड़े-बड़े नाग, प्रजापति, गुह्यक तथा अन्य लोग महान्-से-महान् कष्टमें पड़ गये। परंतु इसका कोई कारण उनकी समझमें नहीं आया। तब इन्द्र आदि सब देवता मिलकर गुरु बृहस्पतिसे सलाह ले बड़ी विह्वलताके साथ सुमेरु पर्वतपर मुझ विधाताकी शरणमें आये। उस समय उनके सारे अङ्ग संतप्त हो रहे थे। वहाँ आ मुझे प्रणामकर उन सभी व्याकुल और कान्तिहीन देवताओंने मेरी स्तुति करके एक साथ ही मुझसे पूछा—'प्रभो! जगत्के संतप्त होनेका क्या कारण है?'

उनका यह प्रश्न सुनकर मन-ही-मन शिवका स्मरण करके विचारपूर्वक मैंने सब कुछ जान लिया। इस समय विश्वमें जो दाह उत्पन्न हो गया है, यह गिरिजाकी तपस्याका फल है—यह जानकर मैं उन सबके साथ शीघ्र ही क्षीरसागरको गया। वहाँ जानेका उद्देश्य भगवान् विष्णुसे सब कुछ बताना था। वहाँ पहुँचकर देखा, भगवान् श्रीहरि सुखद आसनपर विराजमान हैं। देवताओंके साथ मैंने हाथ जोड़कर प्रणामपूर्वक उनकी स्तुति की और कहा—'महाविष्णो! तपस्यामें लगी हुई पार्वतीके परम उग्र तपसे संतप्त हो हम सब लोग आपकी शरणमें आये हैं। आप हमें बचाइये, बचाइये।' हम सब देवताओंकी यह बात सुनकर शेषशय्यापर बैठे हुए भगवान् लक्ष्मीपति हमसे बोले।

श्रीविष्णुने कहा—देवताओ! मैंने आज पार्वतीजीकी तपस्याका सारा कारण जान लिया है। अतः तुमलोगोंके साथ अब परमेश्वर शिवके समीप चलता हूँ। हम सब लोग मिलकर यह प्रार्थना करेंगे कि वे गिरिजाको ब्याहकर अपने यहाँ ले आवें। अमरो! इस समय समस्त संसारके कल्याणके लिये भगवान्से शिवाके पाणिग्रहणके लिये अनुरोध करना है। देवाधिदेव पिनाकधारी भगवान् शिव शिवाको वर देनेके लिये जैसे भी वहीं उनके आश्रमपर जायँ, इस समय हम वैसा ही प्रयत्न करेंगे। अतः परम मङ्गलमय महाप्रभु रुद्र जहाँ उग्र तपस्यामें लगे हुए हैं, वहीं हम सब लोग चलें।

भगवान् विष्णुकी यह बात सुनकर समस्त देवता आदि हठी, क्रोधी और जलानेके लिये उद्यत रहनेवाले प्रलयंकर रुद्रसे अत्यन्त भयभीत हो बोले।

देवताओंने कहा—भगवन्! जो महाभयंकर, कालाग्निके समान दीप्तिमान् और भयानक नेत्रोंसे युक्त हैं, उन रोषभरे महाप्रभु रुद्रके पास हमलोग नहीं जा सकेंगे; क्योंकि जैसे पहले उन्होंने कुपित हो दुर्जय कामको भी जला दिया था, उसी प्रकार वे हमें भी दग्ध कर डालेंगे—इसमें संशय नहीं है।

मुने ! इन्द्रादि देवताओंकी बात सुनकर लक्ष्मीपति श्रीहरिने उन सबको सान्त्वना देते हुए कहा।

श्रीहरि बोले—हे देवताओ ! तुम सब लोग प्रेम और आदरके साथ मेरी बात सुनो। भगवान् शिव देवताओंके स्वामी तथा उनके भयका नाश करनेवाले हैं। वे तुम्हें नहीं दग्ध करेंगे। तुम सब लोग बड़े चतुर हो। अतः तुम्हें शम्भुको कल्याणकारी मानकर हमारे साथ सबके उत्तम प्रभु उन महादेवजीकी शरणमें चलना चाहिये। भगवान् शिव पुराणपुरुष, सर्वेश्वर, वरणीय, परात्पर, तपस्वी और परमात्मस्वरूप हैं; अतः हमें उनकी शरणमें अवश्य चलना चाहिये।

प्रभावशाली विष्णुके ऐसा कहनेपर सब देवता उनके साथ पिनाकपाणि शिवका दर्शन करनेके लिये गये। मार्गमें पार्वतीका आश्रम पहले पड़ता था। अतः उन गिरिराजनन्दिनीकी तपस्या देखनेके लिये विष्णु आदि सब देवता कौतूहलपूर्वक उनके आश्रमपर गये। पार्वतीके श्रेष्ठ तपको देखकर सब देवता उनके उत्तम तेजसे व्याप्त हो गये। उन्होंने तपस्यामें लगी हुई उन तेजोमयी जगदम्बाको नमस्कार किया और साक्षात् सिद्धिस्वरूपा शिवादेवीके तपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वे सब देवता उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् वृषभध्वज विराजमान थे। मुने ! वहाँ पहुँचकर सब देवताओंने पहले तुम्हें उनके पास भेजा और स्वयं वे मदनदहनकारी भगवान् दूरसे दूर ही खड़े रहे। वे वहींसे यह देखते रहे कि भगवान् शिव कुपित हैं या प्रसन्न। नारद ! तुम तो सदा निर्भय रहनेवाले और विशेषतः शिवके भक्त हो। अतः तुमने भगवान् शिवके स्थानपर जाकर उन्हें सर्वथा प्रसन्न देखा। फिर वहाँसे लौटकर तुम श्रीविष्णु आदि सब देवताओंको भगवान् शिवके स्थानपर ले गये। वहाँ पहुँचकर विष्णु आदि सब देवताओंने देखा, भक्तवत्सल भगवान् शिव सुखपूर्वक प्रसन्न मुद्रामें बैठे हैं। अपने गणोंसे घिरे हुए शम्भु तपस्वीका रूप धारण किये योगपट्टपर आसीन थे। उन परमेश्वररूपी शंकरका दर्शन करके मेरे सहित श्रीविष्णु तथा अन्य देवताओं, सिद्धों और मुनीश्वरोंने उन्हें प्रणाम करके वेदों और उपनिषदोंके सूक्तोंद्वारा उनका स्तवन किया।

(अध्याय २३)

☆

देवताओंका भगवान् शिवसे पार्वतीके साथ विवाह करनेका अनुरोध, भगवान्का विवाहके दोष बताकर अस्वीकार करना तथा उनके पुनः प्रार्थना करनेपर स्वीकार कर लेना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! देवताओंने वहाँ पहुँचकर भगवान् रुद्रको प्रणाम करके उनकी स्तुति की। तब नन्दिकेश्वरने भगवान् शिवसे उनकी दीनबन्धुता एवं भक्तवत्सलताकी प्रशंसा करते हुए कहा—'प्रभो ! देवता और मुनि संकटमें पड़कर आपकी शरणमें आये हैं। सर्वेश्वर ! आप उनका उद्धार करें।'

दयालु नन्दीके इस प्रकार सूचित करनेपर भगवान् शम्भु धीरे-धीरे आँखें

खोलकर ध्यानसे उपरत हुए। समाधिसे विरत हो परमज्ञानी परमात्मा एवं ईश्वर शम्भुने समस्त देवताओंसे इस प्रकार कहा।

शम्भु बोले—श्रीविष्णु और ब्रह्मा आदि देवेश्वरो! तुम सब लोग मेरे समीप कैसे आये? तुम अपने आनेका जो भी कारण हो, वह शीघ्र बताओ।

भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर सब देवता प्रसन्न हो कारण बतानेके लिये भगवान् विष्णुके मुँहकी ओर देखने लगे। तब शिवके महान् भक्त और देवताओंके हितकारी श्रीविष्णु मेरे बताये हुए देवताओंके महत्तर कार्यको सूचित करने लगे। उन्होंने कहा—'शम्भो! तारकासुरने देवताओंको अत्यन्त अद्भुत एवं महान् कष्ट प्रदान किया है। यही बतानेके लिये सब देवता यहाँ आये हैं। भगवन्! आपके औरस पुत्रसे ही तारक दैत्य मारा जा सकेगा और किसी प्रकारसे नहीं। मेरा यह कथन सर्वथा सत्य है। महादेव! इस प्रकार विचार करके आप कृपा करें। आपको नमस्कार है। स्वामिन्! तारकासुरके द्वारा उपस्थित किये गये इस कष्टसे आप देवताओंका उद्धार कीजिये। देव! शम्भो! आप दाहिने हाथसे गिरिजाका पाणिग्रहण करें। गिरिराज हिमवान्के द्वारा दी हुई महानुभावा पार्वतीको पाणिग्रहणके द्वारा ही अनुगृहीत कीजिये।'

श्रीविष्णुका यह वचन सुनकर योगपरायण भगवान् शिवने उन सबको उत्तम गतिका दर्शन कराते हुए इस प्रकार कहा—'देवताओ! ज्यों ही मैंने सर्वाङ्गसुन्दरी गिरिजा देवीको स्वीकार किया, त्यों ही समस्त सुरेश्वर तथा ऋषि-मुनि सकाम हो जायँगे। फिर तो वे परमार्थपथपर चलनेमें समर्थ न हो सकेंगे। दुर्गा अपने पाणिग्रहण-मात्रसे ही कामदेवको जीवित कर देंगी। विष्णो! मैंने कामदेवको जलाकर देवताओंका बहुत बड़ा कार्य सिद्ध किया है। आजसे सब लोग मेरे साथ सुनिश्चितरूपसे निष्काम होकर रहें। देवताओ! जैसे मैं हूँ, उसी तरह तुम सब लोग पृथक्-पृथक् रहकर कोई विशेष प्रयत्न किये बिना ही अत्यन्त दुष्कर एवं उत्तम तपस्या कर सकोगे। अब उस मदनके न होनेसे तुम सब देवता समाधिके द्वारा परमानन्दका अनुभव करते हुए निर्विकार हो जाओ; क्योंकि काम नरककी ही प्राप्ति करानेवाला है। कामसे क्रोध होता है, क्रोधसे मोह होता है और मोहसे तपस्या नष्ट होती है। अतः तुम सभी श्रेष्ठ देवताओंको काम और क्रोधका परित्याग कर देना चाहिये, मेरे इस कथनको कभी अन्यथा नहीं मानना चाहिये।*

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! वृषभके चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण करनेवाले भगवान् महादेवने इस प्रकारकी बातें सुनाकर ब्रह्मा, विष्णु, देवताओं तथा मुनियोंको निष्काम धर्मका उपदेश दिया। तदनन्तर भगवान् शम्भु पुनः ध्यान लगाकर चुप हो गये और पहलेकी ही भाँति पार्षदोंसे

---

* कामो हि नरकायैव तस्मात् क्रोधोऽभिजायते। क्रोधाद्भवति सम्मोहो मोहाच्च भ्रंशते तपः॥
कामक्रोधौ परित्याज्यौ भवद्भिः सुरसत्तमैः। सर्वैरेव च मन्तव्यं मद्वाक्यं नान्यथा क्वचित्॥
(शि० पु० रु० पा० खं० २४। २७-२८)

घिरे हुए सुस्थिरभावसे बैठ गये। वे अपने मनमें ही स्वयं आत्मस्वरूप, निरञ्जन, निराभास, निर्विकार, निरामय, परात्पर, नित्य ममतारहित, निरवग्रह, शब्दातीत, निर्गुण, ज्ञानगम्य एवं प्रकृतिसे पर परमात्माका चिन्तन करने लगे। इस प्रकार परम स्वरूपका चिन्तन करते हुए वे ध्यानमें स्थित हो गये। बहुत-से प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले भगवान् शिव ध्यान करते-करते ही परमानन्दमें निमग्न हो गये। श्रीहरि एवं इन्द्र आदि देवताओंने जब परमेश्वर शिवको ध्यानमग्न देखा, तब उन्होंने नन्दीकी सम्मति ली। नन्दीने पुनः दीनभावसे स्तुति करनेके लिये कहा। उनकी इस सत्सम्मतिके अनुसार देवता स्तुति करने लगे। वे बोले—'देवदेव ! महादेव ! करुणासागर प्रभो ! हम आपकी शरणमें आये हैं। आप महान् क्लेशसे हमारा उद्धार कीजिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इस प्रकार बहुत दीनतापूर्ण उक्तिसे देवताओंने भगवान् शंकरकी स्तुति की। इसके बाद वे सब देवता प्रेमसे व्याकुलचित्त हो उच्च स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगे। मेरे साथ भगवान् श्रीहरि उत्तम भक्तिभावसे युक्त हो मन-ही-मन भगवान् शम्भुका स्मरण करते हुए अत्यन्त दीनतापूर्ण वाणीद्वारा उनसे अपना अभिप्राय निवेदन करने लगे।

देवताओंके, मेरे तथा श्रीहरिके इस प्रकार बहुत स्तुति करनेपर भगवान् महेश्वर अपनी भक्तवत्सलताके कारण ध्यानसे विरत हो गये। उनका मन अत्यन्त प्रसन्न था। वे भक्तवत्सल शंकर श्रीहरि आदिको करुणादृष्टिसे देखकर उनका हर्ष बढ़ाते हुए बोले—'विष्णो ! ब्रह्मन् ! तथा इन्द्र आदि देवताओ ! तुम सब लोग एक साथ यहाँ किस अभिप्रायसे आये हो ? मेरे सामने सच-सच बताओ।'

श्रीहरिने कहा—महेश्वर ! आप सर्वज्ञ हैं, सबके अन्तर्यामी ईश्वर हैं। क्या आप हमारे मनकी बात नहीं जानते ? अवश्य जानते हैं, तथापि आपकी आज्ञासे मैं स्वयं भी कहता हूँ। सुखदायक शंकर ! हम सब देवताओंको तारकासुरसे अनेक प्रकारका दुःख प्राप्त हुआ है। इसीलिये देवताओंने आपको प्रसन्न किया है। आपके लिये ही उन्होंने गिरिराज हिमालयसे शिवाकी उत्पत्ति करायी है। शिवाके गर्भसे आपके द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसीसे तारकासुरकी मृत्यु होगी, दूसरे किसी उपायसे नहीं। ब्रह्माजीने उस दैत्यको यही वर दिया है। इस कारण दूसरेसे उसकी मृत्यु नहीं हो पा रही है। अतएव वह निडर होकर सारे संसारको कष्ट दे रहा है। इधर नारदजीकी आज्ञासे पार्वती कठोर तपस्या कर रही हैं। उनके तेजसे समस्त चराचर प्राणियोंसहित त्रिलोकी आच्छादित हो गयी है। इसलिये परमेश्वर ! आप शिवाको वर देनेके लिये जाइये। स्वामिन् ! देवताओंका दुःख मिटाइये और हमें सुख दीजिये। शंकर ! मेरे तथा देवताओंके हृदयमें आपके विवाहका उत्सव देखनेके लिये बड़ा भारी उत्साह है। अतः आप यथोचित रीतिसे विवाह कीजिये। परात्पर परमेश्वर ! आपने रतिको जो वर दिया था, उसकी पूर्तिका अवसर आ गया है। अतः अपनी प्रतिज्ञाको शीघ्र सफल कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कह उन्हें प्रणाम करके श्रीविष्णु आदि देवताओं

और महर्षियोंने नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा पुनः उनकी स्तुति की। फिर वे सब-के-सब उनके सामने खड़े हो गये। भक्तोंके अधीन रहनेवाले भगवान् शंकर भी, जो वेदमर्यादाके रक्षक हैं, देवताओंकी बात सुन हँसकर बोले—'हे हरे! हे विधे! और हे देवताओ! तुम सब लोग आदरपूर्वक सुनो। मैं यथोचित, विशेषतः विवेकपूर्ण बात कह रहा हूँ। विवाह करना मनुष्योंके लिये उचित कार्य नहीं है; क्योंकि विवाह दृढ़तापूर्वक बाँध रखनेवाली एक बहुत बड़ी बेड़ी है। जगत्‌में बहुत-से कुसङ्ग हैं; परंतु स्त्रीका सङ्ग उनमें सबसे बढ़कर है। मनुष्य सारे बन्धनोंसे छुटकारा पा सकता है, परंतु स्त्रीसङ्गरूपी बन्धनसे वह मुक्त नहीं हो पाता। लोहे और काठकी बनी हुई बेड़ियोंमें दृढ़तापूर्वक बँधा हुआ पुरुष भी एक दिन उस कैदसे छुटकारा पा जाता है, परंतु स्त्री-पुत्र आदिके बन्धनमें बँधा हुआ मनुष्य कभी छूट नहीं पाता। महान् बन्धनमें डालनेवाले विषय सदा बढ़ते रहते हैं। जिसका मन विषयोंके वशीभूत हो गया है, उसके लिये मोक्ष स्वप्नमें भी दुर्लभ है। विद्वान् पुरुष यदि सुख चाहता है तो वह विषयोंको विधिपूर्वक त्याग दे। विषयोंको विषके समान बताया गया है, जिनके द्वारा मनुष्य मारा जाता है। विषयीके साथ वार्ता करनेमात्रसे मनुष्य क्षणभरमें पतित हो जाता है। आचार्योंने विषयको मिश्री मिलायी हुई वारुणी (मदिरा) कहा है *। यद्यपि मैं इस बातको जानता हूँ और यद्यपि विषयोंके इन सारे दोषोंका मुझे विशेष ज्ञान है, तथापि मैं तुम्हारी प्रार्थनाको सफल करूँगा; क्योंकि मैं भक्तोंके अधीन रहता हूँ और भक्त-वत्सलतावश उचित-अनुचित सारे कार्य करता हूँ। इसलिये तीनों लोकोंमें 'अयथोचितकर्ता' के रूपमें मेरी प्रसिद्धि है। भक्तोंके लिये मैंने अनेक बार बहुत-से प्रयत्न करके कष्ट सहन किये हैं, गृहपति होकर विश्वानर मुनिका दुःख दूर किया है। हरे! विधे! अब अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता। मेरी जो प्रतिज्ञा है, उसे तुम सब लोग अच्छी तरह जानते हो। मैं यह सत्य कहता हूँ कि जब-जब भक्तोंपर कहीं विपत्ति आती है, तब-तब मैं तत्काल उनके सारे कष्ट हर लेता हूँ। तारकासुरसे तुम सब लोगोंको जो दुःख प्राप्त हुआ है, उसे मैं जानता हूँ और उसका हरण करूँगा, यह भी सत्य-सत्य बता रहा हूँ। यद्यपि मेरे मनमें विवाह करनेकी कोई रुचि नहीं है तथापि मैं

---

* कुसङ्गा बहवो लोके स्त्रीसङ्गस्तत्र चाधिकः। उद्धरेल्लोहकाष्ठैर्यैर्बन्धैर्न स्त्रीसङ्गात् प्रमुच्यते॥
लोहदारुमयैः पाशैर्दृढं बद्धोऽपि मुच्यते। स्त्र्यादिपाशसुसम्बद्धो मुच्यते न कदाचन॥
वर्द्धन्ते विषयाः शश्वन्महाबन्धनकारिणः। विषयाक्रान्तमनसः स्वप्ने मोक्षोऽपि दुर्लभः॥
सुखमिच्छति चेत् प्राज्ञो विधिवद् विषयांस्त्यजेत्। विषवद् विषयानाहुर्विषयैर्येन हन्यते॥
जनो विषयिणा साकं वार्तातः पतति क्षणात्। विषयं प्राहुराचार्याः सितालिप्तेन्द्रवारुणीम्॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० २४।५९—६५)

पुत्रोत्पादनके लिये गिरिजाके साथ विवाह करूँगा। तुम सब देवता अब निर्भय होकर अपने-अपने घर जाओ। मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध करूँगा। इस विषयमें अब कोई विचार नहीं करना चाहिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर भगवान् शंकर मौन हो समाधिमें स्थित हो गये और विष्णु आदि सभी देवता अपने-अपने धामको चले गये।

(अध्याय २४)

भगवान् शिवकी आज्ञासे सप्तर्षियोंका पार्वतीके आश्रमपर जा उनके शिवविषयक अनुरागकी परीक्षा करना और भगवान्‌को सब वृत्तान्त बताकर स्वर्गको जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—देवताओंके अपने आश्रममें चले जानेपर पार्वतीके तपकी परीक्षाके लिये भगवान् शंकर समाधिस्थ हो गये। वे स्वयं अपने-आपमें, अपने ही परात्पर, स्वस्थ, मायारहित तथा उपद्रवशून्य स्वरूपका चिन्तन करने लगे। उस ध्येय वस्तुके रूपमें साक्षात् भगवान् महेश्वर ही विराजमान हैं। उनकी गतिका किसीको ज्ञान नहीं होता। वे भगवान् वृषभध्वज ही सबके स्रष्टा—परमेश्वर हैं।

तात! उन दिनों पार्वतीदेवी बड़ी भारी तपस्या कर रही थीं। उस तपस्यासे रुद्रदेव भी बड़े विस्मयमें पड़ गये। भक्ताधीन होनेके कारण ही वे समाधिसे विचलित हो गये और किसी कारणसे नहीं। तदनन्तर सृष्टिकर्ता हरने वसिष्ठ आदि सप्तर्षियोंका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही वे सातों ऋषि शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। उनके मुखपर प्रसन्नता छा रही थी तथा वे सब-के-सब अपने सौभाग्यकी अधिक सराहना करते थे। उन्हें आया देख भगवान् शिवके नेत्र प्रसन्नतासे प्रफुल्ल कमलके समान खिल उठे और वे हँसते हुए बोले—'तात सप्तर्षियो! तुम सब लोग मेरे हितकारी तथा सम्पूर्ण वस्तुओंके ज्ञानमें निपुण हो। अतः शीघ्र मेरी बात सुनो। गिरिराजकुमारी देवेश्वरी पार्वती इस समय सुस्थिरचित्त हो गौरी-शिखर नामक पर्वतपर तपस्या कर रही हैं। मुझे पतिरूपमें प्राप्त करना ही उनकी तपस्याका उद्देश्य है। द्विजो! इस समय केवल सखियाँ उनकी सेवामें हैं। मेरे सिवा दूसरी समस्त कामनाओंका परित्याग करके वे एक उत्तम निश्चयपर पहुँच चुकी हैं। मुनिवरो! तुम सब लोग मेरी आज्ञासे वहाँ जाओ और प्रेमपूर्ण हृदयसे उनकी दृढ़ताकी परीक्षा करो। वहाँ तुम्हें सर्वथा छलयुक्त बातें कहनी चाहिये। उत्तम व्रतधारी महर्षियो! मेरी आज्ञासे ऐसा करना है। इसलिये तुम्हें संशय नहीं करना चाहिये।'

भगवान् शंकरकी यह आज्ञा पाकर वे सातों ऋषि तुरंत ही उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ दीप्तिमती जगन्माता पार्वती विराजमान थीं। सप्तर्षियोंने वहाँ शिवाको तपस्याकी मूर्तिमती दूसरी सिद्धिके समान देखा। उनका तेज महान् था। वे अपने उत्तम तेजसे प्रकाशित हो रही थीं। उन उत्तम व्रतधारी सप्तर्षियोंने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया

और उनके द्वारा विशेषतः पूजित हो वे मस्तक झुकाये इस प्रकार बोले—

ऋषियोंने कहा—देवि ! गिरिराजनन्दिनि ! हमारी यह बात सुनो । हम जानना चाहते हैं कि तुम किसलिये तपस्या करती हो ? तथा इसके द्वारा किस देवताको और किस फलको पाना चाहती हो ?

उन द्विजोंके इस प्रकार पूछनेपर गिरिराजकुमारी देवी शिवाने उनके सामने अत्यन्त गोपनीय होनेपर भी सभी बात बतायी ।

पार्वती बोलीं—मुनीश्वरो ! आपलोग प्रसन्नतापूर्ण हृदयसे मेरी बात सुनें । मैंने अपनी बुद्धिसे जिसका चिन्तन किया है, अपना वह विचार मैं आपके सामने रखती हूँ । आपलोग मेरी असम्भव बातें सुनकर मेरा उपहास करेंगे, इसलिये उन्हें कहनेमें संकोच ही होता है, तथापि कहती हूँ । क्या करूँ ? मेरा यह मन अत्यन्त दृढ़तापूर्वक एक उत्कृष्ट कर्मके अनुष्ठानमें लगा है और ऐसा करनेके लिये विवश हो गया । यह पानीके ऊपर बहुत बड़ी और ऊँची दीवार खड़ी करना चाहता है । देवर्षिका उपदेश पाकर मैं 'भगवान् रुद्र मेरे पति हों' इस मनोरथको मनमें लिये अत्यन्त कठोर तप कर रही हूँ । मेरा मनरूपी पक्षी बिना पाँखके ही हठपूर्वक आकाशमें उड़ रहा है । मेरे स्वामी करुणानिधान भगवान् शंकर ही उसके इस आशाकी पूर्ति कर सकते हैं ।

पार्वतीका यह वचन सुनकर वे मुनि हँस पड़े और गिरिजाका सम्मान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक छलयुक्त मिथ्या वचन बोले ।

ऋषियोंने कहा—गिरिराजनन्दिनि ! देवर्षि नारद व्यर्थ ही अपनेको पण्डित मानते हैं । उनके मनमें क्रूरता भरी रहती है । आप समझदार होकर भी क्या उनके चरित्रको नहीं जानतीं । नारद छल-कपटकी बातें करते हैं और दूसरोंके चित्तको मोहमें डालकर मथ डालते हैं । उनकी बातें सुननेसे सर्वथा हानि ही होती है । ब्रह्मपुत्र दक्षके पुत्रोंको नारदने जो छलपूर्ण उपदेश दिया, उसका फल यह हुआ कि वे सब-के-सब अपने पिताके घर लौटकर न आ सके । यही हाल उन्होंने दक्षके दूसरे पुत्रोंका भी किया । वे भी उनके चक्करमें आकर भिखारी बन गये । विद्याधर चित्रकेतुको इन्होंने ऐसा उपदेश दिया कि उसका घर ही उजड़ गया । प्रह्लादको अपना चेला बनाकर इन्होंने हिरण्यकशिपुसे बड़े-बड़े दुःख दिलवाये । ये सदा दूसरोंकी बुद्धिमें भेद पैदा किया करते हैं । नारदमुनि कानोंको पसंद आनेवाली अपनी विद्या जिस-जिसको सुना देते हैं, वही अपना घर छोड़कर तत्काल भीख माँगने लगता है । उनका मन मलिन है । केवल शरीर ही सदा उज्ज्वल दिखायी देता है । हम उन्हें विशेष रूपसे जानते हैं; क्योंकि उनके साथ रहते हैं । उनका उपदेश पाकर बड़े-बड़े विद्वानोंद्वारा सम्मानित होनेवाली तुम भी व्यर्थ ही भुलावेमें आ गयी और मूर्ख बनकर दुष्कर तपस्या करने लगी ।

बाले ! तुम जिनके लिये यह भारी तपस्या करती हो, वे रुद्र सदा उदासीन, निर्विकार तथा कामके शत्रु हैं—इसमें संशय नहीं है । वे अमाङ्गलिक वस्तुओंसे युक्त शरीर धारण करते हैं, लज्जाको तिलाञ्जलि दे चुके हैं, उनका न कहीं घर है न द्वार । वे किस कुलमें उत्पन्न हुए हैं, इसका भी किसीको पता नहीं है । कुत्सित वेष

धारण किये भूतों तथा प्रेत आदिके साथ रहते हैं और नंग-धड़ंग हो शूल धारण किये घूमते हैं। धूर्त नारदने अपनी मायासे तुम्हारे सारे विज्ञानको नष्ट कर दिया, युक्तिसे तुम्हें मोह लिया और तुमसे तप करवाया। देवेश्वरि! गिरिराजनन्दिनि! तुम्हीं विचार करो कि ऐसे वरको पाकर तुम्हें क्या सुख मिलेगा। पहले रुद्रने बुद्धिसे खूब सोच-विचारकर साध्वी सतीसे विवाह किया। परंतु वे ऐसे मूढ़ हैं कि कुछ दिन भी उनके साथ निबाह न सके। उस बेचारीको वैसे ही दोष देकर उन्होंने त्याग दिया और स्वयं स्वतन्त्र हो अपने निष्कल और शोकरहित स्वरूपका ध्यान करते हुए उसीमें सुखपूर्वक रम गये। देवि! जो सदा अकेले रहनेवाले, शान्त, सङ्गरहित और अद्वितीय हैं, उनके साथ किसी स्त्रीका निर्वाह कैसे होगा? आज भी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम हमारी आज्ञा मानकर घर लौट चलो और इस दुर्बुद्धिको त्याग दो। महाभागे! इससे तुम्हारा भला होगा। तुम्हारे योग्य वर हैं भगवान् विष्णु, जो समस्त सद्गुणोंसे युक्त हैं। वे वैकुण्ठमें रहते हैं, लक्ष्मीके स्वामी हैं और नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करनेमें कुशल हैं। उनके साथ हम तुम्हारा विवाह करा देंगे और वह विवाह तुम्हारे लिये समस्त सुखोंको देनेवाला होगा। पार्वती! तुम्हारा जो रुद्रके साथ विवाह करनेका हठ है, ऐसे हठको छोड़ दो और सुखी हो जाओ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! उनकी ऐसी बात सुनकर जगदम्बिका पार्वती हँस पड़ीं और पुनः उन ज्ञानविशारद मुनियोंसे बोलीं।

पार्वतीने कहा—मुनीश्वरो! आपने अपनी समझसे ठीक ही कहा है। परंतु द्विजो! मेरा हठ भी छूटनेवाला नहीं है। मेरा शरीर पर्वतसे उत्पन्न होनेके कारण मुझमें

स्वाभाविक कठोरता विद्यमान है। अपनी बुद्धिसे ऐसा विचारकर आपलोग मुझे तपस्यासे रोकनेका कष्ट न करें। देवर्षिका उपदेश-वाक्य मेरे लिये परम हितकारक है। इसलिये मैं उसे कभी नहीं छोड़ूँगी। वेदवेत्ता भी यह मानते हैं कि गुरुजनोंका वचन हितकारक होता है। 'गुरुओंका वचन सत्य होता है', ऐसा जिनका दृढ़ विचार है, उन्हें इहलोक और परलोकमें परम सुखकी प्राप्ति होती है और दुःख कभी नहीं होता। 'गुरुओंका वचन सत्य होता है' यह विचार जिनके हृदयमें नहीं है, उन्हें इहलोक और परलोकमें भी दुःख ही प्राप्त होता है, सुख कभी नहीं मिलता। अतः द्विजो! गुरुओंके वचनका कभी किसी तरह भी त्याग नहीं करना चाहिये। मेरा घर बसे या उजड़ जाय, मुझे तो यह हठ ही सदा सुख देनेवाला है।

मुनिवरो ! आपने जो बातें कही हैं, मैं उनका आपके कहे हुए तात्पर्यसे भिन्न अर्थ समझती हूँ और उनका यहाँ संक्षेपसे विवेचन प्रस्तुत करती हूँ। आपने यह ठीक कहा कि भगवान् विष्णु सद्गुणोंके धाम तथा लीलाविहारी हैं। साथ ही आपने सदाशिवको निर्गुण कहा है। इसमें जो कारण है, वह बताया जाता है। भगवान् शिव साक्षात् परब्रह्म हैं, अतएव निर्विकार हैं। वे केवल भक्तोंके लिये शरीर धारण करते हैं, फिर भी लौकिकी प्रभुताको दिखाना नहीं चाहते। अतः परमहंसोंकी जो प्रिय गति है, उसीको वे धारण करते हैं; क्योंकि वे भगवान् शम्भु परमानन्दमय हैं, इसलिये अवधूतरूपसे रहते हैं। मायालिप्त जीवोंको ही भूषण आदिकी रुचि होती है, ब्रह्मको नहीं। वे प्रभु गुणातीत, अजन्मा, मायारहित, अलक्ष्यगति और विराट् हैं। द्विजो ! भगवान् शम्भु किसी विशेष धर्म या जाति आदिके कारण किसीपर अनुग्रह नहीं करते। मैं गुरुकी कृपासे ही शिवको यथार्थरूपसे जानती हूँ। ब्रह्मर्षियो ! यदि शिव मेरे साथ विवाह नहीं करेंगे तो मैं सदा कुमारी ही रह जाऊँगी, परंतु दूसरेके साथ विवाह नहीं करूँगी। यह मैं सत्य-सत्य कहती हूँ। यदि सूर्य पश्चिम दिशामें उगने लगें, मेरुपर्वत अपने स्थानसे विचलित हो जाय, अग्नि शीतलताको अपना ले तथा कमल पर्वतशिखरकी शिलाके ऊपर खिलने लगे, तो भी मेरा हठ छूट नहीं सकता। यह मैं सच्ची बात कहती हूँ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कह उन मुनियोंको प्रणाम करके गिरिराजकुमारी पार्वती निर्विकार चित्तसे शिवका स्मरण करती हुई चुप हो गयीं। इस प्रकार गिरिजाके उस उत्तम निश्चयको जानकर वे सप्तर्षि भी उनकी जय-जयकार करने लगे और उन्होंने पार्वतीको उत्तम आशीर्वाद दिया। मुने ! गिरिजादेवीकी परीक्षा करनेवाले वे सातों ऋषि उनको प्रणाम करके प्रसन्नचित्त हो शीघ्र ही भगवान् शिवके स्थानको चले गये। वहाँ पहुँचकर शिवको मस्तक नवा, उनसे सारा वृत्तान्त निवेदन करके, उनकी आज्ञा ले वे पुनः सादर स्वर्गलोकको चले गये।

(अध्याय २५)

☆

भगवान् शंकरका जटिल तपस्वी ब्राह्मणके रूपमें पार्वतीके आश्रमपर जाना, उनसे सत्कृत हो उनकी तपस्याका कारण पूछना तथा पार्वतीजीका अपनी सखी विजयासे सब कुछ कहलाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उन सप्तर्षियोंके अपने लोकमें चले जानेपर सुन्दर लीला करनेवाले साक्षात् भगवान् शंकरने देवीके तपकी परीक्षा लेनेका विचार किया। वे मन-ही-मन पार्वतीसे बहुत संतुष्ट थे। परीक्षाके ही बहाने पार्वतीजीको देखनेके लिये जटाधारी तपस्वीका रूप धारण करके भगवान् शम्भु उनके वनमें गये। अपने तेजसे प्रकाशमान अत्यन्त बूढ़े ब्राह्मणका रूप धारण करके प्रसन्नचित्त हो वे दण्ड और छत्र लिये वहाँसे प्रस्थित हुए। आश्रममें पहुँचकर उन्होंने देखा

देवी शिवा सखियोंसे घिरी हुई वेदीपर बैठी हैं और चन्द्रमाकी विशुद्ध कला-सी प्रतीत होती हैं। ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण किये भक्तवत्सल शम्भु पार्वतीदेवीको देखकर प्रीतिपूर्वक उनके पास गये। उन अद्भुत तेजस्वी ब्राह्मणदेवताको आया देख उस समय देवी शिवाने समस्त पूजन-सामग्रियों-द्वारा उनकी पूजा की। जब उनका भलीभाँति सत्कार हो गया, सामग्रियोंद्वारा उनकी पूजा सम्पन्न कर ली गयी, तब पार्वतीने बड़ी प्रसन्नता और प्रेमके साथ उन ब्राह्मणदेवसे आदरपूर्वक कुशल-समाचार पूछा।

पार्वती बोलीं—ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण करके आये हुए आप कौन हैं और कहाँसे पधारे हैं? वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर! आप अपने तेजसे इस वनको प्रकाशित कर रहे हैं। मैंने जो कुछ पूछा है, उसे बतलाइये।

ब्राह्मणने कहा—मैं इच्छानुसार विचरनेवाला वृद्ध ब्राह्मण हूँ। पवित्रबुद्धि, तपस्वी, दूसरोंको सुख देनेवाला और परोपकारी हूँ—इसमें संशय नहीं है। तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो और इस निर्जन वनमें किसलिये ऐसी तपस्या कर रही हो, जो पंजेके बलपर खड़े हो तप करनेवाले मुनियोंके लिये भी दुर्लभ है। तुम न बालिका हो, न वृद्धा ही हो, सुन्दरी तरुणी जान पड़ती हो। फिर किसलिये पतिके बिना इस वनमें आकर कठोर तपस्या करती हो? भद्रे! क्या तुम किसी तपस्वीकी सहचारिणी तपस्विनी हो? देवि! क्या वह तपस्वी तुम्हारा पालन-पोषण नहीं करता, जो तुम्हें छोड़कर अन्यत्र चला गया है? बोलो, तुम किसके कुलमें उत्पन्न हुई हो? तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारा नाम क्या है? तुम महासौभाग्यरूपा जान पड़ती हो। तुम्हारा तपस्यामें अनुराग व्यर्थ है। क्या तुम वेदमाता गायत्री हो, लक्ष्मी हो अथवा क्या सुन्दर रूपवाली सरस्वती हो? इन तीनोंमें तुम कौन हो—यह मैं अनुमानसे निश्चय नहीं कर पाता।

पार्वती बोलीं—विप्रवर! न तो मैं वेदमाता गायत्री हूँ, न लक्ष्मी हूँ और न सरस्वती ही हूँ। इस समय मैं हिमाचलकी पुत्री हूँ और मेरा नाम पार्वती है। पूर्वकालमें इससे पहलेके जन्ममें मैं प्रजापति दक्षकी पुत्री थी। उस समय मेरा नाम सती था। एक दिन पिताने मेरे पतिकी निन्दा की थी, जिससे कुपित हो मैंने योगके द्वारा शरीरको त्याग दिया था। इस जन्ममें भी भगवान् शिव मुझे मिल गये थे, परंतु भाग्यवश कामको भस्म करके वे मुझे भी छोड़कर चले गये। ब्रह्मन्! शंकरजीके चले जानेपर मैं विरहतापसे उद्विग्न हो उठी और तपस्याके लिये दृढ़ निश्चय करके पिताके घरसे यहाँ गङ्गाजीके तटपर चली आयी। यहाँ दीर्घ-कालतक कठोर तपस्या करके भी मैं अपने प्राणवल्लभको न पा सकी। इसलिये अग्निमें प्रवेश कर जाना चाहती थी। इतनेमें ही आपको आया देख मैं क्षणभरके लिये ठहर गयी। अब आप जाइये। मैं अग्निमें प्रवेश करूँगी; क्योंकि भगवान् शिवने मुझे स्वीकार नहीं किया। किंतु जहाँ-जहाँ मैं जन्म लूँगी, वहाँ-वहाँ शिवका ही पतिरूपमें वरण करूँगी।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर पार्वती उन ब्राह्मण-देवताके सामने

ही अग्निमें समा गयीं, यद्यपि ब्राह्मणदेव सामनेसे उन्हें बारंबार ऐसा करनेसे रोक रहे थे। अग्निमें प्रवेश करती हुई पर्वतराजकुमारी पार्वतीकी तपस्याके प्रभावसे वह आग उसी क्षण चन्दन-पङ्कके समान शीतल हो गयी। क्षणभर उस आगके भीतर रहकर जब पार्वती आकाशमें ऊपरकी ओर उठने लगीं, तब ब्राह्मण-रूपधारी शिवने सहसा हँसते हुए उनसे पुनः पूछा—'अहो भद्रे! तुम्हारा तप क्या है, यह कुछ भी मेरी समझमें नहीं आया। इधर अग्निसे तुम्हारा शरीर नहीं जला, यह तो तपस्याकी सफलताका सूचक है; परंतु अबतक तुम्हें अपना मनोरथ प्राप्त नहीं हुआ,

इससे उसकी विफलता प्रकट होती है। अतः देवि! सबको आनन्द देनेवाले मुझ श्रेष्ठ ब्राह्मणके सामने तुम अपने अभीष्ट मनोरथको सच-सच बताओ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ब्राह्मणके इस प्रकार पूछनेपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली अम्बिकाने अपनी सखीको उत्तर देनेके लिये प्रेरित किया। पार्वतीसे प्रेरित हो इनकी विजयानामक प्राणधारी सखीने, जो उत्तम व्रतको जाननेवाली थी, जटाधारी तपस्वीसे कहा।

सखी बोली—साधो! तुमसे पार्वतीके उत्तम चरित्रका और इनकी तपस्याके समस्त कारणोंका वर्णन करती हूँ। आप सुनना चाहते हों तो सुनिये। मेरी सखी गिरिराज हिमाचलकी पुत्री हैं। ये पार्वती और काली नामसे विख्यात हैं तथा माता मेनकाकी कन्या हैं। अबतक किसीने इनके साथ विवाह नहीं किया है। ये भगवान् शिवके सिवा दूसरे किसीको चाहती भी नहीं। उन्हींके लिये तीन हजार वर्षोंसे तपस्या कर रही हैं। भगवान् शिवकी प्राप्तिके लिये ही मेरी इन सखीने ऐसा तप प्रारम्भ किया है। विप्रवर! इसमें जो कारण है, उसे बताती हूँ; सुनिये। ये पर्वतराज-कुमारी ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र आदि देवताओंको भी छोड़कर केवल पिनाकपाणि भगवान् शंकरको ही पतिरूपमें प्राप्त करना चाहती हैं और नारदजीके आदेशसे यह कठोर तपस्या कर रही हैं। द्विजश्रेष्ठ! आपने जो कुछ पूछा था, उसके अनुसार मैंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी सखीका मनोरथ बता दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! विजयाका यह यथार्थ वचन सुनकर जटाधारी तपस्वी रुद्र हँसते हुए बोले—'सखीने यह जो कुछ

कहा है, उसमें मुझे परिहासका अनुमान होता है। यदि यह सब ठीक हो तो पार्वतीदेवी अपने मुँहसे कहें।'

जटिल ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर पार्वतीदेवी अपने मुँहसे ही यों कहने लगीं।

(अध्याय २६)

☆

पार्वतीकी बात सुनकर जटाधारी ब्राह्मणका शिवकी निन्दा करते हुए पार्वतीको उनकी ओरसे मनको हटा लेनेका आदेश देना

पार्वती बोलीं—जटाधारी विप्रवर! मेरा सारा वृत्तान्त सुनिये। मेरी सखीने जो कुछ कहा है, वह ज्यों-का-त्यों सत्य है; उसमें असत्य कुछ भी नहीं है। मैं मन, वाणी और क्रियाद्वारा सत्य ही कहती हूँ, असत्य नहीं। मैंने साक्षात् पतिभावसे भगवान् शंकरका ही वरण किया है। यद्यपि जानती हूँ, वह दुर्लभ वस्तु भला मुझे कैसे प्राप्त हो सकती है; तथापि मनकी उत्कण्ठासे विवश हो मैं तपस्या कर रही हूँ।

ब्राह्मणसे ऐसी बात कहकर पार्वतीदेवी उस समय चुप हो रहीं। तब उनकी वह बात सुनकर ब्राह्मणने कहा।

ब्राह्मण बोले—इस समयतक मेरे मनमें यह जाननेकी प्रबल इच्छा थी कि ये देवी किस दुर्लभ वस्तुको चाहती हैं? जिसके लिये ऐसा महान् तप कर रही हैं। किंतु देवि! तुम्हारे मुखारविन्दसे सब कुछ सुनकर उस अभीष्ट वस्तुको जान लेनेके बाद अब मैं यहाँसे जा रहा हूँ। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो। यदि तुम मुझसे न कहती तो मित्रता निष्फल होती। अब जैसा तुम्हारा कार्य है, वैसा ही उसका परिणाम होगा। जब तुम्हें इसीमें सुख है, तब मुझे कुछ नहीं कहना है।

यहाँ ऐसी बात कहकर ब्राह्मणने ज्यों ही जानेका विचार किया, त्यों ही पार्वती देवीने प्रणाम करके उनसे इस प्रकार कहा।

पार्वती बोलीं—विप्रवर! आप क्यों जायँगे? ठहरिये और मेरे हितकी बात बताइये।

पार्वतीके ऐसा कहनेपर दण्डधारी ब्राह्मण-देवता रुक गये और इस प्रकार बोले—'देवि! यदि मेरी बात सुननेका मन है और मुझे भक्तिभावसे ठहरा रही हो तो मैं वह सब तत्त्व बता रहा हूँ, जिससे तुम्हें हिताहितका ज्ञान हो जायगा। महादेवजीके प्रति मेरे मनमें गौरव-बुद्धि है, अतः मैं उनको सब प्रकारसे जानता हूँ; तो भी यथार्थ बात कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। वृषभके चिह्नसे अङ्कित ध्वजा धारण करनेवाले महादेवजी सारे शरीरमें भस्म रमाये रहते हैं, सिरपर जटा धारण करते हैं, धोतीकी जगह बाघका चाम पहनते और चादरकी जगह हाथीकी खाल ओढ़ते हैं। हाथमें भीख माँगनेके लिये एक खोपड़ी लिये रहते हैं। झुंड-के-झुंड साँप उनके सारे अङ्गोंमें लिपटे देखे जाते हैं। वे विष खाकर ही पुष्ट होते हैं, अभक्ष्यभक्षी हैं, उनके नेत्र बड़े भद्दे हैं और देखनेमें डरावने लगते हैं। उनका जन्म कब, कहाँ और किससे हुआ, यह आजतक प्रकट नहीं हुआ। घर-गृहस्थीके भोगसे वे सदा दूर ही रहते हैं, नंग-धड़ंग घूमते हैं और भूत-प्रेतोंको सदा

साथ रखते हैं। उनके एक-दो नहीं, दस भुजाएँ हैं। देवि ! मैं समझ नहीं पाता कि किस कारणसे तुम उन्हें अपना पति बनाना चाहती हो। तुम्हारा ज्ञान कहाँ चला गया, इस बातको आज सोच-विचारकर मुझे बताओ। दक्षने अपने यज्ञमें अपनी ही पुत्री सतीको केवल यही सोचकर नहीं बुलाया कि यह कपालधारी भिक्षुककी भार्या है। इतना ही नहीं, उन्होंने यज्ञमें भाग देनेके लिये सब देवताओंको बुलाया, किंतु शम्भुको छोड़ दिया। सती उसी अपमानके कारण अत्यन्त क्रोधसे व्याकुल हो उठीं। उसने अपने प्यारे प्राणोंको तो छोड़ा ही; शंकरजीको भी त्याग दिया।

'तुम तो स्त्रियोंमें रत्न हो, तुम्हारे पिता समस्त पर्वतोंके राजा हैं, फिर तुम क्यों इस उग्र तपस्याके द्वारा वैसे पतिको पानेकी अभिलाषा करती हो? सोनेकी मुद्रा (अशर्फी) देकर बदलेमें उतना ही बड़ा काँच लेना चाहती हो? उज्ज्वल चन्दन छोड़कर अपने अङ्गोंमें कीचड़ लपेटना चाहती हो? सूर्यके तेजका परित्याग करके जुगनूकी चमक पाना चाहती हो? महीन वस्त्र त्यागकर अपने शरीरको चमड़ेसे ढकनेकी इच्छा करती हो? घरमें रहना छोड़कर वनमें धूनी रमाना चाहती हो? तथा देवेश्वरि ! यदि तुम इन्द्र आदि लोकपालोंको त्यागकर शिवके प्रति अनुरक्त हो तो अवश्य ही रत्नोंके उत्तम भंडारको त्यागकर लोहा पानेकी इच्छा करती हो। लोकमें इस बातको अच्छा नहीं कहा गया है। शिवके साथ तुम्हारा सम्बन्ध मुझे इस समय परस्परविरुद्ध दिखायी देता है। कहाँ तुम, जिसके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान शोभा पाते हैं और कहाँ वे रुद्र, जो तीन भद्दी आँखें धारण करते हैं। तुम तो चन्द्रमुखी * हो और शिव पञ्चमुख कहे गये हैं। तुम्हारे सिरपर दिव्य वेणी सर्पिणी-सी शोभा पा रही है; परंतु शिवके मस्तकपर जो जटाजूट बताया जाता है, वह प्रसिद्ध ही है। तुम्हारे अङ्गमें चन्दनका अङ्गराग होगा और शिवके शरीरमें चिताका भस्म ! कहाँ तुम्हारी सुन्दर मृदुल साड़ी और कहाँ शंकरजीके उपयोगमें आनेवाली हाथीकी खाल? कहाँ तुम्हारे अङ्गोंमें दिव्य आभूषण और कहाँ शंकरके सर्वाङ्गमें लिपटे हुए सर्प? कहाँ तुम्हारी सेवाके लिये उद्यत रहनेवाले सम्पूर्ण देवता और कहाँ भूतोंकी दी हुई बलिको पसंद करनेवाले शिव? कहाँ तो मृदङ्गकी मधुर ध्वनि और कहाँ डमरूकी डिमडिम? कहाँ भेरियोंके समूहकी गड़गड़ाहट और कहाँ अशुभ शृङ्गनाद? कहाँ ढक्काका शब्द और कहाँ अशुभ गलनाद? तुम्हारा यह उत्तम रूप शिवके योग्य कदापि नहीं है। यदि उनके पास धन होता तो वे दिगम्बर (नंगे) क्यों रहते? सवारीके नामपर उनके पास एक बूढ़ा बैल है और दूसरी कोई भी सामग्री उनके पास नहीं है। कन्याके लिये ढूँढ़े

* अङ्कोंकी संज्ञाओंमें चन्द्रमाको एक संख्याका बोधक माना गया है। एक मुखवाले पुरुष और स्त्रियाँ ही सुन्दर माने जाते हैं, एकसे अधिक मुखवाले नहीं। इस प्रकार एकमुख और पञ्चमुखकी भी तुलना की गयी है। 'चन्द्रमुखी' पदका दूसरा भाव है—तुम्हारा मुख चन्द्रमाके समान मनोहर है और वे पञ्चानन सिंहके समान भयंकर हैं।

जानेवाले वरोंमें जो नारियोंको सुख देनेवाले गुण बताये गये हैं, उनमेंसे एक भी गुण भद्दी आँखवाले रुद्रमें नहीं है। तुम्हारे परम प्रिय कामको भी उन हर देवताने दग्ध कर दिया और तुम्हारे प्रति उनका अनादर तो तभी देख लिया गया, जब वे तुम्हें छोड़कर अन्यत्र चले गये। उनकी कोई जाति नहीं देखी जाती। उनमें विद्या तथा ज्ञानका भी पता नहीं चलता। पिशाच ही उनके सहायक हैं और विष तो उनके कण्ठमें ही दिखायी देता है। वे सदा अकेले रहनेवाले और विशेषरूपसे विरक्त हैं। इसलिये तुम्हें हरके साथ अपने मनको नहीं जोड़ना चाहिये। कहाँ तुम्हारे कण्ठमें सुन्दर हार और कहाँ उनके गलेमें नरमुण्डोंकी माला? देवि! तुम्हारे और हरके रूप आदि सब एक-दूसरेके विरुद्ध हैं। अतः मुझे तो यह सम्बन्ध नहीं रुचता। फिर तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो। संसारमें जो कुछ भी असद्वस्तु है, वह सब तुम स्वयं चाहने लगी हो। अतः मैं कहता हूँ कि तुम उस असत्‌की ओरसे अपने मनको हटा लो। अन्यथा जो चाहो, वह करो; मुझे कुछ नहीं कहना है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! यह बात सुनकर पार्वती शिवकी निन्दा करनेवाले ब्राह्मणपर मन-ही-मन कुपित हो उठीं और उससे इस प्रकार बोलीं। (अध्याय २७)

पार्वतीजीका परमेश्वर शिवकी महत्ताका प्रतिपादन करना, रोषपूर्वक जटिल ब्राह्मणको फटकारना, सखीद्वारा उन्हें फिर बोलनेसे रोकना तथा भगवान् शिवका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दे अपने साथ चलनेके लिये कहना

पार्वती बोलीं—बाबाजी! अबतक तो मैंने यह समझा था कि कोई दूसरे ज्ञानी महात्मा आ गये हैं। परंतु अब सब ज्ञात हो गया—आपकी कलई खुल गयी। आपसे क्या कहूँ—विशेषतः उस दशामें, जब आप अवध्य ब्राह्मण हैं? ब्राह्मण-देवता! आपने जो कुछ कहा है, वह सब मुझे ज्ञात है। परंतु वह सब झूठा ही है, सत्य कुछ नहीं है। आपने कहा था कि मैं शिवको जानता हूँ। यदि आपकी यह बात ठीक होती तो आप ऐसी युक्ति एवं बुद्धिके विरुद्ध बात नहीं बोलते। यह ठीक है कि कभी-कभी महेश्वर अपनी लीलाशक्तिसे प्रेरित हो तथाकथित अद्भुत वेष धारण कर लिया करते हैं। परंतु वास्तवमें वे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। उन्होंने स्वेच्छासे ही शरीर धारण किया है। आप ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण कर मुझे ठगनेके लिये उद्यत हो यहाँ आये हैं और अनुचित एवं असंगत युक्तियोंका सहारा ले छल-कपटसे युक्त बातें बोल रहे हैं! मैं भगवान् शंकरके स्वरूपको भलीभाँति जानती हूँ। इसलिये यथायोग्य विचार करके उनके तत्त्वका वर्णन करती हूँ। वास्तवमें शिव निर्गुण ब्रह्म हैं, कारणवश सगुण हो गये हैं। जो निर्गुण हैं, समस्त गुण जिनके स्वरूपभूत हैं, उनकी जाति कैसे हो सकती है? वे भगवान् सदाशिव समस्त विद्याओंके आधार हैं। फिर उन पूर्ण परमात्माको किसी विद्यासे क्या काम? पूर्वकालमें कल्पके आरम्भमें भगवान् शम्भुने श्रीविष्णुको

उच्छ्वासरूपसे सम्पूर्ण वेद प्रदान किये थे। अतः उनके समान उत्तम प्रभु दूसरा कौन है ? जो सबके आदि कारण हैं, उनकी अवस्था अथवा आयुका माप-तौल कैसे हो सकता है ? प्रकृति उन्हींसे उत्पन्न हुई है। फिर उनकी शक्तिका दूसरा क्या कारण हो सकता है ? जो लोग सदा प्रेमपूर्वक शक्तिके स्वामी भगवान् शंकरका भजन करते हैं, उन्हें भगवान् शम्भु प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्ति—ये तीनों अक्षय शक्तियाँ प्रदान करते हैं। भगवान् शिवके भजनसे ही जीव मृत्युको जीत लेता और निर्भय हो जाता है। इसलिये तीनों लोकोंमें उनका 'मृत्युञ्जय' नाम प्रसिद्ध है। उन्हींके अनुग्रहसे विष्णु विष्णुत्वको, ब्रह्मा ब्रह्मत्वको और देवता देवत्वको प्राप्त हुए हैं। शिवजीका पक्ष लेकर बहुत बोलनेसे क्या लाभ ? वे भगवान् स्वयं ही महाप्रभु हैं। कल्याणरूपी शिवकी सेवासे यहाँ कौन-सा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता ? उन महादेवजीके पास किस बातकी कमी है, जो वे भगवान् सदाशिव स्वयं मुझे पानेकी इच्छा करें ? यदि शंकरकी सेवा न करे तो मनुष्य सात जन्मोंतक दरिद्र होता है और उन्हींकी सेवासे सेवकको लोकमें कभी नष्ट न होनेवाली लक्ष्मी प्राप्त होती है। जिनके सामने आठों सिद्धियाँ नित्य आकर सिर नीचा किये इस इच्छासे नृत्य करती हैं कि वे भगवान् हमपर संतुष्ट हो जायँ, उनके लिये कोई भी हितकर वस्तु दुर्लभ कैसे हो सकती है ? यद्यपि यहाँ माङ्गलिक कही जानेवाली वस्तुएँ शंकरका सेवन नहीं करतीं, तथापि उनके स्मरण-मात्रसे ही सबका मङ्गल होता है। जिनकी पूजाके प्रभावसे उपासककी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं, सदा निर्विकार रहनेवाले उन परमात्मा शिवमें विकार कहाँसे आ सकता है ? जिस पुरुषके मुखमें निरन्तर 'शिव' यह मङ्गलमय नाम निवास करता है, उसके दर्शनमात्रसे ही अन्य सब सदा पवित्र होते हैं। जैसा कि आपने कहा है, वे चिताका भस्म लगाते हैं। परंतु यदि उनका लगाया हुआ भस्म अपवित्र होता तो उनके शरीरसे झड़कर गिरे हुए उस भस्मको देवतालोग सदा अपने सिरपर कैसे धारण करते ? (अतः शिवके अङ्गोंके स्पर्शसे अपवित्र वस्तु भी पवित्र हो जाती है।) जो महादेव सगुण होकर तीनों लोकोंके कर्ता-भर्ता और हर्ता होते हैं तथा निर्गुणरूपमें शिव कहलाते हैं, वे बुद्धिके द्वारा पूर्णरूपसे कैसे जाने जा सकते हैं ? परब्रह्म परमात्मा शिवका जो निर्गुण रूप है, उसे आप-जैसे बहिर्मुख लोग कैसे जान सकते हैं ? जो दुराचारी और पापी हैं, वे देवताओंसे बहिष्कृत हो जाते हैं। ऐसे लोग निर्गुण शिवके तत्त्वको नहीं जानते। जो पुरुष तत्त्वको न जाननेके कारण यहाँ शिवकी निन्दा करता है, उसके जन्मभरका सारा संचित पुण्य भस्म हो जाता है। आपने जो यहाँ अमित तेजस्वी महादेवजीकी निन्दा की है और मैंने जो आपकी पूजा की है, उससे मुझे पापकी भागिनी होना पड़ा है। शिवद्रोहीको देखकर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये, शिवद्रोहीका दर्शन हो जानेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये।

इतना कहकर पार्वतीजी उस ब्राह्मणपर अधिक रुष्ट होकर बोलीं—अरे रे दुष्ट ! तूने कहा था कि मैं शंकरको जानता हूँ, परंतु निश्चय ही तूने उन सनातन शिवको नहीं

जाना है। भगवान् रुद्रको तू जैसा कहता है, वे वैसे ही क्यों न हों, उनके-जैसे भी बहुसंख्यक रूप क्यों न हों, सत्पुरुषोंके प्रियतम नित्य-निर्विकार वे भगवान् शिव ही मेरे अभीष्टतम देव हैं। ब्रह्मा और विष्णु भी कभी उन महात्मा हरके समान नहीं हो सकते। फिर दूसरे देवताओंकी तो बात ही क्या है? क्योंकि वे सदैव कालके अधीन हैं। इस प्रकार अपनी शुद्धबुद्धिसे तत्त्वत: विचारकर मैं शिवके लिये वनमें आकर बड़ी भारी तपस्या कर रही हूँ। वे भक्तवत्सल सर्वेश्वर शिव ही हम सबके परमेश्वर हैं। दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले उन महादेवको ही प्राप्त करनेकी मेरी इच्छा है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर गिरिराजनन्दिनी गिरिजा चुप हो गयीं और निर्विकार चित्तसे भगवान् शिवका ध्यान करने लगीं। देवीकी बात सुनकर वह ब्रह्मचारी ब्राह्मण ज्यों ही कुछ फिर कहनेके लिये उद्यत हुआ, त्यों ही शिवमें आसक्तचित्त होनेके कारण उनकी निन्दा सुननेसे विमुख हुई पार्वती अपनी सखी विजयासे शीघ्र बोलीं।

पार्वतीने कहा—सखी! इस अधम ब्राह्मणको यत्नपूर्वक रोको, यह फिर कुछ कहना चाहता है। यह केवल शिवकी निन्दा ही करेगा, जो शिवकी निन्दा करता है, केवल उसीको पाप नहीं लगता, जो उस निन्दाको सुनता है, वह भी यहाँ पापका भागी होता है।* भगवान् शिवके उपासकोंको चाहिये कि वे शिवकी निन्दा करनेवालेका सर्वथा वध करें। यदि वह ब्राह्मण हो तो उसे अवश्य ही त्याग दें और स्वयं उस निन्दाके स्थानसे शीघ्र दूर चले जायँ। यह दुष्ट ब्राह्मण फिर शिवकी निन्दा करेगा। ब्राह्मण होनेके कारण यह वध्य तो है नहीं, अत: त्याग देने योग्य है। किसी तरह भी इसका मुँह नहीं देखना चाहिये। इस स्थानको छोड़कर हमलोग आज ही किसी दूसरे स्थानमें शीघ्र चली चलें, जिससे फिर इस अज्ञानीके साथ बात करनेका अवसर न मिले।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर उमाने ज्यों ही अन्यत्र जानेके लिये पैर उठाया, त्यों ही भगवान् शिवने अपने साक्षात् स्वरूपसे प्रकट हो प्रिया पार्वतीका हाथ पकड़ लिया। शिवा जैसे स्वरूपका ध्यान करती थीं, वैसा ही सुन्दर रूप धारण करके शिवने उन्हें दर्शन दिया। पार्वतीने लज्जावश अपना मुँह नीचेकी ओर कर लिया।

तब भगवान् शिव उनसे बोले—प्रिये! मुझे छोड़कर कहाँ जाओगी? अब मैं फिर कभी तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा। मैं प्रसन्न हूँ। वर माँगो। मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। देवि! आजसे मैं तपस्याके मोल खरीदा हुआ तुम्हारा दास हूँ। तुम्हारे सौन्दर्यने भी मुझे मोह लिया है। अब तुम्हारे बिना मुझे एक क्षण भी युगके समान जान पड़ता है। लज्जा छोड़ो। तुम तो मेरी सनातन पत्नी हो। गिरिराजनन्दिनि! महेश्वरि! मैंने जो कुछ कहा है, उसपर श्रेष्ठ बुद्धिसे विचार

* न केवलं भवेत् पापं निन्दाकर्तुः शिवस्य हि। यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक् स भवेदिह॥

(शि० पु० रु० सं० पा० खं० २८। ३७)

करो। सुस्थिर चित्तवाली पार्वती ! मैंने नाना प्रकारसे तुम्हारी बारंबार परीक्षा ली है। लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले मुझ स्वजनके अपराधको क्षमा कर दो। शिवे ! तीनों लोकोंमें तुम्हारी-जैसी अनुरागिणी मुझे दूसरी कोई नहीं दिखायी देती। मैं सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। प्रिये ! मेरे पास आओ। तुम मेरी पत्नी हो और मैं तुम्हारा वर हूँ। तुम्हारे साथ मैं शीघ्र ही अपने निवासस्थान उत्तम पर्वत कैलासको चलूँगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—देवाधिदेव महादेवजीके ऐसा कहनेपर पार्वती देवी आनन्द-मग्न हो उठीं। उनका तपस्याजनित पहलेका सारा कष्ट मिट गया। मुनिश्रेष्ठ ! सती-साध्वी पार्वतीकी सारी थकावट दूर हो गयी; क्योंकि परिश्रम-फल प्राप्त हो जानेपर प्राणीका पहलेवाला सारा श्रम नष्ट हो जाता है।

(अध्याय २८)

☆

शिव और पार्वतीकी बातचीत, शिवका पार्वतीके अनुरोधको स्वीकार करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! परमात्मा हरकी यह बात सुनकर और उनके आनन्द-दायी रूपका दर्शन पाकर पार्वतीको बड़ा हर्ष हुआ। उनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे बहुत सुखका अनुभव करने लगीं। फिर उन महासाध्वी शिवाने अपने पास ही खड़े हुए भगवान् शिवसे कहा।

पार्वती बोलीं—देवेश्वर ! आप मेरे स्वामी हैं। प्रभो ! पूर्वकालमें आपने जिसके लिये हर्षपूर्वक दक्षके यज्ञका विनाश किया था, उसे क्यों भुला दिया था ! वे ही आप हैं और वही मैं हूँ। देवदेवेश्वर ! इस समय मैं तारकासुरसे दुःख पानेवाले देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये रानी मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुई हूँ। देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मुझपर कृपा करते हैं तो मेरे पति हो जाइये। ईशान ! प्रभो ! मेरी यह बात मान लीजिये, आपकी आज्ञा लेकर मैं पिताके घर जाती हूँ। अब आप अपने विवाहरूप परम उत्तम विशुद्ध यशको सर्वत्र विख्यात कीजिये। नाथ ! प्रभो ! आप तो लीला करनेमें कुशल हैं। अतः मेरे पिता हिमवान्‌के पास चलिये और याचक बनकर उनसे मेरी याचना कीजिये। लोकमें मेरे पिताके यशको फैलाते हुए आपको ऐसा ही करना चाहिये। इस तरह आप मेरे सम्पूर्ण गृहस्थाश्रमको सफल बनाइये। जब आप प्रसन्नतापूर्वक ऋषियोंसे मेरे पिताको सब बातोंकी जानकारी करायेंगे, तब मेरे पिता अपने भाई-बन्धुओंके साथ आपकी आज्ञाका पालन करेंगे—इसमें संदेह नहीं है। जब मैं पहले प्रजापति दक्षकी कन्या थी और मेरे पिताने आपके हाथमें मेरा हाथ दिया, उस समय आपने शास्त्रोक्त विधिसे विवाहका कार्य पूरा नहीं किया। मेरे पिता दक्षने ग्रहोंकी पूजा नहीं की। अतः उस विवाहमें ग्रहपूजनविषयक बड़ी भारी त्रुटि रह गयी। इसलिये प्रभो ! महादेव ! अबकी बार देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये आप शास्त्रोक्त विधिसे विवाहकार्यका सम्पादन करें। विवाहकी जैसी रीति है, उसका पालन आपको अवश्य करना

चाहिये। मेरे पिता हिमवान्‌को यह अच्छी तरह ज्ञात हो जाना चाहिये कि मेरी पुत्रीने शुभकारक तपस्या की है।

पार्वतीकी ऐसी बात सुनकर भगवान् सदाशिव बड़े प्रसन्न हुए और उनसे हँसते हुए-से प्रेमपूर्वक बोले।

शिवने कहा—देवि! महेश्वरि! मेरी यह उत्तम बात सुनो, यह उचित, मङ्गलकारक और निर्दोष है। इसे सुनकर वैसा ही करो। वरानने! ब्रह्मा आदि जितने भी प्राणी हैं, वे सब अनित्य हैं। भामिनि! यह सब जो कुछ दिखायी देता है, इसे नश्वर समझो। मैं निर्गुण परमात्मा ही गुणोंसे युक्त हो एकसे अनेक हो गया हूँ। जो अपने प्रकाशसे प्रकाशित होता है, वही परमात्मा मैं दूसरेके प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाला हो गया। देवि! मैं स्वतन्त्र हूँ, परंतु तुमने मुझे परतन्त्र बना दिया। समस्त कर्मोंको करनेवाली प्रकृति एवं महामाया तुम्हीं हो। यह सम्पूर्ण जगत् मायामय ही रचा गया है। मुझ सर्वात्मा परमात्माने अपनी उत्तम बुद्धिके द्वारा इसे धारणमात्र कर रखा है। सर्वत्र परमात्मभाव रखनेवाले सर्वात्मा पुण्यवानोंने इसे अपने भीतर सींचा है तथा यह तीनों गुणोंसे आवेष्टित है। देवि! वरवर्णिनि! कौन मुख्य ग्रह हैं? कौन-से ऋतु-समूह हैं? अथवा कौन दूसरे-दूसरे उपग्रह हैं? इस समय तुमने शिवके लिये क्या कहा है—किस कर्तव्यका विधान किया है? गुण और कार्यके भेदसे हम दोनोंने इस जगत्‌में भक्तवत्सलताके कारण भक्तोंको सुख देनेके हेतु अवतार ग्रहण किया है। तुम्हीं रजःसत्त्व-तमोमयी (त्रिगुणात्मिका) सूक्ष्म प्रकृति हो, सदा व्यापारकुशल सगुणा और निर्गुणा भी हो। सुमध्यमे! मैं यहाँ सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा, निर्विकार एवं निरीह हूँ। भक्तकी इच्छासे मैंने शरीर धारण किया है। शैलजे! मैं तुम्हारे पिता हिमालयके पास नहीं जा सकता तथा भिक्षुक होकर किसी तरह तुम्हारी उनसे याचना भी नहीं कर सकता। गिरिराज-नन्दिनि! महान् गुणोंसे अत्यन्त गौरवशाली महात्मा पुरुष भी अपने मुँहसे 'देहि' (दो) यह बात निकालनेपर तत्काल लघुताको प्राप्त हो जाता है। कल्याणि! ऐसा जानकर हमारे लिये क्या कहती हो? भद्रे! तुम्हारी आज्ञासे मुझे सब कुछ करना है। अतः जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो।

महादेवजीके ऐसा कहनेपर भी सती-साध्वी कमललोचना महादेवी शिवाने उन भगवान् शंकरको बारंबार भक्ति-भावसे प्रणाम करके कहा।

पार्वती बोलीं—नाथ! आप आत्मा हैं और मैं प्रकृति। इस विषयमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है। हम दोनों स्वतन्त्र और निर्गुण होते हुए भी भक्तोंके अधीन होनेके कारण सगुण हो जाते हैं। शम्भो! प्रभो! आपको प्रयत्नपूर्वक मेरी प्रार्थनाके अनुसार कार्य करना चाहिये। शंकर! आप मेरे लिये याचना करें और हिमवान्‌को दाता बननेका सौभाग्य प्रदान करें। महेश्वर! मैं सदा आपकी भक्ता हूँ, अतः मुझपर कृपा कीजिये। नाथ! सदा जन्म-जन्ममें मैं ही आपकी पत्नी होती रही हूँ। आप परब्रह्म परमात्मा हैं, निर्गुण हैं, प्रकृतिसे परे हैं, निर्विकार, निरीह एवं स्वतन्त्र परमेश्वर हैं; तथापि भक्तोंके उद्धारमें संलग्न होकर यहाँ सगुण भी हो जाते हैं, स्वात्माराम होकर भी

लीलाविहारी बन जाते हैं; क्योंकि आप नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेमें कुशल हैं। महादेव ! महेश्वर ! मैं सब प्रकारसे आपको जानती हूँ। सर्वज्ञ ! अब बहुत कहनेसे क्या लाभ ? मुझपर दया कीजिये। नाथ ! महान् अद्भुत लीला करके लोकमें अपने सुयशका विस्तार कीजिये, जिसे गा-गाकर लोग अनायास ही भवसागरसे पार हो जायँ।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर गिरिजाने महेश्वरको बारंबार प्रणाम किया और मस्तक झुकाकर हाथ जोड़ वे चुप हो गयीं। उनके ऐसा कहनेपर महात्मा महेश्वरने लोकलीलाका अनुसरण करनेके लिये वैसा करना स्वीकार कर लिया। पार्वतीने जो कुछ कहा था, उसीको प्रसन्नतापूर्वक करनेके लिये उद्यत होकर वे हँसने लगे। तदनन्तर हर्षसे भरे हुए शम्भु अन्तर्धान हो कैलासको चले गये। उस समय कालीके विरहसे उनका चित्त उन्हींकी ओर खिंच गया था। कैलासपर जाकर परमानन्दमें निमग्न हुए महेश्वरने अपने नन्दी आदि गणोंसे यह सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वे भैरव आदि सभी गण भी वह सब समाचार सुनकर अत्यन्त सुखी हो गये और महान् उत्सव करने लगे। नारद ! उस समय वहाँ महान् मङ्गल होने लगा। सबके दुःख नष्ट हो गये तथा रुद्रदेवको भी पूर्ण आनन्द प्राप्त हुआ। (अध्याय २९)

☆

पार्वतीका पिताके घरमें सत्कार, महादेवजीकी नटलीलाका चमत्कार, उनका मेना आदिसे पार्वतीको माँगना और माता-पिताके इनकार करनेपर अन्तर्धान हो जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! भगवान् शंकरके अपने स्थानको चले जानेपर सखियोंसहित पार्वती भी अपने रूपको सफल करके महादेवजीका नाम लेती हुई पिताजीके घर चली गयीं। पार्वतीका आगमन सुनकर मेना और हिमाचल दिव्य रथपर आरूढ़ हो हर्षसे विह्वल होकर उनकी अगवानीके लिये चले। पुरोहित, पुरवासी, अनेकानेक सखियाँ तथा अन्य सब सम्बन्धी भी आ पहुँचे। पार्वतीके सारे भाई मैनाक आदि बड़े हर्षके साथ जय-जयकार करते हुए उन्हें घर ले आनेके लिये गये।

इसी बीचमें पार्वती अपने नगरके निकट आ गयीं। नगरमें प्रवेश करते समय शिवा देवीने माता-पिताको देखा, जो अत्यन्त प्रसन्न और हर्षसे विह्वलचित्त होकर दौड़े चले आ रहे थे। उन्हें देखकर हर्षसे भरी हुई कालीने सखियोंसहित प्रणाम किया। माता-पिताने पूर्णरूपसे आशीर्वाद दे पुत्रीको छातीसे लगा लिया और 'ओ, मेरी बच्ची !' ऐसा कहकर प्रेमसे विह्वल हो रोने लगे। तत्पश्चात् अपने घरकी दूसरी-दूसरी स्त्रियों तथा भाभियोंने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रेमपूर्वक उन्हें भुजाओंमें भरकर भेंटा। 'देवि ! तुमने अपने कुलका उद्धार करनेवाले उत्तम कार्यको अच्छी तरह सिद्ध किया है। तुम्हारे सदाचरणसे हम सब लोग पवित्र हो गये' ऐसा कहकर सब लोग हर्षके साथ पार्वतीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन्हें प्रणाम करने लगे। लोगोंने चन्दन और

सुन्दर फूलोंसे शिवादेवीका सानन्द पूजन किया। उस अवसरपर विमानपर बैठे हुए देवताओंने पार्वतीको नमस्कार करके उनपर फूलोंकी वर्षा करते हुए स्तुति की। नारद ! उस समय तुम्हें भी एक सुन्दर रथपर बिठाकर ब्राह्मण आदि सब लोग नगरमें ले गये। फिर ब्राह्मणों, सखियों तथा दूसरी स्त्रियोंने बड़े आदरके साथ शिवाका घरके भीतर प्रवेश कराया। स्त्रियोंने उनके ऊपर बहुत-सी वस्तुएँ निछावर कीं। ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिये। मुनीश्वर ! पिता हिमवान् और माता मेनकाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने गृहस्थ-आश्रमको सफल माना और यह अनुभव किया कि कुपुत्रकी अपेक्षा सुपुत्री ही श्रेष्ठ है। गिरिराजने ब्राह्मणों और बन्दीजनोंको धन दिया और ब्राह्मणोंसे मङ्गलपाठ करवाया। मुने ! इस प्रकार पार्वतीके साथ हर्षभरे माता-पिता, भाई तथा भौजाइयाँ भी घरके आँगनमें प्रसन्नतापूर्वक बैठीं।

तदनन्तर हिमवान् प्रसन्नचित्तसे सबका आदर-सत्कार करके गङ्गा-स्नानके लिये गये। इसी बीचमें सुन्दर लीला करनेवाले भक्तवत्सल भगवान् शम्भु एक अच्छा नाचनेवाला नट बनकर मेनकाके पास गये। उन्होंने बायें हाथमें सींग और दाहिने हाथमें डमरू ले रखा था। पीठपर कथरी रख छोड़ी थी। लाल वस्त्र पहने वे भगवान् रुद्र नाच और गानमें अपनी निपुणताका परिचय दे रहे थे। सुन्दर नटका रूप धारण किये हुए भगवान् शिवने मेनकाके पास बैठी हुई स्त्रियोंकी टोलीके समीप सुन्दर नृत्य किया और अत्यन्त मनोहर नाना प्रकारके गीत गाये। उन्होंने वहाँ सुन्दर ध्वनि करनेवाले शृङ्ग और डमरूको भी बजाया तथा नाना

प्रकारकी बड़ी मनोहारिणी लीला की। नटराजकी उस लीलाको देखनेके लिये नगरके सभी स्त्री-पुरुष एवं बालक और वृद्ध भी सहसा वहाँ आ पहुँचे। मुने ! उस सुमधुर गीतको सुनकर और उस मनोहर उत्तम नृत्यको देखकर वहाँ आये हुए सब लोग तत्काल मोहित हो गये। मेना भी मोही गयीं। उधर पार्वतीने अपने हृदयमें भगवान् शंकरका साक्षात् दर्शन किया। वे त्रिशूल आदि चिह्न धारण किये अत्यन्त सुन्दर दिखायी देते थे। उनका सारा अङ्ग विभूतिसे विभूषित था। वे हड्डियोंकी मालासे अलंकृत थे। उनका मुख सूर्य, चन्द्र एवं अग्निरूप तीन नेत्रोंसे उद्भासित था। उन्होंने नागका यज्ञोपवीत धारण किया था। उनके उस सुरम्य रूपको देखकर दुर्गा प्रेमावेशसे मूर्च्छित हो गयीं। गौरवर्णविभूषित दीनबन्धु दयासिन्धु और सर्वथा मनोहर महेश्वर

पार्वतीसे कह रहे थे कि 'वर माँगो।' अपने हृदयमें विराजमान महादेवजीको इस रूपमें देखकर पार्वती देवीने उन्हें प्रणाम किया और मन-ही-मन यह वर माँगा कि 'आप मेरे पति हो जाइये।' प्रीतियुक्त हृदयसे शिवाको वैसा कल्याणकारी वर देकर वे पुनः अन्तर्धान हो गये और वहाँ पूर्ववत् भिक्षा माँगनेवाला नट बनकर उत्तम नृत्य करने लगे।

उस समय मेना सोनेकी थालीमें रखे हुए बहुत-से सुन्दर रत्न ले उन्हें प्रसन्नतापूर्वक देनेके लिये गयीं। उनका वह ऐश्वर्य देखकर भगवान् शंकर मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। परंतु उन्होंने उन रत्नोंको स्वीकार नहीं किया। वे भिक्षामें उनकी पुत्री शिवाको ही माँगने लगे और पुनः कौतुकवश सुन्दर नृत्य एवं गान करनेको उद्यत हुए। मेना उस भिक्षुक नटकी बात सुनकर अत्यन्त कुपित हो उठीं और उसे डाँटने-फटकारने लगीं। उनके मनमें उसे बाहर निकाल देनेकी इच्छा हुई। इसी बीचमें गिरिराज हिमवान् गङ्गाजीसे नहाकर लौट आये। उन्होंने अपने सामने उस नराकार भिक्षुकको आँगनमें खड़ा देखा। मेनाके मुखसे सारी बातें सुनकर उनको भी बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि इस नटको बाहर निकाल दो। मुनिश्रेष्ठ! वे नटराज विशालकाय अग्निकी भाँति अपने उत्तम तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उन्हें छूना भी कठिन था। इसलिये कोई भी उन्हें बाहर न निकाल सका। तात! फिर तो नाना प्रकारकी लीलाओंमें विशारद उन भिक्षुशिरोमणिने शैलराजको अपना अनन्त प्रभाव दिखाना आरम्भ किया। हिमवान्‌ने देखा, भिक्षुने वहाँ तत्काल ही भगवान् विष्णुका रूप धारण कर लिया है। उनके मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल और शरीरपर पीतवस्त्र शोभा पाते हैं। उनके चार भुजाएँ हैं। हिमवान्‌ने पूजाके समय गदाधारी श्रीहरिको जो-जो पुष्प आदि चढ़ाये थे, वे सब उन्होंने भिक्षुके शरीर और मस्तकपर देखे। तत्पश्चात् गिरिराजने उन भिक्षुशिरोमणिको जगत्स्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें देखा। उनके शरीरका वर्ण लाल था और वे वैदिक सूक्तका पाठ कर रहे थे। तदनन्तर शैलराजने उन कौतुककारी नटराजको एक क्षणमें जगत्‌के नेत्ररूप सूर्यके आकारमें देखा। तात! इसके बाद वे महान् अद्भुत रुद्रके रूपमें दिखायी दिये। उनके साथ देवी पार्वती भी थीं। वे उत्तम तेजसे सम्पन्न रमणीय रुद्र धीरे-धीरे हँस रहे थे। फिर वे केवल तेजोमय रूपमें दृष्टिगोचर हुए। उनका वह स्वरूप निराकार, निरञ्जन, उपाधिशून्य, निरीह एवं अत्यन्त अद्भुत था। इस प्रकार हिमवान्‌ने उनके बहुत-से रूप देखे। इससे उन्हें बड़ा विस्मय हुआ और वे तुरंत ही परमानन्दमें निमग्न हो गये। तदनन्तर सुन्दर लीला करनेवाले उन भिक्षुशिरोमणिने हिमवान् और मेनासे दुर्गाको ही भिक्षाके रूपमें माँगा। दूसरी कोई वस्तु ग्रहण नहीं की। परंतु शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण शैलराजने उनकी उस प्रार्थनाको स्वीकार नहीं किया। फिर भिक्षुने कोई वस्तु नहीं ली और वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तब मेना और शैलराजको उत्तम ज्ञान हुआ और वे सोचने लगे—'भगवान् शिव हमें

अपनी मायासे छलकर अपने स्थानको चले गये।' यह विचारकर उन दोनोंकी भगवान् शिवमें पराभक्ति हुई, जो महान् मोक्षकी प्राप्ति करानेवाली, दिव्य तथा सम्पूर्ण आनन्द प्रदान करनेवाली है।

(अध्याय ३०)

☆

देवताओंके अनुरोधसे वैष्णव ब्राह्मणके वेषमें शिवजीका हिमवान्‌के घर जाना और शिवकी निन्दा करके पार्वतीका विवाह उनके साथ न करनेको कहना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मेना और हिमवान्‌की भगवान् शिवके प्रति उच्चकोटिकी अनन्य भक्ति देख इन्द्र आदि सब देवता परस्पर विचार करने लगे। तदनन्तर गुरु बृहस्पति और ब्रह्माजीकी सम्मतिके अनुसार सभी मुख्य देवताओंने शिवजीके पास जाकर उनको प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—देवदेव! महादेव! करुणाकर! शंकर! हम आपकी शरणमें आये हैं, कृपा कीजिये। आपको नमस्कार है। स्वामिन्! आप भक्तवत्सल होनेके कारण सदा भक्तोंके कार्य सिद्ध करते हैं। दीनोंका उद्धार करनेवाले और दयाके सिन्धु हैं तथा भक्तोंको विपत्तियोंसे छुड़ानेवाले हैं।

इस प्रकार महेश्वरकी स्तुति करके इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंने मेना और हिमवान्‌की अनन्य शिवभक्तिके विषयमें सारी बातें आदरपूर्वक बतायीं। देवताओंकी वह बात सुनकर महेश्वरने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और हँसते हुए उन्हें आश्वासन देकर विदा किया। अब सब देवता अपना कार्य सिद्ध हुआ मानकर भगवान् सदाशिवकी प्रशंसा करते हुए शीघ्र अपने घरको लौटकर प्रसन्नताका अनुभव करने लगे। तदनन्तर भक्तवत्सल महेश्वर भगवान् शम्भु, जो मायाके स्वामी हैं, निर्विकार चित्तसे शैलराजके यहाँ गये। उस समय गिरिराज हिमवान् सभाभवनमें बन्धुवर्गसे घिरे हुए पार्वतीसहित प्रसन्नतापूर्वक बैठे थे। इसी अवसरपर वहाँ सदाशिवने पदार्पण किया। वे हाथमें दण्ड, छत्र, शरीरपर दिव्य वस्त्र, ललाटमें उज्ज्वल तिलक, एक हाथमें स्फटिककी माला और गलेमें शालग्राम धारण किये भक्तिपूर्वक हरिनामका जप कर रहे थे और देखनेमें साधुवेषधारी ब्राह्मण जान पड़ते थे। उन्हें आया देख सपरिवार हिमवान् उठकर खड़े हो गये। उन्होंने उन अपूर्व अतिथिदेवताको भूतलपर दण्डके समान पड़कर भक्तिभावसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया। देवी पार्वती ब्राह्मणरूपधारी प्राणेश्वर शिवको पहचान गयी थीं। अतः उन्होंने भी उनको मस्तक झुकाया और मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नताके साथ उनकी स्तुति की। ब्राह्मणरूपधारी शिवने उन सबको प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया। किंतु शिवाको सबसे अधिक मनोवाञ्छित शुभाशीर्वाद प्रदान किया। शैलाधिराज हिमवान्‌ने बड़े आदरसे उन्हें मधुपर्क आदि पूजन-सामग्री भेंट की और ब्राह्मणने बड़ी प्रसन्नताके साथ वह सब ग्रहण किया।

तत्पश्चात् गिरिश्रेष्ठ हिमाचलने उनका कुशल-समाचार पूछा। मुने! अत्यन्त प्रीतिपूर्वक उन द्विजराजकी विधिवत् पूजा करके शैलराजने

पूछा—'आप कौन हैं?' तब उन ब्राह्मण-शिरोमणिने गिरिराजसे शीघ्र ही आदरपूर्वक कहा।

वे श्रेष्ठ ब्राह्मण बोले—गिरिश्रेष्ठ! मैं उत्तम विद्वान् वैष्णव ब्राह्मण हूँ और ज्योतिषीकी वृत्तिका आश्रय लेकर भूतलपर भ्रमण करता रहता हूँ। मनके समान मेरी गति है। मैं सर्वत्र जानेमें समर्थ और गुरुकी दी हुई शक्तिसे सर्वज्ञ, परोपकारी, शुद्धात्मा, दया-सिन्धु और विकारनाशक हूँ। मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम अपनी इस लक्ष्मी-सरीखी सुन्दर रूपवाली दिव्य सुलक्षणा अपनी पुत्रीको एक आश्रयरहित, असङ्ग, कुरूप और गुणहीन वर—महादेवजीके हाथमें देना चाहते हो। वे रुद्र देवता मरघटमें वास करते, शरीरमें साँप लपेटे रहते और योग साधते फिरते हैं। उनके पास पहननेके लिये एक वस्त्र भी नहीं है। वैसे ही नंग-धड़ंग घूमते हैं। आभूषणकी जगह सर्प धारण करते हैं। उनके कुलका नाम आजतक किसीको ज्ञात नहीं हुआ। वे कुपात्र और कुशील हैं। स्वभावतः विहारसे दूर रहते हैं। सारे शरीरमें भस्म रमाते हैं। क्रोधी और अविवेकी हैं। उनकी अवस्था कितनी है, यह किसीको ज्ञात नहीं। वे अत्यन्त कुत्सित जटाका बोझ सदा सिरपर धारण किये रहते हैं। वे भले-बुरे सबको आश्रय देनेवाले, भ्रमणशील, नागहारधारी, भिक्षुक, कुमार्ग-परायण तथा हठपूर्वक वैदिकमार्गका त्याग करनेवाले हैं। ऐसे अयोग्य वरको आप अपनी बेटी ब्याहना चाहते हैं? अचलराज! अवश्य ही आपका यह विचार मङ्गलदायक नहीं है। नारायणकुलमें उत्पन्न! ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ गिरिराज! मेरे कथनका मर्म समझो। तुमने जिस पात्रको ढूँढ़ रखा है, वह इस योग्य नहीं है कि उसके हाथमें पार्वतीका हाथ दिया जाय। शैलराज! तुम्हीं देखो, उनके एक भी भाई-बन्धु नहीं हैं। तुम तो बड़े-बड़े रत्नोंकी खान हो। किंतु उनके घरमें भूजी भाँग भी नहीं है—वे सर्वथा निर्धन हैं। गिरिराज! तुम शीघ्र ही अपने भाई-बन्धुओंसे, मेनादेवीसे, सभी बेटोंसे और पण्डितोंसे भी प्रयत्नपूर्वक पूछ लो। किंतु पार्वतीसे न पूछना; क्योंकि उन्हें शिवके गुण-दोषकी परख नहीं है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर वे ब्राह्मण देवता, जो नाना प्रकारकी लीला करनेवाले शान्तस्वरूप शिव ही थे, शीघ्र खा-पीकर आनन्दपूर्वक वहाँसे अपने घरको चल दिये।

(अध्याय ३१)

☆

मेनाका कोपभवनमें प्रवेश, भगवान् शिवका हिमवान्‌के पास सप्तर्षियोंको भेजना तथा हिमवान्‌द्वारा उनका सत्कार, सप्तर्षियों तथा अरुन्धतीका और महर्षि वसिष्ठका मेना और हिमवान्‌को समझाकर पार्वतीका विवाह भगवान् शिवके साथ करनेके लिये कहना

ब्रह्माजी कहते हैं—ब्राह्मणरूपधारी शिवजीके वचनोंका मेनाके ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने दुःखी होकर पतिसे कहा— 'गिरिराज! इन वैष्णव ब्राह्मणने शिवजीकी जो निन्दा की है, उसे सुनकर मेरा मन उनकी ओरसे बहुत खिन्न एवं विरक्त हो गया है। शैलेश्वर! रुद्रके रूप, शील और नाम सभी कुत्सित हैं। मैं उन्हें अपनी सुलक्षणा पुत्री कदापि नहीं दूँगी। यदि आप मेरी बात नहीं मानेंगे तो मैं निस्संदेह मर जाऊँगी, अभी इस घरको छोड़ दूँगी अथवा विष खा लूँगी, पार्वतीके गलेमें फाँसी लगाकर गहन वनमें चली जाऊँगी अथवा उसे महासागरमें डुबो दूँगी; परंतु अपनी बेटीको रुद्रके गले नहीं मढ़ूँगी।' ऐसा कहकर मेना तुरंत कोपभवनमें चली गयीं और अपने हारको फेंककर रोती हुई धरतीपर लोट गयीं।

इधर भगवान् शिवको इस बातका पता लगा, तब उन्होंने अरुन्धतीसहित सप्तर्षियोंको बुलाया तथा मेनाके पास जाकर उन्हें समझानेकी आज्ञा दी।

शिवजीका आदेश प्राप्तकर भगवान् शिवको नमस्कार करके वे दिव्य ऋषि आकाशमार्गसे उस स्थानको चल दिये, जहाँ हिमवान्‌की नगरी थी। उस दिव्य पुरीको देखकर उन सप्तर्षियोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे हिमाचलपुरीकी परस्पर प्रशंसा करते हुए सब ऐश्वर्योंसे भरे-पूरे हिमवान्‌के घर जा पहुँचे। उन सूर्यतुल्य तेजस्वी सातों ऋषियोंको दूरसे आकाशके रास्ते आते देख हिमवान्‌को बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले— 'ये सात सूर्यतुल्य तेजस्वी मुनि मेरे पास आ रहे हैं। मुझे प्रयत्नपूर्वक इस समय इनकी पूजा करनी चाहिये। सबको सुख देनेवाले हम गृहस्थ लोग धन्य हैं, जिनके घरपर ऐसे महात्मा पदार्पण किया करते हैं।'

ब्रह्माजी कहते हैं—इसी समय वे मुनि आकाशसे उतरकर पृथ्वीपर खड़े हो गये। उन्हें सामने देख हिमवान् बड़े आदरके साथ आगे बढ़े और हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर उन सप्तर्षियोंको प्रणाम करनेके पश्चात् उन्होंने बड़े सम्मानके साथ उन सबकी पूजा की तथा उन्हें आगे करके कहा—'मेरा गृहाश्रम आज धन्य हो गया।' यों कहकर उन्हें बैठनेके लिये भक्तिपूर्वक आसन लाकर दिया। जब वे आसनोंपर बैठ गये, तब उनकी आज्ञा लेकर हिमवान् भी बैठे और वहाँ उन ज्योतिर्मय महर्षियोंसे इस प्रकार बोले।

हिमवान्‌ने कहा—आज मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया। मैं लोकमें बहुत-सी तीर्थोंकी भाँति दर्शनीय बन गया; क्योंकि आप-जैसे विष्णुरूपी महात्मा

मेरे घर पधारे हैं। आपलोग पूर्णकाम हैं। हम दीनोंके घरोंमें आपका क्या काम हो सकता है। तथापि मुझ सेवकके योग्य यदि कोई कार्य है तो कृपापूर्वक उसे अवश्य कहें। उसे पूर्ण करनेसे मेरा जीवन सफल हो जायगा।

ऋषि बोले—शैलराज! भगवान् शिवको जगत्‌का पिता कहा गया है और शिवा जगन्माता मानी गयी हैं। अतः तुम्हें महात्मा शंकरको अपनी कन्या देनी चाहिये। हिमालय! ऐसा करके तुम्हारा जन्म सफल हो जायगा तथा तुम जगद्गुरुके भी गुरु हो जाओगे, इसमें संशय नहीं है।

मुनीश्वर! सप्तर्षियोंका यह वचन सुनकर हिमवान्‌ने दोनों हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार कहा।

हिमालय बोले—महाभाग सप्तर्षियो! आपलोगोंने जो बात कही है, उसे शिवकी इच्छासे मैंने पहलेसे ही मान रखा था; किंतु प्रभो! इन दिनों एक वैष्णवधर्मी ब्राह्मणने आकर भगवान् शिवके प्रति प्रसन्नतापूर्वक बहुत-सी उलटी बातें बतायी हैं। तभीसे शिवाकी माताका ज्ञान भ्रष्ट हो गया है। वे अपनी बेटीका विवाह उस योगी रुद्रके साथ नहीं करना चाहतीं। ब्राह्मणो! वे बड़ा भारी हठ करके मैले कपड़े पहन कोपभवनमें चली गयी हैं और समझानेपर भी समझ नहीं रही हैं। मैं भी उस वैष्णव ब्राह्मणकी बात सुनकर ज्ञानभ्रष्ट हो गया हूँ। आपसे सच कहता हूँ, भिक्षुकरूपधारी महेश्वरको बेटी देनेकी मेरी भी अब इच्छा नहीं है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मुनियोंके बीचमें बैठे हुए शैलराज शिवकी मायासे मोहित हो उपर्युक्त बात कहकर चुप हो रहे। तब उन सभी सप्तर्षियोंने शिवकी मायाकी प्रशंसा करके मेनकाके पास अरुन्धतीको भेजा। पतिकी आज्ञा पाकर ज्ञानदायिनी अरुन्धती देवी तुरंत उस घरमें गयीं, जहाँ मेना और पार्वती थीं। जाकर उन्होंने देखा, मेना शोकसे आकुल होकर पृथ्वीपर पड़ी हैं। तब उन साध्वी देवीने बड़ी सावधानीके साथ मधुर एवं हितकर बात कही।

अरुन्धती बोलीं—साध्वी रानी मेनके! उठो, मैं अरुन्धती तुम्हारे घरमें आयी हूँ तथा दयालु सप्तर्षि भी पधारे हैं। अरुन्धतीका स्वर सुनकर मेनका शीघ्र उठ गयीं और लक्ष्मी-जैसी तेजस्विनी उन पतिव्रता देवीके चरणोंमें मस्तक रखकर बोलीं।

मेनाने कहा—अहो! हम पुण्यजन्मा जीवोंको आज यह किस पुण्यका फल प्राप्त हुआ है कि हमारे इस घरमें जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीकी पुत्रवधू और महर्षि वसिष्ठकी पत्नी पधारी हैं। देवि! आप किसलिये आयी हैं? यह मुझे बताइये। मैं और मेरी पुत्री आपकी दासीके समान हैं। आप हमपर कृपा कीजिये।

मेनकाके ऐसा कहनेपर साध्वी अरुन्धतीने उनको बहुत अच्छी तरह समझाया-बुझाया और उन्हें साथ ले वे प्रसन्नतापूर्वक उस स्थानपर आयीं, जहाँ वे सप्तर्षि विद्यमान थे। सप्तर्षिगण बात-चीतमें बड़े निपुण थे। उन सबने भगवान् शिवके युगल चरणारविन्दोंका स्मरण करके शैलराजको समझाना आरम्भ किया।

ऋषि बोले—शैलेन्द्र! हमारा शुभकारक वचन सुनो। तुम पार्वतीका विवाह शिवके साथ कर दो और संहारकर्ता रुद्रके श्वशुर हो जाओ। शम्भु सर्वेश्वर हैं। वे किसीसे याचना नहीं करते। स्वयं ब्रह्माजीने

तारकासुरके विनाशके लिये एक वीरपुत्र उत्पन्न करनेके उद्देश्यको लेकर भगवान् शिवसे यह प्रार्थना की है कि वे विवाह कर लें। भगवान् शंकर तो योगियोंके शिरोमणि हैं। वे विवाहके लिये उत्सुक नहीं हैं। केवल ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे ही वे महादेव तुम्हारी कन्याका पाणिग्रहण करेंगे। तुम्हारी पुत्रीने जब तपस्या की थी, उस समय उसके सामने उन्होंने उससे विवाहकी प्रतिज्ञा कर ली थी। इन्हीं दो कारणोंसे वे योगिराज शिव विवाह करेंगे।

ऋषियोंकी यह बात सुनकर हिमालय हँस पड़े और कुछ भयभीत हो विनयपूर्वक बोले।

हिमालयने कहा—मैं शिवके पास कोई राजोचित सामग्री नहीं देखता हूँ। उनका न कोई घर है, न ऐश्वर्य है और न कोई स्वजन या बन्धु-बान्धव ही है। मैं अत्यन्त निर्लिप्त योगीको अपनी बेटी देना नहीं चाहता। आपलोग वेदविधाता ब्रह्माजीके पुत्र हैं; अतः अपना निश्चित विचार कहिये। जो पिता कामसे, मोहसे, भयसे अथवा लोभसे किसी अयोग्य वरके हाथमें अपनी कन्या दे देता है, वह मरनेके बाद नरकमें जाता है*। अतः मैं स्वेच्छासे भगवान् शूलपाणिको अपनी कन्या नहीं दूँगा। इसलिये महर्षियो! जो उचित विधान हो, उसे आपलोग कीजिये।

मुनीश्वर नारद! हिमाचलके इस वचनको सुनकर बात-चीत करनेमें निपुण महर्षि वसिष्ठने उनसे यों कहा।

वसिष्ठ बोले—शैलेश्वर! मेरी बात सुनो। यह सर्वथा तुम्हारे लिये हितकारक, धर्मके अनुकूल, सत्य तथा इहलोक और परलोकमें सुखदायक है। शैलराज! लोक तथा वेदमें तीन प्रकारके वचन उपलब्ध होते हैं। शास्त्रज्ञ पुरुष अपनी निर्मल ज्ञानदृष्टिसे उन सब प्रकारके वचनोंको जानता है। एक तो वह वचन है, जो तत्काल सुननेमें बड़ा सुन्दर (प्रिय) लगता है, परंतु पीछे वह असत्य एवं अहितकारक सिद्ध होता है। ऐसा वचन बुद्धिमान् शत्रु ही कहता है, उससे कभी हित नहीं होता। दूसरा वह है, जो आरम्भमें अच्छा नहीं लगता; उसे सुनकर अप्रसन्नता ही होती है। परंतु परिणाममें वह सुख देनेवाला होता है। इस तरहका वचन कहकर दयालु धर्मशील बान्धवजन ही कर्तव्यका बोध कराता है। तीसरी श्रेणीका वचन वह है जो सुनते ही अमृतके समान मीठा लगता है और सब कालमें सुख देनेवाला होता है। सत्य ही उसका सार होता है। इसलिये वह हितकारक हुआ करता है। ऐसा वचन सबसे श्रेष्ठ और सबके लिये अभीष्ट है। शैलराज! इस तरह नीतिशास्त्रमें तीन प्रकारके वचन कहे गये हैं। इन तीनोंमेंसे तुम्हें कौन-सा वचन अभीष्ट है? बताओ, मैं तुम्हारे लिये वैसा ही वचन कहूँगा। भगवान् शंकर सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी हैं। उनके पास बाह्य सम्पत्ति नहीं है, इसका कारण यह है कि उनका चित्त एकमात्र ज्ञानके महासागरमें मग्न रहता है। जो ज्ञानानन्दस्वरूप और सबके ईश्वर हैं, उन्हें

* वरायाननुरूपाय पिता कन्यां ददाति चेत्। कामान्मोहाद्भयाल्लोभात् स नष्टो नरकं व्रजेत्॥

(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ३३। २६)

लौकिक—बाह्य वस्तुओंकी क्या इच्छा होगी ? गृहस्थ पुरुष राज्य और सम्पत्तिसे सुशोभित होनेवाले वरको अपनी पुत्री देता है; क्योंकि किसी दीन-दुःखीको कन्या देनेसे पिता कन्याघाती होता है—उसे कन्याके वधका पाप लगता है *। कौन जानता है कि भगवान् शंकर दुःखी हैं ? कुबेर जिनके किंकर हैं, जो अपनी भ्रूभङ्गकी लीलामात्रसे संसारकी सृष्टि और संहार करनेमें समर्थ हैं, जिन्हें गुणातीत, परमात्मा और प्रकृतिसे परे परमेश्वर कहा गया है, सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली जिनकी त्रिविध मूर्ति ही ब्रह्मा, विष्णु और हर नाम धारण करती है, उन्हें कौन निर्धन अथवा दुःखी कह सकता है ? ब्रह्मलोकमें निवास करनेवाले ब्रह्मा, क्षीरसागरमें रहनेवाले विष्णु तथा कैलासवासी हर—ये सब शिवकी ही विभूतियाँ हैं। शिवसे प्रकट हुई प्रकृति भी अपने अंशसे तीन प्रकारकी मूर्तियोंको धारण करती है। जगत्‌में लीलाशक्तिसे प्रेरित हो वह अपनी कलासे बहुत-सा रूप धारण करती है। समस्त वाङ्मयकी अधिष्ठात्री देवी वाणी उनके मुखसे प्रकट हुई है और सर्वसम्पत्स्वरूपिणी लक्ष्मी वक्षःस्थलसे आविर्भूत हुई हैं तथा शिवाने देवताओंके एकत्र हुए तेजसे अपनेको प्रकट किया था और सम्पूर्ण दानवोंका वध करके देवताओंको स्वर्गकी लक्ष्मी प्रदान की थी।

देवी शिवा कल्पान्तरमें दक्षपत्नीके उदरसे जन्म ले सती नामसे प्रसिद्ध हुई और हरको उन्होंने पतिके रूपमें प्राप्त किया। दक्षने स्वयं ही भगवान् शिवको अपनी पुत्री दी थी। सतीने पतिकी निन्दा सुनकर योगबलसे अपने शरीरको त्याग दिया था। वे ही कल्याणमयी सती अब तुम्हारे वीर्य और मेनाके गर्भसे प्रकट हुई हैं। शैलराज ! ये शिवा जन्म-जन्ममें शिवकी ही पत्नी होती हैं। प्रत्येक कल्पमें बुद्धिरूपा दुर्गा ज्ञानियोंकी श्रेष्ठ माता होती हैं। ये सदा सिद्ध, सिद्धिदायिनी और सिद्धिरूपिणी हैं। भगवान् हर चिताभस्मके रूपमें सतीके अस्थिचूर्णको ही स्वयं प्रेमपूर्वक अपने अङ्गोंमें धारण करते हैं। अतः गिरिराज ! तुम स्वेच्छासे ही अपनी मङ्गलमयी कन्याको भगवान् हरके हाथमें दे दो। तुम यदि नहीं दोगे तो वह स्वयं प्रियतमके स्थानमें चली जायगी। देवेश्वर शिव तुम्हारी पुत्रीका अनन्त क्लेश देखकर ब्राह्मणके रूपमें इसकी तपस्याके स्थानपर आये थे और इसके साथ विवाहकी प्रतिज्ञा करके इसे आश्वासन एवं वर देकर अपने आवास-स्थानको लौट गये थे। गिरे ! पार्वतीकी प्रार्थनासे ही शम्भुने तुम्हारे पास आकर इसके लिये याचना की और तुम दोनोंने शिवभक्तिमें मन लगाकर उनकी उस याचनाको स्वीकार कर लिया था। गिरीश्वर ! बताओ, फिर किस कारणसे तुम्हारी बुद्धि विपरीत हो गयी ? भगवान् शिवने देवताओंकी प्रार्थनासे प्रभावित होकर हम सब ऋषियोंको और अरुन्धती देवीको भी तुम्हारे पास भेजा है। हम तुम्हें यही शिक्षा देते हैं कि तुम पार्वतीको रुद्रके हाथमें दे दो। गिरे ! ऐसा करनेपर

* गृही ददाति स्वसुतां राज्यसम्पत्तिशालिने। कन्यकां दुःखिने दत्त्वा कन्याघाती भवेत्पिता॥
(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ पा॰ खं॰ ३३। ३५)

तुम्हें महान् आनन्द प्राप्त होगा। शैलेन्द्र! यदि तुम स्वेच्छासे अपनी बेटी शिवाको शिवके हाथमें नहीं दोगे तो भावीके बलसे ही इन दोनोंका विवाह हो जायगा। तात! भगवान् शंकरने तपस्यामें लगी हुई पार्वतीको ऐसा ही वर दिया है। ईश्वरकी की हुई प्रतिज्ञा कभी पलट नहीं सकती। गिरिराज! ईश्वरके वशमें रहनेवाले समस्त साधु पुरुषोंकी भी प्रतिज्ञाका संसारमें किसीके द्वारा उल्लङ्घन होना कठिन है। फिर साक्षात् ईश्वरकी प्रतिज्ञाके लिये तो कहना ही क्या है? (अध्याय ३२-३३)

☆

सप्तर्षियोंके समझाने तथा मेरु आदिके कहनेसे पत्नीसहित हिमवान्‌का शिवके साथ अपनी पुत्रीके विवाहका निश्चय करना तथा सप्तर्षियोंका शिवके पास जा उन्हें सब बात बताकर अपने धामको जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर वसिष्ठने प्राचीन कालमें राजा अनरण्यके द्वारा अपनी कन्या पद्माका पिप्पलादके साथ विवाह करनेकी तथा धर्मके वरदानसे पिप्पलादके तरुण अवस्था, रूप, गुण, सदा

स्थिर रहनेवाले यौवन, कुबेर और इन्द्रसे भी बढ़कर धन-ऐश्वर्य, भक्ति, सिद्धि एवं समता प्राप्त करनेकी तथा पद्माके स्थिर यौवन, सौभाग्य, सम्पत्ति एवं भर्ताके द्वारा परम गुणवान् दस पुत्रोंके प्राप्त करनेकी कथा सुनाकर कहा—'शैलेन्द्र! तुम मेरे कथनके सारतत्त्वको समझकर अपनी पुत्री पार्वतीका हाथ महादेवजीके हाथमें दे दो और मेनासहित तुम्हारे मनमें जो कुरोष है, उसे त्याग दो। आजसे एक सप्ताह व्यतीत होनेपर अत्यन्त शुभ और दुर्लभ मुहूर्त आनेवाला है। उस समय चन्द्रमा लग्नके स्वामी होकर अपने पुत्र बुधके साथ लग्नमें ही स्थित होंगे। उनका रोहिणी नक्षत्रके साथ योग होगा। चन्द्रमा और तारे शुद्ध होंगे। मार्गशीर्ष-मासके अन्तर्गत सम्पूर्ण दोषोंसे रहित सोमवारको, जब कि लग्नपर सम्पूर्ण शुभग्रहोंकी दृष्टि होगी, पापग्रहोंकी दृष्टि नहीं होगी तथा बृहस्पति ऐसे स्थानपर स्थित होंगे, जहाँसे वे उत्तम संतान और पतिका सौभाग्य देनेमें समर्थ होंगे। ऐसे मुहूर्तमें तुम अपनी कन्या मूलप्रकृति ईश्वरी जगदम्बा पार्वतीको जगत्पिता भगवान् शिवके हाथमें देकर कृतार्थ हो जाओ।'

ऐसा कहकर ज्ञानशिरोमणि मुनिवर वसिष्ठ नाना प्रकारकी लीला करनेवाले

भगवान् शिवका स्मरण करके चुप हो गये। वसिष्ठजीकी बात सुनकर सेवकों और पत्नीसहित गिरिराज हिमालय बड़े विस्मित हुए और दूसरे-दूसरे पर्वतोंसे बोले।

हिमालयने कहा—गिरिराज मेरु, सह्य, गन्धमादन, मन्दराचल, मैनाक और विन्ध्याचल आदि पर्वतेश्वरो! आप सब लोग मेरी बात सुनें। वसिष्ठजी ऐसी बात कह रहे हैं। अब मुझे क्या करना चाहिये, इस बातका विचार करना है। आपलोग अपने मनसे सब बातोंका निर्णय करके जैसा ठीक समझें, वैसा करें।

हिमाचलकी यह बात सुनकर सुमेरु आदि पर्वत भलीभाँति निर्णय करके उनसे प्रसन्नतापूर्वक बोले।

पर्वतोंने कहा—महाभाग! इस समय विचार करनेसे क्या लाभ? जैसा ऋषिलोग कहते हैं, उसके अनुसार ही कार्य करना चाहिये। वास्तवमें यह कन्या देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही उत्पन्न हुई है। इसने शिवके लिये ही अवतार लिया है, इसलिये यह शिवको ही दी जानी चाहिये। यदि इसने रुद्रदेवकी आराधना की है और रुद्रने आकर इसके साथ वार्तालाप किया है तो इसका विवाह उन्हींके साथ होना चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! उन मेरु आदि पर्वतोंकी यह बात सुनकर हिमाचल बड़े प्रसन्न हुए और गिरिजा भी मन-ही-मन हँसने लगीं। अरुन्धतीने भी अनेक कारण बताकर, नाना प्रकारकी बातें सुनाकर और विविध प्रकारके इतिहासोंका वर्णन करके मेनादेवीको समझाया। तब शैलपत्नी मेनका सब कुछ समझ गयीं और प्रसन्नचित्त हो उन्होंने मुनियोंको, अरुन्धतीजीको और हिमाचलको भी भोजन कराकर स्वयं भोजन किया। तदनन्तर ज्ञानी गिरिश्रेष्ठ हिमाचलने उन मुनियोंकी भलीभाँति सेवा की। उनका मन प्रसन्न और सारा भ्रम दूर हो गया था। उन्होंने हाथ जोड़ प्रसन्नतापूर्वक उन महर्षियोंसे कहा।

हिमालय बोले—महाभाग सप्तर्षियो! आपलोग मेरी बात सुनें। मेरा सारा संदेह दूर हो गया। मैंने शिव-पार्वतीके चरित्र सुन लिये; अब मेरा शरीर, मेरी पत्नी मेना, मेरे पुत्र-पुत्री, ऋद्धि-सिद्धि तथा अन्य सारी वस्तुएँ भगवान् शिवकी ही हैं, दूसरे किसीकी नहीं!

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर हिमाचलने अपनी पुत्रीकी ओर आदरपूर्वक देखा और उसे वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके ऋषियोंकी गोदमें बिठा दिया। तत्पश्चात् वे शैलराज पुनः प्रसन्न हो उन ऋषियोंसे बोले—'यह भगवान् रुद्रका भाग है। इसे मैं उन्हींको दूँगा, ऐसा निश्चय कर लिया है।'

ऋषि बोले—गिरिराज! भगवान् शंकर तुम्हारे याचक हैं, तुम स्वयं उनके दाता हो और पार्वतीदेवी भिक्षा हैं। इससे उत्तम और क्या हो सकता है? हिमाचल! तुम समस्त पर्वतोंके राजा, सबसे श्रेष्ठ और धन्य हो। अतः तुम्हारे शिखरोंकी सामान्य गति है—तुम्हारे सभी शिखर सामान्यरूपसे पवित्र एवं श्रेष्ठ हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर निर्मल अन्तःकरणवाले उन मुनियोंने गिरिराज-कुमारी पार्वतीको हाथसे छूकर आशीर्वाद देते हुए कहा—'शिवे! तुम भगवान् शिवके लिये सुखदायिनी होओ। तुम्हारा कल्याण होगा। जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे गुणोंकी वृद्धि हो।' ऐसा कहकर सब मुनियोंने गिरिराजको प्रसन्नतापूर्वक फल-फूल दे विवाहके पक्के होनेका दृढ़ विश्वास कर लिया। उस समय परम सती सुमुखी अरुन्धतीने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शिवके गुणोंका बखान करके मेनाको लुभा लिया। तदनन्तर गिरिराज हिमवान्‌ने परम उत्तम माङ्गलिक लोकाचारका आश्रय ले हल्दी और कुङ्कुमसे अपनी दाढ़ी-मूछका मार्जन किया। तत्पश्चात् चौथे दिन उत्तम लग्नका निश्चय करके परस्पर संतोष दे, वे सप्तर्षि भगवान् शिवके पास चले गये। वहाँ जाकर शिवको नमस्कार और विविध सूक्तियोंसे उनका स्तवन करके वे वसिष्ठ आदि सब मुनि परमेश्वर शिवसे बोले।

ऋषियोंने कहा—देवदेव! महादेव! परमेश्वर! महाप्रभो! आप प्रेमपूर्वक हमारी बात सुनें। आपके इन सेवकोंने जो कार्य किया है, उसे जान लें। महेश्वर! हमने नाना प्रकारके सुन्दर वचन और इतिहास सुनाकर गिरिराज और मेनाको समझा दिया है। गिरिराजने आपके लिये पार्वतीका वाग्दान कर दिया है। अब इसमें कोई ननु-नच नहीं है। अब आप अपने पार्षदों तथा देवताओंके साथ उनके यहाँ विवाहके लिये जाइये। महादेव! प्रभो! अब शीघ्र हिमाचलके घर पधारिये और वेदोक्त रीतिके अनुसार पार्वतीका अपने लिये पाणिग्रहण कीजिये।

सप्तर्षियोंका यह वचन सुनकर लोकाचार-परायण महेश्वर प्रसन्नचित्त हो हँसते हुए इस प्रकार बोले।

महेश्वरने कहा—महाभाग सप्तर्षियो! विवाहको तो मैंने न कभी देखा है और न सुना ही है। तुमलोगोंने पहले जैसा देखा हो, उसके अनुसार विवाहकी विशेष विधिका वर्णन करो।

महेश्वरके उस लौकिक शुभ वचनको सुनकर वे ऋषि हँसते हुए देवाधिदेव भगवान् सदाशिवसे बोले।

ऋषियोंने कहा—प्रभो! आप पहले तो भगवान् विष्णुको, विशेषतः उनके पार्षदोंसहित शीघ्र बुला लें। फिर पुत्रोंसहित ब्रह्माजीको, देवराज इन्द्रको, समस्त ऋषियोंको, यक्ष, गन्धर्व, किंनर, सिद्ध, विद्याधर और अप्सराओंको प्रसन्नतापूर्वक आमन्त्रित करें। इनको तथा अन्य सब लोगोंको यहाँ सादर बुलवा लें। वे सब मिलकर आपके कार्यका साधन कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर वे सातों ऋषि उनकी आज्ञा ले भगवान् शंकरकी स्थितिका वर्णन करते हुए वहाँसे प्रसन्नतापूर्वक अपने धामको चले गये।

(अध्याय ३४—३६)

☆

हिमवान्‌का भगवान् शिवके पास लग्नपत्रिका भेजना, विवाहके लिये आवश्यक सामान जुटाना, मङ्गलाचारका आरम्भ करना, उनका निमन्त्रण पाकर पर्वतों और नदियोंका दिव्यरूपमें आना, पुरीकी सजावट तथा विश्वकर्माद्वारा दिव्य-मण्डप एवं देवताओंके निवासके लिये दिव्यलोकोंका निर्माण करवाना

नारदजीने पूछा—तात ! महाप्राज्ञ ! प्रभो ! आप कृपापूर्वक यह बताइये कि सप्तर्षियोंके चले जानेपर हिमाचलने क्या किया ।

ब्रह्माजीने कहा—मुनीश्वर ! अरुन्धतीसहित उन सप्तर्षियोंके चले जानेपर हिमवान्‌ने जो कार्य किया, वह तुम्हें बता रहा हूँ। सप्तर्षियोंके जानेके बाद अपने मेरु आदि भाई-बन्धुओंको आमन्त्रित करके पुत्र और पत्नीसहित महामनस्वी गिरिराज हिमवान् बड़े हर्षका अनुभव करने लगे। तदनन्तर ऋषियोंकी आज्ञाके अनुसार हिमवान्‌ने अपने पुरोहित गर्गजीसे बड़ी प्रसन्नताके साथ लग्न-पत्रिका लिखवायी। उस पत्रिकाको उन्होंने भगवान् शिवके पास भेजा। पर्वतराजके बहुत-से आत्मीयजन प्रसन्नमनसे नाना प्रकारकी सामग्रियाँ लेकर वहाँ गये। कैलासपर भगवान् शिवके समीप पहुँचकर उन लोगोंने शिवको तिलक लगाया और वह लग्नपत्र उनके हाथमें दिया। वहाँ भगवान् शिवने उन सबका यथायोग्य विशेष सत्कार किया। फिर वे सब लोग प्रसन्नचित्त हो शैलराजके पास लौट आये। महेश्वरके द्वारा विशेष सम्मानित होकर बड़े हर्षके साथ लौटे हुए उन लोगोंको देखकर हिमवान्‌के हृदयमें अत्यन्त हर्ष हुआ। तत्पश्चात् आनन्दित हो शैलराजने नाना देशोंमें रहनेवाले अपने बन्धुओंको लिखित निमन्त्रण भेजा, जो उन सबको सुख देनेवाला था। इसके बाद वे बड़े आदर और उत्साहके साथ उत्तम अन्न एवं नाना प्रकारकी विवाहोचित सामग्रियोंका संग्रह करने लगे। उन्होंने चावल, गुड़, शक्कर, आटा, दूध, दही, घी, मिठाई, नमकीन पदार्थ, मक्खन, पकवान, महान् स्वादिष्ट रस और नाना प्रकारके व्यञ्जन इतने अधिक एकत्र किये कि सूखे पदार्थोंके पहाड़ खड़े हो गये और द्रव पदार्थोंकी बावड़ियाँ बन गयीं। शिवके पार्षदों और देवताओंके लिये हितकर नाना प्रकारकी वस्तुएँ, भाँति-भाँतिके बहुमूल्य वस्त्र, आगमें तपाकर शुद्ध किये हुए सुवर्ण, रजत और विभिन्न प्रकारके मणिरत्न—इनका तथा अन्य उपयोगी द्रव्योंका विधिपूर्वक संग्रह करके गिरिराजने मङ्गलकारी दिनमें माङ्गलिक कृत्य करना आरम्भ किया। पर्वतराजके घरकी स्त्रियोंने पार्वतीका संस्कार करवाया। भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे विभूषित हुई राजभवनकी उन सुन्दरी स्त्रियोंने सानन्द मङ्गलकार्यका सम्पादन किया। नगरके ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने स्वयं बड़े हर्षके साथ लोकाचारका अनुष्ठान किया। उसमें मङ्गलपूर्वक भाँति-भाँतिके उत्सव मनाये गये। हर्षभरे हृदयसे उत्तम मङ्गलाचारका

सम्पादन करके हिमालय भी सर्वतोभावेन बड़े प्रसन्न हुए और अपने निमन्त्रित बन्धुजनोंके आगमनकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।

इसी बीचमें उनके निमन्त्रित बन्धु-बान्धव आने लगे। देवताओंके निवासभूत गिरिराज सुमेरु दिव्य रूप धारण करके नाना प्रकारके मणियों तथा महारत्नोंको यत्नपूर्वक साथ ले अपने स्त्री-पुत्रोंके साथ हिमालयके घर आये। मन्दराचल, अस्ताचल, उदयाचल, मलय, दर्दुर, निषध, गन्धमादन, करवीर, महेन्द्र, पारियात्र, क्रौञ्च, पुरुषोत्तमशैल, नील, त्रिकूट, चित्रकूट, वेङ्कट, श्रीशैल, गोकामुख, नारद, विन्ध्य, कालञ्जर, कैलास तथा अन्य पर्वत दिव्य रूप धारणकर अपने स्त्री-पुत्रोंके साथ बहुत-सी भेंट-सामग्री ले वहाँ उपस्थित हुए। दूसरे द्वीपोंमें तथा यहाँ भी जो-जो पर्वत हैं, वे सब हिमालयके घर पधारे। शिवा और शिवका विवाह है, यह जानकर सबने बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ पदार्पण किया। शोणभद्र आदि नद और सम्पूर्ण नदियाँ दिव्य नर-नारियोंके रूप धारणकर नाना प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत हो शिव-पार्वतीका विवाह देखनेके लिये आये। गोदावरी, यमुना, सरस्वती, वेणी, गङ्गा, नर्मदा तथा अन्य श्रेष्ठ सरिताएँ भी बड़ी प्रसन्नताके साथ हिमवान्के यहाँ आयीं। उन सबके आनेसे हिमालयकी दिव्य पुरी सब ओरसे भर गयी। वह सब प्रकारकी शोभाओंसे सम्पन्न थी। वहाँ बड़े-बड़े उत्सव हो रहे थे। ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं। बंदनवारोंसे उसकी अधिक शोभा होती थी। चारों ओर चँदोवे तने होनेसे वहाँ सूर्यका दर्शन नहीं होता था। भाँति-भाँतिकी नीली, पीली आदि प्रभा उस पुरीकी शोभा बढ़ाती थी। हिमालयने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने यहाँ पधारे हुए सभी स्त्री-पुरुषोंका यथायोग्य आदर-सत्कार किया और सबको अलग-अलग सुन्दर स्थानोंमें ठहराया। अनेकानेक उपयुक्त सामग्री देकर सबको पूर्ण संतुष्ट किया।

मुनिश्रेष्ठ ! तदनन्तर शैलराज हिमवान्ने प्रसन्न हो महान् उत्सवसे परिपूर्ण अपने नगरको विचित्र रीतिसे सजाना आरम्भ किया। सड़कोंको झाड़-बुहारकर उनपर छिड़काव कराया। उन्हें बहुमूल्य साधनोंसे सुसज्जित एवं शोभित किया। प्रत्येक घरके दरवाजेपर केले आदि माङ्गलिक वृक्ष लगवाये और उन्हें माङ्गलिक द्रव्योंसे संयुक्त किया। आँगनको केलेके खंभोंसे सजाया। रेशमकी डोरोंमें आमके पल्लव बाँधकर बंदनवारें बनवायीं और उन्हें उन खंभोंके चारों ओर लगवा दिया। मालतीके फूलोंकी मालाएँ उस (आँगन) के सब ओर लटका दी गयीं। सुन्दर तोरणोंसे वह आँगनका भाग अत्यन्त प्रकाशमान जान पड़ता था। चारों दिशाओंमें मङ्गलसूचक शुभ द्रव्य रखे गये थे, जो उस प्राङ्गणकी शोभा बढ़ा रहे थे। इसी प्रकार अत्यन्त प्रसन्नतासे भरे हुए गिरिराज हिमवान्ने महान् प्रभावशाली गर्गमुनिको आगे करके अपनी पुत्रीके लिये प्रस्तुत करनेयोग्य सारा उत्तम मङ्गलकार्य सम्पन्न किया। उन्होंने विश्वकर्माको बुलाकर आदरपूर्वक एक मण्डप बनवाया, जिसका विस्तार बहुत अधिक था। वेदी आदिके कारण वह मण्डप बहुत मनोहर जान पड़ता था। देवर्षे ! वह मण्डप कई योजन विस्तृत

था। अनेक शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा नाना प्रकारके आश्चर्योंसे परिपूर्ण था। वहाँ स्थावर और जंगम सभी वस्तुएँ कृत्रिम बनी थीं; परंतु असली वस्तुओंके समान प्रतीत होती थीं। उनसे उस मण्डपकी मनोहरता बढ़ गयी थी। वहाँ सब ओर ऐसी अद्भुत वस्तुएँ थीं जो उस मण्डपका सर्वस्व जान पड़ती थीं। नाना प्रकारकी निराली वस्तुओंका चमत्कार वहाँ छा रहा था। वहाँकी स्थावर वस्तुओंसे जंगम और जंगम वस्तुओंसे स्थावर पराजित हो रहे थे अर्थात् वे एक-दूसरेसे बढ़कर शोभाशाली और चमत्कारपूर्ण दिखायी देते थे। उस मण्डपकी स्थलभूमि जलसे पराजित हो रही थी। अर्थात् चतुर-से-चतुर मनुष्य भी यह नहीं जान पाते थे कि इसमें कहाँ जल है और कहाँ स्थल। कहीं कृत्रिम सिंह बने थे और कहीं सारसोंकी पंक्तियाँ। कहीं बनावटी मोर थे, जो अपनी सुन्दरतासे मनको मोहे लेते थे। कहीं कृत्रिम स्त्रियाँ थीं, जो पुरुषोंके साथ नृत्य करती हुई देखी जाती थीं। वे कृत्रिम होनेपर भी सब लोगोंकी ओर देखतीं और उनके मनको मोहमें डाल देती थीं। उसी विधिसे मनोहर द्वारपाल बने थे, जो स्थावर होनेपर भी जंगमोंके समान जान पड़ते थे। वे अपने हाथोंसे धनुष उठाकर उन्हें खींचते देखे जाते थे।

द्वारपर कृत्रिम महालक्ष्मी खड़ी थीं, जिनकी रचना अद्भुत थी। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे संयुक्त दिखायी देती थीं। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो क्षीरसागरसे साक्षात् लक्ष्मी ही आ गयी हों। उस मण्डपमें स्थान-स्थानपर सजे-सजाये कृत्रिम हाथी खड़े किये गये थे, जो असली हाथियोंके समान ही प्रतीत होते थे। घुड़सवारोंसहित घोड़े और हाथीसवारों-सहित हाथी बनाये गये थे। जहाँ-तहाँ रथियोंसहित रथ बने थे, जो कृत्रिम अश्वोंसे ही खींचे जाते थे। उन्हें देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य होता था। इनके सिवा दूसरे-दूसरे कृत्रिम वाहन भी वहाँ खड़े थे। पैदल सिपाहियोंकी कृत्रिम सेना भी वहाँ मौजूद थी। मुने! प्रसन्न चित्तवाले विश्वकर्माने देवताओं और मुनियोंको भी मोह (आश्चर्य)में डालनेके लिये वहाँ ऐसी अद्भुत रचनाएँ की थीं। मण्डपके सबसे बड़े फाटकपर कृत्रिम नन्दी खड़ा था, जो शुद्ध स्फटिकमणिके समान उज्ज्वल कान्तिसे सुशोभित होता था। भगवान् शिवके वाहन नन्दीकी जैसी आकृति है, ठीक वैसा ही वह भी था। उस कृत्रिम नन्दीके ऊपर रत्न-विभूषित महादिव्य पुष्पक शोभा पाता था, जो पल्लवों तथा श्वेत चामरोंसे सजाया गया था। उसके वाम पार्श्वमें दो कृत्रिम हाथी खड़े थे, जिनका रंग विशुद्ध केसरके समान था। वे चार दाँतवाले बनाये गये थे और साठ वर्षके हाथीके समान दीखते थे। वे परस्पर स्नेह करते-से प्रतीत होते थे। उनमें बड़ी चमक थी। इसी प्रकार सूर्यके समान अत्यन्त प्रकाशमान दो दिव्य अश्व भी विश्वकर्माने बनाये थे, जो चँवरसे अलंकृत और दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थे। श्रेष्ठ रत्नमय आभूषणोंसे सम्पन्न, कवचधारी लोकपाल तथा सम्पूर्ण देवता भी वहाँ विश्वकर्माद्वारा रचे गये थे, जो ठीक उन्हीं लोकपालों और देवताओंसे मिलते-जुलते थे। इसी तरह भृगु आदि समस्त तपोधन ऋषि, अन्यान्य उपदेवता और सिद्ध भी

उनके द्वारा वहाँ निर्मित हुए थे।

गरुड़ आदि समस्त पार्षदोंसे युक्त भगवान् विष्णुका कृत्रिम विग्रह भी विश्वकर्माने बनाया था, जिसका स्वरूप साक्षात् श्रीहरिके समान ही आश्चर्यजनक था। नारद! उसी प्रकार पुत्रों, वेदों और सिद्धोंसे घिरे हुए मुझ ब्रह्माकी भी प्रतिमा वहाँ बनायी गयी थी, जो मेरे समान ही वैदिक सूक्तोंका पाठ कर रही थी। ऐरावत हाथीपर चढ़े हुए देवराज इन्द्र भी वहाँ दल-बलके साथ खड़े थे। ये भी कृत्रिम ही बनाये गये थे और परिपूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशित होते थे। देवर्षे! बहुत कहनेसे क्या लाभ? हिमाचलसे प्रेरित हुए विश्वकर्माने वहाँ शीघ्र ही सम्पूर्ण देवसमाजके कृत्रिम विग्रहोंका निर्माण कर लिया था। इस प्रकार उन्होंने दिव्य मण्डपकी रचना की थी। वह मण्डप अनेक आश्चर्योंसे युक्त, महान् तथा देवताओंको भी मोह लेनेवाला था।

तदनन्तर गिरिराज हिमवान्की आज्ञासे परम बुद्धिमान् विश्वकर्माने देवता आदिके निवासके लिये उन-उनके कृत्रिम लोकोंका भी यत्नपूर्वक निर्माण किया। उन्हीं लोकोंमें उन्होंने उन देवताओंके लिये अत्यन्त तेजस्वी, परम अद्भुत और सुखदायक बड़े-बड़े दिव्य मञ्चों (सिंहासनों) की रचना की। इसी तरह उन्होंने मुझ स्वयम्भू ब्रह्माके निवासके लिये क्षणभरमें अद्भुत सत्यलोककी रचना कर डाली, जो उत्तम दीप्तिसे उद्दीप्त हो रहा था। साथ ही भगवान् विष्णुके लिये भी क्षणभरमें दूसरे दिव्य वैकुण्ठधामका निर्माण कर दिया, जो परम उज्ज्वल तथा नाना प्रकारके आश्चर्योंसे परिपूर्ण था। इसी तरह विश्वकर्माने देवराज इन्द्रके लिये भी दिव्य, अद्भुत, उत्तम एवं समस्त ऐश्वर्योंसे सम्पन्न गृहकी रचना की। अन्य लोकपालोंके लिये भी उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक बड़े सुन्दर, दिव्य, अद्भुत एवं बड़े-बड़े भवन बनाये। फिर क्रमशः समस्त देवताओंके लिये भी उन्होंने क्रमशः विचित्र गृहोंका निर्माण किया। परम बुद्धिमान् विश्वकर्माको भगवान् शंकरका महान् वर प्राप्त था, इसीलिये उन्होंने शिवके संतोषके लिये क्षणभरमें इन सब वस्तुओंकी रचना कर डाली। तदनन्तर उसी प्रकार भगवान् शंकरके लिये भी उन्होंने एक शोभाशाली गृहका निर्माण किया, जो शिवके चिह्नसे युक्त तथा शिवलोकवर्ती दिव्य भवनके समान ही अनुपम था। श्रेष्ठ देवताओंने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। वह परम उज्ज्वल, महान् प्रभापुञ्जसे उद्भासित, उत्तम और अद्भुत था। विश्वकर्माने भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये वहाँ ऐसी अद्भुत रचना की थी, जो परम उज्ज्वल होनेके साथ ही साक्षात् महादेवजीको भी आश्चर्यमें डालनेवाली थी। इस प्रकार यह सारा लौकिक व्यवहार करके हिमाचल बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान् शम्भुके शुभागमनकी प्रतीक्षा करने लगे। देवर्षे! हिमालयका यह सारा आनन्ददायक वृत्तान्त मैंने तुमसे कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ३७-३८)

☆

भगवान् शिवका नारदजीके द्वारा सब देवताओंको निमन्त्रण दिलाना, सबका आगमन तथा शिवका मङ्गलाचार एवं ग्रहपूजन आदि करके कैलाससे बाहर निकलना

नारदजी बोले—विष्णुशिष्य महाप्राज्ञ तात विधातः! आपको नमस्कार है। कृपानिधे! आपके मुँहसे यह अद्भुत कथा मुझे सुननेको मिली है। अब मैं भगवान् चन्द्रमौलिके परम मङ्गलमय तथा समस्त पापराशिके विनाशक वैवाहिक चरित्रको सुनना चाहता हूँ। मङ्गलपत्रिका पाकर महादेवजीने क्या किया? परमात्मा शंकरकी वह दिव्य कथा सुनाइये।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। भगवान् शंकरके उत्तम यशको सुनो। मङ्गलपत्रिका पाकर भगवान् शंकरने जो कुछ किया, वह बताता हूँ। भगवान् शिव उस मङ्गलपत्रिकाको प्रसन्नतापूर्वक हाथमें लेकर हृदयमें बड़े हर्षका अनुभव करते हुए हँसने लगे। फिर उन भगवान्ने उसे लानेवालोंका सम्मान किया। तत्पश्चात् उसे बाँचकर विधिपूर्वक स्वीकार किया। इसके बाद हिमाचलके यहाँसे आये हुए लोगोंको बड़े आदर-सम्मानके साथ बिदा किया। तदनन्तर उन मुनियोंसे कहा—'आपलोगोंने मेरे शुभकार्यका भलीभाँति सम्पादन किया, अब मैंने विवाह स्वीकार कर लिया है। अतः आपलोगोंको मेरे विवाहमें आना चाहिये।'

भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर वे ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें प्रणाम एवं उनकी परिक्रमा करके अपने परम सौभाग्यकी सराहना करते हुए अपने धामको चले गये। मुने! तदनन्तर महालीला करनेवाले देवेश्वर भगवान् शम्भुने लोकाचारका सहारा ले तत्काल ही तुम्हारा स्मरण किया। तुम अपने सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आये और मस्तक झुका प्रणाम कर हाथ जोड़ विनीतभावसे खड़े हो गये।

तब भगवान् शिवने कहा—नारद! तुम्हारे उपदेशसे देवी पार्वतीने बड़ी भारी तपस्या की और उससे संतुष्ट होकर मैंने उन्हें यह वर दिया कि मैं पतिरूपसे तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा। पार्वतीकी भक्ति देखकर मैं उनके वशमें हो गया हूँ। इसलिये उनके साथ विवाह करूँगा। सप्तर्षियोंने लग्नका साधन और शोधन कर दिया है। अतः आजसे सातवें दिन मेरा विवाह होगा। उस अवसरपर लौकिक रीतिका आश्रय ले मैं महान् उत्सव करूँगा। मुने! तुम विष्णु आदि सब देवताओं, मुनियों और सिद्धोंको तथा अन्य लोगोंको भी मेरी ओरसे निमन्त्रित करो। सब लोग मेरे शासनकी गुरुताको समझकर प्रसन्नता और उत्साहके साथ सब प्रकारसे सज-धजकर स्त्री-पुत्रोंको साथ लिये यहाँ आयें।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! भगवान् शंकरकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके तुमने शीघ्र ही सर्वत्र जाकर उन सबको निमन्त्रण दे दिया। तत्पश्चात् शम्भुके पास आकर उनकी आज्ञाके अनुसार तुम वहीं ठहर गये। भगवान् शिव भी उन सब

देवताओंके आगमनकी उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा करते हुए अपने गणोंके साथ वहीं रहे। उनके सभी गण सम्पूर्ण दिशाओंमें नाचते हुए वहाँ बड़ा भारी उत्सव मना रहे थे। इसी बीचमें भगवान् विष्णु सुन्दर वेष धारण किये अपनी पत्नी और दलबलके साथ शीघ्र ही कैलास पर्वतपर आये और भक्तिभावसे भगवान् शिवको प्रणाम करके उनकी आज्ञा पाकर प्रसन्नतापूर्वक उत्तम स्थानमें ठहर गये। इसी प्रकार मैं अपने गणोंके साथ स्वतन्त्रतापूर्वक शीघ्र ही कैलास गया और भगवान् शम्भुको प्रणाम करके अपने सेवकोंसहित सानन्द वहाँ ठहरा। तदनन्तर इन्द्र आदि लोकपाल और उनकी स्त्रियाँ आवश्यक सामानके साथ खूब सज-धजकर वहाँ आयीं। वे सब-के-सब उत्सव मना रहे थे। तत्पश्चात् मुनि, नाग, सिद्ध, उपदेवता तथा अन्य लोग भी निमन्त्रित हो उत्सव मनाते हुए वहाँ आये। उस समय महेश्वरने वहाँ आये हुए सब देवता आदिका पृथक्-पृथक् सहर्ष स्वागत-सत्कार किया। फिर तो कैलास पर्वतपर बड़ा अद्भुत और महान् उत्सव होने लगा। देवाङ्गनाओंने उस अवसरपर यथायोग्य नृत्य आदि किया। विष्णु आदि जो देवता भगवान् शम्भुकी वैवाहिक यात्रा सम्पन्न करानेके लिये इस समय वहाँ आये थे, वे सब यथास्थान ठहर गये। भगवान् शिवकी आज्ञा पाकर सब लोग उनके प्रत्येक कार्यको अपना ही कार्य समझकर नियन्त्रित रूपसे करने लगे और इसे शिवकी सेवा मानने लगे। उस समय सातों मातृकाएँ वहाँ बड़ी प्रसन्नताके साथ शिवको यथायोग्य आभूषण पहिनाने लगीं। मुनिश्रेष्ठ! परमेश्वर भगवान् शिवका जो स्वाभाविक वेष था, वही उनकी इच्छासे उनके लिये आभूषणकी सामग्री बन गया। उस समय चन्द्रमा स्वयं उनके मुकुटके स्थानपर जा विराजे। उनका जो सुन्दर ललाटवर्ती तीसरा नेत्र था, वही शुभ तिलक बन गया। मुने! कानोंके आभूषणोंके रूपमें जो दो सर्प बताये गये हैं, वे नाना प्रकारके रत्नोंसे युक्त दो कुण्डल बन गये। अन्यान्य अङ्गोंमें स्थित सर्प उन-उन अङ्गोंके अति रमणीय नाना रत्नमय आभूषण हो गये। उनके शरीरमें जो भस्म लगा हुआ था, वही चन्दन आदिका अङ्गराग बन गया और उनके जो गजचर्म आदि परिधान थे, वे सुन्दर दिव्य दुकूल बन गये।

इस प्रकार उनका रूप इतना सुन्दर हो गया कि उसका वर्णन करना कठिन है। वे साक्षात् ईश्वर तो थे ही, उन्होंने पूरा-पूरा ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया। तदनन्तर समस्त देवता, यक्ष, दानव, नाग, पक्षी, अप्सरा और महर्षिगण मिलकर भगवान् शिवके समीप गये और महान् उत्सव मनाते हुए प्रसन्नतापूर्वक उनसे बोले—'महादेव! महेश्वर! अब आप महादेवी गिरिजाको ब्याह लानेके लिये हमलोगोंके साथ चलिये, चलिये। हमपर कृपा कीजिये।' तत्पश्चात् विज्ञानसे प्रसन्न हृदयवाले भगवान् विष्णुने भगवान् शंकरको भक्तिभावसे प्रणाम करके उपर्युक्त प्रस्तावके अनुरूप ही बात कही।

भगवान् विष्णु बोले—शरणागतवत्सल देवदेव! महादेव! प्रभो! आप अपने भक्तजनोंका कार्य सिद्ध करनेवाले हैं; अतः मेरा एक निवेदन सुनिये। कल्याणकारी शम्भो! आप गृह्यसूत्रोक्त विधिके अनुसार

गिरिराजकुमारी पार्वतीदेवीके साथ अपने विवाहका कार्य कराइये। हर! आपके द्वारा विवाहकी विधिका सम्पादन होनेपर वही लोकमें सर्वत्र विख्यात हो जायगी, अतः नाथ! आप कुलधर्मके अनुसार प्रेमपूर्वक मण्डपस्थापन और नान्दीमुख श्राद्ध कराइये तथा लोकमें अपने यशका विस्तार कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर लोकाचारपरायण परमेश्वर शम्भुने विधिपूर्वक सब कार्य किया। उन्होंने सारा आभ्युदयिक कार्य करानेके लिये मुझको ही अधिकार दे दिया था। अतः वहाँ मुनियोंको साथ ले मैंने आदर और प्रसन्नताके साथ वह सब कार्य सम्पन्न किया। महामुने! उस समय कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, भागुरि, गुरु, कण्व, बृहस्पति, शक्ति, जमदग्नि, पराशर, मार्कण्डेय, शिलापाक, अरुणपाल, अकृतश्रम, अगस्त्य, च्यवन, गर्ग, शिलाद, दधीचि, उपमन्यु, भरद्वाज, अकृतव्रण, पिप्पलाद, कुशिक, कौत्स तथा शिष्यों-सहित व्यास—ये और दूसरे बहुत-से ऋषि जो भगवान् शिवके समीप आये थे, मेरी प्रेरणासे विधिपूर्वक वहाँ आभ्युदयिक कर्म कराने लगे। वे सब-के-सब वेदोंके पारंगत विद्वान् थे। अतः वेदोक्त विधिसे वैवाहिक मङ्गलाचार करके ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके विविध उत्तम सूक्तोंद्वारा महेश्वरकी रक्षा करने लगे। उन सब ऋषियोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ बहुत-से मङ्गलकार्य कराये। मेरी और शम्भुकी प्रेरणासे उन्होंने विघ्नोंकी शान्तिके लिये प्रीतिपूर्वक ग्रहोंका और समस्त मण्डलवर्ती देवताओंका पूजन किया। वह सब लौकिक, वैदिक कर्म यथोचित रीतिसे करके भगवान् शिव बहुत संतुष्ट हुए और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। तदनन्तर वे सर्वेश्वर महादेव देवताओं और ब्राह्मणोंको आगे करके उस गिरिश्रेष्ठ कैलाससे हर्षपूर्वक निकले। कैलाससे बाहर जाकर देवताओं और ब्राह्मणोंके साथ भगवान् शम्भु, जो नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले हैं, सानन्द खड़े हो गये। उस समय वहाँ महेश्वरके संतोषके लिये देवता आदिने मिलकर बहुत बड़ा उत्सव मनाया। बाजे बजे तथा गान और नृत्य हुए।

(अध्याय ३९)

☆

भगवान् शिवका बारात लेकर हिमालयपुरीकी ओर प्रस्थान

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर भगवान् शम्भुने नन्दी आदि सब गणोंको अपने साथ हिमाचलपुरीको चलनेकी प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा देते हुए कहा—'तुमलोग थोड़े-से गणोंको यहाँ रखकर शेष सभी लोग मेरे साथ बड़े उत्साह और आनन्दसे युक्त हो गिरिराज हिमवान्के नगरको चलो।' फिर तो भगवान्की आज्ञा पाकर गणेश्वर शङ्खकर्ण, केकराक्ष, विकृत, विशाख, पारिजात, विकृतानन, दुन्दुभ, कपाल, संदारक, कन्दुक, कुण्डक, विष्टम्भ, पिप्पल, सनादक, आवेशन, कुण्ड, पर्वतक, चन्द्रतापन, काल, कालक, महाकाल, अग्निक, अग्निमुख, आदित्यमूर्द्धा, घनावह,

संनाद, कुमुद, अमोघ, कोकिल, सुमन्त्र, काकपादोदर, संतानक, मधुपिङ्ग, कोकिल, पूर्णभद्र, नील, चतुर्वक्त्र, करण, अहिरोमक, यज्ञवाक्ष, शतमन्यु, मेघमन्यु, काष्ठागूढ, विरूपाक्ष, सुकेश, वृषभ, सनातन, तालकेतु, षण्मुख, चैत्र, स्वयम्प्रभु, लकुलीश, लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, भृङ्गिरिटि, देवदेवप्रिय, अशनि, भानुक, प्रमथ तथा वीरभद्र अपने असंख्य कोटि-कोटि गणों तथा भूतोंको साथ लेकर चले। नन्दी आदि गणराज असंख्य गणोंसे घिरे चले तथा क्षेत्रपाल और भैरव भी कोटि-कोटि गणोंको लेकर उत्सव मनाते हुए प्रेम और उत्साहके साथ चल पड़े। वे सब सहस्र हाथोंसे युक्त थे। सिरपर जटाका मुकुट धारण किये हुए थे। उन सबके मस्तकपर चन्द्रमा और गलेमें नील चिह्न थे तथा वे सब-के-सब त्रिनेत्रधारी थे। उन सबने रुद्राक्षके आभूषण पहन रखे थे। सभी उत्तम भस्म धारण किये थे और हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुट आदिसे अलंकृत थे। इस प्रकार देवताओं तथा दूसरे-दूसरे गणोंको साथ ले भगवान् शंकर अपने विवाहके लिये हिमवान्‌के नगरकी ओर चले। चण्डीदेवी रुद्रदेवकी बहिन बनकर खूब उत्सव मनाती हुई बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आ पहुँचीं। वे शत्रुओंको अत्यन्त भय देनेवाली थीं। उन्होंने साँपोंके आभूषणसे अपनेको विभूषित कर रखा था। उनका वाहन प्रेत था। वे उसीपर आरूढ़ हो अपने माथेपर एक सोनेका भरा हुआ कलश लिये चल रही थीं। वह कलश महान् प्रभापुञ्जसे प्रकाशित हो रहा था।

मुने! वहाँ करोड़ों दिव्य भूतगण शोभा पाते थे, जिनका रूप विकराल था। उनके रूप-रंग भी अनेक प्रकारके थे। उस समय डमरुओंके डिम-डिम घोषसे, भेरियोंकी गड़गड़ाहटसे और शङ्खोंके गम्भीर नादसे तीनों लोक गूँज उठे थे। दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे महान् कोलाहल हो रहा था। वह जगत्‌का मङ्गल करता हुआ अमङ्गलका नाश करता था। देवता लोग शिवगणोंके पीछे होकर बड़ी उत्सुकताके साथ बारातका अनुसरण करते थे। सम्पूर्ण सिद्ध और लोकपाल आदि भी देवताओंके साथ थे। देवमण्डलीके मध्यभागमें गरुड़के आसनपर बैठकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु चल रहे थे। मुने! उनके ऊपर महान् छत्र तना हुआ था, जो उनकी शोभा बढ़ाता था। उनपर चँवर डुलाये जा रहे थे और वे अपने गणोंसे घिरे हुए थे। उनके शोभाशाली पार्षदोंने उन्हें अपने ढंगसे आभूषण आदिके द्वारा विभूषित किया था। इसी प्रकार मैं भी मूर्तिमान् वेदों, शास्त्रों, पुराणों, आगमों, सनकादि महासिद्धों, प्रजापतियों, पुत्रों तथा अन्यान्य परिजनोंके साथ मार्गमें चलता हुआ बड़ी शोभा पा रहा था और शिवकी सेवामें तत्पर था। देवराज इन्द्र भी नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो ऐरावत हाथीपर आरूढ़ होकर अपने सेनाके बीचसे चलते हुए अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। उस समय बारातके साथ यात्रा करते हुए बहुतसे ऋषि भी अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। वे शिवजीका विवाह देखनेके लिये बहुत उत्कण्ठित थे। शाकिनी, यातुधान, बेताल, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, प्रमथ आदि गण; तुम्बुरु, नारद, हाहा और हूहू आदि श्रेष्ठ गन्धर्व तथा किंनर भी बड़े हर्षसे भरकर

बाजा बजाते हुए चले। सम्पूर्ण जगन्माताएँ, सारी देवकन्याएँ, गायत्री, सावित्री, लक्ष्मी और अन्य देवाङ्गनाएँ—ये तथा दूसरी देवपत्नियाँ जो सम्पूर्ण जगत्‌की माताएँ हैं, शंकरजीका विवाह है, यह सोचकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उसमें सम्मिलित होनेके लिये गयीं। वेदों, शास्त्रों, सिद्धों और महर्षियोंद्वारा जो साक्षात् धर्मका स्वरूप कहा गया है तथा जिसकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है, वह सर्वाङ्ग-सुन्दर वृषभ भगवान् शिवका वाहन है। धर्मवत्सल महादेवजी उस वृषभपर आरूढ़ हो सबके साथ यात्रा करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे। देवर्षियोंके समुदाय उनकी सेवामें उपस्थित थे। इन सब देवताओं और महर्षियोंके एकत्र हुए समुदायसे महेश्वरकी बड़ी शोभा हो रही थी। उनका बहुत शृङ्गार किया गया था। वे शिवाका पाणिग्रहण करनेके लिये हिमालयके भवनको जा रहे थे। नारद! इस प्रकार बारातकी यात्रा-सम्बन्धी उत्तम उत्सवसे युक्त शम्भुका चरित्र कहा गया। अब हिमालयनगरमें जो सुन्दर वृत्तान्त घटित हुआ, उसे सुनो।

(अध्याय ४०)

☆

हिमवान्‌द्वारा शिवकी बारातकी अगवानी तथा सबका अभिनन्दन एवं वन्दन, मेनाका नारदजीको बुलाकर उनसे बरातियोंका परिचय पाना तथा शिव और उनके गणोंको देखकर भयसे मूर्च्छित होना

ब्रह्माजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् शिवने नारदजीको हिमाचलके घर भेजा। वे वहाँकी विलक्षण सजावट देखकर दंग रह गये। विश्वकर्माने जो विष्णु, ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं तथा नारद आदि ऋषियोंकी चेतन-सी प्रतीत होनेवाली मूर्तियाँ बनायी थीं, उन्हें देखकर देवर्षि नारद चकित हो उठे। तत्पश्चात् हिमाचलने देवर्षिको बारात बुला लानेके लिये भेजा। साथ ही उस बारातकी अगवानीके लिये मैनाक आदि पर्वत भी गये। तदनन्तर विष्णु आदि देवताओं तथा आनन्दित हुए अपने गणोंके साथ भगवान् शिव हिमालयनगरके समीप सानन्द आ पहुँचे।

गिरिराज हिमवान्‌ने जब यह सुना कि सर्वव्यापी शंकर मेरे नगरके निकट आ पहुँचे हैं, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। तदनन्तर उन्होंने बहुत-सा सामान एकत्र करके पर्वतों और ब्राह्मणोंको महादेवजीके साथ वार्तालाप करनेके लिये भेजा। स्वयं भी बड़ी भक्तिके साथ वे प्राणप्यारे महेश्वरका दर्शन करनेके लिये गये। उस समय उनका हृदय अधिक प्रेमके कारण द्रवित हो रहा था और वे प्रसन्नतापूर्वक अपने सौभाग्यकी सराहना करते थे। उस समय समस्त देवताओंकी सेनाको उपस्थित देख हिमवान्‌को बड़ा विस्मय हुआ और वे अपनेको धन्य मानते हुए उनके सामने गये। देवता और पर्वत एक-दूसरेसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और अपने-आपको कृतकृत्य मानने लगे। महादेवजीको सामने देखकर हिमालयने उन्हें प्रणाम किया। साथ ही समस्त पर्वतों और ब्राह्मणोंने भी सदाशिवकी वन्दना की। वे वृषभपर

आरूढ़ थे। उनके मुखपर प्रसन्नता छा रही थी। वे नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थे और अपने दिव्य अङ्गोंके लावण्यसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। उनका श्रीअङ्ग अत्यन्त महीन, नूतन और सुन्दर रेशमी वस्त्रसे सुशोभित था। उनके मस्तकका मुकुट उत्तम रत्नोंसे जटित होनेके कारण बड़ी शोभा पा रहा था। वे अपनी पावन प्रभाका प्रसार करते हुए हँस रहे थे। उनका प्रत्येक अङ्ग भूषण बने हुए सर्पोंसे युक्त था तथा उनकी अङ्गकान्ति बड़ी अद्भुत दिखायी देती थी। दिव्य कान्तिसे सम्पन्न उन महेश्वरकी सुरेश्वरगण हाथमें चँवर लिये सेवा कर रहे थे। उनके बायें भागमें भगवान् विष्णु थे और दाहिने भागमें मैं था। पीछे देवराज इन्द्र थे और अन्य देवता आदि भी पीछे तथा अगल-बगलमें विद्यमान थे। नाना प्रकारके देवता आदि उन लोक-कल्याणकारी भगवान् शंकरकी स्तुति करते जाते थे। उन्होंने स्वेच्छासे ही दिव्य शरीर धारण कर रखा था। वास्तवमें वे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा, सबके ईश्वर, उपासकोंको मनोवाञ्छित वर देनेवाले, कल्याणमय गुणोंसे युक्त, प्राकृत गुणोंसे रहित, भक्तोंके अधीन रहनेवाले, सबपर कृपा करनेवाले, प्रकृति और पुरुषसे भी विलक्षण तथा सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। उनके दर्शनके पश्चात् हिमवान्‌ने भगवान् शिवके वामभागमें अच्युत श्रीहरिका दर्शन किया, जो नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो विनतानन्दन गरुड़की पीठपर विराजमान थे। मुने! भगवान्‌के दाहिने भागमें उन्होंने चार मुखोंसे युक्त, महाशोभाशाली तथा अपने परिवारसे संयुक्त मुझ ब्रह्माको देखा। भगवान् शिवके सदा ही अत्यन्त प्रिय इन दोनों देवेश्वरोंका दर्शन करके परिवारसहित गिरिराजने आदरपूर्वक प्रणाम किया।

इसी प्रकार भगवान् शिवके पीछे तथा अगल-बगलमें खड़े हुए दीप्तिमान् देवता आदिको भी देखकर गिरिराजने उन सबके सामने मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् शिवकी आज्ञासे आगे होकर हिमवान् अपने नगरको गये। उनके साथ महादेवजी, भगवान् विष्णु तथा स्वयम्भू ब्रह्मा भी मुनियों और देवताओंसहित शीघ्रतापूर्वक चलने लगे। मुने! उस अवसरपर मेनाके मनमें भगवान् शिवके दर्शनकी इच्छा हुई। इसलिये उन्होंने तुमको बुलवाया। उस समय भगवान् शिवसे प्रेरित होकर उनका हार्दिक अभिप्राय पूर्ण करनेकी इच्छासे तुम वहाँ गये।

मेना तुम्हें प्रणाम करके बोलीं—मुने! गिरिजाके होनेवाले पतिको पहले मैं देखूँगी। शिवका कैसा रूप है, जिनके लिये मेरी बेटीने ऐसी उत्कृष्ट तपस्या की है।

तात! उस समय भगवान् शिव भी मेनाके भीतरके अहंकारको जानकर श्रीविष्णु और मुझसे अद्भुत लीला करते हुए बोले।

शिवने कहा—तात! आप दोनों मेरी आज्ञासे देवताओंसहित अलग-अलग होकर गिरिराजके द्वारपर चलिये। हम पीछेसे आयेंगे।

यह सुनकर भगवान् श्रीहरिने सब देवताओंको बुलाकर वैसा करनेके लिये कहा। शिवके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाले समस्त देवताओंने शीघ्र वैसी ही व्यवस्था करके उत्सुकतापूर्वक वहाँसे पृथक्-पृथक् यात्रा की। मुने! मेना अपने मकानके

सबसे ऊपरी भवनमें तुम्हारे साथ खड़ी थीं। उस समय भगवान् विश्वेश्वरने अपनेको ऐसी वेष-भूषामें दिखाया, जिससे मेनाके हृदयको ठेस पहुँचे। सबसे पहले बारातके जुलूसमें विविध वाहनोंपर विराजित खूब सजे-धजे बाजे-गाजेके साथ पताकाएँ फहराते हुए वसु आदि गन्धर्व आये; फिर मणिग्रीवादि यक्ष, तदनन्तर क्रमसे यमराज, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, देवराज इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, भृगु आदि मुनीश्वर तथा ब्रह्मा आये। ये सब उत्तरोत्तर एक-से-एक विशेष सुन्दर शोभामय रूप-गुणसे सम्पन्न थे। इनमेंसे प्रत्येक दलके स्वामीको देखकर मेना पूछती थीं कि 'क्या ये ही शिव हैं ?' नारदजी कहते—'यह तो शिवके सेवक हैं।' मेना यह सुनकर बड़ी प्रसन्न होतीं और हर्षमें भरकर मन-ही-मन कहतीं—ये उनके सेवक ही जब इतने सुन्दर हैं, तब ये सबके स्वामी शिव तो पता नहीं कितने सुन्दर होंगे।

इसी बीचमें वहाँ भगवान् विष्णु पधारे। वे सम्पूर्ण शोभासे सम्पन्न श्रीमान्, नूतन जलधरके समान श्याम तथा चार भुजाओंसे संयुक्त थे। उनका लावण्य करोड़ों कंदर्पोंको लज्जित कर रहा था। वे पीताम्बर धारण करके अपनी सहज प्रभासे प्रकाशित हो रहे थे। उनके सुन्दर नेत्र प्रफुल्ल कमलकी शोभाको छीने लेते थे। उनकी आकृतिसे शान्ति बरस रही थी। पक्षिराज गरुड़ उनके वाहन थे। शङ्ख, चक्र आदि लक्षणोंसे युक्त मुकुट आदिसे विभूषित, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न धारण किये वे लक्ष्मीपति विष्णु अपने अप्रमेय प्रभापुञ्जसे प्रकाशमान थे। उन्हें देखते ही मेनाके नेत्र चकित हो गये। वे बड़े हर्षसे बोलीं—'अवश्य ये ही मेरी शिवाके पति साक्षात् भगवान् शिव हैं इसमें संशय नहीं है।'

मुने ! तुम भी लीला करनेवाले ही ठहरे। अतः मेनाकी यह बात सुनकर उनसे बोले— 'देवि ! ये शिवाके पति नहीं हैं, अपितु भगवान् केशव हरि हैं। भगवान् शंकरके सम्पूर्ण कार्योंके अधिकारी तथा उनके प्रिय हैं। पार्वतीके पति जो दूल्हा शिव हैं, उन्हें इनसे भी बढ़कर समझना चाहिये। उनकी शोभाका वर्णन मुझसे नहीं हो सकता। वे ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके अधिपति, सर्वेश्वर तथा स्वयम्प्रकाश परमात्मा हैं।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तुम्हारी इस बातको सुनकर मेनाने उन शुभलक्षणा उमाको महान् धन-वैभवसे सम्पन्न, सौभाग्यवती तथा तीनों कुलोंके लिये सुखदायिनी माना। वे मुखपर प्रसन्नता लाकर प्रीतियुक्त हृदयसे अपने सर्वाधिक सौभाग्यका बारंबार वर्णन करती हुई बोलीं।

मेनाने कहा—इस समय मैं पार्वतीको जन्म देनेके कारण सर्वथा धन्य हो गयी। ये गिरीश्वर भी धन्य हैं तथा मेरा सब कुछ परम धन्य हो गया। जिन-जिन अत्यन्त तेजस्वी देवताओं और देवेश्वरोंका मैंने दर्शन किया है, इन सबके जो पति हैं, वे मेरी पुत्रीके पति होंगे। उसके सौभाग्यका क्या वर्णन किया जाय ? भगवान् शिवको पतिरूपमें पानेके कारण पार्वतीके सौभाग्यका सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेनाने प्रेमपूर्ण हृदयसे ज्यों ही उपर्युक्त बात कही,

त्यों ही अद्भुत लीला करनेवाले भगवान् रुद्र सामने आ गये। तात! उनके सभी गण अद्भुत तथा मेनाके अहंकारको चूर्ण करनेवाले थे। भगवान् शिव अपने-आपको मायासे निर्लिप्त एवं निर्विकार दिखाते हुए वहाँ आये। मुने! उन्हें आया जान तुमने मेनाको शिवाके पतिका दर्शन कराते हुए उनसे इस प्रकार कहा—'सुन्दरि! देखो, ये साक्षात् भगवान् शंकर हैं, जिनकी प्राप्तिके लिये शिवाने वनमें बड़ी भारी तपस्या की थी।'

तुम्हारे ऐसा कहनेपर मेनाने बड़ी प्रसन्नताके साथ अद्भुत आकारवाले भगवान् महेश्वरकी ओर देखा। वे स्वयं तो अद्भुत थे ही, उनके अनुचर भी बड़े अद्भुत थे। इतनेमें ही रुद्रदेवकी परम अद्भुत सेना भी आ पहुँची, जो भूत-प्रेत आदिसे संयुक्त तथा नाना गणोंसे सम्पन्न थी। उनमेंसे कितने ही बवंडरका रूप धारण करके आये थे। कितने ही पताकाकी मर्मरध्वनिके समान शब्द करते थे। किन्हींके मुँह टेढ़े थे तो कोई अत्यन्त कुरूप दिखायी देते थे। कुछ बड़े विकराल थे। किन्हींका मुँह दाढ़ी-मूँछसे भरा हुआ था। कोई लँगड़े थे तो कोई अंधे। कोई दण्ड और पाश धारण किये हुए थे तो किन्हींके हाथोंमें मुद्गर थे। कितने ही अपने वाहनोंको उलटे चला रहे थे। कोई सींग, कोई डमरू और कोई गोमुख बजाते थे, गणोंमेंसे कितनेके तो मुँह ही नहीं थे। कितनोंके मुख पीठकी ओर लगे थे और बहुतोंके बहुतेरे मुख थे। इसी तरह कोई बिना हाथके थे। किन्हींके हाथ उलटे लग रहे थे और कितनोंके बहुत-से हाथ थे। कितने ही नेत्रहीन थे, किन्हींके बहुत-से नेत्र थे। किन्हींके सिर ही नहीं थे और किन्हींके बहुत खराब सिर थे, किन्हींके कान ही नहीं थे और किन्हींके बहुत-से कान थे। इस तरह सभी गण नाना प्रकारकी वेश-भूषा धारण किये हुए थे। तात! वे विकृत आकारवाले अनेक प्रबल गण बड़े वीर और भयंकर थे। उनकी कोई संख्या नहीं थी। मुने! तुमने अँगुलीद्वारा रुद्रगणोंको दिखाते हुए मेनासे कहा—'वरानने! तुम पहले भगवान् हरके सेवकोंको देखो, फिर उनका भी दर्शन करना।' उन असंख्य भूत-प्रेत आदि गणोंको देखकर मेना तत्काल भयसे व्याकुल हो गयीं। उन्हींके बीचमें भगवान् शंकर भी थे, जो निर्गुण होते हुए भी परम गुणवान् थे। वे वृषभपर सवार थे। उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र। उनके सारे अङ्गोंमें विभूति लगी हुई थी, जो उनके लिये भूषणका काम देती थी। मस्तकपर जटाजूट और चन्द्रमाका मुकुट, दस हाथ और उनमेंसे एकमें कपाल लिये, शरीरपर बाघंबरका दुपट्टा और हाथमें पिनाक एवं त्रिशूल, आँखें भयानक, आकृति विकराल और हाथीकी खालका वस्त्र! यह सब देखकर शिवाकी माता बहुत डर गयीं, चकित हो गयीं, व्याकुल होकर काँपने लगीं और उनकी बुद्धि चकरा गयी। उस अवस्थामें तुमने अँगुलीसे दिखाते हुए उनसे कहा—'ये ही हैं भगवान् शिव।' तुम्हारी यह बात सुनकर सती मेना दुःखसे

भर गयीं और हवाके झोंके खाकर गिरी हुई लताके समान तुरंत भूमिपर गिर पड़ीं। 'यह कैसा विकृत दृश्य है ? मैं दुराग्रहमें पड़कर ठगी गयी।' यों कहकर मेना उसी क्षण मूर्च्छित हो गयीं। तदनन्तर सखियोंने जब नाना प्रकारके उपाय करके उनकी समुचित सेवा की, तब गिरिराजप्रिया मेना धीरे-धीरे होशमें आयीं। (अध्याय ४१—४३)

☆

मेनाका विलाप, शिवके साथ कन्याका विवाह न करनेका हठ, देवताओं तथा श्रीविष्णुका उन्हें समझाना तथा उनका सुन्दर रूप धारण करनेपर ही शिवको कन्या देनेका विचार प्रकट करना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! जब हिमाचलप्रिया सती मेनाको चेत हुआ, तब वे अत्यन्त क्षुब्ध होकर विलाप एवं तिरस्कार करने लगीं। पहले तो उन्होंने अपने पुत्रोंकी निन्दा की, इसके बाद वे तुम्हें और अपनी पुत्रीको दुर्वचन सुनाने लगीं।

मेना बोलीं—मुने ! पहले तो तुमने यह कहा कि 'शिवा शिवका वरण करेगी', पीछे मेरे पति हिमवान्‌का कर्तव्य बताकर उन्हें आराधना-पूजामें लगाया। परंतु इसका यथार्थ फल क्या देखा गया ? विपरीत एवं अनर्थकारी ! दुर्बुद्धि देवर्षे ! तुमने मुझ अधम नारीको सब तरहसे ठग लिया। फिर मेरी बेटीने ऐसा तप किया, जो मुनियोंके लिये भी दुष्कर है; उसकी उस तपस्याका यह फल मिला, जो देखनेवालोंको भी दुःखमें डालता है। हाय ! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन मेरे दुःखको दूर करेगा ? मेरा कुल आदि नष्ट हो गया, मेरे जीवनका भी नाश हो गया। कहाँ गये वे दिव्य ऋषि ? पाऊँ तो मैं उनकी दाढ़ी-मूँछ नोच लूँ। वसिष्ठकी वह तपस्विनी पत्नी भी बड़ी धूर्ता है, वह स्वयं इस विवाहके लिये अगुआ बनकर आयी थी। न जाने किन-किनके अपराधसे इस समय मेरा सब कुछ लुट गया।

ऐसा कहकर मेना अपनी पुत्री शिवाकी ओर देखकर उन्हें कटुवचन सुनाने लगीं—'अरी दुष्ट लड़की ! तूने यह कौन-सा कर्म किया, जो मेरे लिये दुःखदायक सिद्ध हुआ ? तुझ दुष्टाने स्वयं ही सोना देकर काँच खरीदा है, चन्दन छोड़कर अपने अङ्गोंमें कीचड़का ढेर पोत लिया ! हाय ! हाय ! हंसको उड़ाकर तूने पिंजड़ेमें कौआ पाल लिया। गङ्गाजलको दूर फेंककर कुएँका जल पीया। प्रकाश पानेकी इच्छासे सूर्यको छोड़कर यत्नपूर्वक जुगनूको पकड़ा। चावल छोड़कर भूसी खा ली। घी फेंककर मोमके तेलका आदरपूर्वक भोग लगाया। सिंहका आश्रय छोड़कर सियारका सेवन किया। ब्रह्मविद्या छोड़कर कुत्सित गाथाका श्रवण किया। बेटी ! तूने घरमें रखी हुई यज्ञकी मङ्गलमयी विभूतिको दूर हटाकर चिताकी अमङ्गलमयी राख अपने पल्ले बाँध ली; क्योंकि समस्त श्रेष्ठ देवताओं और विष्णु आदि परमेश्वरोंको छोड़कर अपनी कुबुद्धिके कारण शिवको पानेके लिये ऐसा तप किया ? तुझको, तेरी बुद्धिको, तेरे रूपको और तेरे चरित्रको भी बारंबार धिक्कार है। तुझे तपस्याका उपदेश देनेवाले नारदको तथा तेरी सहायता करनेवाली दोनों सखियोंको

भी धिक्कार है। बेटी! हम दोनों माता-पिताको भी धिक्कार है, जिन्होंने तुझे जन्म

दिया। नारद! तुम्हारी बुद्धिको भी धिक्कार है। सुबुद्धि देनेवाले उन सप्तर्षियोंको भी धिक्कार है। तुम्हारे कुलको धिक्कार है। तुम्हारी क्रिया-दक्षताको भी धिक्कार है तथा तुमने जो कुछ किया, उस सबको धिक्कार है। तुमने तो मेरा घर ही जला दिया। यह तो मेरा मरण ही है। ये पर्वतोंके राजा आज मेरे निकट न आयें। सप्तर्षि लोग स्वयं मुझे अपना मुँह न दिखावें। इन सबने मिलकर क्या साधा? मेरे कुलका नाश करा दिया। हाय! मैं बाँझ क्यों नहीं हो गयी? मेरा गर्भ क्यों नहीं गल गया? मैं अथवा मेरी पुत्री ही क्यों नहीं मर गयी? अथवा राक्षस आदिने भी आकाशमें ले जाकर इसे क्यों नहीं खा डाला? पार्वती! आज मैं तेरा सिर काट डालूँगी, परंतु ये शरीरके टुकड़े लेकर क्या करूँगी? हाय! हाय! तुझे छोड़कर कहाँ चली जाऊँ? मेरा तो जीवन ही नष्ट हो गया!'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! यह कहकर मेना मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं। शोक-रोष आदिसे व्याकुल होनेके कारण वे पतिके समीप नहीं गयीं। देवर्षे! उस समय सब देवता क्रमशः उनके निकट गये। सबसे पहले मैं पहुँचा। मुनिश्रेष्ठ! मुझे देखकर तुम स्वयं मेनासे बोले।

नारदने कहा—पतिव्रते! तुम्हें पता नहीं है, वास्तवमें भगवान् शिवका रूप बड़ा सुन्दर है। उन्होंने लीलासे ऐसा रूप धारण कर लिया है, यह उनका यथार्थ रूप नहीं है। इसलिये तुम क्रोध छोड़कर स्वस्थ हो जाओ। हठ छोड़कर विवाहका कार्य करो और अपनी शिवाका हाथ शिवके हाथोंमें दे दो। तुम्हारी यह बात सुनकर मेना तुमसे बोलीं—'उठो, यहाँसे दूर चले जाओ। तुम दुष्टों और अधमोंके शिरोमणि हो।' मेनाके ऐसा कहनेपर मेरे साथ इन्द्र आदि सब देवता एवं दिक्पाल क्रमशः आकर यों बोले—'पितरोंकी कन्या मेने! तुम हमारे वचनोंको प्रसन्नतापूर्वक सुनो। ये शिव निश्चय ही सबसे उत्कृष्ट देवता हैं और सबको उत्तम सुख देनेवाले हैं। आपकी पुत्रीके अत्यन्त दुस्सह तपको देखकर इन भक्तवत्सल प्रभुने कृपापूर्वक उन्हें दर्शन और श्रेष्ठ वर दिया था।'

यह सुनकर मेनाने देवताओंसे बारंबार अत्यन्त विलाप करके कहा—'शिवका रूप बड़ा भयंकर है, मैं उन्हें अपनी पुत्री नहीं दूँगी। आप सब देवता प्रपञ्च करके क्यों मेरी इस कन्याके उत्कृष्ट रूपको व्यर्थ करनेके लिये उद्यत हैं?'

मुनीश्वर! उनके ऐसा कहनेपर वसिष्ठ आदि सप्तर्षियोंने वहाँ आकर यह बात कही—'पितरोंकी कन्या तथा गिरिराजकी रानी मेने! हमलोग तुम्हारा कार्य सिद्ध करनेके लिये आये हैं। जो कार्य सर्वथा उचित और उपयोगी है, उसे तुम्हारे हठके कारण हम विपरीत कैसे मान लें? भगवान् शंकरका दर्शन सबसे बड़ा लाभ है। वे दानपात्र होकर स्वयं तुम्हारे घर पधारे हैं।'

उनके ऐसा कहनेपर भी ज्ञानदुर्बला मेनाने उनकी बात मिथ्या कर दी और रुष्ट होकर उनसे कहा—'मैं शस्त्र आदिसे अपनी बेटीके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगी, परंतु उसे शंकरके हाथमें नहीं दूँगी, तुम सब लोग दूर हट जाओ, किसीको मेरे पास नहीं आना चाहिये।'

ऐसा कह अत्यन्त विह्वल हो विलाप करके मेना चुप हो गयीं। मुने! वहाँ उनके इस बर्तावसे हाहाकार मच गया। तब हिमालय अत्यन्त व्याकुल हो वहाँ आये और मेनाको समझानेके लिये प्रेमपूर्वक तत्त्व दर्शाते हुए बोले।

हिमालयने कहा—प्रिये मेने! मेरी बात सुनो, तुम इतनी व्याकुल क्यों हो गयी? देखो तो, कौन-कौन-से महात्मा तुम्हारे घर पधारे हैं। तुम इनकी निन्दा क्यों करती हो? भगवान् शंकरको तुम भी जानती हो, किंतु नाना नामरूपवाले शम्भुके विकट रूपको देखकर घबरा गयी हो। मैं शंकरजीको भलीभाँति जानता हूँ। वे ही सबके प्रतिपालक हैं, पूजनीयोंके भी पूजनीय हैं तथा अनुग्रह एवं निग्रह करनेवाले हैं। निष्पाप प्राणप्रिये! हठ न करो, मानसिक दुःख छोड़ो। सुव्रते! शीघ्र उठो और सब कार्य करो। पहली बार विकट-रूपधारी शम्भुने मेरे द्वारपर आकर जो नाना प्रकारकी लीलाएँ की थीं, मैं उनका आज तुम्हें स्मरण दिला रहा हूँ। उनके उस परम माहात्म्यको देख और समझकर उस समय मैंने और तुमने उन्हें कन्या देना स्वीकार किया था। प्रिये! अपनी उस बातको प्रमाण मानकर सार्थक करो।

इस बातको सुनकर शिवाकी माता मेना हिमालयसे बोलीं—नाथ! मेरी बात सुनिये और सुनकर आपको वैसा ही करना चाहिये। आप अपनी पुत्री पार्वतीके गलेमें रस्सी बाँधकर इसे बेखटके पर्वतसे नीचे गिरा दीजिये, परंतु मैं इसे हरके हाथमें नहीं दूँगी। अथवा नाथ! अपनी इस बेटीको ले जाकर निर्दयतापूर्वक समुद्रमें डुबा दीजिये। गिरिराज! ऐसा करके आप पूर्ण सुखी हो जाइये। स्वामिन्! यदि विकटरूपधारी

रुद्रको आप पुत्री दे देंगी तो मैं निश्चय ही अपना शरीर त्याग दूँगी।

मेनाने जब हठपूर्वक ऐसी बात कही, तब पार्वती स्वयं आकर यह रमणीय वचन बोलीं—'माँ! तुम्हारी बुद्धि तो बड़ी शुभकारक है। इस समय विपरीत कैसे हो गयी? धर्मका अवलम्बन करनेवाली होकर भी तुम धर्मको कैसे छोड़ रही हो? ये रुद्रदेव सबकी उत्पत्तिके कारणभूत साक्षात् ईश्वर हैं, इनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। समस्त श्रुतियोंमें यह वर्णन है कि भगवान् शम्भु सुन्दर रूपवाले तथा सुखद हैं। कल्याणकारी महेश्वर समस्त देवताओंके स्वामी तथा स्वयंप्रकाश हैं। इनके नाम और रूप अनेक हैं। माताजी! श्रीविष्णु और ब्रह्मा आदि भी इनकी सेवा करते हैं। ये सबके अधिष्ठान हैं, कर्ता, हर्ता और स्वामी हैं। विकारोंकी इनतक पहुँच नहीं है। ये तीनों देवताओंके स्वामी, अविनाशी एवं सनातन हैं। इनके लिये ही सब देवता किंकर होकर तुम्हारे द्वारपर पधारे हैं और उत्सव मना रहे हैं। इससे बढ़कर सुखकी बात और क्या हो सकती है। अतः यत्नपूर्वक उठो और जीवन सफल करो। मुझे शिवके हाथमें सौंप दो और अपने गृहस्थाश्रमको सार्थक करो। माँ! मुझे परमेश्वर शंकरकी सेवामें दे दो। मैं स्वयं तुमसे यह बात कहती हूँ। तुम मेरी इतनी-सी ही विनती मान लो। यदि तुम इनके हाथमें मुझे नहीं दोगी तो मैं दूसरे किसी वरका वरण नहीं करूँगी; क्योंकि जो सिंहका भाग है, उसे दूसरोंको ठगनेवाला सियार कैसे पा सकता है? माँ! मैंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा स्वयं हरका वरण किया है, हरका ही वरण किया है। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वह करो।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! पार्वतीकी यह बात सुनकर शैलेश्वरप्रिया मेना बहुत ही उत्तेजित हो गयीं और पार्वतीको डाँटती हुई दुर्वचन कहकर रोने तथा विलाप करने लगीं। तदनन्तर स्वयं मैंने तथा सनकादि सिद्धोंने भी मेनाको बहुत समझाया। परंतु वे किसीकी बात न मानकर सबको डाँटती रहीं। इसी बीचमें उनके सुदृढ़ एवं महान् हठकी बात सुनकर शिवप्रिय भगवान् विष्णु भी तुरंत वहाँ आ पहुँचे और इस प्रकार बोले।

श्रीविष्णुने कहा—देवि! तुम पितरोंकी मानसी पुत्री एवं उन्हें बहुत ही प्यारी हो; साथ ही गिरिराज हिमालयकी गुणवती पत्नी हो। इस प्रकार तुम्हारा सम्बन्ध साक्षात् ब्रह्माजीके उत्तम कुलसे है। संसारमें तुम्हारे सहायक भी ऐसे ही हैं। तुम धन्य हो। मैं तुमसे क्या कहूँ? तुम तो धर्मकी आधारभूता हो, फिर धर्मका त्याग कैसे करती हो? तुम्हीं अच्छी तरह सोचो तो सही। सम्पूर्ण देवता, ऋषि, ब्रह्माजी और मैं— सभी लोग विपरीत बात ही क्यों कहेंगे? तुम शिवको नहीं जानती। वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी हैं। कुरूप भी हैं और सुरूप भी। सबके सेव्य तथा सत्पुरुषोंके आश्रय हैं। उन्होंने मूलप्रकृतिरूपा देवी ईश्वरीका निर्माण किया और उसके बगलमें पुरुषोत्तमका निर्माण करके बिठाया। उन्हीं दोनोंसे सगुण-रूपमें मेरी तथा ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। फिर लोकोंका हित करनेके लिये वे स्वयं भी रुद्र-रूपसे प्रकट हुए। तदनन्तर वेद, देवता तथा स्थावर-जंगमरूपसे जो कुछ दिखायी देता है, वह सारा जगत् भी भगवान् शंकरसे ही

उत्पन्न हुआ। उनके रूपका ठीक-ठीक वर्णन अबतक कौन कर सका है ? अथवा कौन उनके रूपको जानता है ? मैंने और ब्रह्माजीने भी जिनका अन्त नहीं पाया, उनका पार दूसरा कौन पा सकता है ? ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त जो कुछ जगत् दिखायी देता है, वह सब शिवका ही रूप है—ऐसा जानो। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। वे ही अपनी लीलासे ऐसे रूपमें अवतीर्ण हुए हैं और शिवाके तपके प्रभावसे तुम्हारे द्वारपर आये हैं। अतः हिमाचलकी पत्नी ! तुम दुःख छोड़ो और शिवका भजन करो। इससे तुम्हें महान् आनन्द प्राप्त होगा और तुम्हारा सारा क्लेश मिट जायगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! श्रीविष्णुके द्वारा इस प्रकार समझायी जानेपर मेनाका मन कुछ कोमल हुआ। परंतु शिवको कन्या न देनेका हठ उन्होंने तब भी नहीं छोड़ा। शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण ही उन्होंने ऐसा दुराग्रह किया था। उस समय मेनाने शिवके महत्त्वको स्वीकार कर लिया। कुछ ज्ञान हो जानेपर उन्होंने श्रीहरिसे कहा—'यदि भगवान् शिव सुन्दर शरीर धारण कर लें, तब मैं उन्हें अपनी पुत्री दे सकती हूँ; अन्यथा कोटि उपाय करनेपर भी नहीं दूँगी। यह बात मैं सचाई और दृढ़ताके साथ कह रही हूँ।'

ऐसा कहकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाली मेना शिवकी इच्छासे प्रेरित हो चुप हो गयीं। धन्य है शिवकी माया, जो सबको मोहमें डाल देती है ! (अध्याय ४४)

☆

भगवान् शिवका अपने परम सुन्दर दिव्य रूपको प्रकट करना, मेनाकी प्रसन्नता और क्षमा-प्रार्थना तथा पुरवासिनी स्त्रियोंका शिवके रूपका दर्शन करके जन्म और जीवनको सफल मानना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! इसी समय भगवान् विष्णुसे प्रेरित हो तुम शीघ्र ही भगवान् शंकरको अनुकूल बनानेके लिये उनके निकट गये। वहाँ जाकर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा तुमने रुद्रदेवको संतुष्ट किया। तुम्हारी बात सुनकर शम्भुने प्रसन्नतापूर्वक अद्भुत, उत्तम एवं दिव्य रूप धारण कर लिया। ऐसा करके उन्होंने अपने दयालु स्वभावका परिचय दिया। मुने ! भगवान् शम्भुका वह स्वरूप कामदेवसे भी अधिक सुन्दर तथा लावण्यका परम आश्रय था; उसका दर्शन करके तुम बड़े प्रसन्न हुए और उस स्थानपर गये, जहाँ सबके साथ मेना विद्यमान थीं।

वहाँ पहुँचकर तुमने कहा—विशाल नेत्रोंवाली मेने ! भगवान् शिवके उस सर्वोत्तम रूपका दर्शन करो। यह रूप प्रकट करके उन करुणामय शिवने तुमपर बड़ी ही कृपा की है।

तुम्हारी यह बात सुनकर शैलराजकी पत्नी मेना आश्चर्यचकित हो गयीं। उन्होंने शिवके उस परमानन्ददायक रूपका दर्शन किया, जो करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी, सर्वाङ्गसुन्दर, विचित्र वस्त्रधारी तथा नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित था। वह अत्यन्त प्रसन्न, सुन्दर हास्यसे सुशोभित, ललित लावण्यसे लसित, मनोहर, गौरवर्ण,

द्युतिमान् तथा चन्द्रलेखासे अलंकृत था। विष्णु आदि सम्पूर्ण देवता बड़े प्रेमसे भगवान् शिवकी सेवा कर रहे थे। सूर्यदेवने

छत्र लगा रखा था। चन्द्रदेव मस्तकका मुकुट बनकर उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। इन सब साधनोंसे भगवान् शंकर सर्वथा रमणीय जान पड़ते थे। उनका वाहन भी अनेक प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित था। उसकी महाशोभाका वर्णन नहीं हो सकता था। गङ्गा और यमुना भगवान् शिवको सुन्दर चँवर डुला रही थीं और आठों सिद्धियाँ उनके आगे नाच रही थीं। उस समय मैं, भगवान् विष्णु तथा इन्द्र आदि देवता अपने-अपने वेशको भलीभाँति विभूषित करके पर्वतवासी भगवान् शिवके साथ चल रहे थे। नानारूपधारी शिवके गण खूब सज-धजकर अत्यन्त आनन्दित हो शिवके आगे-आगे चल रहे थे। सिद्ध, उपदेवता, समस्त मुनि तथा अन्य सब लोग भी महान् सुखका अनुभव करते हुए अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक शिवके साथ यात्रा कर रहे थे। इस प्रकार देवता आदि सब लोग विवाह देखनेके लिये उत्कण्ठित हो खूब सज-धजकर अपनी पत्नियोंके साथ परब्रह्म शिवका यशोगान करते हुए जा रहे थे। विश्वावसु आदि गन्धर्व अप्सराओंके साथ हो शंकरजीके उत्तम यशका गान करते हुए उनके आगे-आगे चल रहे थे। मुनिश्रेष्ठ! महेश्वरके शैलराजके द्वारपर पधारते समय इस प्रकार वहाँ नाना प्रकारका महान् उत्सव हो रहा था। मुनीश्वर! उस समय वहाँ परमात्मा शिवकी जैसी शोभा हो रही थी, उसका विशेषरूपसे वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? उन्हें वैसे विलक्षण रूपमें देखकर मेना क्षणभरके लिये चित्रलिखी-सी रह गयीं। फिर बड़ी प्रसन्नताके साथ बोलीं—'महेश्वर! मेरी पुत्री धन्य है, जिसने बड़ा भारी तप किया और उस तपके प्रभावसे आप मेरे इस घरमें पधारे। पहले जो मैंने आप शिवकी अक्षम्य निन्दा की है, उसे मेरी शिवाके स्वामी शिव! आप क्षमा करें और इस समय पूर्णतः प्रसन्न हो जायँ।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार बात करके चन्द्रमौलि शिवकी स्तुति करती हुई शैलप्रिया मेनाने उन्हें हाथ जोड़ प्रणाम किया, फिर वे लज्जित हो गयीं। इतनेमें ही बहुत-सी पुरवासिनी स्त्रियाँ भगवान् शिवके दर्शनकी लालसासे अनेक प्रकारके काम छोड़कर वहाँ आ पहुँचीं। जो जैसे थीं, वैसे ही अस्त-व्यस्तरूपमें दौड़ आयीं। भगवान् शंकरका वह मनोहर रूप देखकर वे सब

मोहित हो गयीं। शिवके दर्शनसे हर्षको प्राप्त हो प्रेमपूर्ण हृदयवाली वे नारियाँ महेश्वरकी उस मूर्तिको अपने मनोमन्दिरमें बिठाकर इस प्रकार बोलीं।

पुरवासिनियोंने कहा—अहो ! हिमवान्‌के नगरमें निवास करनेवाले लोगोंके नेत्र आज सफल हो गये। जिस-जिस व्यक्तिने इस दिव्य रूपका दर्शन किया है, निश्चय ही उसका जन्म सार्थक हो गया है। उसीका जन्म सफल है और उसीकी सारी क्रियाएँ सफल हैं, जिसने सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले साक्षात् शिवका दर्शन किया है। पार्वतीने शिवके लिये जो तप किया है, उसके द्वारा उन्होंने अपना सारा मनोरथ सिद्ध कर लिया। शिवको पतिके रूपमें पाकर ये शिवा धन्य और कृतकृत्य हो गयीं। यदि विधाता शिवा और शिवकी इस युगल जोड़ीको सानन्द एक-दूसरेसे मिला न देते तो उनका सारा परिश्रम निष्फल हो जाता। इस उत्तम जोड़ीको मिलाकर ब्रह्माजीने बहुत अच्छा कार्य किया है। इससे सबके सभी कार्य सार्थक हो गये। तपस्याके बिना मनुष्योंके लिये शम्भुका दर्शन दुर्लभ है। भगवान् शंकरके दर्शनमात्रसे ही सब लोग कृतार्थ हो गये। जो-जो सर्वेश्वर गिरिजापति शंकरका दर्शन करते हैं, वे सारे पुरुष श्रेष्ठ हैं और हम सारी स्त्रियाँ भी धन्य हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! ऐसी बात कहकर उन स्त्रियोंने चन्दन और अक्षतसे शिवका पूजन किया और बड़े आदरसे उनके ऊपर खीलोंकी वर्षा की। वे सब स्त्रियाँ मेनाके साथ उत्सुक होकर खड़ी रहीं और मेना तथा गिरिराजके भूरिभाग्यकी सराहना करती रहीं। मुने ! स्त्रियोंके मुखसे वैसी शुभ बातें सुनकर विष्णु आदि सब देवताओंके साथ भगवान् शिवको बड़ा हर्ष हुआ। (अध्याय ४५)

☆

मेनाद्वारा द्वारपर भगवान् शिवका परिछन, उनके रूपको देखकर संतोषका अनुभव, अन्यान्य युवतियोंद्वारा वरकी प्रशंसा, पार्वतीका अम्बिका-पूजनके लिये बाहर निकलना तथा देवताओं और भगवान् शिवका उनके सुन्दर रूपको देखकर प्रसन्न होना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर भगवान् शिव प्रसन्नचित्त हो अपने गणों, समस्त देवताओं तथा अन्य लोगोंके साथ कौतूहलपूर्वक गिरिराज हिमवान्‌के धाममें गये। हिमाचलकी श्रेष्ठ पत्नी मेना भी उन स्त्रियोंके साथ घरके भीतर गयीं और शम्भुकी आरती उतारनेके लिये हाथमें दीपकोंसे सजी हुई थाली लेकर सभी ऋषिपत्नियों तथा अन्य स्त्रियोंके साथ आदरपूर्वक द्वारपर आयीं। वहाँ आकर मेनाने सम्पूर्ण देवताओंसे सेवित गिरिजापति महेश्वर शंकरको, जो द्वारपर उपस्थित थे, बड़े प्यारसे देखा। उनकी अङ्गकान्ति मनोहर चम्पाके समान थी। उनके एक मुख और तीन नेत्र थे। प्रसन्न मुखारविन्दपर मन्द मुसकानकी छटा छा रही थी। वे रत्न और

सुवर्ण आदिसे विभूषित थे। गलेमें मालतीकी माला पहने हुए थे। सुन्दर रत्नमय मुकुट धारण करनेसे उनका मुखमण्डल उज्ज्वल प्रभासे उद्भासित हो रहा था। कण्ठमें हार आदि सुन्दर आभरण शोभा दे रहे थे। सुन्दर कड़े और बाजूबंद उनकी भुजाओंको विभूषित कर रहे थे। अग्निके समान निर्मल एवं अनुपम अत्यन्त सूक्ष्म, मनोहर, विचित्र एवं बहुमूल्य युगल वस्त्रसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। चन्दन, अगर, कस्तूरी तथा मनोहर कुङ्कुमके अङ्गरागसे उनके अङ्ग विभूषित थे। उन्होंने हाथमें रत्नमय दर्पण ले रखा था और उनके दोनों नेत्र कज्जलसे सुशोभित थे। उन्होंने अपनी प्रभासे सबको आच्छादित कर लिया था तथा वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते थे। अत्यन्त तरुण, परम सुन्दर और आभरण-भूषित अङ्गोंसे सुशोभित थे। कामिनियोंको अत्यन्त कमनीय प्रतीत होते थे। उनमें व्यग्रताका अभाव था। उनका मुखारविन्द कोटि चन्द्रमाओंसे भी अधिक आह्लाद-दायक था। उनके श्रीअङ्गोंकी छवि कोटि कामदेवोंसे भी अधिक मनोहारिणी थी। वे अपने सभी अङ्गोंसे परम सुन्दर थे। ऐसे सुन्दर रूपवाले उत्कृष्टदेवता भगवान् शिवको जामाताके रूपमें अपने सामने खड़ा देख मेनाकी सारी शोक-चिन्ता दूर हो गयी। वे परमानन्दसिन्धुमें निमग्न हो गयीं और अपने भाग्यकी, गिरिजाकी, गिरिराज हिमवान्की और उनके समस्त कुलकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं। उन्होंने अपने-आपको कृतार्थ माना और वे बारंबार हर्षका अनुभव करने लगीं। सती मेनाका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा था। वे अपने दामादकी शोभाका सानन्द अवलोकन करती हुई उनकी आरती उतारने लगीं। गिरिजाकी कही हुई बातको बारंबार याद करके मेनाको बड़ा विस्मय हो रहा था। वे हर्षोत्फुल्ल मुखारविन्दसे युक्त हो मन-ही-मन यों कहने लगीं—'पार्वतीने मुझसे पहले जैसा बताया था, उससे भी अधिक सौन्दर्य मैं इन परमेश्वर शिवके अङ्गोंमें देख रही हूँ। महेश्वरका मनोहर लावण्य इस समय अवर्णनीय है।' ऐसा सोचकर आश्चर्य-चकित हुई मेना अपने घरके भीतर आयीं।

वहाँ आयी हुई युवतियोंने भी वरके मनोहर रूपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे बोलीं—'गिरिराजनन्दिनी शिवा धन्य हैं, धन्य हैं।' कुछ कन्याएँ कहने लगीं—'दुर्गा तो साक्षात् भगवती हैं।' कुछ दूसरी कन्याएँ महारानी मेनासे बोलीं—'हमने तो कभी ऐसा वर नहीं देखा है और न कभी ध्यानमें ही ऐसे वरका अवलोकन किया है। इन्हें पाकर गिरिजा धन्य हो गयी।' भगवान् शंकरका वह रूप देखकर समस्त देवता हर्षसे खिल उठे। श्रेष्ठ गन्धर्व उनका यश गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। बाजा बजानेवाले लोग मधुर ध्वनिमें अनेक प्रकारकी कला दिखाते हुए आदरपूर्वक भाँति-भाँतिके बाजे बजा रहे थे। हिमाचलने भी आनन्दित होकर द्वारोचित मङ्गलाचार किया। समस्त नारियोंके साथ मेनाने भी महान् उत्सव मनाते हुए वरका परिछन किया। फिर वे प्रसन्नतापूर्वक घरमें चली गयीं। इसके बाद भगवान् शिव अपने गणों और देवताओंके साथ अपनेको दिये गये स्थान (जनवासे) में चले गये।

इसी बीचमें गिरिराजके अन्तःपुरकी

स्त्रियाँ दुर्गाको साथ ले कुलदेवीकी पूजाके लिये बाहर निकलीं। वहाँ देवताओंने, जिनकी पलकें कभी नहीं गिरती थीं, प्रसन्नतापूर्वक पार्वतीको देखा। उनकी अङ्गकान्ति नील अञ्जनके समान थी। वे अपने मनोहर अङ्गोंसे ही विभूषित थीं। उनका कटाक्ष केवल भगवान् त्रिलोचनपर ही आदरपूर्वक पड़ता था। दूसरे किसी पुरुषकी ओर उनके नेत्र नहीं जाते थे। उनका प्रसन्न-मुख मन्द मुसकानसे सुशोभित था। वे कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखती थीं और बड़ी मनोहारिणी जान पड़ती थीं। उनके केशोंकी चोटी बड़ी ही सुन्दर थी। कपोलोंपर बनी हुई मनोहर पत्रभङ्गी उनकी शोभा बढ़ाती थी। ललाटमें कस्तूरीकी बेंदीके साथ ही सिन्दूरकी बिंदी शोभा दे रही थी। वक्षःस्थलपर श्रेष्ठ रत्नोंके सारभूत हारसे दिव्य दीप्ति छिटक रही थी। रत्नोंके बने हुए केयूर, वलय और कङ्कणसे उनकी भुजाएँ अलंकृत थीं। उत्तम रत्नमय कुण्डलोंसे उनके मनोहर कपोल जगमगा रहे थे। उनकी दन्तपंक्ति मणियों तथा रत्नोंकी प्रभाको छीने लेती थी और मुखकी शोभा बढ़ाती थी। मधुसे युक्त अधर और ओष्ठ बिम्बफलके समान लाल थे। दोनों पैरोंमें रत्नोंकी आभासे युक्त महावर शोभा देता था। उन्होंने अपने एक हाथमें रत्नजटित दर्पण ले रखा था और उनका दूसरा हाथ क्रीडाकमलसे सुशोभित था। उनके अङ्गोंमें चन्दन, अगर, कस्तूरी और कुङ्कुमका अङ्गराग लगा हुआ था। पैरोंमें पायजेब बज रहे थे और वे अपने लाल-लाल तलुओंके कारण बड़ी शोभा पा रही थीं। समस्त देवता आदिने जगत्की आदिकारणभूता जगज्जननी पार्वतीदेवीको देखकर भक्तिभावसे मस्तक झुका मेनासहित उन्हें प्रणाम किया। त्रिलोचन शिवने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ कनखियोंसे उन्हें देखा और उनमें सतीकी आकृति देखकर अपनी विरह-वेदनाको त्याग दिया। शिवापर आँखें गड़ाकर भगवान् शिव उस समय सब कुछ भूल गये। उनके सारे अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया। वे हर्षका अनुभव करते हुए गौरीकी ओर देखने लगे। गौरी उनकी आँखोंमें समा गयी थीं।

इधर काली पुरीसे बाहर जाकर अम्बिकादेवीकी पूजा करनेके पश्चात् ब्राह्मणपत्नियोंके साथ पुनः अपने पिताके रमणीय भवनमें लौट आयीं। भगवान् शंकर भी मुझ ब्रह्मा, विष्णु तथा देवताओंके साथ हिमाचलके बताये हुए अपने नियत स्थानपर प्रसन्नतापूर्वक गये। वहाँ गिरिराजके द्वारा नाना प्रकारकी सुन्दर समृद्धिसे सम्मानित हुए वे सब लोग सुखपूर्वक ठहर गये और भगवान् शिवकी सेवा करने लगे।

(अध्याय ४६)

☆

वरपक्षके आभूषणोंसे विभूषित शिवाकी नीराजना, कन्यादानके समय वरके साथ सब देवताओंका हिमाचलके घरके आँगनमें विराजना तथा वरवधूके द्वारा एक-दूसरेका पूजन

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर गिरिश्रेष्ठ हिमवान्ने प्रसन्नता और उत्साहके साथ वेदमन्त्रोंद्वारा दुर्गा और शिवका उपस्नान करवाया। तत्पश्चात् गिरिराजकी प्रार्थनासे

श्रीविष्णु आदि देवता तथा मुनि कौतूहलपूर्वक उनके घरके भीतर गये। वहाँ उन्होंने वैदिक और लौकिक आचारका यथार्थ रीतिसे पालन करके भगवान् शिवके दिये हुए आभूषणोंसे देवी शिवाको अलंकृत किया। सखियों और ब्राह्मणकी पत्नियोंने पहले पार्वतीको स्नान करवाया, फिर सब प्रकारसे वस्त्राभूषणों-द्वारा विभूषित करके उनकी आरती उतारी। तीनों लोकोंकी जननी महाशैलपुत्री सुन्दरी शिवा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर मन-ही-मन भगवान् शिवका ध्यान करती हुई वहीं बैठीं। उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उस अवसरपर दोनों पक्षोंमें महान् आनन्ददायक उत्सव होने लगा। ब्राह्मणोंको शास्त्रोक्त रीतिसे नाना प्रकारका दान दिया गया। अन्य लोगोंको भी वहाँ भाँति-भाँतिके बहुत-से द्रव्य बाँटे गये। विशेष उत्सवके साथ गीत और वाद्य आदिके द्वारा लोगोंका मनोरञ्जन किया गया। तदनन्तर मैं ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, इन्द्र आदि देवता तथा मुनि—ये सब-के-सब बड़ी प्रसन्नताके साथ सानन्द उत्सव मनाते हुए भक्तिभावसे शिवाको प्रणामकर शिवके चरणारविन्दोंके चिन्तनपूर्वक हिमाचलकी आज्ञा ले अपने-अपने स्थानपर चले गये।

इसके बाद गर्गने कन्यादानका समय जान हिमाचलसे श्रीशंकर तथा बरातियोंको बुलानेके लिये कहा। फिर तो बाजे बजने लगे। हिमाचलके मन्त्रियोंने जाकर वर और बरातियोंसे शीघ्र पधारनेके लिये प्रार्थना की। वे बोले—'कन्यादानके लिये उचित समय आ गया है। अतः आप लोग शीघ्र मण्डपमें पधारें।' तदनन्तर भगवान् शिवको सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके वृषभकी पीठपर बिठाया गया और जय बोलते हुए सब लोग चले। भगवान् शंकरको आगे करके बाजे बजाते और कौतुक करते हुए सब बराती हिमालयके घरको गये। हिमाचलके भेजे हुए ब्राह्मण तथा श्रेष्ठ पर्वत कौतूहलपूर्वक शम्भुके आगे-आगे चलते थे। भगवान्‌के मस्तकपर बहुत बड़ा छत्र तना हुआ था। सब ओरसे उन्हें चँवर डुलाया जाता था तथा वे महेश्वर चँदोवेके नीचे होकर चलते थे। मैं, विष्णु, इन्द्र और लोकपाल आगे रहकर उत्तम शोभासे सुशोभित हो रहे थे। उस महान् उत्सवके समय शङ्ख, भेरी, पटह, आनक और गोमुख आदि बाजे बारंबार बज रहे थे। इन सबके साथ जगत्‌के एकमात्र जीवन-बन्धु भगवान् शिव परमेश्वरोचित तेजसे सम्पन्न हो यात्रा कर रहे थे। उस समय समस्त देवेश्वर उनकी सेवामें उपस्थित हो बड़े हर्षोल्लासके साथ उनपर फूलोंकी वर्षा करते थे। इस प्रकार पूजित और बहुत-सी स्तुतियोंद्वारा प्रशंसित हो परमेश्वर शिवने यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया। वहाँ श्रेष्ठ पर्वतोंने शिवको वृषभसे उतारा और महान् उत्सवके साथ प्रेमपूर्वक उन्हें घरके भीतर ले गये। हिमालयने भी घरमें आये हुए देवताओं-सहित महेश्वरको विधिपूर्वक भक्ति-भावसे प्रणाम करके उनकी आरती उतारी। फिर महान् उत्सवपूर्वक अपने भाग्यकी सराहना करते हुए उन्होंने अन्य समस्त देवताओं और मुनियोंको प्रणाम करके उन सबका समादर किया। श्रीविष्णुसहित महेश्वरको तथा मुख्य-मुख्य देवताओंको पाद्य-अर्घ्य देकर हिमालय उन्हें अपने भवनके भीतर ले गये

और आँगनमें रत्नमय सिंहासनोंके ऊपर मुझको, विष्णुको, शंकरजीको तथा अन्य विशिष्ट व्यक्तियोंको बिठाया। उस समय मेनाने अपनी सखियों, ब्राह्मणपत्नियों तथा अन्य पुरस्त्रियोंके साथ आकर सानन्द आरती उतारी। कर्मकाण्डके ज्ञाता पुरोहित महात्मा शंकरके लिये मधुपर्क-पूजन आदि जो-जो आवश्यक कृत्य थे, उन सबको सहर्ष सम्पन्न किया। फिर मेरे कहनेसे पुरोहितने प्रस्तावके अनुरूप उत्तम मङ्गलमय कार्य आरम्भ किया।

इसके बाद हिमालयने अन्तर्वेदीमें जहाँ समस्त आभूषणोंसे विभूषित उनकी कृशाङ्गी कन्या वेदीके ऊपर विराजमान थी, वहाँ मेरे और श्रीविष्णुके साथ महादेवजीको ले गये। तदनन्तर बृहस्पति आदि विद्वान् बड़े उत्साहसे सम्पन्न हो कन्यादानोचित लग्नकी प्रतीक्षा करने लगे। गर्गने पुण्याहवाचन करते हुए पार्वतीजीकी अञ्जलिमें चावल भरे और शिवजीके ऊपर अक्षत छोड़ा। परम उदार सुमुखी पार्वतीने दही, अक्षत, कुश और जलसे वहाँ रुद्रदेवका पूजन किया। जिनके लिये शिवाने बड़ी भारी तपस्या की थी, उन भगवान् शिवको बड़े प्रेमसे देखती हुई वे वहाँ अत्यन्त शोभा पा रही थीं। फिर मेरे और गर्गादि मुनियोंके कहनेसे शम्भुने लोकाचारवश शिवाका पूजन किया। इस प्रकार परस्पर पूजन करते हुए वे दोनों जगन्मय पार्वती-परमेश्वर वहाँ सुशोभित हो रहे थे। त्रिभुवनकी शोभासे सम्पन्न हो परस्पर देखते हुए उन दोनों दम्पतिकी लक्ष्मी आदि देवियोंने विशेषरूपसे आरती उतारी।

(अध्याय ४७)

☆

शिव-पार्वतीके विवाहका आरम्भ, हिमालयके द्वारा शिवके गोत्रके विषयमें प्रश्न होनेपर नारदजीके द्वारा उत्तर, हिमालयका कन्यादान करके शिवको दहेज देना तथा शिवाका अभिषेक

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इसी समय वहाँ गर्गाचार्यसे प्रेरित हो मेनासहित हिमवान्‌ने कन्यादानका कार्य आरम्भ किया। उस समय वस्त्राभूषणोंसे विभूषित महाभागा मेना सोनेका कलश लिये पति हिमवान्‌के दाहिने भागमें बैठीं। तत्पश्चात् पुरोहितसहित हर्षसे भरे हुए शैलराजने पाद्य आदिके द्वारा वरका पूजन करके वस्त्र, चन्दन और आभूषणोंद्वारा उनका वरण किया। इसके बाद हिमाचलने ब्राह्मणोंसे कहा—'आपलोग तिथि आदिके कीर्तन-पूर्वक कन्यादानके संकल्पवाक्यका प्रयोग बोलें। उसके लिये अवसर आ गया है।' वे सब द्विजश्रेष्ठ कालके ज्ञाता थे। अतः 'तथास्तु' कहकर वे सब बड़ी प्रसन्नताके साथ तिथि आदिका कीर्तन करने लगे। तदनन्तर सुन्दर लीला करनेवाले परमेश्वर शम्भुके द्वारा मन-ही-मन प्रेरित हो हिमाचलने प्रसन्नतापूर्वक हँसकर उनसे कहा—'शम्भो! आप अपने गोत्रका परिचय दें। प्रवर, कुल, नाम, वेद और शाखाका प्रतिपादन करें। अब अधिक समय न बितायें।'

हिमाचलकी यह बात सुनकर भगवान् शंकर सुमुख होकर भी विमुख हो गये। अशोचनीय होकर भी तत्काल शोचनीय

अवस्थामें पड़ गये। उस समय श्रेष्ठ देवताओं, मुनियों, गन्धर्वों, यक्षों और सिद्धोंने देखा कि भगवान् शिवके मुखसे कोई उत्तर नहीं निकल रहा है। नारद ! यह देखकर तुम हँसने लगे और महेश्वरका मन-ही-मन स्मरण करके गिरिराजसे यों बोले।

नारदने कहा—पर्वतराज ! तुम मूढ़ताके वशीभूत होकर कुछ भी नहीं जानते ! महेश्वरसे क्या कहना चाहिये और क्या नहीं, इसका तुम्हें पता नहीं है। वास्तवमें तुम बड़े बहिर्मुख हो। तुमने इस समय साक्षात् हरसे उनका गोत्र पूछा है और उसे बतानेके लिये उन्हें प्रेरित किया है। तुम्हारी यह बात अत्यन्त उपहासजनक है। पर्वतराज ! इनके गोत्र, कुल और नामको तो विष्णु और ब्रह्मा आदि भी नहीं जानते, फिर दूसरोंकी क्या चर्चा है ? शैलराज ! जिनके एक दिनमें करोड़ों ब्रह्माओंका लय होता है, उन्हीं भगवान् शंकरको तुमने आज कालीके तपोबलसे प्रत्यक्ष देखा है। इनका कोई रूप नहीं है, ये प्रकृतिसे परे निर्गुण, परब्रह्म परमात्मा हैं। निराकार, निर्विकार, मायाधीश एवं परात्पर हैं। गोत्र, कुल और नामसे रहित स्वतन्त्र परमेश्वर हैं। साथ ही अपने भक्तोंके प्रति बड़े दयालु हैं। भक्तोंकी इच्छासे ही ये निर्गुणसे सगुण हो जाते हैं, निराकार होते हुए भी सुन्दर शरीर धारण कर लेते हैं और अनामा होकर भी बहुत-से नामवाले हो जाते हैं। ये गोत्रहीन होकर भी उत्तम गोत्रवाले हैं, कुलहीन होकर भी कुलीन हैं, पार्वतीकी तपस्यासे ही ये आज तुम्हारे जामाता बन गये हैं, इसमें संशय नहीं है। गिरिश्रेष्ठ ! इन लीलाविहारी परमेश्वरने चराचर जगत्‌को मोहमें डाल रखा है। कोई कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, वह भगवान् शिवको अच्छी तरह नहीं जानता।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! ऐसा कहकर शिवकी इच्छासे कार्य करनेवाले तुझ ज्ञानी देवर्षिने शैलराजको अपनी वाणीसे हर्ष प्रदान करते हुए फिर इस प्रकार उत्तर दिया।

नारद बोले—शिवाको जन्म देनेवाले तात महाशैल ! मेरी बात सुनो और उसे सुनकर अपनी पुत्री शंकरजीके हाथमें दे दो। लीलापूर्वक रूप धारण करनेवाले सगुण महेश्वरका गोत्र और कुल केवल नाद ही है, इस बातको अच्छी तरह समझ लो। शिव नादमय हैं और नाद शिवमय है—यह सर्वथा सच्ची बात है। नाद और शिव—इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। शैलेन्द्र ! सृष्टिके समय सबसे पहले लीलाके लिये सगुण रूप धारण करनेवाले शिवसे नाद ही प्रकट हुआ था। अत: वह सबसे उत्कृष्ट है। हिमालय ! इसीलिये मन-ही-मन सर्वेश्वर शंकरके द्वारा प्रेरित हो मैंने आज अभी वीणा बजाना आरम्भ कर दिया था।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तुम्हारी यह बात सुनकर गिरिराज हिमालयको संतोष प्राप्त हुआ और उनके मनका सारा विस्मय जाता रहा। तदनन्तर श्रीविष्णु आदि देवता तथा मुनि सब-के-सब विस्मयरहित हो नारदको साधुवाद देने लगे। महेश्वरकी गम्भीरता जानकर सभी विद्वान् आश्चर्य-चकित हो बड़ी प्रसन्नताके साथ परस्पर बोले—'अहो ! जिनकी आज्ञासे इस विशाल जगत्‌का प्राकट्य हुआ है, जो परात्परतर, आत्मबोधस्वरूप, स्वतन्त्र लीला करनेवाले तथा उत्तम भावसे ही जाननेयोग्य हैं, उन त्रिलोकनाथ भगवान् शम्भुका आज

हमलोगोंने भलीभाँति दर्शन किया है।'

तदनन्तर हिमालयने विधिके द्वारा प्रेरित हो भगवान् शिवको अपनी कन्याका दान कर दिया। कन्यादान करते समय वे बोले—

इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर।
भार्यार्थं परिगृह्णीष्व प्रसीद सकलेश्वर॥

'परमेश्वर! मैं अपनी यह कन्या आपको देता हूँ। आप इसे अपनी पत्नी बनानेके लिये ग्रहण करें! सर्वेश्वर! इस कन्यादानसे आप संतुष्ट हों।'

इस मन्त्रका उच्चारण करके हिमाचलने अपनी पुत्री त्रिलोकजननी पार्वतीको उन महान् देवता रुद्रके हाथमें दे दिया। इस प्रकार शिवाका हाथ शिवके हाथमें रखकर शैलराज मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उस समय वे अपने मनोरथके महासागरको पार कर गये थे। परमेश्वर महादेवजीने प्रसन्न हो वेदमन्त्रके उच्चारणपूर्वक गिरिजाके करकमलको शीघ्र अपने हाथमें ले लिया। मुने! लोकाचारके पालनकी आवश्यकताको दिखाते हुए उन भगवान् शंकरने पृथ्वीका स्पर्श करके 'कोऽदात्०'* इत्यादि रूपसे कामसम्बन्धी मन्त्रका पाठ किया। उस समय वहाँ सब ओर महान् आनन्ददायक महोत्सव होने लगा। पृथ्वीपर, अन्तरिक्षमें तथा स्वर्गमें भी जय-जयकारका शब्द गूँजने लगा। सब लोग अत्यन्त हर्षसे भरकर साधुवाद देने और नमस्कार करने लगे। गन्धर्वगण प्रेमपूर्वक गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। हिमाचलके नगरके लोग भी अपने मनमें परम आनन्दका अनुभव करने लगे। उस समय महान् उत्सवके साथ परम मङ्गल मनाया जाने लगा। मैं, विष्णु, इन्द्र, देवगण तथा सम्पूर्ण मुनि हर्षसे भर गये। हम सबके मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठे। तदनन्तर शैलराज हिमाचलने अत्यन्त प्रसन्न हो शिवके लिये कन्यादानकी यथोचित साङ्गता प्रदान की। तत्पश्चात् उनके बन्धुजनोंने भक्तिपूर्वक शिवाका पूजन करके नाना विधि-विधानसे भगवान् शिवको उत्तम द्रव्य समर्पित किया। हिमालयने दहेजमें अनेक प्रकारके द्रव्य, रत्न, पात्र, एक लाख सुसज्जित गौएँ, एक लाख सजे-सजाये घोड़े, करोड़ हाथी और उतने ही सुवर्णजटित रथ आदि वस्तुएँ दीं; इस प्रकार परमात्मा शिवको विधिपूर्वक अपनी पुत्री कल्याणमयी पार्वतीका दान करके हिमालय कृतार्थ हो गये। इसके बाद शैलराजने यजुर्वेदकी माध्यंदिनी शाखामें वर्णित स्तोत्रके द्वारा दोनों हाथ जोड़ प्रसन्नतापूर्वक उत्तम वाणीमें परमेश्वर शिवकी स्तुति की। तत्पश्चात् वेदवेत्ता हिमाचलके आज्ञा देनेपर मुनियोंने बड़े उत्साहके साथ शिवाके सिरपर अभिषेक किया और महादेवजीका नाम लेकर उस अभिषेककी विधि पूरी की। मुने! उस समय बड़ा आनन्ददायक महोत्सव हो रहा था।

(अध्याय ४८)

☆

* विवाहमें कन्या-प्रतिग्रहके पश्चात् वर इस कामस्तुतिका पाठ करता है। पूरा मन्त्र इस प्रकार है—
कोऽदात्कस्मा अदात्कामोऽदात्कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते। (शु॰ यजुर्वेदसंहिता ७।४८)

शिवके विवाहका उपसंहार, उनके द्वारा दक्षिणा-वितरण, वर-वधूका कोहबर और वासभवनमें जाना, वहाँ स्त्रियोंका उनसे लोकाचारका पालन कराना, रतिकी प्रार्थनासे शिवद्वारा कामको जीवनदान एवं वर-प्रदान, वर-वधूका एक-दूसरेको मिष्टान्न भोजन कराना और शिवका जनवासेमें लौटना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर मेरी आज्ञा पाकर महेश्वरने ब्राह्मणोंद्वारा अग्निकी स्थापना करवायी और पार्वतीको अपने आगे बिठाकर वहाँ ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मन्त्रोंद्वारा अग्निमें आहुतियाँ दीं। तात! उस समय कालीके भाई मैनाकने लावाकी अञ्जलि दी और काली तथा शिव दोनोंने आहुति देकर लोकाचारका आश्रय ले प्रसन्नतापूर्वक अग्निदेवकी परिक्रमा की।

नारद! तदनन्तर शिवकी आज्ञासे मुनियोंसहित मैंने शिवा-शिव-विवाहका शेष कार्य प्रसन्नतापूर्वक पूरा किया। फिर उन दोनों दम्पतिके मस्तकका अभिषेक हुआ। ब्राह्मणोंने उन्हें आदरपूर्वक ध्रुवका दर्शन कराया। तत्पश्चात् हृदयालम्भनका कार्य हुआ। फिर बड़े उत्साहके साथ स्वस्तिवाचन किया गया। इसके पश्चात् ब्राह्मणोंकी आज्ञासे शिवने शिवाके सिरमें सिन्दूरदान किया। उस समय गिरिराजनन्दिनी उमाकी शोभा अद्भुत और अवर्णनीय हो गयी। फिर ब्राह्मणोंके आदेशसे वे शिव-दम्पति एक आसनपर विराजमान हो भक्तोंके चित्तको आनन्द देनेवाली उत्तम शोभा पाने लगे। मुने! तदनन्तर अद्भुत लीला करनेवाले उन नवदम्पतिने मेरी आज्ञा पाकर अपने स्थानपर आ संस्रवप्राशन* किया। इस प्रकार विधिपूर्वक उस वैवाहिक यज्ञके पूर्ण हो जानेपर भगवान् शिवने मुझ लोकस्रष्टा ब्रह्माको पूर्णपात्र दान किया। फिर शम्भुने आचार्यको गोदान किया। मङ्गलदायक जो बड़े-बड़े दान बताये गये हैं, वे भी सहर्ष सम्पन्न किये। तत्पश्चात् उन्होंने बहुत-से ब्राह्मणोंको पृथक्-पृथक् सौ-सौ सुवर्ण मुद्राएँ दीं। करोड़ों रत्न दान किये और अनेक प्रकारके द्रव्य बाँटे। उस समय सब देवता तथा दूसरे-दूसरे चराचर जीव मनमें बड़े प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। सब ओर माङ्गलिक शब्द और गीत होने लगे। वाद्योंकी मनोहर ध्वनि सबके आनन्दको बढ़ाने लगी। इसके बाद श्रीविष्णु, मैं, देवता, ऋषि तथा अन्य सब लोग गिरिराजसे आज्ञा ले बड़ी प्रसन्नताके साथ शीघ्र ही अपने-अपने डेरेमें चले आये। उस समय हिमालयनगरकी स्त्रियाँ आनन्दमग्न हो शिव और पार्वतीको लेकर कोहबरमें गयीं। वहाँ उन सबने आदरपूर्वक वर-वधूसे

---

* अग्निमें घीकी आहुति देकर स्रुवामें अवशिष्ट घृतको प्रोक्षणीपात्रमें डालनेकी विधि है। प्रत्येक आहुतिमें ऐसा किया जाता है। प्रोक्षणीपात्रमें डाले हुए घीको ही 'संस्रव' कहते हैं। अन्तमें यजमान उसे पीता है। इसीको 'संस्रवप्राशन' कहा गया है।

लोकाचारका सम्पादन कराया। उस समय सब ओर परमानन्ददायक महान् उत्साह छा रहा था। तदनन्तर वे स्त्रियाँ उन लोक-कल्याणकारी दम्पतिको साथ ले परम दिव्य वासभवन (कौतुकागार) में गयीं और वहाँ भी प्रसन्नतापूर्वक लोकाचारका सम्पादन किया। इसके बाद गिरिराजके नगरकी स्त्रियोंने समीप आकर मङ्गलकृत्य करके उन नवदम्पतिको केलिगृहमें पहुँचाया और जयध्वनि करती हुई उनके गँठबन्धनकी गाँठ खोलने आदिका कार्य सम्पन्न किया।

उस समय उन नूतन दम्पतिको देखनेके लिये सोलह दिव्य नारियाँ बड़े आदरके साथ शीघ्रतापूर्वक वहाँ आयीं। उनके नाम इस प्रकार हैं—सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गङ्गा, अदिति, शची, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, पृथिवी, शतरूपा, संज्ञा तथा रति। ये देवाङ्गनाएँ तथा मनोहारिणी देवकन्या, नागकन्या और मुनिकन्याएँ भी वहाँ आ पहुँचीं। वहाँ जितनी स्त्रियाँ उपस्थित थीं, उन सबकी गणना करनेमें कौन समर्थ है? उनके दिये हुए रत्नमय सिंहासनपर भगवान् शिव प्रसन्नतापूर्वक बैठे। उस समय उन्होंने शिवसे नाना प्रकारकी विनोदपूर्ण बातें कहीं। तदनन्तर प्रसन्नचित्त हुए महेश्वरने अपनी पत्नीके साथ मिष्टान्न भोजन और आचमन करके कपूर डाला हुआ पान खाया।

इसी अवसरपर अनुकूल समय जान प्रसन्न हुई रतिने दीनवत्सल भगवान् शंकरसे कहा—'भगवन्! पार्वतीका पाणिग्रहण करके आपने अत्यन्त दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त किया है। बताइये, मेरे प्राणनाथको, जो सर्वथा स्वार्थरहित थे, आपने क्यों भस्म कर डाला? अब यहाँ मेरे पतिको जीवित कीजिये और अपने अन्तःकरणमें काम-सम्बन्धी व्यापारको जगाइये। आपको और मुझको जो समानरूपसे वियोगजनित संताप प्राप्त हुआ है, उसे दूर कीजिये। महेश्वर! आपके इस विवाहोत्सवमें सब लोग सुखी हुए हैं। केवल मैं ही अपने पतिके बिना दुःखमें डूबी हुई हूँ। देव! शंकर! प्रसन्न होइये और मुझे सनाथ कीजिये। दीनबन्धो! परम प्रभो! अपनी कही हुई बातको सत्य कीजिये। चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कौन है, जो मेरे दुःखका नाश करनेमें समर्थ हो? ऐसा जानकर आप मुझपर दया कीजिये। दीनोंपर दया करनेवाले नाथ! सबको आनन्द प्रदान करनेवाले अपने इस विवाहोत्सवमें मुझे भी उत्सवसम्पन्न बनाइये। मेरे प्राणनाथके

जीवित होनेपर ही आपकी प्रिया पार्वतीके साथ आपका सुन्दर विहार परिपूर्ण होगा। इसमें संशय नहीं है। सर्वेश्वर ! आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं; क्योंकि आप ही परमेश्वर हैं। यहाँ अधिक कहनेसे क्या लाभ ? सर्वेश्वर ! आप शीघ्र मेरे पतिको जीवित कीजिये।'

ऐसा कहकर रतिने गाँठमें बँधा हुआ कामदेवके शरीरका भस्म शम्भुको दे दिया और उनके सामने 'हा नाथ ! हा नाथ !' कहकर रोने लगी। रतिका रोदन सुनकर सरस्वती आदि सभी देवियाँ रोने लगीं और अत्यन्त दीन वाणीमें बोलीं—'प्रभो ! आपका नाम भक्तवत्सल है। आप दीनबन्धु और दयाके सागर हैं। अतः कामको जीवनदान दीजिये और रतिको उत्साहित कीजिये। आपको नमस्कार है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! उन सबकी यह बात सुनकर महेश्वर प्रसन्न हो गये। उन करुणासागर प्रभुने तत्काल ही रतिपर कृपा की। भगवान् शूलपाणिकी अमृतमयी दृष्टि पड़ते ही पहले-जैसे रूप, वेष और चिह्नसे युक्त अद्भुत मूर्तिधारी सुन्दर कामदेव उस भस्मसे प्रकट हो गया। अपने पतिको वैसे ही रूप, आकृति, मन्द मुस्कान और धनुष-बाणसे युक्त देख रतिने महेश्वरको प्रणाम किया। वह कृतार्थ हो गयी। उसने प्राणनाथकी प्राप्ति करानेवाले भगवान् शिवका अपने जीवित पतिके साथ हाथ जोड़कर बारंबार स्तवन किया। पत्नीसहित कामकी की हुई स्तुतिको सुनकर दयार्द्रहृदय भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले।

शंकरने कहा—मनोभव ! पत्नीसहित तुमने जो स्तुति की है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। स्वयं प्रकट होनेवाले काम ! तुम वर माँगो। मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वस्तु दूँगा।

शम्भुका यह वचन सुनकर कामदेव महान् आनन्दमें निमग्न हो गया और हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर गद्गद वाणीमें बोला।

कामदेवने कहा—देवदेव महादेव ! करुणासागर प्रभो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरे लिये आनन्ददायक होइये। प्रभो ! पूर्वकालमें मैंने जो अपराध किया था, उसे क्षमा कीजिये। स्वजनोंके प्रति परम प्रेम और अपने चरणोंकी भक्ति दीजिये।

कामदेवका यह कथन सुनकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो बोले—'बहुत अच्छा !' इसके बाद उन करुणानिधिने हँसकर कहा—'महामते कामदेव ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम अपने मनसे भयको निकाल दो। भगवान् विष्णुके पास जाओ और इस घरसे बाहर ही रहो।'

तदनन्तर काम शिवजीको प्रणाम करके बाहर आ गया। विष्णु आदि देवताओंने उसे आशीर्वाद दिया। इसके बाद भगवान् शंकरने उस वासभवनमें पार्वतीको बायें बिठाकर मिष्टान्न भोजन कराया और पार्वतीने भी प्रसन्नतापूर्वक उनका मुँह मीठा किया। तदनन्तर वहाँ लोकाचारका पालन करते हुए आवश्यक कृत्य करके मेना और हिमवान्‌की आज्ञा ले भगवान् शिव जनवासेमें चले गये। मुने ! उस समय महान् उत्सव हुआ और वेदमन्त्रोंकी ध्वनि होने लगी। लोग चारों प्रकारके[1] बाजे बजाने लगे। जनवासेमें अपने

१. अमरकोशमें जो चार प्रकारके बाजे बताये गये हैं, संसारके सभी प्राचीन अथवा अर्वाचीन बाद्य उन्हींके अन्तर्गत हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—तत, आनद्ध, सुषिर और घन। 'तत' वह बाजा है, जिसमें

स्थानपर पहुँचकर शिवने लोकाचारवश मुनियोंको प्रणाम किया। श्रीहरिको और मुझे भी मस्तक झुकाया। फिर सब देवता आदिने उनकी वन्दना की। उस समय वहाँ जय-जयकार, नमस्कार तथा समस्त विघ्नोंका विनाश करनेवाली शुभदायिनी वेदध्वनि भी होने लगी। इसके बाद मैंने, भगवान् विष्णुने तथा इन्द्र, ऋषि और सिद्ध आदिने भी शंकरजीकी स्तुति की। गिरिजानायक महेश्वरकी स्तुति करके वे विष्णु आदि देवता प्रसन्नतापूर्वक उनकी यथोचित सेवामें लग गये। तत्पश्चात् लीलापूर्वक शरीर धारण करनेवाले महेश्वर शम्भुने उन सबको सम्मान दिया। फिर उन परमेश्वरकी आज्ञा पाकर वे विष्णु आदि देवता अत्यन्त प्रसन्न हो अपने-अपने विश्रामस्थानको गये।

(अध्याय ४९—५१)

☆

रातको परम सुन्दर सजे हुए वासगृहमें शयन करके प्रातःकाल भगवान् शिवका जनवासेमें आगमन

ब्रह्माजी कहते हैं—तात! तदनन्तर भाग्यवानोंमें श्रेष्ठ और चतुर गिरिराज हिमवान्ने बारातियोंको भोजन करानेके लिये अपने आँगनको सुन्दर ढंगसे सजाया तथा अपने पुत्रों एवं अन्यान्य पर्वतोंको भेजकर शिवसहित सब देवताओंको भोजनके लिये बुलाया। जब सब लोग आ गये, तब उनको बड़े आदरके साथ उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थोंका भोजन कराया। भोजनके पश्चात् हाथ-मुँह धो, कुल्ला करके विष्णु आदि सब देवता विश्रामके लिये प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने डेरेमें गये। मेनाकी आज्ञासे साध्वी स्त्रियोंने भगवान् शिवसे भक्तिपूर्वक प्रार्थना करके उन्हें महान् उत्सवसे परिपूर्ण सुन्दर वासभवनमें ठहराया। मेनाके दिये हुए मनोहर रत्न-सिंहासनपर बैठकर आनन्दित हुए शम्भुने उस वासमन्दिरका निरीक्षण किया। वह भवन प्रज्वलित हुए सैकड़ों रत्नमय प्रदीपोंके कारण अद्भुत प्रभासे उद्भासित हो रहा था। वहाँ रत्नमय पात्र तथा रत्नोंके ही कलश रखे गये थे। मोती और मणियोंसे सारा भवन जगमगा रहा था। रत्नमय दर्पणकी शोभासे सम्पन्न तथा श्वेत चँवरोंसे अलंकृत था। मुक्तामणियोंकी सुन्दर मालाओं (वंदनवारों) से आवेष्टित हुआ वह वासभवन बड़ा समृद्धिशाली दिखायी देता था। उसकी कहीं उपमा नहीं थी। वह महादिव्य, अतिविचित्र, परम मनोहर तथा मनको आह्लाद प्रदान करनेवाला था। उसके फर्शपर नाना प्रकारकी रचनाएँ की गयी थीं—बेल-बूटे निकाले गये थे। शिवजीके दिये हुए वरका ही महान् एवं अनुपम प्रभाव

तारका विस्तार हो—जैसे वीणा, सितार आदि। जिसे चमड़ेसे मढ़ाकर कसा गया हो, वह 'आनद्ध' कहलाता है—जैसे ढोल, मृदंग, नगाड़ा आदि। जिसमें छेद हो और उसमें हवा भरकर स्वर निकाला जाता हो, उसे 'सुषिर' कहते हैं—जैसे वंशी, शङ्ख, बिगुल, हारमोनियम आदि। काँसेके झाँझ आदिको 'घन' कहते हैं।

दिखाता हुआ वह शोभाशाली भवन शिवलोकके नामसे प्रसिद्ध किया गया था। नाना प्रकारके सुगन्धित श्रेष्ठ द्रव्योंसे सुवासित तथा सुन्दर प्रकाशसे परिपूर्ण था। वहाँ चन्दन और अगरकी सम्मिलित गन्ध फैल रही थी। उस भवनमें फूलोंकी सेज बिछी हुई थी। विश्वकर्माका बनाया हुआ वह भवन नाना प्रकारके विचित्र चित्रोंसे सुसज्जित था। श्रेष्ठ रत्नोंकी सारभूत मणियोंसे निर्मित सुन्दर हारोंद्वारा उस वासगृहको अलंकृत किया गया था। उसमें विश्वकर्माद्वारा निर्मित कृत्रिम वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक, कैलास, इन्द्रभवन तथा शिवलोक आदि दीख रहे थे। ऐसे आश्चर्यजनक शोभासे सम्पन्न उस वासभवनको देखकर गिरिराज हिमालयकी प्रशंसा करते हुए भगवान् महेश्वर बहुत संतुष्ट हुए। वहाँ अति रमणीय रत्नजटित उत्तम पलंगपर परमेश्वर शिव बड़ी प्रसन्नतासे लीलापूर्वक सोये। इधर हिमालयने बड़ी प्रसन्नतासे अपने समस्त भाई-बन्धुओं एवं दूसरे लोगोंको भी भोजन कराया तथा जो कार्य शेष रह गये थे, उन्हें भी पूर्ण किया।

शैलराज हिमालय इस प्रकार आवश्यक कार्यमें लगे हुए थे और प्रियतम परमेश्वर शिव शयन कर रहे थे। इतनेमें ही सारी रात बीत गयी और प्रात:काल हो गया। प्रभातकाल होनेपर धैर्यवान् और उत्साही पुरुष नाना प्रकारके बाजे बजाने लगे। उस समय श्रीविष्णु आदि सब देवता सानन्द उठे और अपने इष्टदेव देवेश्वर शिवका स्मरण करके वहाँसे कैलासको चलनेके लिये जल्दी-जल्दी तैयार हो गये। उन्होंने अपने वाहन भी सुसज्जित कर लिये। तत्पश्चात् धर्मको शिवके समीप भेजा। योगशक्तिसे सम्पन्न धर्म नारायणकी आज्ञासे वासगृहमें पहुँचकर योगीश्वर शंकरसे समयोचित बात बोले— 'प्रमथगणोंके स्वामी महेश्वर! उठिये, उठिये; आपका कल्याण हो। आप हमारे लिये भी कल्याणकारी होइये; जनवासेमें चलिये और वहाँ सब देवताओंको कृतार्थ कीजिये।'

धर्मकी यह बात सुनकर भगवान् महेश्वर हँसे। उन्होंने धर्मको कृपादृष्टिसे देखा और शय्या त्याग दी। इसके बाद धर्मसे हँसते हुए कहा— 'तुम आगे चलो। मैं भी वहाँ शीघ्र ही आऊँगा, इसमें संशय नहीं है।'

भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर धर्म जनवासेमें गये। तत्पश्चात् शम्भु भी स्वयं वहाँ जानेको उद्यत हुए। यह जानकर महान् उत्सव मनाती हुई स्त्रियाँ वहाँ आयीं और भगवान् शम्भुके युगल चरणारविन्दोंका दर्शन करती हुई मङ्गलगान करने लगीं। तदनन्तर लोकाचारका पालन करते हुए शम्भु प्रात:कालिक कृत्य करके मेना और हिमालयकी आज्ञा ले जनवासेको गये। मुने! उस समय बड़ा भारी उत्सव हुआ। वेदमन्त्रोंकी ध्वनि होने लगी और लोग चारों प्रकारके बाजे बजाने लगे। अपने स्थानपर आकर शम्भुने लोकाचारवश मुनियोंको, विष्णुको और ब्रह्माको प्रणाम किया। फिर देवता आदिने उनकी वन्दना की। उस समय जय-जयकार, नमस्कार तथा वेदमन्त्रोच्चारण-की मङ्गलदायिनी ध्वनि होने लगी। इससे सब ओर कोलाहल छा गया। (अध्याय ५२)

☆

चतुर्थीकर्म, बारातका कई दिनोंतक ठहरना, सप्तर्षियोंके समझानेसे हिमालयका बारातको विदा करनेके लिये राजी होना, मेनाका शिवको अपनी कन्या सौंपना तथा बारातका पुरीके बाहर जाकर ठहरना

ब्रह्माजी कहते हैं—तदनन्तर विष्णु आदि देवता तथा ऋषि कैलास लौटनेका विचार करने लगे। तब हिमालयने जनवासेमें आकर सबको भोजनके लिये निमन्त्रित किया। तत्पश्चात् देवेश्वर शिवको आमन्त्रित करके हिमाचल अपने घरको गये और नाना प्रकारके विधानसे भोजनोत्सवकी तैयारी करने लगे। उन्होंने प्रसन्नता और उत्कण्ठाके साथ भोजनके लिये परिवारसहित भगवान् शिवको यथोचित रीतिसे अपने घर बुलवाया। शम्भुके, विष्णुके, मेरे, अन्य सब देवताओंके, मुनियोंके तथा वहाँ आये हुए अन्य सब लोगोंके भी चरणोंको बड़े आदरके साथ धोकर उन सबको गिरिराजने मण्डपके भीतर सुन्दर आसनोंपर बिठाया। फिर अपने भाई-बन्धुओंको साथ लेकर उनके सहयोगसे उन सब अतिथियोंको नाना प्रकारके सरस पदार्थोंद्वारा पूर्णतया तृप्त किया। मेरे, विष्णुके तथा शम्भुके साथ सब लोगोंने अच्छी तरह भोजन किया। नारद ! विधिवत् भोजन और आचमन करके तृप्त और प्रसन्न हुए सब लोग हिमालयसे आज्ञा ले अपने-अपने डेरेपर गये। मुने ! इसी प्रकार तीसरे दिन भी गिरिराजने विधिवत् दान, मान और आदर आदिके द्वारा उन सबका सत्कार किया। चौथा दिन आनेपर शुद्धतापूर्वक सविधि चतुर्थीकर्म हुआ, जिसके बिना विवाह-यज्ञ अधूरा ही रह जाता है। उस समय नाना प्रकारका उत्सव हुआ। साधुवाद और जय-जयकारकी ध्वनि हुई। बहुत-से सुन्दर दान दिये गये। भाँति-भाँतिके सुन्दर गान और नृत्य हुए। पाँचवें दिन सब देवताओंने बड़े हर्ष और अत्यन्त प्रेमके साथ शैलराजको सूचित किया कि 'अब हमलोग यहाँसे जाना चाहते हैं। आप आज्ञा प्रदान करें।' उनकी यह बात सुन गिरिराज हिमवान् हाथ जोड़कर बोले—'देवगण ! आपलोग कुछ दिन और ठहरें तथा मुझपर कृपा करें।' यों कहकर उन्होंने स्नेहके साथ उन देवताओंको, भगवान् शिवको, विष्णुको, मुझको तथा अन्य लोगोंको बहुत दिनोंतक ठहराया और प्रतिदिन विशेष आदर-सत्कार किया।

इस प्रकार देवताओंके वहाँ रहते हुए बहुत दिन बीत गये, तब उन सबने गिरिराजके पास सप्तर्षियोंको भेजा। सप्तर्षियोंने हिमवान् और मेनासे समयोचित बात कहकर उन्हें समझाया, परम शिवतत्त्वका वर्णन किया तथा प्रसन्नतापूर्वक उनके सौभाग्यकी सराहना की। मुने ! उनके समझानेसे गिरिराजने बारातको विदा करना स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् भगवान् शम्भु यात्राके लिये उद्यत हो देवता आदिके साथ शैलराजके पास आये। देवेश्वर शिव देवताओंसहित कैलासकी यात्राके लिये जब उद्यत हुए, उस समय मेना उच्च स्वरसे रोने लगीं और उन कृपानिधानसे बोलीं।

मेनाने कहा—कृपानिधे ! कृपा करके मेरी शिवाका भलीभाँति लालन-पालन कीजियेगा। आप आशुतोष हैं। पार्वतीके

सहस्रों अपराधोंको भी क्षमा कीजियेगा। मेरी बच्ची जन्म-जन्ममें आपके चरणारविन्दोंकी भक्त रही है और रहेगी। उसे सोते और जागते समय भी अपने स्वामी महादेवके सिवा दूसरी किसी वस्तुकी सुध नहीं रहती। मृत्युञ्जय! आपके प्रति भक्ति-भावकी बातें सुनते ही यह हर्षके आँसू बहाती हुई पुलकित हो उठती है और आपकी निन्दा सुनकर ऐसा मौन साध लेती है, मानो मर ही गयी हो!

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर मेनकाने अपनी बेटी शिवको सौंप दी और उन दोनोंके सामने ही उच्चस्वरसे रोती हुई वह मूर्च्छित हो गयी। तब महादेवजीने मेनाको समझाकर सचेत किया और उनसे विदा ले देवताओंके साथ महान् उत्सवपूर्वक यात्रा की। वे सब देवता अपने स्वामी शिव तथा सेवकगणोंके साथ चुपचाप कैलास पर्वतकी ओर प्रस्थित हुए। वे मन-ही-मन शिवका चिन्तन कर रहे थे। हिमाचलपुरीके बाहरी बगीचेमें आकर शिवसहित सब देवता हर्ष और उत्साहके साथ ठहर गये और शिवाके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। मुनीश्वर! इस प्रकार देवताओंसहित शिवकी श्रेष्ठ यात्राका वर्णन किया गया। अब शिवाकी यात्राका वर्णन सुनो, जो विरहव्यथा और आनन्द दोनोंसे संयुक्त है।

(अध्याय ५३)

☆

मेनाकी इच्छाके अनुसार एक ब्राह्मण-पत्नीका पार्वतीको पतिव्रतधर्मका उपदेश देना

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर सप्तर्षियोंने हिमालयसे कहा—'गिरिराज! अब आप अपनी पुत्री पार्वतीदेवीकी यात्राका उचित प्रबन्ध करें।' मुनीश्वर! यह सुनकर पार्वतीके भावी विरहका अनुभव करके गिरिराज कुछ कालतक अधिक प्रेमके कारण विषादमें डूबे रह गये। कुछ देर बाद सचेत हो शैलराजने 'तथास्तु' कहकर मेनाको संदेश दिया। मुने! हिमवान्‌का संदेश पाकर हर्ष और शोकके वशीभूत हुई मेना पार्वतीको विदा करनेके लिये उद्यत हुईं। शैलराजकी प्यारी पत्नी मेनाने विधिपूर्वक वैदिक एवं लौकिक कुलाचारका पालन किया और उस समय नाना प्रकारके उत्सव मनाये। फिर उन्होंने नाना प्रकारके रत्नजटित सुन्दर वस्त्रों और बारह आभूषणोंद्वारा राजोचित शृङ्गार करके पार्वतीको विभूषित किया। तत्पश्चात् मेनाके मनोभावको जानकर एक सती-साध्वी ब्राह्मणपत्नीने गिरिजाको उत्तम पातिव्रत्यकी शिक्षा दी।

ब्राह्मण-पत्नी बोली—गिरिराज-किशोरी! तुम प्रेमपूर्वक मेरा यह वचन सुनो। यह धर्मको बढ़ानेवाला, इहलोक और परलोकमें भी आनन्द देनेवाला तथा श्रोताओंको भी सुखकी प्राप्ति करानेवाला है। संसारमें पतिव्रता नारी ही धन्य है, दूसरी नहीं। वही विशेषरूपसे पूजनीय है। पतिव्रता सब लोगोंको पवित्र करनेवाली और समस्त पापराशिको नष्ट कर देनेवाली है। शिवे! जो पतिको परमेश्वरके समान मानकर प्रेमसे उसकी सेवा करती है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें

कल्याणमयी गतिको पाती है।* सावित्री, लोपामुद्रा, अरुन्धती, शाण्डिली, शतरूपा, अनसूया, लक्ष्मी, स्वधा, सती, संज्ञा, सुमति, श्रद्धा, मेना और स्वाहा—ये तथा और भी बहुत-सी स्त्रियाँ साध्वी कही गयी हैं। यहाँ विस्तारभयसे उनका नाम नहीं लिया गया। वे अपने पातिव्रत्यके बलसे ही सब लोगोंकी पूजनीया तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं मुनीश्वरोंकी भी माननीया हो गयी हैं। इसलिये तुम्हें अपने पति भगवान् शंकरकी सदा सेवा करनी चाहिये। वे दीनदयालु, सबके सेवनीय और सत्पुरुषोंके आश्रय हैं। श्रुतियों और स्मृतियोंमें पतिव्रता-धर्मको महान् बताया गया है। इसको जैसा श्रेष्ठ बताया जाता है, वैसा दूसरा धर्म नहीं है—यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

पातिव्रत्य-धर्ममें तत्पर रहनेवाली स्त्री अपने प्रिय पतिके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करे। शिवे ! जब पति खड़ा हो, तब साध्वी स्त्रीको भी खड़ी ही रहनी चाहिये। शुद्धबुद्धिवाली साध्वी स्त्री प्रतिदिन अपने पतिके सो जानेपर सोये और उसके जागनेसे पहले ही जग जाय। वह छल-कपट छोड़कर सदा उसके लिये हितकर कार्य ही करे। शिवे ! साध्वी स्त्रीको चाहिये कि जबतक वस्त्राभूषणोंसे विभूषित न हो ले तबतक वह अपनेको पतिकी दृष्टिके सम्मुख न लाये। यदि पति किसी कार्यसे परदेशमें गया हो तो उन दिनों उसे कदापि शृङ्गार नहीं करना चाहिये। पतिव्रता स्त्री कभी पतिका नाम न ले। पतिके कटुवचन कहनेपर भी वह बदलेमें कड़ी बात न कहे। पतिके बुलानेपर वह घरके सारे कार्य छोड़कर तुरंत उसके पास चली जाय और हाथ जोड़ प्रेमसे मस्तक झुकाकर पूछे—'नाथ ! किसलिये इस दासीको बुलाया है ? मुझे सेवाके लिये आदेश देकर अपनी कृपासे अनुगृहीत कीजिये।' फिर पति जो आदेश दे, उसका वह प्रसन्न हृदयसे पालन करे। वह घरके दरवाजेपर देरतक खड़ी न रहे। दूसरेके घर न जाय। कोई गोपनीय बात जानकर हर एकके सामने उसे प्रकाशित न करे। पतिके बिना कहे ही उनके लिये पूजन-सामग्री स्वयं जुटा दे तथा उनके हित-साधनके यथोचित अवसर-की प्रतीक्षा करती रहे। पतिकी आज्ञा लिये बिना कहीं तीर्थयात्राके लिये भी न जाय। लोगोंकी भीड़से भरी हुई सभा या मेले आदिके उत्सवोंका देखना वह दूरसे ही त्याग दे। जिस नारीको तीर्थयात्राका फल पानेकी इच्छा हो, उसे अपने पतिका चरणोदक पीना चाहिये। उसके लिये उसीमें सारे तीर्थ और क्षेत्र हैं, इसमें संशय नहीं है।†

पतिव्रता नारी पतिके उच्छिष्ट अन्न आदिको परम प्रिय भोजन मानकर ग्रहण करे और पति जो कुछ दे, उसे महाप्रसाद मानकर शिरोधार्य करे। देवता, पितर, अतिथि, सेवकवर्ग, गौ तथा

---

* धन्या पतिव्रता नारी नान्या पूज्या विशेषतः। पावनी सर्वलोकानां सर्वपापौघनाशिनी॥
सेवते या पतिं प्रेम्णा परमेश्वरवच्छिवे। इह भुक्त्वाखिलान्भोगानन्ते पत्या शिवां गतिम्॥
(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ पा॰ खं॰ ५४। ९-१०)

† तीर्थार्थिनी तु या नारी पतिपादोदकं पिबेत्। तस्मिन् सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि च न संशयः॥
(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ पा॰ खं॰ ५४। २५)

भिक्षुसमुदायके लिये अन्नका भाग दिये बिना कदापि भोजन न करे। पातिव्रत-धर्ममें तत्पर रहनेवाली गृहदेवीको चाहिये कि वह घरकी सामग्रीको संयत एवं सुरक्षित रखे। गृहकार्यमें कुशल हो, सदा प्रसन्न रहे और खर्चकी ओरसे हाथ खींचे रहे। पतिकी आज्ञा लिये बिना उपवास-व्रत आदि न करे, अन्यथा उसे उसका कोई फल नहीं मिलता और वह परलोकमें नरकगामिनी होती है। पति सुखपूर्वक बैठा हो या इच्छानुसार क्रीडाविनोद अथवा मनोरञ्जनमें लगा हो, उस अवस्थामें कोई आन्तरिक कार्य आ पड़े तो भी पतिव्रता स्त्री अपने पतिको कदापि न उठाये। पति नपुंसक हो गया हो, दुर्गतिमें पड़ा हो, रोगी हो, बूढ़ा हो, सुखी हो अथवा दुःखी हो, किसी भी दशामें नारी अपने उस एकमात्र पतिका उल्लङ्घन न करे। रजस्वला होनेपर वह तीन रात्रितक पतिको अपना मुँह न दिखाये अर्थात् उससे अलग रहे। जबतक स्नान करके शुद्ध न हो जाय, तबतक अपनी कोई बात भी वह पतिके कानोंमें न पड़ने दे। अच्छी तरह स्नान करनेके पश्चात् सबसे पहले वह अपने पतिके मुखका दर्शन करे, दूसरे किसीका मुँह कदापि न देखे अथवा मन-ही-मन पतिका चिन्तन करके सूर्यका दर्शन करे। पतिकी आयु बढ़नेकी अभिलाषा रखनेवाली पतिव्रता नारी हल्दी, रोली, सिन्दूर, काजल आदि; चोली, पान, माङ्गलिक आभूषण आदि; केशोंका सँवारना, चोटी गूँथना तथा हाथ-कानके आभूषण—इन सबको अपने शरीरसे दूर न करे। धोबिन, छिनाल या कुलटा, संन्यासिनी और भाग्यहीना स्त्रियोंको वह कभी अपनी सखी न बनाये। पतिसे द्वेष रखनेवाली स्त्रीका वह कभी आदर न करे। कहीं अकेली न खड़ी हो। कभी नंगी होकर न नहाये। सती स्त्री ओखली, मूसल, झाड़ू, सिल, जाँत और द्वारके चौखटके नीचेवाली लकड़ीपर कभी न बैठे। मैथुनकालके सिवा और किसी समयमें वह पतिके सामने धृष्टता न करे। जिस-जिस वस्तुमें पतिकी रुचि हो, उससे वह स्वयं भी प्रेम करे। पतिव्रता देवी सदा पतिका हित चाहनेवाली होती है। वह पतिके हर्षमें हर्ष माने। पतिके मुखपर विषादकी छाया देख स्वयं भी विषादमें डूब जाय तथा वह प्रियतम पतिके प्रति ऐसा बर्ताव करे, जिससे वह उन्हें प्यारी लगे। पुण्यात्मा पतिव्रता स्त्री सम्पत्ति और विपत्तिमें भी पतिके लिये एक-सी रहे। अपने मनमें कभी विकार न आने दे और सदा धैर्य धारण किये रहे। घी, नमक, तेल आदिके समाप्त हो जानेपर भी पतिव्रता स्त्री पतिसे सहसा यह न कहे कि अमुक वस्तु नहीं है। वह पतिको कष्ट या चिन्तामें न डाले। देवेश्वरि! पतिव्रता नारीके लिये एकमात्र पति ही ब्रह्मा, विष्णु और शिवसे भी अधिक माना गया है। उसके लिये अपना पति शिवरूप ही है*। जो पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके व्रत और उपवास आदिके नियमका पालन करती है, वह पतिकी आयु हर लेती है और मरनेपर नरकमें जाती है। जो स्त्री पतिके कुछ

---

* विधेर्विष्णोर्हराद्वापि पतिरेकोऽधिको मतः। पतिव्रताया देवेशि स्वपतिः शिव एव च॥

(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४। ४३)

कहनेपर क्रोधपूर्वक कठोर उत्तर देती है वह गाँवमें कुतिया और निर्जन वनमें सियारिन होती है। नारी पतिसे ऊँचे आसनपर न बैठे, दुष्ट पुरुषके निकट न जाय और पतिसे कभी कातर वचन न बोले। किसीकी निन्दा न करे। कलहको दूरसे ही त्याग दे। गुरुजनोंके निकट न तो उच्चस्वरसे बोले और न हँसे। जो बाहरसे पतिको आते देख तुरंत अन्न, जल, भोज्य वस्तु, पान और वस्त्र आदिसे उनकी सेवा करती है, उनके दोनों चरण दबाती है, उनसे मीठे वचन बोलती है तथा प्रियतमके खेदको दूर करनेवाले अन्यान्य उपायोंसे प्रसन्नतापूर्वक उन्हें संतुष्ट करती है, उसने मानो तीनों लोकोंको तृप्त एवं संतुष्ट कर दिया। पिता, भाई और पुत्र परिमित सुख देते हैं, परंतु पति असीम सुख देता है। अतः नारीको सदा अपने पतिका पूजन—आदर-सत्कार करना चाहिये। पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं व्रत है; इसलिये सबको छोड़कर एकमात्र पतिकी ही आराधना करनी चाहिये।*

जो दुर्बुद्धि नारी अपने पतिको त्यागकर एकान्तमें विचरती है (या व्यभिचार करती है), वह वृक्षके खोखलेमें शयन करनेवाली क्रूर उलूकी होती है। जो पराये पुरुषको कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखती है, वह ऐंचातानी देखनेवाली होती है। जो पतिको छोड़कर अकेले मिठाई खाती है, वह गाँवमें सूअरी होती है अथवा बकरी होकर अपनी ही विष्ठा खाती है। जो पतिको तू कहकर बोलती है, वह गूँगी होती है। जो सौतसे सदा ईर्ष्या रखती है, वह दुर्भाग्यवती होती है। जो पतिकी आँख बचाकर किसी दूसरे पुरुषपर दृष्टि डालती है, वह कानी, टेढ़े मुँहवाली तथा कुरूपा होती है। जैसे निर्जीव शरीर तत्काल अपवित्र हो जाता है, उसी तरह पतिहीना नारी भलीभाँति स्नान करनेपर भी सदा अपवित्र ही रहती है। लोकमें वह माता धन्य है, वह जन्मदाता पिता धन्य है तथा वह पति भी धन्य है, जिसके घरमें पतिव्रता देवी वास करती है। पतिव्रताके पुण्यसे पिता, माता और पतिके कुलोंकी तीन-तीन पीढ़ियोंके लोग स्वर्गलोकमें सुख भोगते हैं।† जो दुराचारिणी स्त्रियाँ अपना शील भङ्ग कर देती हैं, वे अपने माता-पिता और पति तीनोंके कुलोंको नीचे गिराती हैं तथा इस लोक और परलोकमें भी दुःख भोगती हैं। पतिव्रताका पैर जहाँ-जहाँ पृथ्वीका स्पर्श करता है, वहाँ-वहाँकी भूमि पापहारिणी तथा परम पावन बन जाती है।‡ भगवान् सूर्य, चन्द्रमा तथा वायुदेव भी अपने-आपको पवित्र करनेके लिये ही पतिव्रताका

---

* भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च। तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत्॥
(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ पा॰ खं॰ ५४। ५१)

† सा धन्या जननी लोके स धन्यो जनकः पिता। धन्यः स च पतिर्यस्य गृहे देवी पतिव्रता॥
पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः। पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गे सौख्यानि भुञ्जते॥
(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ पा॰ खं॰ ५४। ५८-५९)

‡ पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम्। तत्र तत्र भवेत् सा हि पापहन्त्री सुपावनी॥
(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ पा॰ खं॰ ५४। ६१)

स्पर्श करते हैं और किसी दृष्टिसे नहीं। जल भी सदा पतिव्रताका स्पर्श करना चाहता है और उसका स्पर्श करके वह अनुभव करता है कि आज मेरी जडताका नाश हो गया तथा आज मैं दूसरोंको पवित्र करनेवाला बन गया। भार्या ही गृहस्थ-आश्रमकी जड़ है, भार्या ही सुखका मूल है, भार्यासे ही धर्मके फलकी प्राप्ति होती है तथा भार्या ही संतानकी वृद्धिमें कारण है।*

क्या घर-घरमें अपने रूप और लावण्यपर गर्व करनेवाली स्त्रियाँ नहीं हैं? परंतु पतिव्रता स्त्री तो विश्वनाथ शिवके

प्रति भक्ति होनेसे ही प्राप्त होती है। भार्यासे इस लोक और परलोक दोनोंपर विजय पायी जा सकती है। भार्याहीन पुरुष देवयज्ञ, पितृयज्ञ और अतिथियज्ञ करनेका अधिकारी नहीं होता। वास्तवमें गृहस्थ वही है, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री है। दूसरी स्त्री तो पुरुषको उसी तरह अपना ग्रास (भोग्य) बनाती है, जैसे जरावस्था एवं राक्षसी। जैसे गङ्गास्नान करनेसे शरीर पवित्र होता है, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्रीका दर्शन करनेपर सब कुछ पावन हो जाता है।† पतिको ही इष्टदेव माननेवाली सती नारी और गङ्गामें कोई भेद नहीं है। पतिव्रता और उसके पतिदेव उमा और महेश्वरके समान हैं, अतः विद्वान् मनुष्य उन दोनोंका पूजन करे। पति प्रणव है और नारी वेदकी ऋचा; पति तप है और स्त्री क्षमा; नारी सत्कर्म है और पति उसका फल। शिवे! सती नारी और उसके पति—दोनों दम्पती धन्य हैं‡।

गिरिराजकुमारी! इस प्रकार मैंने तुमसे पतिव्रताधर्मका वर्णन किया है। अब तुम सावधान हो आज मुझसे प्रसन्नतापूर्वक पतिव्रताके भेदोंका वर्णन सुनो। देवि! पतिव्रता नारियाँ उत्तमा आदि भेदसे चार प्रकारकी बतायी गयी हैं, जो अपना स्मरण करनेवाले पुरुषोंका सारा पाप हर लेती हैं। उत्तमा, मध्यमा, निकृष्टा और

---

* भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च। भार्या धर्मफलावाप्त्यै भार्या संतानवृद्धये॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४।६६)

† यथा गङ्गावगाहेन शरीरं पावनं भवेत्। तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सकलं पावनं भवेत्॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४।६८)

‡ प्रणवः पतिः श्रुतिर्नारी क्षमा सा स स्वयं तपः। फलं पतिः सत्क्रिया सा धन्यौ तौ दम्पती शिवे॥
(शि० पु० रु० सं० पा० खं० ५४।७०)

अतिनिकृष्टा—ये पतिव्रताके चार भेद हैं। अब मैं इनके लक्षण बताती हूँ। ध्यान देकर सुनो। भद्रे! जिसका मन सदा स्वप्नमें भी अपने पतिको ही देखता है, दूसरे किसी परपुरुषको नहीं, वह स्त्री उत्तमा या उत्तम श्रेणीकी पतिव्रता कही गयी है। शैलजे! जो दूसरे पुरुषको उत्तम बुद्धिसे पिता, भाई एवं पुत्रके समान देखती है, उसे मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता कहा गया है। पार्वती! जो मनसे अपने धर्मका विचार करके व्यभिचार नहीं करती, सदाचारमें ही स्थित रहती है, उसे निकृष्टा अथवा निम्नश्रेणीकी पतिव्रता कहा गया है। जो पतिके भयसे तथा कुलमें कलङ्क लगनेके डरसे व्यभिचारसे बचनेका प्रयत्न करती है, उसे पूर्वकालके विद्वानोंने अतिनिकृष्टा अथवा निम्नतम कोटिकी पतिव्रता बताया है। शिवे! ये चारों प्रकारकी पतिव्रताएँ समस्त लोकोंका पाप नाश करनेवाली और उन्हें पवित्र बनानेवाली हैं। अत्रिकी स्त्री अनसूयाने ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवताओंकी प्रार्थनासे पातिव्रत्यके प्रभावका उपभोग करके वाराहके शापसे मरे हुए एक ब्राह्मणको जीवित कर दिया था। शैलकुमारी शिवे! ऐसा जानकर तुम्हें नित्य प्रसन्नतापूर्वक पतिकी सेवा करनी चाहिये। पतिसेवन सदा समस्त अभीष्ट फलोंको देनेवाला है। तुम साक्षात् जगदम्बा महेश्वरी हो और तुम्हारे पति साक्षात् भगवान् शिव हैं। तुम्हारा तो चिन्तनमात्र करनेसे स्त्रियाँ पतिव्रता हो जायँगी। देवि! यद्यपि तुम्हारे आगे यह सब कहनेका कोई प्रयोजन नहीं है, तथापि आज लोकाचारका आश्रय ले मैंने तुम्हें सती-धर्मका उपदेश दिया है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर वह ब्राह्मण-पत्नी शिवादेवीको मस्तक झुका चुप हो गयी। इस उपदेशको सुनकर शंकरप्रिया पार्वतीदेवीको बड़ा हर्ष हुआ।

(अध्याय ५४)

☆

शिव-पार्वती तथा उनकी बारातकी विदाई, भगवान् शिवका समस्त देवताओंको बिदा करके कैलासपर रहना और पार्वतीखण्डके श्रवणकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ब्राह्मणीने देवी पार्वतीको पतिव्रत-धर्मकी शिक्षा देनेके पश्चात् मेनाको बुलाकर कहा—'महारानीजी! अब अपनी पुत्रीकी यात्रा कराइये—इसे बिदा कीजिये।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर वे प्रेमके वशीभूत हो गयीं। फिर धैर्य धारण करके उन्होंने कालीको बुलाया और उसके वियोगके भयसे व्याकुल हो वे बेटीको बारंबार गलेसे लगाकर अत्यन्त उच्चस्वरसे रोने लगीं। फिर पार्वती भी करुणाजनक बात कहती हुई जोर-जोरसे रो पड़ीं। मेना और शिवा दोनों ही विरह-शोकसे पीड़ित हो मूर्च्छित हो गयीं। पार्वतीके रोनेसे देवपत्नियाँ भी अपनी सुध-बुध खो बैठीं। सारी स्त्रियाँ वहाँ रोने लगीं। वे सब-की-सब अचेत-सी हो गयीं। उस यात्राके समय परम प्रभु साक्षात् योगीश्वर शिव भी रो पड़े, फिर दूसरा कौन

चुप रह सकता था? इसी समय अपने समस्त पुत्रों, मन्त्रियों और उत्तम ब्राह्मणोंके साथ हिमालय शीघ्र वहाँ आ पहुँचे और मोहवश अपनी बच्चीको हृदयसे लगाकर रोने लगे। 'बेटी! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली जा रही हो?' ऐसा कहकर सारे जगत्‌को सूना मानते हुए वे बारंबार विलाप करने लगे। तब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पुरोहितने अन्य ब्राह्मणोंके सहयोगसे कृपापूर्वक अध्यात्मविद्याका उपदेश देते हुए सबको सुखद रीतिसे समझाया। पार्वतीने भक्ति-भावसे माता-पिता तथा गुरुको प्रणाम किया। वे महामाया होकर भी लोकाचारवश बार-बार रो उठती थीं। पार्वतीके रोनेसे ही सब स्त्रियाँ रोने लगती थीं। माता मेना तो बहुत रोयीं। भौजाइयाँ भी रोने लगीं। यही दशा भाइयोंकी थी। शिवाकी माँ, भाभियाँ तथा अन्य युवतियाँ बार-बार रोदन करने लगीं। भाई और पिता भी प्रेम और सौहार्दवश रोये बिना न रह सके। उस समय ब्राह्मणोंने मिलकर सबको आदरपूर्वक समझाया और यह सूचित किया कि यात्राके लिये यही सबसे उत्तम तथा सुखद लग्न है।

तब हिमालय और मेनाने विवेकपूर्वक धैर्य धारण करके शिवाके बैठनेके लिये पालकी मँगवायी, ब्राह्मणोंकी पत्नियोंने शिवाको उसपर चढ़ाया और सबने मिलकर आशीर्वाद दिया। पिता-माता और ब्राह्मणोंने भी अपनी शुभ कामना प्रकट की। मेना और हिमालयने पार्वतीको ऐसे-ऐसे सामान दिये, जो महारानीके योग्य थे। नाना प्रकारके द्रव्योंकी शुभ राशि भेंट की, जो दूसरोंके लिये परम दुर्लभ थी। शिवाने समस्त गुरुजनोंको, माता-पिताको, पुरोहित और ब्राह्मणोंको तथा भौजाइयों और दूसरी स्त्रियोंको प्रणाम करके यात्रा की। पुत्रोंसहित बुद्धिमान् हिमाचल भी स्नेहके वशीभूत हो पीछे-पीछे गये और उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ देवताओंसहित भगवान् शिव प्रसन्नतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। वहाँ सब लोग बड़े प्रेम और आनन्दसे परस्पर मिले। उन सबने भगवान्‌को प्रणाम किया और उनकी प्रशंसा करते हुए वे पुरीको लौट गये।

तदनन्तर कैलास पहुँचकर भगवान् शिवने पार्वतीसे कहा—'देवेश्वरि! तुम सदासे ही मेरी प्राणप्रिया हो। तुम्हें लीलापूर्वक इस बातकी याद दिला रहा हूँ। तुम्हें पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण है। अतः मेरे और अपने नित्य सम्बन्धका यदि तुम्हें स्मरण हो तो बताओ।' अपने प्राणनाथ महेश्वरकी यह बात सुनकर शंकरकी नित्य प्रिया पार्वती मुस्कराती हुई बोलीं—'प्राणेश्वर! मुझे सब बातोंका स्मरण है, किंतु इस समय आप चुप रहिये और इस अवसरके अनुरूप जो कार्य हो, उसीको शीघ्र पूर्ण कीजिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! प्रिया पार्वतीके सैकड़ों सुधा-धाराओंके समान मधुर वचनको सुनकर लोकाचार-परायण भगवान् विश्वनाथ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बहुत-सी सामग्रियाँ एकत्र करके नारायण आदि देवताओंको भाँति-भाँतिकी मनोहर भोज्य वस्तुएँ खिलायीं। इसी तरह अपने विवाहमें पधारे हुए दूसरे लोगोंको भी भगवान् शंकरने प्रेमपूर्वक सुमधुर रससे युक्त नाना प्रकारका अन्न भोजन कराया। भोजन करनेके पश्चात् उन सब देवताओंने

नाना रत्नोंसे विभूषित हो अपनी स्त्रियों और सेवकगणोंके साथ आकर प्रभु चन्द्रशेखरको प्रणाम किया। फिर प्रिय वचनोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक उनकी स्तुति एवं परिक्रमा करके शिव-विवाहकी प्रशंसा करते हुए वे सब लोग अपने-अपने धामको चले गये। मुने ! साक्षात् भगवान् शिवने लोकाचारवश भगवान् विष्णुको और मुझको भी प्रणाम किया—ठीक उसी तरह, जैसे वामनरूपधारी श्रीहरिने महर्षि कश्यपको नमस्कार किया था। तब मैंने और श्रीविष्णुने शिवको हृदयसे लगाकर उनको आशीर्वाद दिया। तदनन्तर श्रीहरिने उन्हें परब्रह्म परमात्मा मानकर उनकी उत्तम स्तुति की। इसके बाद मेरेसहित भगवान् विष्णु शिवसे विदा ले शिवा और शिवको प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़ उनके विवाहकी प्रशंसा करते हुए अपने उत्तम धामको गये। भगवान् शिव भी पार्वतीके साथ सानन्द विहार करते हुए अपने निवासभूत कैलास पर्वतपर रहने लगे। समस्त शिवगणोंको इस विवाहसे बड़ा सुख मिला। वे अत्यन्त भक्तिपूर्वक शिवा और शिवकी आराधना करने लगे।

तात ! इस प्रकार मैंने परम मङ्गलमय शिव-विवाहका वर्णन किया। यह शोकनाशक, आनन्ददायक तथा धन और आयुकी वृद्धि करनेवाला है। जो पुरुष भगवान् शिव और शिवामें मन लगाकर पवित्र हो प्रतिदिन इस प्रसङ्गको सुनता अथवा नियमपूर्वक दूसरोंको सुनाता है, वह शिवलोक प्राप्त कर लेता है। यह अद्भुत आख्यान कहा गया, जो मङ्गलका आवासस्थान है। यह सम्पूर्ण विघ्नोंको शान्त करके समस्त रोगोंका नाश करनेवाला है। इसके द्वारा स्वर्ग, यश, आयु तथा पुत्र और पौत्रोंकी प्राप्ति होती है। यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करता, इस लोकमें भोग देता और परलोकमें मोक्ष प्रदान करता है। इस शुभ प्रसङ्गको सुननेसे अपमृत्युका शमन होता है और परम शान्तिकी प्राप्ति होती है। यह समस्त दुःस्वप्नोंका नाशक तथा बुद्धि एवं विवेक आदिका साधक है। अपने शुभकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको शिव-सम्बन्धी सभी उत्सवोंमें प्रसन्नताके साथ प्रयत्नपूर्वक इसका पाठ करना चाहिये। यह भगवान् शिवको संतोष प्रदान करनेवाला है। विशेषतः देवता आदिकी प्रतिष्ठाके समय तथा शिवसम्बन्धी सभी कार्योंके प्रसङ्गमें प्रसन्नतापूर्वक इसका पाठ करना चाहिये अथवा पवित्र हो शिव-पार्वतीके इस कल्याणकारी चरित्रका श्रवण करना चाहिये। ऐसा करनेसे समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है।

(अध्याय ५५)

☆

॥ रुद्रसंहिताका पार्वतीखण्ड सम्पूर्ण ॥

☆

रुद्रसंहिता, चतुर्थ (कुमार) खण्ड

देवताओंद्वारा स्कन्दका शिव-पार्वतीके पास लाया जाना, उनका लाड़-प्यार, देवोंके माँगनेपर शिवजीका उन्हें तारक-वधके लिये स्वामी कार्तिकको देना, कुमारकी अध्यक्षतामें देवसेनाका प्रस्थान, महीसागर-संगमपर तारकासुरका आना और दोनों सेनाओंमें मुठभेड़, वीरभद्रका तारकके साथ घोर संग्राम, पुनः श्रीहरि और तारकमें भयानक युद्ध

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं
पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं
विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शंकरम्॥

वन्दना करनेसे जिनका मन प्रसन्न हो जाता है, जिन्हें प्रेम अत्यन्त प्यारा है, जो प्रेम प्रदान करनेवाले, पूर्णानन्दमय, भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले, सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके एकमात्र आवासस्थान और कल्याणस्वरूप हैं, सत्य जिनका श्रीविग्रह है, जो सत्यमय हैं, जिनका ऐश्वर्य त्रिकालाबाधित है, जो सत्यप्रिय एवं सत्य-प्रदाता हैं, ब्रह्मा और विष्णु जिनकी स्तुति करते हैं, स्वेच्छानुसार शरीर धारण करनेवाले उन भगवान् शंकरकी मैं वन्दना करता हूँ।

श्रीनारदजीने पूछा—देवताओंका मङ्गल करनेवाले देव! परमात्मा शिव तो सर्वसमर्थ हैं। आत्माराम होकर भी उन्होंने जिस पुत्रकी उत्पत्तिके लिये पार्वतीके साथ विवाह किया था, उनके वह पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुआ? तथा तारकासुरका वध कैसे हुआ? ब्रह्मन्! मुझपर कृपा करके यह सारा वृत्तान्त पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये।

इसके उत्तरमें ब्रह्माजीने कथाप्रसङ्ग सुनाकर कुमारके गङ्गासे उत्पन्न होने तथा कृत्तिका आदि छः स्त्रियोंके द्वारा उनके पाले जाने, उन छहोंकी संतुष्टिके लिये उनके छः मुख धारण करने और कृत्तिकाओंके द्वारा पाले जानेके कारण उनका 'कार्तिकेय' नाम होनेकी बात कही। तदनन्तर उनके शंकर-गिरिजाकी सेवामें लाये जानेकी कथा सुनायी। फिर ब्रह्माजीने कहा—भगवान् शंकरने कुमारको गोदमें बैठाकर अत्यन्त स्नेह किया। देवताओंने उन्हें नाना प्रकारके पदार्थ, विद्याएँ, शक्ति और अस्त्र-शस्त्रादि प्रदान किये। पार्वतीके हृदयमें प्रेम समाता नहीं था, उन्होंने हर्षपूर्वक मुसकराकर कुमारको परमोत्तम ऐश्वर्य प्रदान किया, साथ ही चिरंजीवी भी बना दिया। लक्ष्मीने दिव्य सम्पत् तथा एक विशाल एवं मनोहर हार अर्पित किया। सावित्रीने प्रसन्न होकर सारी सिद्धविद्याएँ प्रदान कीं। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार वहाँ महोत्सव मनाया गया। सभीके मन प्रसन्न थे। विशेषतः शिव और पार्वतीके आनन्दका पार नहीं था। इसी बीच देवताओंने भगवान् शंकरसे कहा—प्रभो! यह तारकासुर कुमारके हाथों ही मारा जानेवाला है, इसीलिये ही यह (पार्वती-परिणय तथा कुमारोत्पत्ति आदि) उत्तम चरित घटित हुआ है। अतः हमलोगोंके सुखार्थ उसका काम तमाम

करनेके हेतु कुमारको आज्ञा दीजिये। हमलोग आज ही अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर तारकको मारनेके लिये रण-यात्रा करेंगे।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! यह सुनकर भगवान् शंकरका हृदय दयार्द्र हो गया। उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उसी समय तारकका वध करनेके लिये अपने पुत्र कुमारको देवताओंको सौंप दिया। फिर तो शिवजीकी आज्ञा मिल जानेपर ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता एकत्र होकर गुहको आगे करके तुरंत ही उस पर्वतसे चल दिये। उस समय श्रीहरि आदि देवताओंके मनमें पूर्ण विश्वास था (कि ये अवश्य तारकका वध कर डालेंगे); वे भगवान् शंकरके तेजसे भावित हो कुमारके सेनापतित्वमें तारकका संहार करनेके लिये (रणक्षेत्रमें) आये। उधर महाबली तारकने जब देवताओंके इस युद्धोद्योगको सुना, तब वह भी एक विशाल सेनाके साथ देवोंसे युद्ध करनेके लिये तत्काल ही चल पड़ा। उसकी उस विशाल वाहिनीको आती देख देवताओंको परम विस्मय हुआ। फिर तो वे बलपूर्वक बारंबार सिंहनाद करने लगे। उसी समय तुरंत ही भगवान् शंकरकी प्रेरणासे विष्णु आदि सम्पूर्ण देवताओंके प्रति आकाशवाणी हुई।

आकाशवाणीने कहा—देवगण! तुमलोग जो कुमारके अधिनायकत्वमें युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए हो, इससे तुम संग्राममें दैत्योंको जीतकर विजयी होओगे।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! उस आकाशवाणीको सुनकर सभी देवताओंका उत्साह बढ़ गया। उनका भय जाता रहा और वे वीरोचित गर्जना करने लगे। उनकी युद्ध-कामना बलवती हो उठी और वे सब-के-सब कुमारको अग्रणी बनाकर बड़ी उतावलीके साथ महीसागर-संगमको गये। उधर बहुसंख्यक असुरोंसे घिरा हुआ वह तारक भी बहुत बड़ी सेनाके साथ शीघ्र ही वहाँ आ धमका, जहाँ वे सभी देवता खड़े थे। उस असुरके आगमन-कालमें प्रलयकालीन मेघोंके समान गर्जना करनेवाली रणभेरियाँ तथा अन्यान्य कर्कश शब्द करनेवाले रणवाद्य बज रहे थे। उस समय तारकासुरके साथ आनेवाले दैत्य ताल ठोंकते हुए गर्जना कर रहे थे। उनके पदाघातसे पृथ्वी काँप उठती थी। उस अत्यन्त भयंकर कोलाहलको सुनकर भी सभी देवता निर्भय ही बने रहे। वे एक साथ मिलकर तारकासुरसे लोहा लेनेके लिये डटकर खड़े हो गये। उस समय देवराज इन्द्र कुमारको गजराजपर बैठाकर सबसे आगे खड़े हुए। वे लोकपालोंसे घिरे हुए थे और उनके साथ देवताओंकी महती सेना थी। तत्पश्चात् कुमारने उस गजराजको तो महेन्द्रको ही दे दिया और वे स्वयं एक ऐसे विमानपर आरूढ़ हुए, जो परमाश्चर्यजनक तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित था। उस समय उस विमानपर सवार होनेसे सर्वगुणसम्पन्न महायशस्वी शंकर-पुत्र कुमार उत्कृष्ट शोभासे संयुक्त होकर सुशोभित हो रहे थे। उनपर परम प्रकाशमान चँवर डुलाये जा रहे थे। इसी बीच बलाभिमानी एवं महावीर देवता और दैत्य क्रोधसे विह्वल होकर परस्पर युद्ध करने लगे। उस समय देवताओं और दैत्योंमें बड़ा घमासान युद्ध हुआ। क्षणभरमें ही सारी रणभूमि रुण्ड-मुण्डोंसे व्याप्त हो गयी।

तब महाबली तारकासुर बहुत बड़ी सेनाके साथ देवताओंसे युद्ध करनेके लिये वेगपूर्वक आगे बढ़ा। उस रणदुर्मद तारकको युद्धकी कामनासे आगे बढ़ते देखकर इन्द्र आदि देवता तुरंत ही उसके सामने आये। फिर तो दोनों सेनाओंमें महान् कोलाहल होने लगा। तत्पश्चात् देवों तथा असुरोंका विनाश करनेवाला ऐसा द्वन्द्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ, जिसे देखकर वीरलोग हर्षोत्फुल्ल हो गये और कायरोंके मनमें भय समा गया। इसी समय वीरभद्र कुपित होकर महाबली प्रमथगणोंके साथ वीराभिमानी तारकके समीप आ पहुँचे। वे बलवान् गणनायक भगवान् शिवके कोपसे उत्पन्न हुए थे, अतः समस्त देवताओंको पीछे करके युद्धकी अभिलाषासे तारकके सम्मुख डट गये। उस समय प्रमथगणों तथा सारे असुरोंके मनमें परमोल्लास था, अतः वे उस महासमरमें परस्पर गुत्थमगुत्था होकर जूझने लगे। तदनन्तर वीरभद्रसे तारकका भयानक युद्ध हुआ। इसी बीच असुरोंकी सेना रणसे विमुख हो भाग चली। इस प्रकार अपनी सेनाको तितर-बितर हुई देख उसका नायक तारकासुर क्रोधसे भर गया और दस हजार भुजाएँ धारण करके सिंहपर सवार हो देवगणोंको मार डालनेके लिये वेगपूर्वक उनकी ओर झपटा। वह युद्धके मुहानेपर देवों तथा प्रमथगणोंको मार-मारकर गिराने लगा। तब प्रमथगणोंके नेता महाबली वीरभद्र उसके उस कर्मको देखकर उसका वध करनेके लिये अत्यन्त कुपित हो उठे। फिर तो उन्होंने भगवान् शिवके चरण-कमलका ध्यान करके एक ऐसा श्रेष्ठ त्रिशूल हाथमें लिया, जिसके तेजसे सारी दिशाएँ और आकाश प्रकाशित हो उठे। इसी अवसरपर महान् कौतुक प्रदर्शन करनेवाले स्वामिकार्तिकने तुरंत ही वीरबाहुद्वारा कहलाकर उस युद्धको रोक दिया। तब स्वामीकी आज्ञासे वीरभद्र उस युद्धसे हट गये। यह देखकर असुर-सेनापति महावीर तारक कुपित हो उठा। वह युद्ध-कुशल तथा नाना प्रकारके अस्त्रोंका जानकार था, अतः देवताओंको ललकार-ललकारकर उनपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा। उस समय बलवानोंमें श्रेष्ठ असुरराज तारकने ऐसा महान् कर्म किया कि सारे देवता मिलकर भी उसका सामना न कर सके। उन भयभीत देवताओंको यों पिटते हुए देखकर भगवान् अच्युतको क्रोध हो आया और वे शीघ्र ही युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। उन भगवान् श्रीहरिने अपने आयुध सुदर्शनचक्र और शार्ङ्गधनुषको लेकर युद्धस्थलमें महादैत्य तारकपर आक्रमण किया। मुने! तदनन्तर सबके देखते-देखते श्रीहरि और तारकासुरमें अत्यन्त भयंकर एवं रोमाञ्चकारी महायुद्ध छिड़ गया। इसी बीच अच्युतने कुपित होकर महान् सिंहनाद किया और धधकती हुई ज्वालाओंके-से प्रकाशवाले अपने चक्रको उठाया। फिर तो श्रीहरिने उसी चक्रसे दैत्यराज तारकपर प्रहार किया। उसकी चोटसे अत्यन्त व्यथित होकर वह असुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। परंतु वह असुरनायक तारक अत्यन्त बलवान् था, अतः तुरंत ही उठकर उस दैत्यराजने अपनी शक्तिसे चक्रके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। मुने! भगवान् विष्णु और तारकासुर दोनों बलवान् थे और दोनोंमें अगाध बल था, अतः युद्धस्थलमें वे परस्पर जूझने लगे।

(अध्याय ९—८)

ब्रह्माजीकी आज्ञासे कुमारका युद्धके लिये जाना, तारकके साथ उनका भीषण संग्राम और उनके द्वारा तारकका वध, तत्पश्चात् देवोंद्वारा कुमारका अभिनन्दन और स्तवन, कुमारका उन्हें वरदान देकर कैलासपर जा शिव-पार्वतीके पास निवास करना

तब ब्रह्माजीने कहा—शंकरसुवन स्वामी कार्तिक ! तुम तो देवाधिदेव हो। पार्वती-सुत ! विष्णु और तारकासुरका यह व्यर्थ युद्ध शोभा नहीं दे रहा है, क्योंकि विष्णुके हाथों इस तारककी मृत्यु नहीं होगी। यह मुझसे वरदान पाकर अत्यन्त बलवान् हो गया है। यह मैं बिलकुल सत्य बात कह रहा हूँ। पार्वती-नन्दन ! तुम्हारे अतिरिक्त इस पापीको मारनेवाला दूसरा कोई नहीं है, इसलिये महाप्रभो ! तुम्हें मेरे कथनानुसार ही करना चाहिये। परंतप ! तुम शीघ्र ही उस दैत्यका वध करनेके लिये तैयार हो जाओ; क्योंकि पार्वती-पुत्र ! तारकका संहार करनेके निमित्त ही तुम शंकरसे उत्पन्न हुए हो।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! यों मेरा कथन सुनकर शंकरनन्दन कुमार कार्तिकेय ठठाकर हँस पड़े और प्रसन्नतापूर्वक बोले—'तथास्तु—ऐसा ही होगा।' तब महान् ऐश्वर्यशाली शंकरसुवन कुमार तारकासुरके वधका निश्चय करके विमानसे उतर पड़े और पैदल हो गये। जिस समय महाबली शिव-पुत्र कुमार अपनी अत्यन्त चमकीली शक्तिको, जो लपटोंसे दमकती हुई एक बड़ी उल्का-सी जान पड़ती थी, हाथमें लेकर पैदल ही दौड़ रहे थे, उस समय उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी। उनके मनमें तनिक भी व्याकुलता नहीं थी। वे परम प्रचण्ड और अप्रमेय बलशाली थे। उन षण्मुखको अपनी ओर आते देखकर तारक सुरश्रेष्ठोंसे

बोला—'क्या शत्रुओंका संहार करनेवाला कुमार यही है ? मैं अकेला वीर इसके साथ युद्ध करूँगा और मैं ही समस्त वीरों, प्रमथगणों, लोकपालों तथा श्रीहरि जिनके नायक हैं, उन देवोंको भी मार डालूँगा।'

तदनन्तर देवताओंको दुर्वचन कहकर वह असुर तारक भीषण युद्ध करने लगा। उस समय बड़ा विकट संग्राम हुआ। तब शत्रु-वीरोंका संहार करनेवाले कुमारने शिवजीके चरण-कमलोंका स्मरण करके तारकके वधका विचार किया। फिर तो

महातेजस्वी एवं महाबली कुमार रोषावेशमें आकर गर्जना करने लगे और बहुत बड़ी सेनाके साथ युद्धके लिये डटकर खड़े हो गये। उस समय समस्त देवताओंने जय-जयकारका शब्द किया और देवर्षियोंने इष्ट वाणीद्वारा उनकी स्तुति की। तब तारक और कुमारका संग्राम प्रारम्भ हुआ, जो अत्यन्त दुस्सह, महान् भयंकर और सम्पूर्ण प्राणियोंको भयभीत करनेवाला था। कुमार और तारक दोनों ही शक्ति-युद्धमें परम प्रवीण थे, अतः अत्यन्त रोषावेशमें वे परस्पर एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। परम पराक्रमी वे दोनों नाना प्रकारके पैंतरे बदलते हुए गर्जना कर रहे थे और अनेक प्रकारसे दाव-पेंचसे एक-दूसरेपर आघात कर रहे थे। उस समय देवता, गन्धर्व और किन्नर—सभी चुपचाप खड़े होकर यह दृश्य देखते रहे। उन्हें परम विस्मय हुआ—यहाँतक कि वायुका चलना बंद हो गया, सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी और पर्वत एवं वन-काननोंसहित सारी पृथ्वी काँप उठी। इसी अवसरपर हिमालय आदि पर्वत स्नेहाभिभूत होकर कुमारकी रक्षाके लिये वहाँ आये। तब उन सभी पर्वतोंको भयभीत देखकर शंकर एवं गिरिजाके पुत्र कुमार उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले।

कुमारने कहा—'महाभाग पर्वतो! तुमलोग खेद मत करो। तुम्हें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं आज तुम सब लोगोंकी आँखोंके सामने ही इस पापीका काम तमाम कर दूँगा।' यों उन पर्वतों तथा देवगणोंको ढाढ़स बँधाकर कुमारने गिरिजा और शम्भुको प्रणाम किया तथा अपनी कान्तिमती शक्तिको हाथमें लिया। शम्भुपुत्र कुमार महाबली तथा महान् ऐश्वर्यशाली तो थे ही। जब उन्होंने तारकका वध करनेकी इच्छासे शक्ति हाथमें ली, उस समय उनकी अद्भुत शोभा हुई। तदनन्तर शंकरजीके तेजसे सम्पन्न कुमारने उस शक्तिसे तारकासुरपर, जो समस्त लोकोंको कष्ट देनेवाला था, प्रहार किया। उस शक्तिके आघातसे तारकासुरके सभी अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये और सम्पूर्ण असुरगणोंका अधिपति वह महावीर सहसा धराशायी हो गया। मुने! सबके देखते-देखते वहीं कुमारद्वारा मारे गये तारकके प्राणपखेरू उड़ गये। उस उत्कृष्ट वीर तारकको महासमरमें प्राणरहित होकर गिरा हुआ देखकर वीरवर कुमारने पुनः उसपर वार नहीं किया। उस महाबली दैत्यराज तारकके मारे जानेपर देवताओंने बहुत-से असुरोंको मौतके घाट उतार दिया। उस युद्धमें कुछ असुरोंने भयभीत होकर हाथ जोड़ लिये, कुछके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये और हजारों दैत्य मृत्युके अतिथि बन गये। कुछ शरणार्थी दैत्य अञ्जलि बाँधकर 'पाहि-पाहि—रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' यों पुकारते हुए कुमारके शरणापन्न हो गये। कुछ मार डाले गये और कुछ मैदान छोड़कर भाग गये। सहस्रों दैत्य जीवनकी आशासे भागकर पातालमें घुस गये। उन सबकी आशाएँ भग्न हो गयी थीं और मुखपर दीनता छायी हुई थी।

मुनीश्वर! इस प्रकार वह सारी दैत्यसेना विनष्ट हो गयी। देवगणोंके भयसे कोई भी वहाँ ठहर न सका। उस दुरात्मा तारकके मारे जानेपर सभी लोक निष्कण्टक हो गये और इन्द्र आदि सभी देवता

आनन्दमग्न हो गये। यों कुमारको विजयी देखकर एक साथ ही सम्पूर्ण देवताओं तथा त्रिलोकीके समस्त प्राणियोंको महान् आनन्द प्राप्त हुआ। उस समय भगवान् शंकर भी कार्तिकेयकी विजयका समाचार पाकर प्रसन्नतासे भर गये और पार्वतीजीके साथ गणोंसे घिरे हुए वहाँ पधारे। तब जिनके हृदयमें स्नेह समाता नहीं था, वे पार्वतीजी परम प्रेमपूर्वक सूर्यके समान तेजस्वी अपने पुत्र कुमारको अपनी गोदमें लेकर लाड़-प्यार करने लगीं। उसी अवसरपर अपने पुत्रोंसे घिरे हुए हिमालयने बन्धु-बान्धवों तथा अनुयायियोंके साथ आकर शम्भु, पार्वती और गुहका स्तवन किया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवगण, मुनि, सिद्ध और चारणोंने शिवनन्दन कुमार, शम्भु और परम प्रसन्न हुई पार्वतीकी स्तुति की। उस समय उपदेवोंने बहुत बड़ी पुष्प-वर्षा की। सभी प्रकारके बाजे बजने लगे। विशेषरूपसे जयकार और नमस्कारके शब्द बारंबार उच्चस्वरसे गूँजने लगे। उस समय वहाँ एक महान् विजयोत्सव मनाया गया, जिसमें कीर्तनकी विशेषता थी और वह स्थान गाने-बजानेके शब्द तथा अधिकाधिक ब्रह्मघोषसे व्याप्त था। मुने! समस्त देवगणोंने प्रसन्नतापूर्वक गा-बजाकर तथा हाथ जोड़कर भगवान् जगन्नाथकी स्तुति की। तत्पश्चात् सबसे प्रशंसित तथा अपने गणोंसे घिरे हुए भगवान् रुद्र जगज्जननी भवानीके साथ अपने निवास-स्थान कैलास पर्वतको चले गये।

इधर तारकको मारा गया देखकर सभी देवताओं तथा अन्य समस्त प्राणियोंके चेहरेपर हँसी खेलने लगी। वे भक्तिपूर्वक शंकरसुवन कुमारकी स्तुति करने लगे—

'देव! तुम दानवश्रेष्ठ तारकका हनन करनेवाले हो, तुम्हें नमस्कार है। शंकरनन्दन! तुम बाणासुरके प्राणोंका अपहरण करनेवाले तथा प्रलम्बासुरके विनाशक हो। तुम्हारा स्वरूप परम पवित्र है, तुम्हें हमारा अभिवादन है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! जब विष्णु आदि देवताओंने इस प्रकार कुमारका स्तवन किया, तब उन प्रभुने सभी देवोंको क्रमशः नया-नया वर प्रदान किया। तत्पश्चात् पर्वतोंको स्तुति करते देखकर वे शंकर-तनय परम प्रसन्न हुए और उन्हें वर देते हुए बोले।

स्कन्दने कहा—भूधरो! तुम सभी पर्वत तपस्वियोंद्वारा पूजनीय तथा कर्मठ और ज्ञानियोंके लिये सेवनीय होओगे। ये जो मेरे मातामह (नाना) पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् हैं, ये महाभाग आजसे तपस्वियोंके लिये फलदाता होंगे।

तब देवता बोले—कुमार! यों

असुरराज तारकको मारकर तथा देवोंको वर प्रदान करके तुमने हम सबको तथा चराचर जगत्‌को सुखी कर दिया। अब तुम्हें परम प्रसन्नतापूर्वक अपने माता-पिता पार्वती और शंकरका दर्शन करनेके लिये शिवके निवासभूत कैलासपर चलना चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर सब देवताओंके साथ विमानपर चढ़कर कुमार स्कन्द शिवजीके समीप कैलास पहुँच गये। उस समय शिव-शिवाने बड़ा आनन्द मनाया। देवताओंने शिवजीकी स्तुति की। शिवजीने उन्हें वरदान तथा अभयदान देकर विदा किया। मुने! उस अवसरपर देवताओंको परम आनन्द प्राप्त हुआ। वे शिव, पार्वती तथा शंकरनन्दन कुमारके रमणीय यशका बखान करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये। इधर परमेश्वर शिव भी शिवा, कुमार तथा गणोंके साथ आनन्दपूर्वक उस पर्वतपर निवास करने लगे। मुने! इस प्रकार जो शिव-भक्तिसे ओतप्रोत, सुखदायक एवं दिव्य है, कुमारका वह सारा चरित्र मैंने तुमसे वर्णन कर दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ९—१२)

☆

शिवाका अपनी मैलसे गणेशको उत्पन्न करके द्वारपाल-पदपर नियुक्त करना, गणेशद्वारा शिवजीके रोके जानेपर उनका शिवगणोंके साथ भयंकर संग्राम, शिवजीद्वारा गणेशका शिरश्छेदन, कुपित हुई शिवाका शक्तियोंको उत्पन्न करना और उनके द्वारा प्रलय मचाया जाना, देवताओं और ऋषियोंका स्तवनद्वारा पार्वतीको प्रसन्न करना, उनके द्वारा पुत्रको जिलाये जानेकी बात कही जानेपर शिवजीके आज्ञानुसार हाथीका सिर लाया जाना और उसे गणेशके धड़से जोड़कर उन्हें जीवित करना

सूतजी कहते हैं—तारकारि कुमारके उत्तम एवं अद्भुत वृत्तान्तको सुनकर नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पुनः प्रेमपूर्वक ब्रह्माजीसे पूछा।

नारदजी बोले—देवदेव! आप तो शिव-सम्बन्धी ज्ञानके अथाह सागर हैं। प्रजानाथ! मैंने स्वामी कार्तिकके सद्वृत्तान्तको जो अमृतसे भी उत्तम है, सुन लिया। अब गणेशका उत्तम चरित्र सुनना चाहता हूँ। आप उनका जन्म-वृत्तान्त तथा दिव्य चरित्र, जो सम्पूर्ण मङ्गलोंके लिये भी मङ्गलस्वरूप है, वर्णन कीजिये।

सूतजी कहते हैं—महामुनि नारदका ऐसा वचन सुनकर ब्रह्माजीका मन हर्षसे गद्गद हो गया। वे शिवजीका स्मरण करके बोले।

ब्रह्माजीने कहा—नारद! पहले जो मैंने विधिपूर्वक गणेशकी उत्पत्तिका वर्णन किया था कि शनिकी दृष्टि पड़नेसे गणेशका मस्तक कट गया था, तब उसपर हाथीका

मुख लगा दिया गया था, वह कल्पान्तरकी कथा है! अब श्वेतकल्पमें घटित हुई गणेशकी जन्म-कथाका वर्णन करता हूँ, जिसमें कृपालु शंकरने ही उनका मस्तक काट लिया था। मुने! इस विषयमें तुम्हें संदेह नहीं करना चाहिये; क्योंकि भगवान् शम्भु कल्याणकारी, सृष्टिकर्ता और सबके स्वामी हैं। वे ही सगुण और निर्गुण भी हैं। उन्हींकी लीलासे सारे विश्वकी सृष्टि, रक्षा और विनाश होता है। मुनिश्रेष्ठ! अब प्रस्तुत विषयको आदरपूर्वक श्रवण करो।

एक समय पार्वतीजीकी जया-विजया नामवाली सखियाँ उनके पास आकर विचार करने लगीं—'सखी! सभी गण रुद्रके ही हैं। नन्दी, भृङ्गी आदि जो हमारे हैं, वे भी शिवके ही आज्ञापालनमें तत्पर रहते हैं। जो असंख्य प्रमथगण हैं, उनमें भी हमारा कोई नहीं है। वे सभी शिवाज्ञा-परायण होकर द्वारपर खड़े रहते हैं। यद्यपि वे सभी हमारे भी हैं, तथापि उनसे हमारा मन नहीं मिलता; अतः पापरहिते! आपको भी हमारे लिये एक गणकी रचना करनी चाहिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! जब सखियोंने पार्वतीजीसे ऐसा सुन्दर वचन कहा, तब उन्होंने उसे हितकारक माना और वैसा करनेका विचार भी किया। तदनन्तर किसी समय जब पार्वतीजी स्नान कर रही थीं, तब सदाशिव नन्दीको डरा-धमकाकर घरके भीतर चले आये। शंकरजीको आते देखकर स्नान करती हुई जगज्जननी पार्वती उठकर खड़ी हो गयीं। उस समय उनको बड़ी लज्जा आयी। वे आश्चर्यचकित हो गयीं। उस अवसरपर उन्होंने सखियोंके वचनको हितकारक तथा सुखप्रद माना। उस समय ऐसी घटना घटित होनेपर परमाया परमेश्वरी शिवपत्नी पार्वतीने मनमें ऐसा विचार किया कि मेरा कोई एक ऐसा सेवक होना चाहिये, जो परम शुभ, कार्यकुशल और मेरी ही आज्ञामें तत्पर रहनेवाला हो, उससे तनिक भी विचलित होनेवाला न हो। यों विचारकर पार्वतीदेवीने अपने शरीरकी मैलसे एक ऐसे चेतन पुरुषका निर्माण किया, जो सम्पूर्ण शुभलक्षणोंसे संयुक्त था। उसके सभी अङ्ग सुन्दर एवं दोषरहित थे। उसका वह शरीर विशाल, परम शोभायमान और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था। देवीने उसे अनेक प्रकारके वस्त्र, नाना प्रकारके आभूषण और बहुत-सा उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—'तुम मेरे पुत्र हो। मेरे अपने ही हो। तुम्हारे समान प्यारा मेरा यहाँ कोई दूसरा नहीं है।' पार्वतीके ऐसा कहनेपर वह पुरुष उन्हें नमस्कार करके बोला।

गणेशने कहा—'माँ! आज आपको कौन-सा कार्य आ पड़ा है? मैं आपके कथनानुसार उसे पूर्ण करूँगा।' गणेशके यों पूछनेपर पार्वतीजी अपने पुत्रको उत्तर देते हुए बोलीं।

शिवाने कहा—तात! तुम मेरे पुत्र हो, मेरे अपने हो। अतः तुम मेरी बात सुनो। आजसे तुम मेरे द्वारपाल हो जाओ। सत्पुत्र! मेरी आज्ञाके बिना कोई भी हठपूर्वक मेरे महलके भीतर प्रवेश न करने पाये, चाहे वह कहींसे भी आये, कोई भी हो। बेटा! यह मैंने तुमसे बिलकुल सत्य बात कही है।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! यों कहकर पार्वतीने गणेशके हाथमें एक सुदृढ़ छड़ी दे

दी। उस समय उनके सुन्दर रूपको

निहारकर पार्वती हर्षमग्न हो गयीं। उन्होंने परम प्रेमपूर्वक अपने पुत्रका मुख चूमा और कृपापरवश हो छातीसे लगा लिया। फिर दण्डधारी गणराजको अपने द्वारपर स्थापित कर दिया। बेटा नारद! तदनन्तर पार्वतीनन्दन महावीर गणेश पार्वतीकी हित-कामनासे हाथमें छड़ी लेकर गृह-द्वारपर पहरा देने लगे। उधर शिवा अपने पुत्र गणेशको अपने दरवाजेपर नियुक्त करके स्वयं सखियोंके साथ स्नान करने लगीं। मुनिश्रेष्ठ! इसी समय भगवान् शिव, जो परम कौतुकी तथा नाना प्रकारकी लीलाएँ रचनेमें निपुण हैं, द्वारपर आ पहुँचे। गणेश उन पार्वतीपतिको पहचानते तो थे नहीं, अतः बोल उठे— 'देव! माताकी आज्ञाके बिना तुम अभी भीतर न जाओ। माता स्नान करने बैठ गयी हैं। तुम कहाँ जाना चाहते हो? इस समय यहाँसे हट जाओ।' यों कहकर गणेशने उन्हें रोकनेके लिये छड़ी हाथमें ले ली। उन्हें ऐसा करते देख शिवजी बोले—'मूर्ख! तू किसे रोक रहा है? दुर्बुद्धे! क्या तू मुझे नहीं जानता? मैं शिवके अतिरिक्त और कोई नहीं हूँ।'

फिर महेश्वरके गण उसे समझाकर हटानेके लिये वहाँ आये और गणेशसे बोले—सुनो, हम मुख्य शिवगण ही द्वारपाल हैं और सर्वव्यापी भगवान् शंकरकी आज्ञासे तुम्हें हटानेके लिये यहाँ आये हैं। तुम्हें भी गण समझकर हमलोगोंने मारा नहीं है, अन्यथा तुम कबके मारे गये होते। अब कुशल इसीमें है कि तुम स्वतः ही दूर हट जाओ। क्यों व्यर्थ अपनी मृत्यु बुला रहे हो?

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! यों कहे जानेपर भी गिरिजानन्दन गणेश निर्भय ही बने रहे। उन्होंने शिवगणोंको फटकारा और दरवाजेको नहीं छोड़ा। तब उन सभी शिवगणोंने शिवजीके पास जाकर सारा वृत्तान्त उन्हें सुनाया। मुने! उनसे सब बातें सुनकर संसारके गतिस्वरूप अद्भुत लीला-बिहारी महेश्वर अपने उन गणोंको डाँटकर कहने लगे।

महेश्वरने कहा—'गणो! यह कौन है, जो इतना उच्छृङ्खल होकर शत्रुकी भाँति बक रहा है? इस नवीन द्वारपालको दूर भगा दो। तुमलोग नपुंसककी तरह खड़े होकर उसका वृत्तान्त मुझे क्यों सुना रहे हो।' विचित्र लीला रचनेवाले अपने स्वामी शंकरके यों कहनेपर वे गण पुनः वहीं लौट आये। तदनन्तर गणेशद्वारा पुनः रोके जानेपर शिवजीने गणोंको आज्ञा दी कि 'तुम पता लगाओ, यह कौन है और क्यों

ऐसा कर रहा है ?' गणोंने पता लगाकर बताया कि 'ये श्रीगिरिजाके पुत्र हैं तथा द्वारपालके रूपमें बैठे हैं।' तब लीलारूप शंकरने विचित्र लीला करनी चाही तथा अपने गणोंका गर्व भी गलित करना चाहा। इसलिये गणोंको तथा देवताओंको बुलाकर गणेशजीसे भीषण युद्ध करवाया। पर वे कोई भी गणेशको पराजित न कर सके। तब स्वयं शूलपाणि महेश्वर आये।

गणेशजीने माताके चरणोंका स्मरण किया, तब शक्तिने उन्हें बल प्रदान कर दिया। सभी देवता शिवजीके पक्षमें आ गये, घोर युद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा स्वयं शूलपाणि महेश्वरने आकर त्रिशूलसे गणेशजीका सिर काट दिया। जब यह समाचार पार्वतीजीको मिला, तब वे क्रुद्ध हो गयीं और बहुत-सी शक्तियोंको उत्पन्न करके उन्होंने बिना विचारे उन्हें प्रलय करनेकी आज्ञा दे दी। फिर तो शक्तियोंके द्वारा प्रलय मचायी जाने लगी। उन शक्तियोंका वह जाज्वल्यमान तेज सभी दिशाओंको दग्ध-सा किये डालता था। उसे देखकर वे सभी शिवगण भयभीत हो गये और भागकर दूर जा खड़े हुए।

मुने ! इसी समय तुम दिव्यदर्शन नारद वहाँ आ पहुँचे। तुम्हारा वहाँ आनेका अभिप्राय देवगणोंको सुख पहुँचाना था। तब तुमने मुझ देवताओंसहित शंकरको प्रणाम करके कहा कि इस विषयमें सबको मिलकर विचार करना चाहिये। तब वे सभी देवता तुझ महामनाके साथ सलाह करने लगे कि इस दुःखका शमन कैसे हो सकता है। फिर उन्होंने यही निश्चय किया कि जबतक गिरिजादेवी कृपा नहीं करेंगी तबतक सुख नहीं प्राप्त हो सकेगा। अब इस विषयमें और विचार करना व्यर्थ है। ऐसी धारणा करके तुम्हारे सहित सभी देवता और ऋषि भगवती शिवाके निकट गये और क्रोधकी शान्तिके लिये उन्हें प्रसन्न करने लगे। उन्होंने प्रेमपूर्वक उन्हें प्रसन्न करते हुए अनेकों स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करके बारंबार उनके चरणोंमें अभिवादन किया। फिर देवगणकी आज्ञासे ऋषि बोले।

देवर्षियोंने कहा—जगदम्बे ! तुम्हें नमस्कार है। शिवपत्नि ! तुम्हें प्रणाम है। चण्डिके ! तुम्हें हमारा अभिवादन प्राप्त हो। कल्याणि ! तुम्हें बारंबार प्रणाम है। अम्बे ! तुम्हीं आदिशक्ति हो। तुम्हीं सदा सारी सृष्टिकी निर्माणकर्त्री, पालिकाशक्ति और संहार करनेवाली हो। देवेशि ! तुम्हारे कोपसे सारी त्रिलोकी विकल हो रही है, अतः अब प्रसन्न हो जाओ और क्रोधको शान्त करो। देवि ! हमलोग तुम्हारे

चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! यों तुम सभी ऋषियोंद्वारा स्तुति किये जानेपर भी परादेवी पार्वतीने उनकी ओर क्रोधभरी दृष्टिसे ही देखा, किंतु कुछ कहा नहीं। तब उन ऋषियोंने पुनः उनके चरणकमलोंमें सिर झुकाया और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर पार्वतीजीसे निवेदन किया।

ऋषियोंने कहा—देवि! अभी संहार होना चाहता है; अतः क्षमा करो, क्षमा करो। अम्बिके! तुम्हारे स्वामी शिव भी तो यहीं स्थित हैं, तनिक उनकी ओर तो दृष्टिपात करो। हमलोग, ये ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा सारी प्रजा—सब तुम्हारे ही हैं और व्याकुल होकर अञ्जलि बाँधे तुम्हारे सामने खड़े हैं। परमेश्वरि! इन सबका अपराध क्षमा करो। शिवे! अब इन्हें शान्ति प्रदान करो।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! सभी देवर्षि यों कहकर अत्यन्त दीनभावसे व्याकुल हो हाथ जोड़कर चण्डिकाके सम्मुख खड़े हो गये। उनका ऐसा कथन सुनकर चण्डिका प्रसन्न हो गयीं। उनके हृदयमें करुणाका संचार हो आया। तब वे ऋषियोंसे बोलीं।

देवीने कहा—ऋषियो! यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और वह तुमलोगोंके मध्य पूजनीय मान लिया जाय तो संहार नहीं होगा। जब तुमलोग उसे 'सर्वाध्यक्ष'का पद प्रदान कर दोगे तभी लोकमें शान्ति हो सकती है, अन्यथा तुम्हें सुख नहीं प्राप्त हो सकता।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! पार्वतीके यों कहनेपर तुम सभी ऋषियोंने उन देवताओंके पास आकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर इन्द्र आदि सभी देवताओंके चेहरेपर उदासी छा गयी। वे शंकरजीके पास गये और हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें नमस्कार करके सारा समाचार निवेदन कर दिया। देवताओंका कथन सुनकर शिवजीने कहा—'ठीक है, जिस प्रकार सारी त्रिलोकीको सुख मिल सके वही करना चाहिये। अतः अब उत्तर दिशाकी ओर जाना चाहिये और जो जीव पहले मिले, उसका सिर काटकर उस बालकके शरीरपर जोड़ देना चाहिये।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर शिवजीकी आज्ञाका पालन करनेवाले उन देवताओंने वह सारा कार्य सम्पन्न किया। उन्होंने उस शिशु-शरीरको धो-पोंछकर विधिवत् उसकी पूजा की। फिर वे उत्तर दिशाकी ओर गये। वहाँ उन्हें पहले-पहल एक दाँतवाला एक हाथी मिला। उन्होंने उसका सिर लाकर उस शरीरपर जोड़ दिया। हाथीके उस सिरको संयुक्त कर देनेके पश्चात् सभी देवताओंने भगवान् शिव आदिको प्रणाम करके कहा कि हमलोगोंने अपना काम पूरा कर दिया। अब जो करना शेष है, उसे आपलोग पूर्ण करें।

ब्रह्माजी कहते हैं—तब शिवाज्ञा-पालनसम्बन्धिनी देवताओंकी बात सुनकर सभी देवों और पार्षदोंको महान् आनन्द हुआ। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता अपने स्वामी निर्गुणस्वरूप भगवान् शंकरको प्रणाम करके बोले—'स्वामिन्! आप महात्माके जिस तेजसे हम सभी उत्पन्न हुए हैं, आपका वही तेज वेदमन्त्रके अभियोगसे इस बालकमें प्रवेश करे।' इस प्रकार सभी देवताओंने मिलकर वेदमन्त्रद्वारा

जलको अभिमन्त्रित किया, फिर शिवजीका

स्मरण करके उस उत्तम जलको बालकके शरीरपर छिड़क दिया। उस जलका स्पर्श होते ही वह बालक शिवेच्छासे शीघ्र ही चेतनायुक्त होकर जीवित हो गया और सोये हुएकी तरह उठ बैठा। वह सौभाग्यशाली बालक अत्यन्त सुन्दर था। उसका मुख हाथीका-सा था। शरीरका रंग हरा-लाल था। चेहरेपर प्रसन्नता खेल रही थी। उसकी आकृति कमनीय थी और उसकी सुन्दर प्रभा फैल रही थी। मुनीश्वर! पार्वतीनन्दन उस बालकको जीवित देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग आनन्दमग्न हो गये और सारा दुःख विलीन हो गया। तब हर्ष-विभोर होकर सभी लोगोंने उस बालकको पार्वतीजीको दिखाया। अपने पुत्रको जीवित देखकर पार्वतीजी परम प्रसन्न हुईं।

(अध्याय १३—१८)

☆

पार्वतीद्वारा गणेशजीको वरदान, देवोंद्वारा उन्हें अग्रपूज्य माना जाना, शिवजीद्वारा गणेशको सर्वाध्यक्षपद प्रदान और गणेश-चतुर्थीव्रतका वर्णन, तत्पश्चात् सभी देवताओंका उनकी स्तुति करके हर्षपूर्वक अपने-अपने स्थानको लौट जाना

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! जब विकृत स्वरूपवाले गिरिजा-पुत्र गजानन व्यग्रतारहित होकर जीवित हो उठे, तब गणनायक देवोंने उनका अभिषेक किया। अपने पुत्रको देखकर पार्वतीदेवी आनन्दमग्न हो गयीं और उन्होंने हर्षातिरेकसे उस बालकको दोनों हाथोंसे पकड़कर छातीसे लगा लिया। फिर अम्बिकाने प्रसन्न होकर अपने पुत्र गणेशको अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूषण प्रदान किये। तदनन्तर सिद्धियोंने अनेकों विधि-विधानसे उनका पूजन किया और माताने अपने सर्वदुःखहारी हाथसे उनके अङ्गोंका स्पर्श किया। इस प्रकार शिव-पत्नी पार्वतीदेवीने अपने पुत्रका सत्कार करके उसका मुख चूमा और प्रेम-पूर्वक उसे वरदान देते हुए कहा—'बेटा! इस समय तुझे बड़ा कष्ट झेलना पड़ा है। किंतु अब तू कृतकृत्य हो गया है। तू धन्य है। अबसे सम्पूर्ण देवताओंमें तेरी अग्रपूजा होती रहेगी और तुझे कभी दुःखका सामना

नहीं करना पड़ेगा। चूँकि इस समय तेरे मुखपर सिन्दूर दीख रहा है। इसलिये मनुष्योंको सदा सिन्दूरसे तेरी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य पुष्प, चन्दन, सुन्दर गन्ध, नैवेद्य, रमणीय आरती, ताम्बूल और दानसे तथा परिक्रमा और नमस्कार करके विधि-पूर्वक तेरी पूजा करेगा, उसे सारी सिद्धियाँ हस्तगत हो जायँगी और उसके सभी प्रकारके विघ्न नष्ट हो जायँगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! महेश्वरीदेवीने अपने पुत्र गणेशसे यों कहकर उसे नाना प्रकारकी वस्तुएँ प्रदान करके पुनः उसका अभिनन्दन किया। विप्र! तब गिरिजाकी कृपासे उसी क्षण देवताओं और शिवगणोंका मन विशेषरूपसे शान्त हो गया। तदनन्तर इन्द्र आदि देवताओंने हर्षातिरेकसे शिवाकी स्तुति की और उन्हें प्रसन्न करके वे भक्तिभावित चित्तसे गणेशदेवको लेकर शिवजीके समीप चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने त्रिलोकीकी कल्याण-कामनासे भवानीके उस बालकको शिवजीकी गोदमें बैठा दिया। तब शिवजी भी उस बालकके मस्तकपर अपना कर-कमल फेरते हुए देवताओंसे बोले—'यह मेरा दूसरा पुत्र है।' तत्पश्चात् गणेशने भी उठकर शिवजीके चरणोंमें अभिवादन किया। फिर पार्वतीको, मुझको, विष्णुको और नारद आदि सभी ऋषियोंको प्रणाम करके आगे खड़े होकर उन्होंने कहा—'यों अभिमान करना मनुष्योंका स्वभाव ही है, अतः आपलोग मेरा अपराध क्षमा करें।' तब मैं, शंकर और विष्णु—इन तीनों देवताओंने एक साथ ही प्रेमपूर्वक उन्हें उत्तम वर प्रदान करते हुए कहा—'सुरवरो! जैसे त्रिलोकीमें हम तीनों देवोंकी पूजा होती है, उसी तरह तुम सबको इन गणेशका भी पूजन करना चाहिये। मनुष्योंको चाहिये कि पहले इनकी पूजा करके तत्पश्चात् हमलोगोंका पूजन करें। ऐसा करनेसे हमलोगोंकी पूजा सम्पन्न हो जायगी। देवगणो! यदि कहीं इनकी पूजा पहले न करके अन्य देवका पूजन किया गया तो उस पूजनका फल नष्ट हो जायगा—उसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आदि सभी देवताओंने मिलकर पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये वहीं गणेशको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया। उसी समय शिवजी परम प्रसन्न चित्तसे पुनः गणेशको लोकमें

सर्वदा सुख देनेवाले अनेकों वर प्रदान करते हुए बोले—

शिवजीने कहा—गिरिजानन्दन! निस्संदेह मैं तुझपर परम प्रसन्न हूँ। मेरे प्रसन्न हो जानेपर अब तू सारे जगत्‌को ही प्रसन्न हुआ समझ। अब कोई भी तेरा विरोध नहीं कर सकता। तू शक्तिका पुत्र है, अतः अत्यन्त तेजस्वी है। बालक होनेपर भी तूने महान् पराक्रम प्रकट किया है, इसलिये तू सदा सुखी रहेगा। विघ्ननाशके कार्यमें तेरा नाम सबसे श्रेष्ठ होगा। तू सबका पूज्य है, अतः अब मेरे सम्पूर्ण गणोंका अध्यक्ष हो जा।

इतना कहनेके पश्चात् महात्मा शंकर अत्यन्त प्रसन्नताके कारण गणेशको पुनः वरदान देते हुए बोले—'गणेश्वर! तू भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको चन्द्रमाका शुभोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है। जिस समय गिरिजाके सुन्दर चित्तसे तेरा रूप प्रकट हुआ, उस समय रात्रिका प्रथम प्रहर बीत रहा था। इसलिये उसी दिनसे आरम्भ करके उसी तिथिमें तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये। यह व्रत परम शोभन तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंका प्रदाता है। वर्षके अन्तमें जब पुनः वही चतुर्थी आ जाय तबतक मेरे कथनानुसार तेरे व्रतका पालन करना चाहिये। जिन्हें संसारमें अनेकों प्रकारके अनुपम सुखोंकी कामना हो, उन्हें चतुर्थीके दिन भक्तिपूर्वक विधिसहित तेरा पूजन करना चाहिये। जब मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी आये तब उस दिन प्रातःकाल स्नान करके व्रतके लिये ब्राह्मणोंसे निवेदन करे। पूर्वोक्त विधिसे उपवास करे। फिर धातुकी, मूँगेकी, श्वेत मदारकी अथवा मिट्टीकी मूर्ति बनाकर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करे और भक्तिभावसे नाना प्रकारके दिव्य गन्धों, चन्दनों और पुष्पोंसे उसकी पूजा करे। पुनः रात्रिका प्रथम प्रहर बीत जानेपर स्नान करके दूर्वादलोंसे पूजन करना चाहिये। यह दूर्वा जड़रहित, बारह अंगुल लम्बी और तीन गाँठोंवाली होनी चाहिये। ऐसी एक सौ एक अथवा इक्कीस दूर्वासे उस स्थापित प्रतिमाकी पूजा करे। तत्पश्चात् धूप, दीप, अनेक प्रकारके नैवेद्य, ताम्बूल, अर्घ्य और उत्तम-उत्तम पदार्थोंद्वारा गणेशकी पूजा करे और स्तवन करके उसके आगे प्रणिपात करे। यों गणेशकी पूजा करनेके पश्चात् बालचन्द्रमाका पूजन करे। तत्पश्चात् हर्षपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें मिष्टान्नका भोजन कराये। उनके भोजन कर लेनेके बाद स्वयं भी नमकरहित मिष्टान्नका ही प्रसाद पाये। फिर गणेशका स्मरण करके अपने सभी नियमोंका विसर्जन कर दे। इस प्रकार करनेसे यह शुभव्रत पूर्ण होता है।

'बेटा! यों व्रत करते-करते जब वर्ष पूरा हो जाय, तब व्रती मनुष्यको चाहिये कि वह व्रतकी पूर्तिके लिये व्रतोद्यापनका कार्य भी सम्पन्न करे। इसमें मेरे आज्ञानुसार बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि वह एक कलश स्थापित करके उसपर तेरी मूर्तिकी पूजा करे। तत्पश्चात् वेदविधिके अनुसार वेदीका निर्माण करके उसपर अष्टदल कमल बनाये, फिर उसीपर धनकी कंजूसी छोड़कर हवन करे। पुनः मूर्तिके सामने दो स्त्रियों और दो बालकोंको बिठाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करे और सादर उन्हें भोजन कराये। रातमें जागरण

करे। प्रातःकाल पुनः पूजन करके पुनरागमनके लिये विसर्जन कर दे। बालकोंसे आशीर्वाद ग्रहण करे, स्वस्तिवाचन कराये और व्रतकी पूर्तिके लिये पुष्पाञ्जलि निवेदित करे। फिर नमस्कार करके नाना प्रकारके कार्योंकी कल्पना करे। इस प्रकार जो इस व्रतको पूर्ण करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। गणेश! जो श्रद्धासहित अपनी शक्तिके अनुसार नित्य तेरी पूजा करेगा, उसके सभी मनोरथ सफल हो जायँगे। मनुष्योंको सिन्दूर, चन्दन, चावल, केतकी-पुष्प आदि अनेकों उपचारोंद्वारा गणेश्वरका पूजन करना चाहिये। यों जो लोग नाना प्रकारके उपचारोंसे भक्तिपूर्वक तेरी पूजा करेंगे, उनके विघ्नोंका सदाके लिये नाश हो जायगा और उनकी कार्यसिद्धि होती रहेगी। सभी वर्णके लोगोंको, विशेषकर स्त्रियोंको यह पूजा अवश्य करनी चाहिये तथा अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंके लिये भी यह व्रत अवश्यकर्तव्य है। व्रती मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय वह वस्तु प्राप्त हो जाती है; अतः जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, उसे अवश्य तेरी सेवा करनी चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! जब शिवजीने महात्मा गणेशको इस प्रकार वर प्रदान किया, तब सम्पूर्ण देवताओं, श्रेष्ठ ऋषियों और शिवके प्यारे समस्त गणोंने 'तथास्तु' कहकर उसका समर्थन किया और अत्यन्त विधिपूर्वक गणाधीशका पूजन किया। तत्पश्चात् शिवगणोंने आदरपूर्वक नाना प्रकारकी पूजनसामग्रीसे गणेश्वरकी विशेषरूपसे अर्चना की और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनीश्वर! उस समय गिरिजादेवीको जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसका वर्णन मेरे चारों मुखोंसे भी नहीं हो सकता; तब फिर मैं उसे कैसे बताऊँ। उस अवसरपर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। गन्धर्वश्रेष्ठ गान करने लगे और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। इस प्रकार गणेशके गणाधीशपदपर प्रतिष्ठित होनेपर वहाँ महान् उत्सव मनाया गया। सारे जगत्में शान्ति स्थापित हो गयी और सारा दुःख जाता रहा। नारद! शिव और पार्वतीको तो विशेष आनन्द प्राप्त हुआ और सर्वत्र अनेक प्रकारके सुखदायक मङ्गल होने लगे। तदनन्तर सम्पूर्ण देवगण और ऋषिगण जो वहाँ पधारे हुए थे, वे सभी शिवकी आज्ञासे अपने-अपने स्थानको चले। उस समय वे शिवजीकी स्तुति करके गणेश और पार्वतीकी बारंबार प्रशंसा कर रहे थे और 'कैसा अद्भुत युद्ध हुआ' यों परस्पर वार्तालाप करते हुए चले जा रहे थे। इधर जब गिरिजादेवीका क्रोध शान्त हो गया, तब शिवजी भी, जो स्वात्माराम होते हुए भी सदा भक्तोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उद्यत रहते हैं, गिरिजाके संनिकट गये और लोकोंकी हितकामनासे पूर्ववत् नाना प्रकारके सुखदायक कार्य करने लगे। तब मैं ब्रह्मा और विष्णु दोनों भक्तिपूर्वक शिव-शिवाकी सेवा करके शिवकी आज्ञा ले अपने-अपने धामको लौट आये। जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इस परम माङ्गलिक आख्यानको श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण मङ्गलोंका भागी होकर मङ्गल-भवन हो जाता है। इसके श्रवणसे पुत्रहीनको पुत्रकी, निर्धनको धनकी, भार्यार्थीको भार्याकी,

प्रजार्थीको प्रजाकी, रोगीको आरोग्यकी और अभागेको सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। जिस स्त्रीका पुत्र और धन नष्ट हो गया हो और पति परदेश चला गया हो, उसे उसका पति मिल जाता है। जो शोक-सागरमें डूब रहा हो, वह इसके श्रवणसे निस्संदेह शोकरहित हो जाता है। यह गणेश-चरित्रसम्बन्धी ग्रन्थ जिसके घरमें सदा वर्तमान रहता है, वह मङ्गलसम्पन्न होता है—इसमें तनिक भी संशयकी गुंजाइश नहीं है। जो यात्राके अवसरपर अथवा किसी भी पुण्यपर्वपर इसे मन लगाकर सुनता है, वह श्रीगणेशजीकी कृपासे सम्पूर्ण अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १९)

☆

स्वामिकार्तिक और गणेशकी बाल-लीला, दोनोंका परस्पर विवाहके विषयमें विवाद, शिवजीद्वारा पृथ्वी-परिक्रमाका आदेश, कार्तिकेयका प्रस्थान, गणेशका माता-पिताकी परिक्रमा करके उनसे पृथ्वीपरिक्रमा स्वीकृत कराना, विश्वरूपकी सिद्धि और बुद्धि नामक दोनों कन्याओंके साथ गणेशका विवाह और उनसे क्षेम तथा लाभ नामक दो पुत्रोंकी उत्पत्ति, कुमारका पृथ्वीपरिक्रमा करके लौटना और क्षुब्ध होकर क्रौंचपर्वतपर चला जाना, कुमारखण्डके श्रवणकी महिमा

नारदजीने पूछा—तात ! मैंने गणेशके जन्मसम्बन्धी अनुपम वृत्तान्त तथा परम पराक्रमसे विभूषित उनका दिव्य चरित्र भी सुन लिया। सुरेश्वर ! उसके बाद कौन-सी घटना घटी, उसका वर्णन कीजिये; क्योंकि पिताजी ! शिव और पार्वतीका उज्ज्वल यश महान् आनन्द प्रदान करनेवाला है।

ब्रह्माजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! तुम तो बड़े कारुणिक हो। तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है। ऋषिसत्तम ! अच्छा, अब मैं उसका वर्णन करता हूँ, तुम ध्यान लगाकर सुनो। विप्रेन्द्र ! शिव और पार्वती अपने दोनों पुत्रोंकी बाललीला देख-देखकर महान् प्रेममें मग्न रहने लगे। पुत्रोंका लाड़-प्यार करनेके कारण माता-पिताका सुख दिनों-दिन बढ़ता जाता था और वे दोनों कुमार प्रीतिपूर्वक आनन्दके साथ तरह-तरहकी लीलाएँ करते थे। मुनीश्वर ! वे दोनों बालक स्वामिकार्तिक और गणेश भक्ति-पूरित चित्तसे सदा माता-पिताकी परिचर्या किया करते थे। इससे माता-पिताका महान् स्नेह षण्मुख और गणेशपर शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। एक समय शिव और शिवा दोनों प्रेमपूर्वक एकान्तमें बैठकर यों विचार करने लगे कि 'हमारे ये दोनों पुत्र विवाहके योग्य हो गये, अब इन दोनोंका शुभ विवाह कैसे सम्पन्न हो। हमें तो जैसे षडानन प्यारा है, वैसे ही गणेश भी है।' ऐसी चिन्तामें पड़कर वे दोनों लीलावश आनन्दमग्न हो गये।

मुने ! माता-पिताके विचारको जानकर उन दोनों पुत्रोंके मनमें भी विवाहकी इच्छा जाग उठी। वे दोनों 'पहले मैं विवाह करूँगा, पहले मैं विवाह करूँगा'—यों बारंबार कहते हुए परस्पर विवाद करने लगे। तब जगत्‌के अधीश्वर वे दोनों दम्पति पुत्रोंकी बात सुनकर लौकिक आचारका आश्रय ले परम विस्मयको प्राप्त हुए। कुछ समय बाद उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा।

शिव-पार्वती बोले—सुपुत्रो ! हमलोगोंने पहलेसे ही एक ऐसा नियम बना रखा है, जो तुम दोनोंके लिये सुखदायक होगा। अब हम यथार्थरूपसे उसका वर्णन करते हैं, तुमलोग प्रेमपूर्वक सुनो। प्यारे बच्चो ! हमें तो तुम दोनों पुत्र समान ही प्यारे हो; किसीपर विशेष प्रेम हो—ऐसी बात नहीं है; अतः हमने तुमलोगोंके विवाहके विषयमें एक ऐसी शर्त बनायी है, जो दोनोंके लिये कल्याणकारिणी है, (वह शर्त यह है कि) जो सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके पहले लौट आयेगा, उसीका शुभ विवाह पहले किया जायगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! माता-पिताकी यह बात सुनकर शरजन्मा महाबली कार्तिकेय तुरंत ही अपने स्थानसे पृथ्वीकी परिक्रमा करनेके लिये चल दिये। परंतु अगाध-बुद्धि-सम्पन्न गणेश वहीं खड़े रह गये। वे अपनी उत्तम बुद्धिका आश्रय ले बारंबार मनमें विचार करने लगे कि 'अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? परिक्रमा तो मुझसे हो नहीं सकेगी; क्योंकि कोसभर चलनेके बाद आगे मुझसे चला जायगा नहीं। फिर सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके मैं कैसे सुख प्राप्त कर सकूँगा ?' ऐसा विचारकर गणेशने जो कुछ किया, उसे सुनो। उन्होंने अपने घर लौटकर विधिपूर्वक स्नान किया और माता-पितासे इस प्रकार कहा।

गणेशजी बोले—पिताजी एवं माताजी ! मैंने आपलोगोंकी पूजा करनेके लिये यहाँ दो आसन स्थापित किये हैं। आप दोनों इसपर विराजिये और मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! गणेशकी बात सुनकर पार्वती और परमेश्वर उनकी पूजा ग्रहण करनेके लिये आसनपर विराजमान हो गये। तब गणेशने उनकी विधिपूर्वक पूजा की और बारंबार प्रणाम करते हुए उनकी सात बार प्रदक्षिणा की। बेटा नारद ! गणेश तो बुद्धिसागर थे ही, वे हाथ जोड़कर प्रेममग्न माता-पिताकी बहुत

प्रकारसे स्तुति करके बोले।

गणेशजीने कहा—हे माताजी! तथा हे पिताजी! आपलोग मेरी उत्तम बात सुनिये और शीघ्र ही मेरा शुभ विवाह कर दीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! महात्मा गणेशका ऐसा वचन सुनकर वे दोनों माता-पिता महाबुद्धिमान् गणेशसे बोले।

शिवा-शिवने कहा—बेटा! तू पहले काननोंसहित इस सारी पृथ्वीकी परिक्रमा तो कर आ। कुमार गया हुआ है, तू भी जा और उससे पहले लौट आ (तब तेरा विवाह पहले कर दिया जायगा)।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! नियमपरायण गणेश माता-पिताकी ऐसी बात सुनकर कुपित हो तुरंत बोल उठे।

गणेशजीने कहा—हे माताजी! तथा हे पिताजी! आप दोनों सर्वश्रेष्ठ, धर्मरूप और महाबुद्धिमान् हैं, अतः धर्मानुसार मेरी बात सुनिये। मैंने सात बार पृथ्वीकी परिक्रमा की है, फिर आपलोग ऐसी बात क्यों कह रहे हैं?

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! शिव-पार्वती तो बड़े लीलानन्दी ही ठहरे, वे गणेशका कथन सुन लौकिक गतिका आश्रय लेकर बोले।

शिव-पार्वतीने कहा—पुत्र! तूने समुद्रपर्यन्त विस्तारवाली बड़े-बड़े काननोंसे युक्त इस सप्तद्वीपवती विशाल पृथ्वीकी परिक्रमा कब कर ली?

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! जब शिव-पार्वतीने ऐसा कहा, तब उसे सुनकर महान् बुद्धिसम्पन्न गणेश बोले।

गणेशजीने कहा—माताजी एवं पिताजी! मैंने अपनी बुद्धिसे आप दोनों शिव-पार्वतीकी पूजा करके प्रदक्षिणा कर ली है, अतः मेरी समुद्रपर्यन्त पृथ्वीकी परिक्रमा पूरी हो गयी। धर्मके संग्रहभूत वेदों और शास्त्रोंमें जो ऐसे वचन मिलते हैं, वे सत्य हैं अथवा असत्य? (वे वचन हैं कि) जो पुत्र माता-पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथ्वी-परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जाता है। जो माता-पिताको घरपर छोड़कर तीर्थ-यात्राके लिये जाता है, वह माता-पिताकी हत्यासे मिलनेवाले पापका भागी होता है; क्योंकि पुत्रके लिये माता-पिताका चरण-सरोज ही महान् तीर्थ है। अन्य तीर्थ तो दूर जानेपर प्राप्त होते हैं, परंतु धर्मका साधनभूत यह तीर्थ तो पासमें ही सुलभ है। पुत्रके लिये (माता-पिता) और स्त्रीके लिये (पति) ये दोनों सुन्दर तीर्थ घरमें ही वर्तमान हैं। ऐसा जो वेद-शास्त्र निरन्तर उद्घोषित करते रहते हैं, उसे फिर आपलोग असत्य कर दीजिये। (और यदि वह असत्य हो जायगा तो) निस्संदेह वेद भी असत्य हो जायगा और वेदद्वारा वर्णित आपका यह स्वरूप भी झूठा समझा जायगा। इसलिये या तो शीघ्र ही मेरा शुभ विवाह कर दीजिये अथवा यों कह दीजिये कि वेद-शास्त्र झूठे हैं। आप दोनों धर्मरूप हैं, अतः भलीभाँति विचार करके इन दोनोंमें जो परमोत्तम प्रतीत हो, उसे प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! तब जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, उत्तम बुद्धिसम्पन्न तथा महान् ज्ञानी हैं, वे पार्वतीनन्दन गणेश इतना कहकर चुप हो गये। उधर वे दोनों पति-पत्नी जगदीश्वर शिव-पार्वती गणेशके वचन सुनकर परम विस्मित हुए। तदनन्तर वे यथार्थभाषी एवं अद्भुत बुद्धिवाले अपने पुत्र गणेशकी प्रशंसा करते हुए बोले।

शिवा-शिवने कहा—बेटा ! तू महान् आत्मबलसे सम्पन्न है, इसीसे तुझमें निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है। तूने जो बात कही है, वह बिलकुल सत्य है, अन्यथा नहीं है। दुःखका अवसर आनेपर जिसकी बुद्धि विशिष्ट हो जाती है, उसका दुःख उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय होते ही अन्धकार। जिसके पास बुद्धि है, वही बलवान् है; बुद्धिहीनके पास बल कहाँ। पुत्र ! वेद-शास्त्र और पुराणोंमें बालकके लिये धर्म-पालनकी जैसी बात कही गयी है, वह सब तूने पूरी कर ली। तूने जो बात की है, वह दूसरा कौन कर सकता है। हमने तेरी यह बात मान ली, अब इसके विपरीत नहीं करेंगे।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! यों कहकर

उन दोनोंने बुद्धिसागर गणेशको सान्त्वना दी और फिर वे उनके विवाहके सम्बन्धमें उत्तम विचार करने लगे। इसी समय जब प्रसन्न बुद्धिवाले प्रजापति विश्वरूपको शिवजीके उद्योगका पता चला, तब उसपर विचार करके उन्हें परम सुख प्राप्त हुआ। उन प्रजापति विश्वरूपके दिव्यरूप-सम्पन्न एवं सर्वाङ्गशोभना दो सुन्दरी कन्याएँ थीं, जिनका नाम 'सिद्धि' और 'बुद्धि' था। भगवान् शंकर और गिरिजाने उन दोनोंके साथ हर्षपूर्वक गणेशका विवाह-संस्कार सम्पन्न कराया। उस विवाहके अवसरपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होकर पधारे। उस समय शिव और पार्वतीका जैसा मनोरथ था, उसीके अनुसार विश्वकर्माने वह विवाह किया। उसे देखकर ऋषियों तथा देवताओंको परम हर्ष प्राप्त हुआ। मुने ! गणेशको भी उन दोनों पत्नियोंके मिलनेसे जो सुख प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कुछ कालके पश्चात् महात्मा गणेशके उन दोनों पत्नियोंसे दो दिव्य पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें गणेशपत्नी सिद्धिके गर्भसे 'क्षेम' नामक पुत्र पैदा हुआ और बुद्धिके गर्भसे जिस परम सुन्दर पुत्रने जन्म लिया, उसका नाम 'लाभ' हुआ। इस प्रकार जब गणेश अचिन्त्य सुखका भोग करते हुए निवास करने लगे, तब दूसरे पुत्र स्वामिकार्तिक पृथ्वीकी परिक्रमा करके लौटे। उस समय नारदजीने आकर कुमार स्कन्दको सब समाचार सुनाये। उन्हें सुनकर कुमारके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ और वे माता-पिता शिवा-शिवके द्वारा रोके जानेपर भी न रुककर क्रौञ्चपर्वतकी ओर चले गये।

देवर्षे ! उसी दिनसे शिव-पुत्र स्वामि-कार्तिकका कुमारत्व (कुँआरपना) प्रसिद्ध

हो गया। उनका नाम त्रिलोकीमें विख्यात हो गया। यह शुभदायक, सर्वपापहारी, पुण्यमय और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्यकी शक्ति प्रदान करनेवाला है। कार्तिककी पूर्णिमाको सभी देवता, ऋषि, तीर्थ और मुनीश्वर सदा कुमारका दर्शन करनेके लिये (क्रौञ्च-पर्वतपर) जाते हैं। जो मनुष्य कार्तिकी पूर्णिमाके दिन कृत्तिका नक्षत्रका योग होनेपर स्वामिकार्तिकका दर्शन करता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। इधर स्कन्दका बिछोह हो जानेपर उमाको महान् दुःख हुआ। उन्होंने दीनभावसे अपने स्वामी शिवजीसे कहा—'प्रभो ! आप मुझे साथ लेकर वहाँ चलिये।' तब प्रियाको सुख देनेके निमित्त स्वयं भगवान् शंकर अपने एक अंशसे उस पर्वतपर गये और सुखदायक मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। वे सत्पुरुषोंकी गति तथा अपने सभी भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं। वे आज भी शिवाके सहित उस पर्वतपर विराजमान हैं।

बेटा नारद ! वे दोनों शिवा-शिव भी पुत्र-स्नेहसे विह्वल होकर प्रत्येक पर्वपर कुमारको देखनेके लिये जाते हैं। अमावास्याके दिन वहाँ स्वयं शम्भु पधारते हैं और पूर्णिमाके दिन पार्वतीजी जाती हैं। मुनीश्वर ! तुमने स्वामिकार्तिक और गणेशका जो-जो वृत्तान्त मुझसे पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें कह सुनाया। इसे सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसकी सभी शुभ कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। जो मनुष्य इस चरित्रको पढ़ता अथवा पढ़ाता है एवं सुनता अथवा सुनाता है, निस्संदेह उसके सभी मनोरथ सफल हो जाते हैं। यह अनुपम आख्यान पापनाशक, कीर्तिप्रद, सुखवर्धक, आयु बढ़ानेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला, पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला, मोक्षप्रद, शिवजीके उत्तम ज्ञानका प्रदाता, शिव-पार्वतीमें प्रेम उत्पन्न करनेवाला और शिवभक्तिवर्धक है। यह कल्याणकारक, शिवजीके अद्वैत ज्ञानका दाता और सदा शिवमय है; अतः मोक्षकामी एवं निष्काम भक्तोंको सदा इसका श्रवण करना चाहिये।

(अध्याय २०)

☆

॥ रुद्रसंहिताका कुमारखण्ड सम्पूर्ण ॥

☆

तारकपुत्र तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्षकी तपस्या, ब्रह्माद्वारा उन्हें वर-प्रदान, मयद्वारा उनके लिये तीन पुरोंका निर्माण और उनकी सजावट-शोभाका वर्णन

नारदजीने कहा—पिताजी! जो गणेश और स्वामिकार्तिककी उत्तम कथाओंसे ओतप्रोत तथा आनन्द प्रदान करनेवाला है, भगवान् शंकरके गृहस्थ-सम्बन्धी उस उत्तम चरित्रको हमने सुन लिया। अब आप कृपा करके उस परमोत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये, जिसमें रुद्रदेवने खेल-ही-खेलमें दुष्टोंका वध किया था। महान् वीर्यशाली भगवान् शंकरने देव-द्रोहियोंके तीनों नगरोंको एक ही साथ एक ही बाणसे किस कारण एवं कैसे भस्म कर डाला था? भगवन्! जिनके भालमें बालचन्द्रमा सुशोभित है तथा जो सदा मायाके साथ विहार करनेवाले हैं, उन भगवान् शंकरका चरित तो देवर्षियोंको आनन्द प्रदान करनेवाला है। आप वह सारा चरित विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—ऋषिश्रेष्ठ! पहले किसी समय व्यासने सनत्कुमारसे ऐसा ही प्रश्न किया था। उस समय सनत्कुमारने जो कुछ उत्तर दिया था, वही मैं वर्णन करता हूँ।

उस समय सनत्कुमारने कहा था—महाबुद्धिमान् व्यासजी! विश्वका संहार करनेवाले चन्द्रमौलि शिवने जिस प्रकार एक ही बाणसे त्रिपुरको भस्म किया था, वह चरित्र कहता हूँ; सुनो। मुनीश्वर! जब शिवकुमार स्कन्दने तारकासुरको मार डाला, तब उसके तीनों पुत्रोंको महान् संताप हुआ। उनमें तारकाक्ष सबसे ज्येष्ठ था, विद्युन्माली मझला था और छोटेका नाम कमलाक्ष था। उन तीनोंमें समान बल था। वे जितेन्द्रिय, सदा कार्यके लिये उद्यत, संयमी, सत्यवादी, दृढ़चित्त, महान् वीर और देवोंसे द्रोह करनेवाले थे। उन तीनोंने सभी उत्तमोत्तम एवं मनोहर भोगोंका परित्याग करके मेरुपर्वतकी एक कन्दरामें जाकर परम अद्भुत तपस्या आरम्भ की। वहाँ उन्होंने हजारों वर्षोंतक ब्रह्माजीकी प्रसन्नताके लिये अत्यन्त उग्र तप किया। तब सुर और असुरोंके गुरु महायशस्वी ब्रह्माजी उनकी तपस्यासे अत्यन्त संतुष्ट होकर उन्हें वर देनेके लिये प्रकट हुए।

ब्रह्माजीने कहा—महादैत्यो! मैं तुम-लोगोंके तपसे प्रसन्न हो गया हूँ, अतः

तुम्हारी कामनाके अनुसार तुम्हें सभी वर प्रदान करूँगा। देवद्रोहियो! मैं सबकी तपस्याके फलदाता और सर्वदा सब कुछ करनेमें समर्थ हूँ; अतः बताओ, तुमलोगोंने

इतना घोर तप किसलिये किया है ?

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! ब्रह्माजीकी वह बात सुनकर उन सबने अञ्जलि बाँधकर पितामहके चरणोंमें प्रणिपात किया और फिर धीरे-धीरे अपने मनकी बात कहना आरम्भ किया।

दैत्य बोले—देवेश ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं और हमें वर देना चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि समस्त प्राणियोंमें हम सबके लिये अवध्य हो जायँ। जगन्नाथ ! आप हमें स्थिर कर दें और हमारे जरा, रोग आदि सभी शत्रु नष्ट हो जायँ तथा कभी भी मृत्यु हमारे समीप न फटके। हमलोगोंका ऐसा विचार है कि हमलोग अजर-अमर हो जायँ और त्रिलोकीमें अन्य सभी प्राणियोंको मौतके घाट उतारते रहें; क्योंकि ब्रह्मन् ! यदि पाँच ही दिनोंमें कालके गालमें चला जाना निश्चित ही है तो अतुल लक्ष्मी, उत्तमोत्तम नगर, अन्यान्य भोग-सामग्री, उत्कृष्ट पद और ऐश्वर्यसे क्या प्रयोजन है। मेरे विचारसे तो उस प्राणीके लिये ये सभी व्यर्थ हैं।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! उन तपस्वी दैत्योंकी यह बात सुनकर ब्रह्मा अपने स्वामी गिरिशायी भगवान् शंकरका ध्यान करके बोले।

ब्रह्माजीने कहा—असुरो ! अमरत्व सभीको नहीं मिल सकता, अतः तुमलोग अपना यह विचार छोड़ दो। इसके अतिरिक्त अन्य कोई वर जो तुम्हें रुचता हो, माँग लो। क्योंकि दैत्यो ! इस भूतलपर जहाँ कहीं भी जो प्राणी जन्मा है अथवा जन्म लेगा, वह जगत्‌में अजर-अमर नहीं हो सकता। इसलिये पापरहित असुरो ! तुमलोग स्वयं अपनी बुद्धिसे विचारकर मृत्युकी वञ्चना करते हुए कोई ऐसा दुर्लभ एवं दुःसाध्य वर माँग लो, जो देवता और असुरोंके लिये अशक्य हो। उस प्रसङ्गमें तुमलोग अपने बलका आश्रय लेकर पृथक्-पृथक् अपने मरणमें किसी हेतुको माँग लो, जिससे तुम्हारी रक्षा हो जाय और मृत्यु तुम्हें वरण न कर सके।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! ब्रह्माजीके ऐसे वचन सुनकर वे दो घड़ीतक ध्यानस्थ हो गये, फिर कुछ सोच-विचारकर सर्वलोकपितामह ब्रह्माजीसे बोले।

दैत्योंने कहा—भगवन् ! यद्यपि हमलोग प्रबल पराक्रमी हैं तथापि हमारे पास कोई ऐसा घर नहीं है, जहाँ हम शत्रुओंसे सुरक्षित रहकर सुखपूर्वक निवास कर सकें; अतः आप हमारे लिये ऐसे तीन नगरोंका निर्माण करा दीजिये, जो अत्यन्त अद्भुत और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे सम्पन्न हों तथा देवता जिनका प्रधर्षण न कर सकें। लोकेश ! आप तो जगद्गुरु हैं। हमलोग आपकी कृपासे ऐसे तीनों पुरोंमें अधिष्ठित होकर इस पृथ्वीपर विचरण करेंगे। इसी बीच तारकाक्षने कहा कि विश्वकर्मा मेरे लिये जिस नगरका निर्माण करें, वह स्वर्णमय हो और देवता भी उसका भेदन न कर सकें। तत्पश्चात् कमलाक्षने चाँदीके बने हुए अत्यन्त विशाल नगरकी याचना की और विद्युन्मालीने प्रसन्न होकर वज्रके समान कठोर लोहेका बना हुआ बड़ा नगर माँगा। ब्रह्मन् ! ये तीनों पुर मध्याह्नके समय अभिजित् मुहूर्तमें चन्द्रमाके पुष्य नक्षत्रपर स्थित होनेपर एक स्थानपर मिला करें और आकाशमें नीले बादलोंपर स्थित होकर ये

क्रमशः एकके ऊपर एक रहते हुए लोगोंकी दृष्टिसे ओझल रहें। फिर पुष्करावर्त नामक कालमेघोंके वर्षा करते समय एक सहस्र वर्षके बाद ये तीनों नगर परस्पर मिलें और एकीभावको प्राप्त हों, अन्यथा नहीं। उस समय कृत्तिवासा भगवान् शंकर, जो वैरभावसे रहित, सर्वदेवमय और सबके देव हैं। लीलापूर्वक सम्पूर्ण सामग्रियोंसे युक्त एक असम्भव रथपर बैठकर एक अनोखे बाणसे हमारे पुरोंका भेदन करें। किंतु भगवान् शंकर सदा हमलोगोंके वन्दनीय, पूज्य और अभिवादनके पात्र हैं; अतः वे हमलोगोंको कैसे भस्म करेंगे—मनमें ऐसी धारणा करके हम ऐसे दुर्लभ वरको माँग रहे हैं।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! उन दैत्योंका कथन सुनकर सृष्टिकर्ता लोकपितामह ब्रह्माने शिवजीका स्मरण करके उनसे कहा कि 'अच्छा, ऐसा ही होगा।' फिर मयको भी आज्ञा देते हुए उन्होंने कहा—'हे मय! तुम सोने, चाँदी और लोहेके तीन नगर बना दो।' यों मयको आदेश देकर ब्रह्माजी उन तारक-पुत्रोंके देखते-देखते अपने धाम स्वर्गको चले गये। तदनन्तर धैर्यशाली मयने अपने तपोबलसे नगरोंका निर्माण करना आरम्भ किया। उसने तारकाक्षके लिये स्वर्णमय, कमलाक्षके लिये रजतमय और विद्युन्माली-के लिये लौहमय—यों तीन प्रकारके उत्तम दुर्ग तैयार किये। वे पुर क्रमशः स्वर्ग, अन्तरिक्ष और भूतलपर निर्मित हुए थे। असुरोंके हितमें तत्पर रहनेवाला मय इन तीनों पुरोंको तारकाक्ष आदि असुरोंके हवाले करके स्वयं भी उसीमें प्रवेश कर गया। इस प्रकार उन तीनों पुरोंको पाकर महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न वे तारकासुरके लड़के उनमें प्रविष्ट हुए और समस्त भोगोंका उपभोग करने लगे। वे नगर कल्पवृक्षोंसे व्याप्त तथा हाथी-घोड़ोंसे सम्पन्न थे। उनमें मणिनिर्मित जालियोंसे आच्छादित बहुतेरे महल बने हुए थे। वे पद्मरागके बने हुए एवं सूर्य-मण्डलके समान चमकीले विमानोंसे, जिनमें चारों ओर दरवाजे लगे थे, शोभायमान थे। कैलास-शिखरके समान ऊँचे तथा चन्द्रमाके समान उज्ज्वल दिव्य प्रासादों तथा गोपुरोंसे उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी। वे अप्सराओं, गन्धर्वों, सिद्धों तथा चारणोंसे खचाखच भरे थे। प्रत्येक महलमें शिवालय तथा अग्निहोत्रशालाकी प्रतिष्ठा हुई थी। उनमें शिवभक्ति-परायण शास्त्रज्ञ ब्राह्मण सदा निवास करते थे। वे बावली, कूप, तालाब और बड़ी-बड़ी तलैयोंसे तथा समूह-के-समूह स्वर्गसे च्युत हुए वृक्षोंसे युक्त उद्यानों और वनोंमें सुशोभित थे। बड़ी-बड़ी नदियों, नदों और छोटी-छोटी सरिताओंसे, जिनमें कमल खिले हुए थे, उनकी शोभा और बढ़ गयी थी। उनमें सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अनेकों फलोंके भारसे लदे हुए वृक्ष लगे थे, जिनसे वे नगर विशेष मनोहर लगते थे। वे झुंड-के-झुंड मदमत्त गजराजोंसे, सुन्दर-सुन्दर घोड़ोंसे, नाना प्रकारके आकार-प्रकारवाले रथों एवं शिबिकाओंसे अलंकृत थे। उनमें समयानुसार पृथक्-पृथक् क्रीडास्थल बने थे और वेदाध्ययनकी पाठशालाएँ भी भिन्न-भिन्न निर्मित हुई थीं। वे पापी पुरुषोंके लिये मन-वाणीसे भी अगोचर थे। उन्हें सदाचारी

पुण्यशील महात्मा ही देख सकते थे। पति-सेवापरायणा तथा कुधर्मसे विमुख रहनेवाली पतिव्रता नारियोंने उन नगरोंके उत्तम स्थलोंको सर्वत्र पवित्र कर रखा था। उनमें महाभाग शूरवीर दैत्य और श्रुति-स्मृतिके अर्थके तत्त्वज्ञ एवं स्वधर्मपरायण ब्राह्मण अपनी स्त्रियों तथा पुत्रोंके साथ निवास करते थे। उनमें मयद्वारा सुरक्षित ऐसे सुदृढ़ पराक्रमी वीर भरे हुए थे, जिनके केश नील कमलके समान नीले और घुँघराले थे। वे सभी सुशिक्षित थे, जिससे उनमें सदा युद्धकी लालसा भरी रहती थी। वे बड़े-बड़े समरोंसे प्रेम करनेवाले थे, ब्रह्मा और शिवका पूजन करनेसे उनके पराक्रम विशुद्ध थे; वे सूर्य, मरुद्गण और महेन्द्रके समान बली थे और देवताओंके मथन करनेवाले थे। वेदों, शास्त्रों और पुराणोंमें जिन-जिन धर्मोंका वर्णन किया गया है, वे सभी धर्म और शिवके प्रेमी देवता वहाँ चारों ओर व्याप्त थे। उन नगरोंमें प्रवेश करके वे दैत्य सदा शिवभक्तिनिरत होकर सारी त्रिलोकीको बाधित करके विशाल राज्यका उपभोग करने लगे। मुने! इस प्रकार वहाँ निवास करनेवाले उन पुण्यात्माओंके सुख एवं प्रीतिपूर्वक उत्तम राज्यका पालन करते हुए बहुत लंबा काल व्यतीत हो गया।

(अध्याय १)

तारक-पुत्रोंके प्रभावसे संतप्त हुए देवोंकी ब्रह्माके पास करुण पुकार, ब्रह्माका उन्हें शिवके पास भेजना, शिवकी आज्ञासे देवोंका विष्णुकी शरणमें जाना और विष्णुका उन दैत्योंको मोहित करके उन्हें आचार-भ्रष्ट करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! तदनन्तर तारक-पुत्रोंके प्रभावसे दग्ध हुए इन्द्र आदि सभी देवता दुःखी हो परस्पर सलाह करके ब्रह्माजीकी शरणमें गये। वहाँ सम्पूर्ण देवताओंने दीन होकर प्रेमपूर्वक पितामहको प्रणाम किया और अवसर देखकर उनसे अपना दुखड़ा सुनाते हुए कहा।

देवता बोले—धात:! त्रिपुरोंके स्वामी तारक-पुत्रोंने तथा मयासुरने समस्त स्वर्गवासियोंको संतप्त कर दिया है। ब्रह्मन्! इसीलिये हमलोग दुःखी होकर आपकी शरणमें आये हैं। आप उनके वधका कोई उपाय कीजिये, जिससे हमलोग सुखसे रह सकें।

ब्रह्माजीने कहा—देवगणो! तुम्हें उन दानवोंसे विशेष भय नहीं करना चाहिये। मैं उनके वधका उपाय बतलाता हूँ। भगवान् शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे। मैंने ही इन दैत्योंको बढ़ाया है, अतः मेरे हाथों इनका वध होना उचित नहीं। साथ ही त्रिपुरमें इनका पुण्य भी वृद्धिंगत होता रहेगा। अतः इन्द्रसहित सभी देवता शिवजीसे प्रार्थना करें। वे सर्वाधीश यदि प्रसन्न हो जायँगे तो वे ही तुमलोगोंका कार्य पूर्ण करेंगे।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! ब्रह्माजीकी यह वाणी सुनकर इन्द्रसहित सभी देवता दुःखी हो उस स्थानपर गये, जहाँ वृषभध्वज शिव आसीन थे। तब उन सबने

अञ्जलि बाँधकर देवेश्वर शिवको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कंधा झुकाकर लोकोंके कल्याणकर्ता शंकरका स्तवन किया। मुने ! इस प्रकार नाना प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंद्वारा त्रिशूलधारी परमेश्वरकी स्तुति करके स्वार्थ-साधनमें निपुण इन्द्र आदि देवताओंने दीनभावसे कंधा झुकाये हुए हाथ जोड़कर प्रस्तुत स्वार्थको निवेदन करना आरम्भ किया।

देवताओंने कहा—महादेव ! तारकके पुत्र तीनों भाइयोंने मिलकर इन्द्रसहित समस्त देवताओंको परास्त कर दिया है। भगवन् ! उन्होंने त्रिलोकीको तथा मुनीश्वरोंको अपने अधीन कर लिया है और सम्पूर्ण सिद्ध स्थानोंको नष्ट-भ्रष्ट करके सारे जगत्‌को उत्पीड़ित कर रखा है। वे दारुण दैत्य समस्त यज्ञभागोंको स्वयं ग्रहण करते हैं। उन्होंने ऋषि-धर्मका निवारण करके अधर्मका विस्तार कर रखा है। शंकर ! निश्चय ही वे तारक-पुत्र समस्त प्राणियोंके लिये अवध्य हैं, इसीलिये वे स्वेच्छानुसार सभी कार्य करते रहते हैं। प्रभो ! वे त्रिपुरनिवासी दारुण दैत्य जबतक जगत्‌का विनाश न कर डालें, उसके पहले ही आप किसी ऐसी नीतिका विधान करें, जिससे इसकी रक्षा हो सके।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! यों भाषण करते हुए उन स्वर्गवासी इन्द्रादि देवोंकी बात सुनकर शिवजी उत्तर देते हुए बोले।

शिवजीने कहा—देवगण ! इस समय वे त्रिपुराधीश महान् पुण्य-कार्योंमें लगे हुए हैं; और ऐसा नियम है कि जो पुण्यात्मा हो, उसपर विद्वानोंको किसी प्रकार भी प्रहार नहीं करना चाहिये। मैं देवताओंके सारे महान् कष्टोंको जानता हूँ; फिर भी वे दैत्य बड़े प्रबल हैं, अतः देवता और असुर मिलकर भी उनका वध नहीं कर सकते। वे तारक-पुत्र सब-के-सब पुण्य-सम्पन्न हैं, इसलिये उन सभी त्रिपुरवासियोंका वध दुस्साध्य है। यद्यपि मैं रणकर्कश हूँ, तथापि जान-बूझकर मैं मित्र-द्रोह कैसे कर सकता हूँ; क्योंकि पहले किसी समय ब्रह्माजीने कहा था कि मित्रद्रोहसे बढ़कर दूसरा कोई बड़ा पाप नहीं है। सत्पुरुषोंने ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा व्रत-भङ्ग करनेवालेके लिये प्रायश्चित्तका विधान किया है; परंतु कृतघ्नके उद्धारका कोई उपाय नहीं है।* देवताओ ! तुमलोग भी तो धर्मज्ञ हो, अतः धर्मबुद्धिसे विचारकर तुम्हीं बताओ कि जब वे दैत्य मेरे भक्त हैं, तब मैं उन्हें कैसे मार सकता हूँ। इसलिये अमरो ! जबतक वे दैत्य मेरी भक्तिमें तत्पर हैं, तबतक उनका वध असम्भव है। तथापि तुमलोग विष्णुके पास जाकर उनसे यह कारण निवेदन करो।

तदनन्तर देवगण भगवान् विष्णुके समीप गये और उनके द्वारा ऐसी व्यवस्था की गयी कि जिससे वे असुर दैत्य—सनातन धर्मसे विमुख होकर सर्वथा अनाचारपरायण हो गये। वैदिक धर्मका नाश होनेसे वहाँ स्त्रियोंने पातिव्रत-धर्म छोड़ दिया, पुरुष इन्द्रियोंके वश हो गये। यों

---

* ब्रह्मघ्ने च सुरापे च स्तेये भग्नव्रते तथा। निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥

(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ युद्ध खण्ड १।५)

स्त्री-पुरुष सभी दुराचारी हो गये। देवाराधन, श्राद्ध, यज्ञ, व्रत, तीर्थ, शिव-विष्णु-सूर्य-गणेश आदिका पूजन, स्नान, दान आदि सभी शुभ आचरण नष्ट हो गये। तब माया तथा अलक्ष्मी उन पुरोंमें जा पहुँची। तपसे प्राप्त लक्ष्मी वहाँसे चली गयीं। इस प्रकार वहाँ अधर्मका विस्तार हो गया। मुने! तब शिवेच्छासे भाइयोंसहित उस दैत्यराजकी तथा मयकी भी शक्ति कुण्ठित हो गयी।

(अध्याय २—५)

☆

देवोंका शिवजीके पास जाकर उनका स्तवन करना, शिवजीके त्रिपुर-वधके लिये उद्यत न होनेपर ब्रह्मा और विष्णुका उन्हें समझाना, विष्णुके बतलाये हुए शिव-मन्त्रका देवोंद्वारा तथा विष्णुद्वारा जप, शिवजीकी प्रसन्नता और उनके लिये विश्वकर्माद्वारा सर्वदेवमय रथका निर्माण

व्यासजीने पूछा—सनत्कुमारजी! जब भाइयों तथा पुरवासियोंसहित उस दैत्यराजकी बुद्धि विशेषरूपसे मोहाच्छन्न हो गयी, तब उसके बाद कौन-सी घटना घटी? विभो! वह सारा वृत्तान्त वर्णन कीजिये।

सनत्कुमारजीने कहा—महर्षे! जब तीनों पुरोंकी पूर्वोक्त दशा हो गयी, दैत्योंने शिवार्चनका परित्याग कर दिया, सम्पूर्ण स्त्री-धर्म नष्ट हो गया और चारों ओर दुराचार फैल गया, तब भगवान् विष्णु और ब्रह्माके साथ सब देवता कैलास पर्वतपर गये और सुन्दर शब्दोंमें शिवकी स्तुति करने लगे—'महेश्वर देव! आप परमोत्कृष्ट आत्मबलसे सम्पन्न हैं; आप ही सृष्टिके कर्ता ब्रह्मा, पालक विष्णु और संहर्ता रुद्र हैं; परब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार है।' यों महादेवजीका स्तवन करके देवोंने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर भगवान् विष्णुने जलमें खड़े होकर अपने स्वामी परमेश्वर शिवका मन-ही-मन स्मरण करके तन्मय हो दक्षिणामूर्तिके द्वारा प्रकटित रुद्रमन्त्रका डेढ़ करोड़की संख्यातक जप किया। तबतक सभी देवता उन महेश्वरमें मन लगाकर यों उनकी स्तुति करते रहे।

देवोंने कहा—प्रभो! आप समस्त प्राणियोंके आत्मस्वरूप, कल्याणकर्ता और भक्तोंकी पीड़ा हरनेवाले हैं। आपके गलेमें नीला चिह्न है, जिससे आप नीलकण्ठ कहलाते हैं। आप चिद्रूप एवं प्रचेता हैं, आप रुद्रको हमारा प्रणाम है। असुरनिकन्दन! आप ही हमारी सारी आपत्तियोंके निवारण करनेवाले हैं, अतः सदासे आप ही हमारी गति हैं और आप ही सर्वदा हमलोगोंके वन्दनीय हैं। आप सबके आदि हैं और आप ही अनादि भी हैं। आप ही आनन्दस्वरूप, अव्यय, प्रभु, प्रकृति-पुरुषके भी साक्षात् स्रष्टा और जगदीश्वर हैं। आप ही रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके आश्रयसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र होकर जगत्‌के कर्ता, भर्ता और संहारक बनते हैं। आप ही इस भवसागरसे तारनेवाले हैं। आप समस्त प्राणियोंके स्वामी, अविनाशी, वरदाता, वाङ्मयस्वरूप, वेदप्रतिपाद्य और

वाच्य-वाचकतासे रहित हैं। योगवेत्ता योगी आप ईशानसे मुक्तिकी याचना करते हैं। आप योगियोंके हृदयकमलकी कर्णिकापर विराजमान रहते हैं। वेद और संतजन कहते हैं कि आप परब्रह्मस्वरूप, तत्त्वरूप, तेजोराशि और परात्पर हैं। शर्व ! आप सर्वव्यापी, सर्वात्मा और त्रिलोकीके अधिपति हैं। भव ! इस जगत्‌में जिसे परमात्मा कहा जाता है, वह आप ही हैं। जगद्गुरो ! इस जगत्‌में जिसे देखने, सुनने, स्तवन करने तथा जानने योग्य बताया जाता है और जो अणुसे भी सूक्ष्म तथा महान्‌से भी महान् है, वह आप ही हैं। आप चारों ओर हाथ, पैर, नेत्र, सिर, मुख, कान और नाकवाले हैं; अतः आपको चारों ओरसे नमस्कार है। सर्वव्यापिन् ! आप सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, अनावृत और विश्वरूप हैं; आप विरूपाक्षको सब ओरसे अभिवादन है। आप सर्वेश्वर, भवाध्यक्ष, सत्यमय, कल्याणकर्ता, अनुपमेय और करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावशाली हैं; आपको हम चारों ओरसे दण्डवत्-प्रणाम करते हैं। विश्वाराध्य, आदि-अन्तशून्य, छब्बीसवें तत्त्व, नियामकरहित तथा समस्त प्राणियोंको अपने-अपने कार्योंमें प्रवृत्त करनेवाले आपको हमारा सब ओरसे प्रणाम है। आप प्रकृतिके भी प्रवर्तक, सबके प्रपितामह और समस्त शरीरोंमें व्याप्त हैं; आप परमेश्वरको हमारा नमस्कार है। श्रुतियाँ तथा श्रुतितत्त्वके ज्ञाता विद्वज्जन आपको वरदायक, समस्त भूतोंमें निवास करनेवाला, स्वयम्भु और श्रुति-तत्त्वज्ञ बतलाते हैं। नाथ ! आपने जगत्‌में अनेकों ऐसे कार्य किये हैं, जो हमारी समझसे परे हैं; इसीलिये देवता, असुर, ब्राह्मण और अन्यान्य स्थावर-जङ्गम भी आपकी ही स्तुति करते हैं। शम्भो ! त्रिपुरवासी दैत्योंने हमें प्रायः नष्ट-सा कर डाला है, अतः आप शीघ्र ही उन असुरोंका विनाश करके हमारी रक्षा कीजिये; क्योंकि देववल्लभ ! हम देवोंके एकमात्र आप ही गति हैं। परमेश्वर ! इस समय वे आपकी मायासे मोहित हो गये हैं, अतः प्रभो ! वे भगवान् विष्णुद्वारा बतायी हुई युक्तिके चक्रमें फँसकर सारा धर्म-कर्म छोड़ बैठे हैं। भक्तवत्सल ! हमारे सौभाग्यवश इस समय उन दैत्योंने सम्पूर्ण धर्मोंका परित्याग कर दिया है और नास्तिक शास्त्रका आश्रय ले रखा है। शरणदाता ! आप सदासे देवताओंका कार्य करते आये हैं, इसीलिये आज भी हमलोग आपके शरणापन्न हुए हैं। अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर ! इस प्रकार महेश्वरका स्तवन करके देवगण दीनभावसे अञ्जलि बाँधकर सामने खड़े हो गये। उस समय उनके मस्तक झुके हुए थे।

इस प्रकार जब सुरेन्द्र आदि देवोंने महेश्वरकी स्तुति की और विष्णुने ईशान-सम्बन्धी मन्त्रका जप किया, तब सर्वेश्वर भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और वृषपर सवार हो वहीं प्रकट हो गये। उस समय पार्वतीपति शिवका मन प्रसन्न था। उन्होंने नन्दीश्वरकी पीठसे उतरकर विष्णुका आलिङ्गन किया और फिर वे नन्दीपर हाथ टेककर खड़े हो गये और सम्पूर्ण देवताओंकी ओर कृपाभरी दृष्टिसे देखकर गम्भीर वाणीमें श्रीहरिसे बोले।

शिवजीने कहा—देवश्रेष्ठ ! उन अधर्मनिष्ठ दैत्योंके तीनों पुरोंको मैं नष्ट कर डालूँगा—इसमें संशय नहीं है; परंतु वे महादैत्य मेरे भक्त थे और उनका मन सुदृढ़ रूपसे मुझमें लगा रहता था; अतः यद्यपि इस समय उन्होंने व्याजवश उत्तम धर्मका परित्याग कर दिया है, तथापि क्या वे मेरे ही द्वारा मारने योग्य हैं? इसलिये जिन्होंने त्रिपुरवासी सारे दैत्योंको धर्मभ्रष्ट करके मेरी भक्तिसे विमुख कर दिया है, वे विष्णु अथवा अन्य कोई ही उन्हें क्यों नहीं मारते? मुनीश्वर ! शम्भुके ये वचन सुनकर उन समस्त देवताओंका तथा श्रीहरिका भी मन उदास हो गया। जब सृष्टिकर्ता ब्रह्माने देखा कि देवताओं और विष्णुके मुखपर उदासी छा गयी है, तब उन्होंने हाथ जोड़कर शम्भुसे कहना आरम्भ किया।

ब्रह्माजी बोले—परमेश्वर ! आप योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, परब्रह्म तथा सदासे देवों और ऋषियोंकी रक्षामें तत्पर हैं; अतः पाप आपका स्पर्श नहीं कर सकता। साथ ही आपके आदेशसे ही तो उन्हें मोहमें डाला गया है। इसके प्रेरक तो आप ही हैं। इस समय अवश्य ही उन्होंने अपने धर्मका परित्याग कर दिया है और वे आपकी भक्तिसे विमुख हो गये हैं; तथापि आपके सिवा दूसरा कोई उनका वध नहीं कर सकता। देवों और ऋषियोंके प्राणरक्षक महादेव ! साधुओंकी रक्षाके लिये आपके द्वारा उन म्लेच्छोंका वध उचित है। आप तो राजा हैं, अतः राजाको धर्मानुसार पापियोंका वध करनेसे पाप नहीं लगता; इसलिये इस काँटेको उखाड़कर साधु-ब्राह्मणोंकी रक्षा कीजिये। राजा यदि अपने राज्य तथा सर्वलोकाधिपत्यको स्थिर रखना चाहता हो तो उसे अपने राज्यमें एवं अन्यत्र भी ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये। इसलिये आप देवगणोंकी रक्षाके लिये उद्यत हो जाइये, विलम्ब मत कीजिये। देवदेवेश ! बड़े-बड़े मुनीश्वर, यज्ञ, सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, मैं और विष्णु भी निश्चय ही आपकी प्रजा हैं। प्रभो ! आप देवताओंके सार्वभौम सम्राट् हैं। ये श्रीहरि आदि देवगण तथा सारा जगत् आपका ही कुटुम्ब है। अजन्मा देव ! श्रीहरि आपके युवराज हैं और मैं ब्रह्मा आपका पुरोहित हूँ तथा आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले शक्र राजकार्य सँभालने-वाले मन्त्री हैं। सर्वेश ! अन्य देवता भी आपके शासनके नियन्त्रणमें रहकर सदा अपने-अपने कार्यमें तत्पर रहते हैं। यह बिलकुल सत्य है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! ब्रह्माकी यह बात सुनकर सुरपालक परमेश्वर शिवका मन प्रसन्न हो गया। तब उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा।

शिवजी बोले—ब्रह्मन् ! यदि आप मुझे देवताओंका सम्राट् बतला रहे हैं तो मेरे

पास उस पदके योग्य कोई ऐसी सामग्री तो है नहीं, जिससे मैं उस पदको ग्रहण कर सकूँ; क्योंकि न तो मेरे पास कोई महान् दिव्य रथ है, न उसके उपयुक्त सारथि है और न संग्राममें विजय दिलानेवाले वैसे धनुष-बाण ही हैं कि जिन्हें लेकर मैं मनोयोगपूर्वक संग्राममें उन प्रबल दैत्योंका वध कर सकूँ। यों कहकर वे चुप हो गये। परंतु शिवजीको शीघ्र प्रस्तुत होते न देखकर समस्त देवता, कश्यप आदि ऋषि अत्यन्त व्याकुल तथा दुःखी हो गये। तब भगवान् हरिने उनसे कहा।

भगवान् विष्णु बोले—"देवो तथा मुनियो! तुमलोग क्यों दुःखी हो रहे हो? तुम्हें अपने सारे दुःखका परित्याग कर देना चाहिये। अब तुम सब लोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनो। देवगण! तुम्हीं लोग विचार करो कि महान् पुरुषोंकी आराधना सुखसाध्य नहीं होती। मैंने ऐसा सुना है कि महदाराधनमें पहले महान् कष्ट झेलना पड़ता है। पीछे भक्तकी दृढ़ता देखकर इष्टदेव अवश्य प्रसन्न होते हैं। परंतु शिव तो समस्त गणोंके अध्यक्ष तथा परमेश्वर हैं। ये तो आशुतोष ही ठहरे। अतः पहले 'ॐ' का उच्चारण करके फिर 'नमः' का प्रयोग करे। फिर 'शिवाय' कहकर दो बार 'शुभम्'का उच्चारण करे। उसके बाद दो बार 'कुरु'का प्रयोग करके फिर 'शिवाय नमः' 'ॐ' जोड़ दे। (ऐसा करनेसे 'ॐ नमः शिवाय शुभं शुभं कुरु कुरु शिवाय नमः ॐ' यह मन्त्र बनता है।) बुद्धिविशारदो! यदि तुमलोग शिवकी प्रसन्नताके लिये इस मन्त्रका पुनः एक करोड़ जप करोगे तो शिवजी अवश्य तुम्हारा कार्य पूर्ण करेंगे।" मुने! प्रभावशाली श्रीहरिने जब यों कहा, तब सभी देवता पुनः शिवाराधनमें लग गये। तत्पश्चात् श्रीहरि भी देवों तथा मुनियोंके कार्यकी सिद्धिके हेतु शिवमें मन लगाकर विशेषरूपसे विधिपूर्वक जपमें तत्पर हो गये। मुनिश्रेष्ठ! इधर देवगण धैर्यसम्पन्न हो बारंबार 'शिव'-'शिव' यों उच्चारण करते हुए एक करोड़ जप करके सामने खड़े हो गये। इसी समय स्वयं साक्षात् शिव पूर्वोक्त स्वरूप धारण करके प्रकट हो गये और यों कहने लगे।

श्रीशिवजी बोले—हरे! ब्रह्मन्! देवगण तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनियो! मैं तुमलोगोंके इस जपसे प्रसन्न हो गया हूँ, अतः अब तुमलोग अपना मनोवाञ्छित वर माँग लो।

देवताओंने कहा—देवाधिदेव! कल्याणकर्ता जगदीश्वर! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं तो देवोंकी विकलताका विचार करके शीघ्र ही त्रिपुरका संहार कर दीजिये। परमेश्वर! आप दीनबन्धु तथा कृपाकी खान हैं। आपने ही सदासे हम देवताओंकी बारंबार विपत्तियोंसे रक्षा की है, अतः इस समय भी आप हमारी रक्षा कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—ब्रह्मन्! तब ब्रह्मा और विष्णुसहित देवोंकी यह बात सुनकर शिवजी मन-ही-मन प्रसन्न हुए और पुनः इस प्रकार बोले।

महेश्वरने कहा—हरे! ब्रह्मन्! देवगण! तथा मुनियो! अब त्रिपुरको नष्ट हुआ ही समझो। तुमलोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनो (और उसके अनुसार कार्य करो)। मैंने पहले जिस दिव्य रथ, सारथि, धनुष और उत्तम बाणको अङ्गीकार किया

है, यह सब शीघ्र ही तैयार करो। विष्णो तथा विधे! निश्चय ही तुम दोनों त्रिलोकीके अधिपति हो; इसलिये तुम्हें चाहिये कि मेरे लिये प्रयत्नपूर्वक सम्राट्के योग्य सारा उपकरण प्रस्तुत कर दो। तुम दोनों सृष्टिके सृजन और पालन-कार्यमें नियुक्त हो, अत: त्रिपुरको नष्ट हुआ समझकर देवताओंकी सहायताके लिये यह कार्य अवश्य करो। यह शुभ मन्त्र (जिसका तुमलोगोंने जप किया है) महान् पुण्यमय तथा मुझे प्रसन्न करनेवाला है। यह भुक्ति-मुक्तिका दाता, सम्पूर्ण कामनाओंका पूरक और शिव-भक्तोंके लिये आनन्दप्रद है। यह स्वर्गकामी पुरुषोंके लिये धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है। यह निष्कामके लिये मोक्ष तथा साधन करनेवाले पुरुषोंके लिये भुक्ति-मुक्तिका साधक है। जो मनुष्य पवित्र होकर सदा इस मन्त्रका कीर्तन करता है, सुनता है अथवा दूसरेको सुनाता है, उसकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! परमात्मा शिवकी यह बात सुनकर सभी देवता परम प्रसन्न हुए और ब्रह्मा तथा विष्णुको तो विशेष आनन्द प्राप्त हुआ। उस समय विश्वकर्माने शिवके आज्ञानुसार विश्वके हितके लिये एक सर्वदेवमय तथा परम शोभन दिव्य रथका निर्माण किया।

(अध्याय ६—८)

☆

सर्वदेवमय रथका वर्णन, शिवजीका उस रथपर चढ़कर युद्धके लिये प्रस्थान, उनका पशुपति नाम पड़नेका कारण, शिवजीद्वारा गणेशका पूजन और त्रिपुर-दाह, मयदानवका त्रिपुरसे जीवित बच निकलना

व्यासजीने कहा—शैवप्रवर सनत्कुमारजी! आपकी बुद्धि बड़ी उत्तम है, आप सर्वज्ञ हैं। तात! आपने परमेश्वर शिवकी जो कथा सुनायी है, वह अत्यन्त अद्भुत है। अब बुद्धिमान् विश्वकर्माने शिवजीके लिये जिस देवमय एवं परमोत्कृष्ट दिव्य रथका निर्माण किया था, उसका वर्णन कीजिये।

सूतजी कहते हैं—मुने! व्यासजीकी यह बात सुनकर मुनीश्वर सनत्कुमार शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके बोले।

सनत्कुमारजीने कहा—महाबुद्धिमान् मुनिवर व्यासजी! मैं शिवजीके पादपद्मोंका स्मरण करके अपनी बुद्धिके अनुसार रथकी निर्माण-कथाका वर्णन करता हूँ, सुनो! तदनन्तर विश्वकर्माने रुद्रदेवके लिये बड़े यत्नसे आदरपूर्वक सर्वलोकमय दिव्य रथकी रचना की। वह सर्वसम्मत तथा सर्वभूतमय रथ सुवर्णका बना हुआ था। उसके दाहिने चक्रमें सूर्य और वामचक्रमें चन्द्रमा विराजमान थे। दाहिने चक्रमें बारह अरे लगे हुए थे, जिनमें बारहों सूर्य प्रतिष्ठित थे और बायाँ पहिया सोलह अरोंसे युक्त था, जिनमें चन्द्रमाकी सोलह कलाएँ विराजमान थीं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले विप्रेन्द्र! अश्विनी आदि सभी सत्ताईसों नक्षत्र भी उस वामचक्रकी ही शोभा बढ़ा रहे थे। विप्रश्रेष्ठ! छहों ऋतुएँ उन दोनों पहियोंकी नेमि बनीं। अन्तरिक्ष

रथका अग्रभाग हुआ और मन्दराचलने रथकी बैठकका स्थान ग्रहण किया। उदयाचल और अस्ताचल— ये दोनों उस रथके कूबर हुए। महामेरु अधिष्ठान हुआ और शाखापर्वत उसके आश्रयस्थान हुए। संवत्सर उस रथका वेग, उत्तरायण और दक्षिणायन— दोनों लोहधारक, मुहूर्त बन्धुर (रस्सा), कलाएँ उसकी कीलें हुईं। काष्ठाएँ उसका घोणा (नासिकारूप अग्रभाग), क्षण अक्षदण्ड, निमेष अनुकर्ष (नीचेका काष्ठ) और लव ईषादण्ड हुए। द्युलोक इस रथका वरूथ (ऊपरी पर्दा) तथा स्वर्ग और मोक्ष ध्वजाएँ हुईं। अभ्रमु (ऐरावतकी पत्नी) और कामधेनु जुएके अन्तिम छोरपर स्थित हुए। अव्यक्त (प्रकृति) उसका ईषादण्ड, बुद्धि नड्वल, अहंकार कोना और पञ्च महाभूत उसका बल थे। मुनिश्रेष्ठ! इन्द्रियाँ उसे चारों ओरसे विभूषित कर रही थीं और श्रद्धा उस रथकी चाल थी। उस समय वेदोंके छहों अङ्ग ही उसके भूषण और पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र उपभूषण हुए। सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त बलसम्पन्न श्रेष्ठ मन्त्र घण्टाके स्थानापन्न हुए और वर्ण तथा आश्रम उसके पाद बने। सहस्र फणोंसे सुशोभित शेषनाग बन्धनरज्जु हुए और दिशाएँ तथा उपदिशाएँ उसके पाद बनीं। पुष्कर आदि तीर्थोंने रत्नजटित स्वर्णमय पताकाओंका स्थान ग्रहण किया और चारों समुद्र उस रथके आच्छादन-वस्त्र बने। गङ्गा आदि सभी श्रेष्ठ सरिताओंने सुन्दरी स्त्रियोंका रूप धारण किया और समस्त आभूषणोंसे विभूषित हो हाथमें चँवर ले यत्र-तत्र स्थित होकर वे रथकी शोभा बढ़ाने लगीं। आवह आदि सातों वायुओंने स्वर्णमय उत्तम सोपानका काम सँभाला। लोकालोक पर्वत उसके चारों ओरका उपसोपान और मानस आदि सरोवर उसके सुन्दर बाहरी विषमस्थान हुए। सारे वर्षाचल उसके चारों ओरके पाश बने और नीचेके लोकोंके निवासी उस रथका तल भाग हुए। देवाधिदेव भगवान् ब्रह्मा लगाम पकड़नेवाले सारथि हुए और ब्रह्मदेवत ॐकार उन ब्रह्मदेवका चाबुक हुआ। अकारने विशाल छत्रका रूप धारण किया। मन्दराचल पार्श्वभागका दण्ड हुआ। शैलराज हिमालय धनुष और स्वयं नागराज शेष उसकी प्रत्यञ्चा बने। श्रुतिरूपिणी सरस्वती देवी उस धनुषकी घण्टा हुईं और महातेजस्वी विष्णु बाण तथा अग्नि उस बाणके नोक बने। मुने! चारों वेद उस रथमें जुतनेवाले चार घोड़े कहे गये हैं। इसके बाद शेष बची हुई ज्योतियाँ उन अश्वोंकी आभूषण हुईं। विषसे उत्पन्न हुई वस्तुओंने सेनाका रूप धारण किया, वायु बाजा बजानेवाले और व्यास आदि मुख्य-मुख्य ऋषि वाहवाहक हुए। मुनीश्वर! अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं संक्षेपमें ही बतलाता हूँ कि ब्रह्माण्डमें जो कुछ वस्तु थी, वह सब उस रथमें विद्यमान थी। इस प्रकार बुद्धिमान् विश्वकर्माने ब्रह्मा और विष्णुकी आज्ञासे उस शुभ रथका तथा रथसामग्रीका निर्माण किया था।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! इस प्रकारके महान् दिव्य रथमें, जो अनेकविध आश्चर्योंसे युक्त था, वेदरूपी अश्वोंको जोतकर ब्रह्माने उसे शिवको समर्पित कर दिया। शम्भुको निवेदित करनेके पश्चात् जो विष्णु आदि देवोंके सम्माननीय एवं त्रिशूल धारण करनेवाले हैं, उन देवेश्वरकी प्रार्थना

करके ब्रह्माजी उन्हें उस रथपर चढ़ाने लगे। तब महान् ऐश्वर्यशाली सर्वदेवमय शम्भु रथ-सामग्रीसे युक्त उस दिव्य रथपर आरूढ़ हुए। उस समय ऋषि, देवता, गन्धर्व, नाग, लोकपाल और ब्रह्मा, विष्णु भी उनकी स्तुति कर रहे थे। गानविद्याविशारद अप्सराओंके गण उन्हें घेरे हुए थे। सारथिके स्थानपर ब्रह्माको देखकर उन वरदायक शम्भुकी विशेष शोभा हुई। लोकको सारी वस्तुओंसे कल्पित उस रथपर शिवजी चढ़ ही रहे थे कि वेदसम्भूत वे घोड़े सिरके बल भूमिपर गिर पड़े। पृथ्वीमें भूकम्प आ गया। सारे पर्वत डगमगाने लगे। सहसा शेषनाग शिवजीका भार न सह सकनेके कारण आतुर हो काँप उठे। तब उसी क्षण भगवान् धरणीधरने उठकर नन्दीश्वरका रूप धारण किया और रथके नीचे जाकर उसे ऊपरको उठाया; परंतु नन्दीश्वर भी रथारूढ़ महेशके उस उत्तम तेजको सहन न कर सके, अतः उन्होंने तत्काल ही पृथ्वीपर घुटने टेक दिये। तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्माने शिवजीकी आज्ञासे हाथमें चाबुक ले घोड़ोंको उठाकर उस श्रेष्ठ रथको खड़ा किया। तदनन्तर महेशद्वारा अधिष्ठित उस उत्तम रथमें बैठे हुए ब्रह्माजीने रथमें जुते हुए मन और वायुके समान वेगशाली वेदमय अश्वोंको उन तपस्वी दानवोंके आकाशस्थित तीनों पुरोंको लक्ष्य करके आगे बढ़ाया। तत्पश्चात् लोकोंके कल्याणकर्ता भगवान् रुद्र देवोंकी ओर दृष्टिपात करके कहने लगे—'सुरश्रेष्ठो! यदि तुमलोग देवों तथा अन्य प्राणियोंके विषयमें पृथक्-पृथक् पशुत्वकी कल्पना करके उन पशुओंका आधिपत्य मुझे प्रदान करोगे, तभी मैं उन असुरोंका संहार करूँगा; क्योंकि वे दैत्यश्रेष्ठ तभी मारे जा सकते हैं, अन्यथा उनका वध असम्भव है।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! अगाध बुद्धिसम्पन्न देवाधिदेव भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर सभी देवता पशुत्वके प्रति सशङ्कित हो उठे, जिससे उनका मन खिन्न हो गया। तब उनके भावको समझकर देवदेव अम्बिकापति शम्भु करुणार्द्र हो गये। फिर वे हँसकर उन देवताओंसे इस प्रकार बोले।

शम्भुने कहा—देवश्रेष्ठो! पशुभाव प्राप्त होनेपर भी तुमलोगोंका पतन नहीं होगा। मैं उस पशुभावसे विमुक्त होनेका उपाय बतलाता हूँ, सुनो और वैसा ही करो। समाहित मनवाले देवताओ! मैं तुमलोगोंसे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो इस दिव्य पाशुपत-व्रतका पालन करेगा, वह पशुत्वसे मुक्त हो जायगा। सुरश्रेष्ठो! तुम्हारे अतिरिक्त जो अन्य प्राणी भी मेरे पाशुपत-व्रतको करेंगे, वे भी निस्संदेह पशुत्वसे छूट जायँगे। जो नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए बारह वर्षतक, छः वर्षतक अथवा तीन वर्षतक मेरी सेवा करेगा अथवा करायेगा, वह पशुत्वसे विमुक्त हो जायगा। इसलिये श्रेष्ठ देवताओ! तुमलोग भी जब इस परमोत्कृष्ट दिव्य व्रतका पालन करोगे तो उसी समय पशुत्वसे मुक्त हो जाओगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! परमात्मा महेश्वरका वचन सुनकर विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंने कहा—'तथेति'—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा। इसीलिये बड़े-बड़े देवता तथा असुर भगवान् शंकरके पशु बने और पशुत्वरूपी पाशसे विमुक्त करनेवाले रुद्र पशुपति हुए।

तभीसे महेश्वरका 'पशुपति' यह नाम विश्वमें विख्यात हो गया। यह नाम समस्त लोकोंमें कल्याण प्रदान करनेवाला है। उस समय सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि हर्षमग्न होकर जय-जयकार करने लगे और देवेश्वर ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्यान्य प्राणी भी परमानन्दमग्न हो गये। उस अवसरपर महात्मा शिवका जैसा रूप प्रकट हुआ था, उसका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं हो सकता। तदनन्तर जो शिवा तथा सम्पूर्ण जगत्के स्वामी और समस्त प्राणियोंके सुख प्रदान करनेवाले हैं, वे महेश्वर यों सुसज्जित होकर त्रिपुरका संहार करनेके लिये प्रस्थित हुए। जिस समय देवदेव महादेव त्रिपुरका विनाश करनेके लिये चले, उस अवसरपर देवराज आदि सभी प्रधान-प्रधान देवता भी उनके साथ प्रस्थित हुए। पर्वतके समान विशालकाय उन सुरेश्वरोंका मन प्रसन्न था, वे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे। वे सभी हाथोंमें हल, शाल, मुसल, भुशुण्डि और नाना प्रकारके पर्वत-जैसे विशाल आयुधोंको धारण करके हाथी, घोड़े, सिंह, रथ और बैलोंपर सवार हो चल रहे थे। उस समय जिनके शरीर परम प्रकाशमान थे और मन महान् उत्साहसे सम्पन्न थे तथा जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थे, वे इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु आदि देव शम्भुकी जय-जयकार बोलते हुए महेश्वरके आगे-आगे चले। सभी दण्डी एवं जटाधारी मुनि हर्ष मनाने लगे और आकाशचारी सिद्ध तथा चारण पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। विप्रेन्द्र! त्रिपुरकी यात्रा करते समय जितने गणेश्वर शिवजीके साथ थे, उनकी गणना करके कौन पार पा सकता है; तथापि मैं कुछका वर्णन करता हूँ। योगिन्! समस्त गणराजोंमें श्रेष्ठ भृङ्गी गणेश्वरों तथा देवगणोंसे घिरकर विमानपर आरूढ हो महेन्द्रकी भाँति त्रिपुरका विनाश करनेके लिये चले। उनके साथ-साथ केश, विगतवास, महाकेश, महाज्वर, सोमवल्ली-सवर्ण, सोमप, सनक, सोमधृक्, सूर्यवर्चा, सूर्यप्रेक्षणक, सूर्याक्ष, सूरिनामा, सुर, सुन्दर, प्रस्कन्द, कुन्दर, चण्ड, कम्पन, अतिकम्पन, इन्द्र, इन्द्रजव, यन्ता, हिमकर, शताक्ष, पञ्चाक्ष, सहस्राक्ष, महोदर, सतीजहु, शतास्य, रङ्क, कर्पूरपूतन, द्विशिख, त्रिशिख, अहंकारकारक, अजवक्त्र, अष्टवक्त्र, हयवक्त्र, अर्धवक्त्र आदि बहुत-से अप्रमेय बलशाली वीर गणाध्यक्ष लक्ष्य-लक्षणकी परवाह न करते हुए महेश्वरको घेरकर चल रहे थे।

व्यासजी! तदनन्तर महादेव शम्भु सम्पूर्ण सामग्रियोंसहित उस रथपर स्थित हो उन सुरद्रोहियोंके तीनों पुरोंको पूर्णतया दग्ध करनेके लिये उद्यत हुए। उन्होंने रथके शीर्ष-स्थानपर स्थित हो उस महान् अद्भुत धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और उसपर उत्तम बाणका संधान करके वे रोषावेशसे होठको चाटने लगे। फिर धनुषकी मूठको दृढ़तापूर्वक पकड़कर और दृष्टिमें दृष्टि मिलाकर वे वहाँ अचलभावसे खड़े हो गये। परंतु उनके अँगूठेके अग्रभागमें स्थित होकर गणेश निरन्तर पीड़ा ही पहुँचाते रहे, जिससे वे तीनों पुर त्रिशूलधारी शंकरका लक्ष्य नहीं बन सके। तब धनुष्बाणधारी पुञ्जकेश विरूपाक्ष शंकरने परम शोभन आकाशवाणी सुनी। (उस व्योमवाणीने कहा—) 'ऐश्वर्यशाली जगदीश्वर! जबतक आप

इन गणेशकी अर्चना नहीं कर लेंगे, तबतक इन तीनों पुरोंका संहार नहीं कर सकेंगे।' तब ऐसी बात सुनकर अन्धकासुरके निहन्ता भगवान् शिवने भद्रकालीको बुलाकर गजाननका पूजन किया। जब हर्षपूर्वक विधि-विधान-सहित अग्रभागमें स्थित उन विनायककी पूजा की गयी, तब वे प्रसन्न हो गये। फिर तो भगवान् शंकरको उन तारक-पुत्र महामनस्वी दैत्योंके तीनों नगर यथोक्तरूपसे आकाशमें स्थित दीख पड़े। इस विषयमें कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि जब शिवजी स्वयं स्वतन्त्र, परब्रह्म, सगुण, निर्गुण, सबके द्वारा अलक्ष्य, स्वामी, परमात्मा, निरञ्जन, पञ्चदेवमय, पञ्चदेवोंके उपास्य और परात्पर प्रभु हैं, वे ही सबके उपास्य हैं, उनका उपास्य कोई नहीं है, तब सबके वन्दनीय परब्रह्मस्वरूप उन देवेश्वर महेश्वरके विषयमें यह बात उचित नहीं जान पड़ती कि उनकी कार्यसिद्धि अन्यकी कृपापर अवलम्बित हो। परंतु मुने! उन देवाधिदेव वरदानी महेश्वरके चरित्रमें लीलावश सब कुछ घटित हो सकता है। अस्तु! इस प्रकार जब गणाधिपका पूजन करके महादेवजी स्थित हुए, तब वे तीनों पुर कालवश शीघ्र ही एकताको प्राप्त हो गये। मुने! उन त्रिपुरोंके परस्पर मिलकर एक हो जानेपर महान् आत्मबलसे सम्पन्न देवताओंको महान् हर्ष हुआ। तब सम्पूर्ण देवगण, सिद्ध और परमर्षि अष्टमूर्तिधारी शिवकी स्तुति करके उच्चस्वरसे जय-जयकार करने लगे। उस समय ब्रह्मा और जगदीश्वर विष्णुने कहा—'महेश्वर! तारकके पुत्र उन त्रिपुरनिवासी दैत्योंके वधका समय भी आ गया है। विभो! इसीलिये ये पुर एकताको प्राप्त हो गये हैं। अतः देवेश! जबतक ये त्रिपुर पुनः विलग हों उसके पहले ही आप बाण छोड़कर इन्हें भस्म कर डालिये और देवताओंका कार्य सिद्ध कीजिये।'

मुने! तदनन्तर शिवजीने धनुषकी डोरी चढ़ाकर उसपर पूज्य पाशुपतास्त्र नामक बाणका संधान किया और उसे वे त्रिपुरपर छोड़नेका विचार करने लगे। शंकरजीने जिस समय अपने अद्भुत धनुषको खींचा था, उस समय अभिजित् मुहूर्त चल रहा था। उन्होंने धनुषकी टंकार तथा दुस्सह सिंहनाद करके अपना नाम घोषित किया

और उन महासुरोंको ललकारकर करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान उस भीषण बाणको उनपर छोड़ दिया। तब जिसके नोकपर अग्निदेव प्रतिष्ठित थे और जो विशेषरूपसे पापका विनाशक तथा विष्णुमय था; उस महान् जाज्वल्यमान शीघ्रगामी बाणने उन त्रिपुरनिवासी दैत्योंको दग्ध कर दिया। तत्पश्चात् वे तीनों पुर भी भस्म हो गये और एक साथ ही चारों समुद्रोंरूपी मेखलावाली भूमिपर गिर पड़े।

उस समय शिवजीकी पूजाका अतिक्रमण कर देनेके कारण सैकड़ों दैत्य उस बाणस्थित अग्निसे जलकर हाहाकार मचा रहे थे। जब भाइयोंसहित तारकाक्ष जलने लगा, तब उसने अपने स्वामी भक्तवत्सल भगवान् शंकरका स्मरण किया और मन-ही-मन महादेवको देखकर परम भक्तिपूर्वक नाना प्रकारसे विलाप करता हुआ वह उनसे कहने लगा।

तारकाक्ष बोला—'भव ! आप हमपर प्रसन्न हैं, यह हमें ज्ञात हो गया है। इस सत्यके प्रभावसे आप फिर कब भाइयों-सहित हमको दग्ध करेंगे। भगवन् ! जो देवता और असुरोंके लिये अप्राप्य है, वह (आपके हाथसे मरणरूप) दुर्लभ लाभ हमें प्राप्त हो गया। अब जिस-जिस योनिमें हम जन्म धारण करें, वहाँ हमारी बुद्धि आपकी भक्तिसे भावित रहे।' मुने ! यों वे दैत्य विलाप कर ही रहे थे कि शिवजीकी आज्ञासे उस अग्निने उन्हें अद्भुत रीतिसे जलाकर राखकी ढेरी बना दिया। व्यासजी ! और भी जो बालक और वृद्ध दानव थे, वे शिवाज्ञानुसार उस अग्निद्वारा शीघ्र ही जलकर भस्म हो गये। यहाँतक कि उन त्रिपुरोंमें जितनी स्त्रियाँ और पुरुष थे, वे सब-के-सब उस अग्निसे उसी प्रकार दग्ध हो गये जैसे कल्पान्तमें जगत् भस्म हो जाता है। उस समय उस भीषण अग्निसे कोई भी स्थावर-जंगम बिना जले नहीं बचा, किंतु असुरोंका विश्वकर्मा अविनाशी मय बच गया; क्योंकि वह देवोंका अविरोधी, शम्भुके तेजसे सुरक्षित और सद्भक्त था। विपत्तिके अवसरपर भी वह महेश्वरका शरणागत बना रहता था। जिन दैत्यों तथा अन्य प्राणियोंका भाव-अभाव अथवा कृत-अकृतके प्राप्त होनेपर नाशकारक पतन नहीं होता, वे विनाशसे बचे रहते हैं। इसलिये सत्पुरुषोंको अत्यन्त सम्भावित—उत्तम कर्मके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये; क्योंकि निन्दित कर्म करनेसे प्राणीका विनाश हो जाता है। अतः गर्हित कर्मका आचरण भूलकर भी न करे *। उस समय भी जो दैत्य बन्धु-बान्धवोंसहित शिवजीकी पूजामें तत्पर थे, वे सब-के-सब शिव-पूजाके प्रभावसे (दूसरे जन्ममें) गणोंके अधिपति हो गये। (अध्याय ९-१०)

देवोंके स्तवनसे शिवजीका कोप शान्त होना और शिवजीका उन्हें वर देना, मय दानवका शिवजीके समीप आना और उनसे वर-याचना करना, शिवजीसे वर पाकर मयका वितललोकमें जाना

व्यासजीने पूछा—महाबुद्धिमान् सनत्कुमारजी ! आप तो ब्रह्माके पुत्र और शिवभक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, अतः आप धन्य हैं। अब यह बतलाइये कि त्रिपुरके दग्ध हो जानेपर सम्पूर्ण देवताओंने क्या किया ? मय कहाँ गया और उन त्रिपुराध्यक्षोंकी क्या

* तस्माद् यत्नः सुसम्भाव्यः सद्भिः कर्तव्य एव हि। गर्हणाद् क्षीयते लोको न तत्कर्म समाचरेत्॥

(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ युद्धखं॰ १०।४२)

गति हुई ? यदि यह वृत्तान्त शम्भुकी कथासे सम्बन्ध रखनेवाला हो तो यह सब विस्तारपूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये।

सूतजी कहते हैं—मुने ! व्यासजीका प्रश्न सुनकर सृष्टिकर्ता ब्रह्माके पुत्र भगवान् सनत्कुमार शिवजीके युगल चरणोंका स्मरण करके बोले।

सनत्कुमारजीने कहा—महाबुद्धिमान् व्यासजी ! जब महेश्वरने दैत्योंसे खचाखच भरे हुए सम्पूर्ण त्रिपुरको भस्म कर दिया, तब सभी देवताओंको महान् आश्चर्य हुआ। उस समय शंकरजीके महान् भयंकर रौद्र रूपको, जो करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान और प्रलयकालीन अग्निकी भाँति तेजस्वी था तथा जिसके तेजसे दसों दिशाएँ प्रज्वलित-सी दीख रही थीं, देखकर साथ ही हिमाचल-पुत्री पार्वतीदेवीकी ओर दृष्टिपात करके सम्पूर्ण देवता भयभीत हो गये। तब मुख्य-मुख्य देवता विनम्र होकर सामने खड़े हो गये। उस अवसरपर बड़े-बड़े ऋषि भी देवताओंकी वाहिनीको भयभीत देखकर खड़े ही रह गये, कुछ बोल न सके। वे चारों ओरसे शम्भुको प्रणाम करने लगे। तत्पश्चात् ब्रह्मा भी शिवजीके उस रूपको देखकर भयग्रस्त हो गये। तब उन्होंने डरे हुए विष्णु तथा देवगणोंके साथ प्रसन्न मनसे सावधानीपूर्वक उन गिरिजासहित महेश्वर-का, जो देवोंके भी देव, भव तथा हरनामसे प्रसिद्ध, भक्तोंके अधीन रहनेवाले और त्रिपुरहन्ता हैं, स्तवन किया। तदनन्तर सभी प्रमुख देवताओंने भगवान् शिवकी स्तुति की। यों स्तुति किये जानेपर लोकोंके कल्याणकर्ता शंकर प्रसन्न होकर बोले।

शंकरजीने कहा—ब्रह्मा, विष्णु तथा देवगण ! मैं तुमलोगोंपर विशेषरूपसे प्रसन्न हूँ, अतः अब तुम सभी विचार करके अपना मनोवाञ्छित वर माँग लो।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! शिवद्वारा कहे हुए वचनको सुनकर सभी देवताओंका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। फिर तो वे बोल उठे।

देवताओंने कहा—भगवन् ! देवदेवेश ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं और हम देवगणोंको अपना दास समझकर वर देना चाहते हैं तो देवसत्तम ! जब-जब देवताओंपर दुःखकी सम्भावना हो, तब-तब आप प्रकट होकर सदा उनके दुःखोंका विनाश करते रहें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! जब ब्रह्मा, विष्णु और देवताओंने भगवान् रुद्रसे ऐसी प्रार्थना की, तब वे शान्त तथा प्रसन्न होकर एक साथ ही सबसे बोले—'अच्छा, सदा ऐसा ही होगा।' ऐसा कहकर शंकरजी-ने, जो सदा देवोंका दुःख हरण करनेवाले हैं, प्रसन्नतापूर्वक देवोंको जो कुछ अभीष्ट था, वह सारा-का-सारा उन्हें प्रदान कर दिया। इसी समय मय दानव, जो शिवजीकी कृपाके बलसे जलनेसे बच गया था, शम्भुको प्रसन्न देखकर हर्षित मनसे वहाँ आया। उसने विनीत भावसे हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक हर तथा अन्यान्य देवोंको भी प्रणाम किया। फिर वह शिवजीके चरणोंमें लोट गया। तत्पश्चात् दानवश्रेष्ठ मयने उठकर शिवजीकी ओर देखा। उस समय प्रेमके

कारण उसका गला भर आया और वह भक्तिपूर्ण चित्तसे उनकी स्तुति करने लगा। द्विजश्रेष्ठ ! मयद्वारा किये गये स्तवनको सुनकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये और आदरपूर्वक उससे बोले।

शिवजीने कहा—दानवश्रेष्ठ मय ! मैं तुझपर प्रसन्न हूँ, अतः तू वर माँग ले। इस समय जो कुछ भी तेरे मनकी अभिलाषा होगी, उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! शम्भुके इस मङ्गलमय वचनको सुनकर दानवश्रेष्ठ मयने अञ्जलि बाँधकर विनम्र हो उन प्रभुके चरणोंमें नमस्कार करके कहा।

मय बोला—देवाधिदेव महादेव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे वर पानेका अधिकारी समझते हैं तो अपनी शाश्वती भक्ति प्रदान कीजिये। परमेश्वर ! मैं सदा अपने भक्तोंसे मित्रता रखूँ, दीनोंपर सदा मेरा दयाभाव बना रहे और अन्यान्य दुष्ट प्राणियोंकी मैं उपेक्षा करता रहूँ। महेश्वर ! कभी भी मुझमें आसुर भावका उदय न हो। नाथ ! निरन्तर आपके शुभ भजनमें तल्लीन रहकर निर्भय बना रहूँ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! शंकर तो सबके स्वामी तथा भक्तवत्सल हैं। मयने जब इस प्रकार उन परमेश्वरकी प्रार्थना की, तब वे प्रसन्न होकर मयसे बोले।

महेश्वरने कहा—दानवसत्तम ! तू मेरा भक्त है, तुझमें कोई भी विकार नहीं है; अतः तू धन्य है। अब मैं तेरा जो कुछ भी अभीष्ट वर है, वह सारा-का-सारा तुझे प्रदान करता हूँ। अब तू मेरी आज्ञासे अपने परिवारसहित वितललोकको चला जा। वह स्वर्गसे भी रमणीय है। तू वहाँ प्रसन्नचित्तसे मेरा भजन करते हुए निर्भय होकर निवास कर। मेरी आज्ञासे कभी भी तुझमें आसुर भावका प्राकट्य नहीं होगा।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! मयने महात्मा शंकरकी उस आज्ञाको सिर झुका-कर स्वीकार किया और उन्हें तथा अन्यान्य देवोंको भी प्रणाम करके वह वितललोकको चला गया। तदनन्तर महादेवजी देवताओंके उस महान् कार्यको पूर्ण करके देवी पार्वती, अपने पुत्र और सम्पूर्ण गणोंसहित अन्तर्धान हो गये। जब परिवारसमेत भगवान् शंकर अन्तर्हित हो गये, तब वह धनुष, बाण, रथ आदि सारा उपकरण भी अदृश्य हो गया। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्यान्य देव, मुनि, गन्धर्व, किंनर, नाग, सर्प, अप्सरा और मनुष्योंको महान् हर्ष प्राप्त हुआ। वे सभी शंकरजीके उत्तम यशका बखान करते हुए आनन्दपूर्वक अपने-अपने स्थानको चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्हें परम सुखकी प्राप्ति हुई। महर्षे ! इस प्रकार मैंने शशिमौलि शंकरजीका विशाल चरित, जो त्रिपुर-विनाशको सूचित करनेवाला तथा परमोत्कृष्ट लीलासे युक्त है, सारा-का-सारा तुम्हें सुना दिया। (अध्याय ११-१२)

☆

दम्भकी तपस्या और विष्णुद्वारा उसे पुत्र-प्राप्तिका वरदान, शङ्खचूडका जन्म, तप और उसे वरप्राप्ति, ब्रह्माजीकी आज्ञासे उसका पुष्करमें तुलसीके पास आना और उसके साथ वार्तालाप, ब्रह्माजीका पुनः वहाँ प्रकट होकर दोनोंको आशीर्वाद देना और शङ्खचूडका गान्धर्व विवाहकी विधिसे तुलसीका पाणिग्रहण करना

तदनन्तर जलन्धरकी उत्पत्तिसे लेकर उसके वधतकका प्रसङ्ग सुनाकर सनत्कुमारजीने कहा—मुने! अब शम्भुका दूसरा चरित्र प्रेमपूर्वक श्रवण करो। उसके सुनने-मात्रसे शिवभक्ति सुदृढ़ हो जाती है। व्यासजी! शङ्खचूड नामक एक महावीर दानव था, जो देवोंके लिये कण्टकस्वरूप था। उसे शिवजीने रणके मुहानेपर त्रिशूलसे मार डाला था। शिवजीका वह दिव्य चरित्र परम पावन तथा पापनाशक है। तुमपर अधिक स्नेह होनेके कारण मैं उसका वर्णन करता हूँ, तुम प्रेमपूर्वक उसे श्रवण करो। ब्रह्माके पुत्र जो महर्षि मरीचि थे, उनके पुत्र कश्यप हुए। ये मननशील, धर्मिष्ठ, सृष्टिकर्ता, विद्यासम्पन्न तथा प्रजापति थे। दक्षने प्रसन्न होकर अपनी तेरह कन्याओंका विवाह इनके साथ कर दिया। उनकी संतानोंका इतना अधिक विस्तार हुआ कि उसका वर्णन करना कठिन है। उन कश्यप-पत्नियोंमें एकका नाम दनु था। वह श्रेष्ठ सुन्दरी तथा महारूपवती थी। उस साध्वीका सौभाग्य बढ़ा हुआ था। मुने! उस दनुके बहुत-से महाबली पुत्र उत्पन्न हुए। विस्तारभयसे उनके नाम नहीं गिनाये जा रहे हैं। उनमें एकका नाम विप्रचित्ति था, जो महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था। उसका पुत्र दम्भ हुआ, जो जितेन्द्रिय, धार्मिक तथा विष्णुभक्त था। जब उसके कोई पुत्र नहीं हुआ, तब उस वीरको चिन्ता व्याप्त हो गयी। उसने शुक्राचार्यको गुरु बनाकर उनसे श्रीकृष्ण-मन्त्र प्राप्त किया और पुष्करमें जाकर घोर तप करना आरम्भ किया। वहाँ सुदृढ़ आसन लगाकर कृष्ण-मन्त्रका जप करते हुए उसके एक लाख वर्ष बीत गये। तब उस तपस्वीके मस्तकसे एक जाज्वल्यमान तेज निकलकर सर्वत्र व्याप्त हो गया। वह तेज इतना दुस्सह था कि उससे सम्पूर्ण देवता, मुनि तथा मनु संतप्त हो उठे। तब वे इन्द्रको अगुआ बनाकर ब्रह्माके शरणापन्न हुए। वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता विधाताको प्रणाम करके उनकी स्तुति की और फिर विशेषरूपसे व्याकुल होकर अपना सारा वृत्तान्त उनसे कह सुनाया। उनकी बात सुनकर ब्रह्मा भी उन्हें साथ लेकर वह सारा वृत्तान्त विष्णुको सुनानेके लिये वैकुण्ठको चले। वहाँ पहुँचकर सब लोगोंने त्रिलोकीके अधीश्वर तथा रक्षक परमात्मा विष्णुको विनीतभावसे प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—देवदेव! हमें पता नहीं कि यहाँ कौन-सा कारण उत्पन्न हो गया है। हम किसके तेजसे संतप्त हो उठे हैं, यह आप ही बतलाइये। दीनबन्धो! अपने दुःखी सेवकोंके रक्षक तो आप ही हैं; अतः शरणदाता! रमानाथ! हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! ब्रह्मा

आदि देवताओंके वचनको सुनकर शरणागतवत्सल भगवान् विष्णु मुस्कराये और प्रेमपूर्वक बोले।

विष्णुने कहा—अमरो! शान्त रहो, घबराओ मत, भयभीत न होओ। कोई उलट-पलट नहीं होगा; क्योंकि अभी प्रलयका समय नहीं आया है। (यह तेज तो) दम्भ नामक दानवका है, जो मेरा भक्त है और पुत्रकी कामनासे तप कर रहा है। मैं उसे वरदान देकर शान्त कर दूँगा।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! भगवान् विष्णुके यों कहनेपर ब्रह्मा आदि देवताओंकी व्यग्रता जाती रही, वे सभी धैर्य धारण करके अपने-अपने धामको लौट गये। इधर भगवान् अच्युत भी वर प्रदान करनेके लिये पुष्करको चल पड़े, जहाँ वह दम्भ नामक दानव तप कर रहा था। वहाँ पहुँचकर श्रीहरिने अपने मन्त्रका जप करनेवाले भक्त दम्भको सान्त्वना देते हुए मधुर वाणीमें कहा—'वर माँग!' तब विष्णुका उपर्युक्त वचन सुनकर और उन्हें आगे उपस्थित देखकर दम्भ बड़ी भक्तिके साथ उनके चरणोंमें लोट-पोट हो गया और बारंबार स्तुति करते हुए बोला।

दम्भने कहा—देवाधिदेव! कमलनयन! आपको नमस्कार है। रमानाथ! मुझपर कृपा कीजिये। त्रिलोकेश! मुझे एक ऐसा वीर पुत्र दीजिये, जो आपका भक्त तथा महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न हो। वह त्रिलोकीको जीत ले, परंतु देवता उसे पराजित न कर सकें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! दानवराज दम्भके यों कहनेपर श्रीहरिने उसे वह वर दे दिया और उस घोर तपसे उसे निवृत्त करके स्वयं अन्तर्धान हो गये। दानवेन्द्र दम्भकी तपस्या सिद्ध हो चुकी थी, जिससे उसका मनोरथ पूर्ण हो गया था; अतः वह भी श्रीहरिके चले जानेपर उस दिशाको नमस्कार करके अपने घरको लौट गया। थोड़े ही समयके उपरान्त उसकी भाग्यवती पत्नी गर्भवती हो गयी। वह अपने तेजसे घरके भीतरी भागको प्रकाशित करती हुई शोभा पाने लगी। मुने! श्रीकृष्णके पार्षदोंका अग्रणी जो सुदामा नामक गोप था, जिसे राधाजीने शाप दे दिया था, वही उसके गर्भमें प्रविष्ट हुआ था। तदनन्तर समय आनेपर साध्वी दम्भ-पत्नीने एक तेजस्वी बालकको जन्म दिया। तब पिताने बहुत-से मुनीश्वरोंको बुलाकर उसका विधिपूर्वक जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न किया। द्विजोत्तम! उस पुत्रके उत्पन्न होनेपर बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया। फिर शुभ दिन आनेपर पिताने उस बालकका 'शङ्खचूड' ऐसा नामकरण किया। वह अपने पिताके घरमें शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ने लगा। वह अत्यन्त तेजस्वी था, अतः उसने बचपनमें ही सारी विद्याएँ सीख लीं। वह नित्य बालक्रीडा करके अपने माता-पिताका हर्ष बढ़ाने लगा और अपने समस्त कुटुम्बियोंका तो वह विशेषरूपसे प्रेम-भाजन हो गया।

तदनन्तर जब शङ्खचूड बड़ा हुआ, तब वह जैगीषव्य मुनिके उपदेशसे पुष्करमें जाकर ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये भक्तिपूर्वक तपस्या करने लगा। उस समय वह एकाग्रमन हो अपनी इन्द्रियोंको काबूमें करके गुरूपदिष्ट ब्रह्मविद्याका जप करता रहा। यों पुष्करमें तपस्या करते हुए दानवराज

शङ्खचूडको वर देनेके लिये लोकगुरु एवं ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा शीघ्र ही वहाँ पधारे और उस दानवेन्द्रसे बोले—'वर माँग !' ब्रह्माजीको देखकर उसने अत्यन्त नम्रतासे उन्हें अभिवादन किया और फिर उत्तम वाणीसे उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उसने ब्रह्मासे वर माँगते हुए कहा—'भगवन्! मैं देवताओंके लिये अजेय हो जाऊँ!' तब ब्रह्माजी परम प्रसन्न होकर बोले—'तथास्तु—ऐसा ही होगा।' फिर उन्होंने शङ्खचूडको वह दिव्य श्रीकृष्णकवच प्रदान किया, जो जगत्‌के सम्पूर्ण मङ्गलोंका भी मङ्गल और सर्वत्र विजय प्रदान करनेवाला है। तदनन्तर ब्रह्माजीने उसे आज्ञा दी कि 'तुम बदरीवनको जाओ। वहाँ धर्मध्वजकी कन्या तुलसी सकामभावसे तपस्या कर रही है। तुम उसके साथ विवाह कर लो।' यों कहकर ब्रह्माजी उसी क्षण उसके सामने ही तुरंत अन्तर्धान हो गये। तब तपःसिद्ध शङ्खचूडने भी, जिसके सारे मनोरथ तपोबलसे पूर्ण हो चुके थे और मुखपर

प्रसन्नता खेल रही थी, पुष्करमें ही उस जगत्‌के मङ्गलोंके भी मङ्गलस्वरूप कवचको गलेमें बाँध लिया और ब्रह्माके आज्ञानुसार वह तत्काल ही बदरिकाश्रमको चल पड़ा। वहाँ दानव शङ्खचूड सहसा उस स्थानपर जा पहुँचा जहाँ धर्मध्वजकी पुत्री तुलसी तप कर रही थी। सुन्दरी तुलसीका रूप अत्यन्त कमनीय और मनोहर था। वह उत्तम शीलसे सम्पन्न थी। उस सतीको देखकर शङ्खचूड उसके समीप ही ठहर गया और मधुर वाणीमें उससे बोला।

शङ्खचूडने कहा—सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? तुम यहाँ चुपचाप बैठकर क्या कर रही हो? यह सारा रहस्य मुझे बतलाओ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! शङ्खचूडके ये सकाम वचन सुनकर तुलसीने उससे कहा।

तुलसी बोली—मैं धर्मध्वजकी तपस्विनी कन्या हूँ और यहाँ तपोवनमें तप कर रही हूँ। आप कौन हैं? सुखपूर्वक अपने अभीष्ट स्थानको चले जाइये; क्योंकि नारीजाति ब्रह्मा आदिको भी मोहमें डाल देनेवाली होती है। यह विषतुल्य, निन्दनीय, दोष उत्पन्न करनेवाली, मायारूपिणी तथा विचारशीलोंको भी शृङ्खलाके समान जकड़ लेनेवाली होती है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! तुलसी जब इस प्रकार रसभरी बातें कहकर चुप हो गयी, तब उसे मुसकराती देखकर शङ्खचूडने भी कहना आरम्भ किया।

शङ्खचूड बोला—देवि! तुमने जो बात कही है, वह सारी-की-सारी मिथ्या हो, ऐसी बात नहीं है। उसमें कुछ सत्य है और कुछ

असत्य भी। इसका विवरण मुझसे सुनो। शोभने ! जगत्‌में जितनी पतिव्रता नारियाँ हैं, उनमें तुम अग्रणी हो। मेरा तो ऐसा विचार है कि जैसे मैं पापबुद्धि कामी नहीं हूँ, उसी प्रकार तुम भी काम-पराधीना नहीं हो। फिर भी इस समय मैं ब्रह्माजीकी आज्ञासे तुम्हारे समीप आया हूँ और गान्धर्व विवाहकी विधिसे तुम्हें ग्रहण करूँगा। भद्रे ! क्या तुम मुझे नहीं जानती हो अथवा तुमने कभी मेरा नाम भी नहीं सुना है ? अरे ! देवताओंमें भगदड़ डालनेवाला शङ्खचूड मैं ही हूँ। मैं दनुका वंशज तथा दम्भ नामक दानवका पुत्र हूँ। पूर्वकालमें मैं श्रीहरिका पार्षद था। मेरा नाम सुदामा गोप था। इस समय मैं राधिकाजीके शापसे दानवराज शङ्खचूड होकर उत्पन्न हुआ हूँ। ये सारी बातें मुझे ज्ञात हैं; क्योंकि श्रीकृष्णके प्रभावसे मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना हुआ है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! तुलसीके समक्ष यों कहकर शङ्खचूड चुप हो गया। जब दानवराजने आदरपूर्वक तुलसीसे ऐसा सत्य वचन कहा, तब वह परम प्रसन्न हुई और मुसकराकर कहने लगी।

तुलसी बोली—भद्र पुरुष ! आज आपने अपने सात्त्विक विचारसे मुझे पराजित कर दिया है। जो पुरुष स्त्रीद्वारा परास्त न हो सके, वह संसारमें धन्यवादका पात्र है; क्योंकि जिसे स्त्री जीत लेती है, वह पुरुष सदाचारी होते हुए भी सदा अपावन बना रहता है। देवता, पितर और समस्त मानव उसकी निन्दा करते हैं। जननाशौच तथा मरणाशौचमें ब्राह्मण दस दिनोंमें, क्षत्रिय बारह दिनोंमें और वैश्य पंद्रह दिनोंमें शुद्ध हो जाता है तथा शूद्रकी शुद्धि एक मासमें हो जाती है—ऐसा वेदका अनुशासन है; परंतु स्त्रीसे पराजित हुए पुरुषकी शुद्धि चितादाहके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारसे सम्भव ही नहीं है। इसी कारण उसके पितर उसके द्वारा दिये गये पिण्ड-तर्पण आदिको इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते तथा देवता भी उसके द्वारा अर्पित किये गये पुष्प-फल आदिको स्वीकार नहीं करते। जिसका मन स्त्रियोंद्वारा आहृत हो जाता है, उसके ज्ञान, उत्तम तप, जप, होम, पूजन, विद्या और दानसे क्या लाभ ? अर्थात् उसके ये सभी निष्फल हो जाते हैं। मैंने आपके विद्या, प्रभाव और ज्ञानकी जानकारीके लिये ही आपकी परीक्षा ली है; क्योंकि कामिनीको चाहिये कि वह अपने मनोनीत कान्तकी परीक्षा करके ही उसे पतिरूपसे वरण करे।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! जिस समय तुलसी यों वार्तालाप कर रही थी, उसी समय सृष्टिकर्ता ब्रह्मा वहाँ आ पहुँचे और इस प्रकार कहने लगे।

ब्रह्माजीने कहा—शङ्खचूड ! तुम इसके साथ क्या व्यर्थमें वाद-विवाद कर रहे हो ? तुम गान्धर्व विवाहकी विधिसे इसका पाणिग्रहण करो; क्योंकि निश्चय ही तुम पुरुषरत्न हो और यह सती-साध्वी नारियोंमें रत्नस्वरूपा है। ऐसी दशामें निपुणाका निपुणके साथ समागम गुणकारी ही होगा। (फिर तुलसीकी ओर लक्ष्य करके बोले—) सती-साध्वी तुलसी ! तू ऐसे गुणवान् कान्तकी क्या परीक्षा ले रही है ? यह तो देवताओं, असुरों तथा दानवोंका मान मर्दन करनेवाला है। सुन्दरी ! तू इसके साथ सम्पूर्ण लोकोंमें

सर्वदा उत्तम-उत्तम स्थानोंपर चिरकालतक यथेष्ट विहार कर। शरीरान्त होनेपर यह पुनः गोलोकमें श्रीकृष्णको ही प्राप्त होगा और इसकी मृत्यु हो जानेपर तू भी वैकुण्ठमें चतुर्भुज भगवान्‌को प्राप्त करेगी।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार आशीर्वाद देकर ब्रह्मा अपने धामको चले गये। तब दानव शङ्खचूडने गान्धर्व-विवाहकी विधिसे तुलसीका पाणिग्रहण किया। यों तुलसीके साथ विवाह करके वह अपने पिताके स्थानको चला गया और मनोरम भवनमें उस रमणीके साथ विहार करने लगा।

(अध्याय १३—२१)

☆

शङ्खचूडका असुरराज्यपर अभिषेक और उसके द्वारा देवोंका अधिकार छीना जाना, देवोंका ब्रह्माकी शरणमें जाना, ब्रह्माका उन्हें साथ लेकर विष्णुके पास जाना, विष्णुद्वारा शङ्खचूडके जन्मका रहस्योद्‌घाटन और फिर सबका शिवके पास जाना और शिवसभामें उनकी झाँकी करना तथा अपना अभिप्राय प्रकट करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! जब शङ्खचूडने तप करके वर प्राप्त कर लिया और वह विवाहित होकर अपने घर लौट आया, तब दानवों और दैत्योंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सभी असुर तुरंत ही अपने लोकसे निकलकर अपने गुरु शुक्राचार्यको साथ ले दल बनाकर उसके निकट आये और विनयपूर्वक उसे प्रणाम करके अनेकों प्रकारसे आदर प्रदर्शित करते हुए उसका स्तवन करने लगे। फिर उसे अपना तेजस्वी स्वामी मानकर अत्यन्त प्रेमभावसे उसके पास ही खड़े हो गये। उधर दम्भकुमार शङ्खचूडने भी अपने कुलगुरु शुक्राचार्यको आया हुआ देखकर बड़े आदर और भक्तिके साथ उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तदनन्तर गुरु शुक्राचार्यने समस्त असुरोंके साथ सलाह करके उनकी सम्मतिसे शङ्खचूडको दानवों तथा असुरोंका अधिपति बना दिया। दम्भपुत्र शङ्खचूड प्रतापी एवं वीर तो था ही, उस समय असुर-राज्यपर अभिषिक्त होनेके कारण वह असुरराज विशेषरूपसे शोभा पाने लगा। तब उसने सहसा देवताओंपर आक्रमण करके वेगपूर्वक उनका संहार करना आरम्भ किया। सम्पूर्ण देवता मिलकर भी उसके उत्कृष्ट तेजको सहन न कर सके, अतः वे समरभूमिसे भाग चले और दीन होकर यत्र-तत्र पर्वतोंकी खोहोंमें जा छिपे। उनकी स्वतन्त्रता जाती रही। वे शङ्खचूडके वशवर्ती होनेके कारण प्रभाहीन हो गये। इधर शूरवीर प्रतापी दम्भकुमार दानवराज शङ्खचूडने भी सम्पूर्ण लोकोंको जीतकर देवताओंका सारा अधिकार छीन लिया। वह त्रिलोकीको अपने अधीन करके सम्पूर्ण लोकोंपर शासन करने लगा और स्वयं इन्द्र बनकर सारे यज्ञभागोंको भी हड़पने लगा तथा अपनी शक्तिसे कुबेर, सोम, सूर्य, अग्नि, यम और वायु आदिके अधिकारोंका

भी पालन कराने लगा। उस समय महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न महावीर शङ्खचूड समस्त देवताओं, असुरों, दानवों, राक्षसों, गन्धर्वों, नागों, किन्नरों, मनुष्यों तथा त्रिलोकीके अन्यान्य प्राणियोंका एकच्छत्र सम्राट् था। इस प्रकार महान् राजराजेश्वर शङ्खचूड बहुत वर्षोंतक सम्पूर्ण भुवनोंके राज्यका उपभोग करता रहा। उसके राज्यमें न अकाल पड़ता था न महामारी और न अशुभ ग्रहोंका ही प्रकोप होता था; आधि-व्याधियाँ भी अपना प्रभाव नहीं डाल पाती थीं। यों सारी प्रजा सदा सुखी रहती थी। पृथ्वी बिना जोते ही अनेक प्रकारके धान्य उत्पन्न करती थी। नाना प्रकारकी ओषधियाँ उत्तम-उत्तम फलों और रसोंसे युक्त थीं। उत्तम-उत्तम मणियोंकी खदानें थीं। समुद्र अपने तटोंपर निरन्तर ढेर-के-ढेर रत्न बिखेरते रहते थे। वृक्षोंमें सदा पुष्प-फल लगे रहते थे। सरिताओंमें सुस्वादु नीर बहता रहता था। देवताओंके अतिरिक्त सभी जीव सुखी थे। उनमें किसी प्रकारका विकार नहीं उत्पन्न होता था। चारों वर्णों और आश्रमोंके सभी लोग अपने-अपने धर्ममें स्थित रहते थे। इस प्रकार जब वह त्रिलोकीका शासन कर रहा था, उस समय कोई भी दुःखी नहीं था; केवल देवता भ्रातृ-द्रोहवश दुःख उठा रहे थे। मुने! महाबली शङ्खचूड गोलोकनिवासी श्रीकृष्णका परम मित्र था। साधुस्वभाववाला वह सदा श्रीकृष्णकी भक्तिमें निरत रहता था। पूर्वशापवश उसे दानवकी योनिमें जन्म लेना पड़ा था, परंतु दानव होनेपर भी उसकी बुद्धि दानवकी-सी नहीं थी।

प्रिय व्यासजी! तदनन्तर जो पराजित होकर राज्यसे हाथ धो बैठे थे, वे सभी सुरगण तथा ऋषि परस्पर मन्त्रणा करके ब्रह्माजीकी सभाको चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने ब्रह्माजीका दर्शन किया और उनके चरणोंमें अभिवादन करके विशेषरूपसे उनकी स्तुति की। फिर आकुलतापूर्वक अपना सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। तब ब्रह्मा उन सभी देवताओं तथा मुनियोंको ढाढ़स बँधाकर उन्हें साथ ले सत्पुरुषोंको सुख प्रदान करनेवाले वैकुण्ठ-लोकको चल पड़े। वहाँ पहुँचकर देवगणोंसहित ब्रह्माने रमापतिका दर्शन किया। उनके मस्तकपर किरीट सुशोभित था, कानोंमें कुण्डल झलमला रहे थे और कण्ठ वनमालासे विभूषित था। वे चतुर्भुज देव अपनी चारों भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए थे। श्रीविग्रहपर पीताम्बर शोभा दे रहा था और सनन्दनादि सिद्ध उनकी सेवामें नियुक्त थे। ऐसे सर्वव्यापी विष्णुकी झाँकी करके ब्रह्मा आदि देवताओं तथा मुनीश्वरोंने उन्हें प्रणाम किया और फिर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर वे उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—सामर्थ्यशाली वैकुण्ठाधिपते! आप देवोंके भी देव और लोकोंके स्वामी हैं। आप त्रिलोकीके गुरु हैं। श्रीहरे! हम सब आपके शरणापन्न हुए हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये। अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले ऐश्वर्यशाली त्रिलोकेश! आप ही लोकोंके पालक हैं। गोविन्द! लक्ष्मी आपमें ही निवास करती हैं और आप अपने भक्तोंके प्राण-स्वरूप हैं, आपको हमारा नमस्कार है। इस प्रकार स्तुति करके सभी देवता श्रीहरिके आगे रो पड़े। उनकी बात सुनकर भगवान्

विष्णुने ब्रह्मासे कहा।

विष्णु बोले—ब्रह्मन्! यह वैकुण्ठ योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। तुम यहाँ किस लिये आये हो? तुमपर कौन-सा कष्ट आ पड़ा है? वह यथार्थरूपसे मेरे सामने वर्णन करो।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! श्रीहरिका वचन सुनकर ब्रह्माजीने विनम्र-भावसे सिर झुकाकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया और अञ्जलि बाँधकर परमात्मा विष्णुके समक्ष स्थित हो देवताओंके कष्टसे भरी हुई शङ्खचूडकी सारी करतूत कह सुनायी। तब समस्त प्राणियोंके भावोंके ज्ञाता भगवान् श्रीहरि उस बातको सुनकर हँस पड़े और ब्रह्मासे उस रहस्यका उद्घाटन करते हुए बोले।

श्रीभगवान्ने कहा—कमलयोनि! मैं शङ्खचूडका सारा वृत्तान्त जानता हूँ। पूर्वजन्ममें यह महातेजस्वी गोप था, जो मेरा भक्त था। मैं उसके वृत्तान्तसे सम्बन्ध रखनेवाले इस पुरातन इतिहासका वर्णन करता हूँ, सुनो। इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं करना चाहिये। भगवान् शंकर सब कल्याण करेंगे। गोलोकमें मेरे ही रूप श्रीकृष्ण रहते हैं। उनकी स्त्री श्रीराधा नामसे विख्यात है। वह जगज्जननी तथा प्रकृतिकी परमोत्कृष्ट पाँचवीं मूर्ति है। वही वहाँ सुन्दररूपसे विहार करनेवाली है। उनके अङ्गसे उद्भूत बहुत-से गोप और गोपियाँ भी वहाँ निवास करती हैं। वे नित्य राधा-कृष्णका अनुवर्तन करते हुए उत्तम-उत्तम क्रीडाओंमें तत्पर रहते हैं। वही गोप इस समय शम्भुकी इस लीलासे मोहित होकर शापवश अपनेको दुःख देनेवाली दानवी योनिको प्राप्त हो गया है। श्रीकृष्णने पहलेसे ही रुद्रके त्रिशूलसे उसकी मृत्यु निर्धारित कर दी है। इस प्रकार वह दानव-देहका परित्याग करके पुनः कृष्ण-पार्षद हो जायगा। देवेश! ऐसा जानकर तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। चलो, हम दोनों शंकरकी शरणमें चलें; वे शीघ्र ही कल्याणका विधान करेंगे। अब हमें, तुम्हें तथा समस्त देवोंको निर्भय हो जाना चाहिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! यों कहकर ब्रह्मासहित विष्णु शिवलोकको चले। मार्गमें वे मन-ही-मन भक्तवत्सल सर्वेश्वर शम्भुका स्मरण करते जा रहे थे। व्यासजी! इस प्रकार वे रमापति विष्णु ब्रह्माके साथ उसी समय उस शिवलोकमें जा पहुँचे, जो महान् दिव्य, निराधार तथा भौतिकतासे रहित है। वहाँ पहुँचकर उन्होंने शिवजीकी सभाका दर्शन किया। वह ऊँची एवं उत्कृष्ट प्रभाववाली सभा प्रकाशयुक्त शरीरोंवाले शिव-पार्षदोंसे घिरी होनेके कारण विशेषरूपसे शोभित हो रही थी। उन पार्षदोंका रूप सुन्दर कान्तिसे युक्त महेश्वरके रूपके सदृश था। उनके दस भुजाएँ थीं। पाँच मुख और तीन नेत्र थे। गलेमें नील चिह्न तथा शरीरका वर्ण अत्यन्त गौर था। वे सभी श्रेष्ठ रत्नोंसे युक्त रुद्राक्ष और भस्मके आभरणसे विभूषित थे। वह मनोहर सभा नवीन चन्द्रमण्डलके समान आकारवाली और चौकोर थी। उत्तम-उत्तम मणियों तथा हीरोंके हारोंसे वह सजायी गयी थी। अमूल्य रत्नोंके बने हुए कमल-पत्रोंसे सुशोभित थी। उसमें मणियोंकी जालियोंसे युक्त गवाक्ष बने थे, जिससे वह चित्र-विचित्र दीख रही थी। शंकरकी इच्छासे उसमें पद्मरागमणि जड़ी

हुई थी, जिससे वह अद्भुत-सी लग रही थी। वह स्यमन्तकमणिकी बनी हुई सैकड़ों सीढ़ियोंसे युक्त थी। उसमें चारों ओर इन्द्रनीलमणिके खंभे लगे थे, जिनपर स्वर्णसूत्रसे ग्रथित चन्दनके सुन्दर पल्लव लटक रहे थे, जिससे वह मनको मोहे लेती थी। वह भलीभाँति संस्कृत तथा सुगन्धित वायुसे सुवासित थी। एक सहस्र योजन विस्तारवाली वह सभा बहुत-से किंकरोंसे खचाखच भरी थी। उसके मध्यभागमें अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित एक विचित्र सिंहासन था, उसीपर उमासहित शंकर विराजमान थे। उन्हें सुरेश्वर विष्णुने देखा। वे तारकाओंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान लग रहे थे। वे किरीट, कुण्डल और रत्नोंकी मालाओंसे विभूषित थे। उनके सारे अङ्गमें भस्म रमायी हुई थी और वे लीला-कमल धारण किये हुए थे। महान् उल्लाससे भरे हुए उमाकान्तका मन शान्त तथा प्रसन्न था। देवी पार्वतीने उन्हें सुवासित ताम्बूल प्रदान किया था, जिसे वे चबा रहे थे। शिवगण हाथमें श्वेत चँवर लेकर परमभक्तिके साथ उनकी सेवा कर रहे थे और सिद्ध भक्तिवश सिर झुकाकर उनके स्तवनमें लगे थे। वे गुणातीत, परेशान, त्रिदेवोंके जनक, सर्वव्यापी, निर्विकल्प, निराकार, स्वेच्छानुसार साकार, कल्याणस्वरूप, मायारहित, अजन्मा, आद्य, मायाके अधीश्वर, प्रकृति और पुरुषसे भी परात्पर, सर्वसमर्थ, परिपूर्णतम और समतायुक्त हैं। ऐसे विशिष्ट गुणोंसे युक्त शिवको देखकर ब्रह्मा और विष्णुने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और फिर वे स्तुति करने लगे। विविध प्रकारसे स्तुति करके अन्तमें वे बोले—'भगवन्! आप दीनों और अनाथोंके सहायक, दीनोंके प्रतिपालक, दीनबन्धु, त्रिलोकीके अधीश्वर और शरणागतवत्सल हैं। गौरीश! हमारा उद्धार कीजिये! परमेश्वर! हमपर कृपा कीजिये। नाथ! हम आपके ही अधीन हैं; अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा करें।'

(अध्याय २९-३०)

☆

देवताओंका रुद्रके पास जाकर अपना दुःख निवेदन करना, रुद्रद्वारा उन्हें आश्वासन और चित्ररथको शङ्खचूडके पास भेजना, चित्ररथके लौटनेपर रुद्रका गणों, पुत्रों और भद्रकालीसहित युद्धके लिये प्रस्थान, उधर शङ्खचूडका सेनासहित पुष्पभद्राके तटपर पड़ाव डालना तथा दानवराजके दूत और शिवकी बातचीत

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर जो अत्यन्त दीनताको प्राप्त हो गये थे, उन ब्रह्मा और विष्णुका वचन सुनकर शिवजी मुसकराये और मेघगर्जनाके समान गम्भीर वाणीमें बोले।

शिवजीने कहा—हे हरे! हे ब्रह्मन्! तुमलोग शङ्खचूडद्वारा उत्पन्न हुए भयको सर्वथा त्याग दो। निस्संदेह तुम्हारा कल्याण होगा। मैं शङ्खचूडका सारा वृत्तान्त यथार्थ रूपसे जानता हूँ। यह पूर्वजन्ममें एक गोप

था, जो ऐश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्णका भक्त था। इसका नाम सुदामा था। वही सुदामा राधाजीके शापसे शङ्खचूड नामक दानवराज होकर उत्पन्न हुआ है। यह परम धर्मज्ञ और देवताओंसे द्रोह करनेवाला है। यह दुर्बुद्धिवश अपने उत्कृष्ट बलके भरोसे सम्पूर्ण देवगणोंको क्लेश दे रहा है। अब तुमलोग प्रेमपूर्वक मेरी बात सुनो और देवोंको आनन्दित करनेके लिये शीघ्र ही कैलासवासी रुद्रके समीप जाओ। वह रुद्ररूप मेरा ही उत्तम पूर्णरूप है। मैं ही देव-कार्यकी सिद्धिके हेतु पृथक् स्वरूप धारण करके वहाँ प्रकट हुआ हूँ। मेरा वह रूप ऐश्वर्यशाली तथा परिपूर्णतम है। हरे! इसीलिये मैं भक्तोंके वशीभूत हो कैलास पर्वतपर सदा निवास करता हूँ।

तदनन्तर कैलास पहुँचकर देवताओंने भगवान् महेशकी स्तुति की और अन्तमें कहा—'महेशान! आप तो कृपाके आकर हैं। दीनोंका उद्धार करना तो आपका बाना ही है। प्रभो! दानवराज शङ्खचूडका वध करके इन्द्रको उसके भयसे मुक्त कीजिये और देवोंको इस विपत्तिसे उबारिये।' तब भक्तवत्सल शम्भु देवताओंकी इस प्रार्थनाको सुनकर हँसे और मेघगर्जनकी-सी गम्भीर वाणीमें बोले।

श्रीशंकरने कहा—हे हरे! हे ब्रह्मन्! हे देवगण! तुमलोग अपने-अपने स्थानको लौट जाओ। मैं निश्चय ही सैनिकोंसहित शङ्खचूडका वध कर डालूँगा। इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! महेश्वरके उस अमृतस्रावी वचनको सुनकर सम्पूर्ण देवताओंको परम आनन्द प्राप्त हुआ। उस समय उन्होंने समझ लिया कि अब दानव शङ्खचूड मरा हुआ ही है। तब महेश्वरके चरणोंमें प्रणिपात करके विष्णु वैकुण्ठको और ब्रह्मा सत्यलोकको चले गये तथा सम्पूर्ण देवता भी अपने-अपने स्थानको प्रस्थित हुए। इधर उन महारुद्रने, जो परमेश्वर, दुष्टोंके लिये कालरूप और सत्पुरुषोंकी गति हैं, देवताओंकी इच्छासे अपने मनमें शङ्खचूडके वधका निश्चय किया। तब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपने प्रेमी गन्धर्वराज चित्ररथको दूत बनाकर शीघ्र ही शङ्खचूडके पास भेजा। चित्ररथने वहाँ जाकर शङ्खचूडको खूब समझाकर कहा, परंतु उसने बिना युद्ध किये देवताओंको राज्य लौटाना स्वीकार नहीं किया और कहा—'मैंने ऐसा दृढ़ निश्चय कर लिया है कि महेश्वरके साथ युद्ध किये बिना न तो मैं राज्य ही वापस दूँगा और न अधिकारोंको ही लौटाऊँगा। तू कल्याणकर्ता रुद्रके पास लौट जा और मेरी कही हुई बात यथार्थरूपसे उनसे कह दे। वे जैसा उचित समझेंगे, वैसा करेंगे। तू व्यर्थ बकवाद मत कर।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! यों कहे जानेपर वह शिवदूत पुष्पदन्त (चित्ररथ) अपने स्वामी महेश्वरके पास लौट गया और उसने सारी बातें ठीक-ठीक कह दीं। तब उस दूतके वचनको सुनकर देवताओंके स्वामी भगवान् शंकरको क्रोध आ गया। उन्होंने अपने वीरभद्र आदि गणोंसे कहा।

रुद्र बोले—हे वीरभद्र! हे नन्दिन्! क्षेत्रपाल! आठों भैरव! मैं आज शीघ्र ही शङ्खचूडका वध करनेके निमित्त चलता हूँ, अतः मेरी आज्ञासे मेरे सभी बलशाली गण

आयुधोंसे लैस होकर तैयार हो जायँ और अभी-अभी कुमारों (स्वामिकार्तिक और गणेश) के साथ रणयात्रा करें। भद्रकाली भी अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये प्रस्थान करें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! ऐसी आज्ञा देकर शिवजी अपनी सेनाके साथ चल पड़े। फिर तो सभी वीरगण हर्षमग्न होकर उनके पीछे-पीछे चलने लगे। इसी समय सम्पूर्ण सेनाओंके अध्यक्ष स्कन्द और गणेश भी हर्षसे भरे हुए कवच धारण करके सशस्त्र शिवजीके निकट आ पहुँचे। फिर वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्रक, विशालाक्ष, बाण, पिङ्गलाक्ष, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिल, दीर्घदंष्ट्र, विकार, ताम्रलोचन, कालंकर, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघ्य, दुर्जय तथा दुर्गम आदि गणनायक जो प्रधान-प्रधान सेनापति थे, शिवजीके साथ चले। उनके गणोंकी संख्या करोड़ों करोड़ थी। आठों भैरव, एकादश भयंकर रुद्र, आठों वसु, इन्द्र, बारहों आदित्य, अग्नि, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, निर्ऋति, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध, मङ्गल तथा अन्यान्य ग्रह, पराक्रमी कामदेव, उग्रदंष्ट्र, उग्रदण्ड, कोरट तथा कोटभ आदिने भी शीघ्र ही महेश्वरका अनुगमन किया। स्वयं महेश्वरीदेवी भद्रकाली भी सौ भुजा धारण करके शिवजीके साथ चलीं। वे उत्तमोत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानपर आरूढ़ थीं। उनके शरीरपर लाल चन्दनका अनुलेप लगा था और लाल वस्त्र शोभा पा रहा था। वे हर्षमग्न होकर हँसती, नाचती और उत्तम स्वरसे गान करती हुई अपने भक्तोंको अभय तथा शत्रुओंको भय प्रदान कर रही थीं। उनकी एक योजन लंबी भीषणाकार जिह्वा लपलपा रही थी। वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, ढाल, तलवार, धनुष, बाण, एक योजन विस्तारवाला गहरा गोलाकार खप्पर, गगनचुम्बी त्रिशूल, एक योजन लंबी शक्ति, मुद्गर, मुसल, वज्र, खड्ग, तीखा फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, गन्धर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गारुडास्त्र, पर्जन्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, जृम्भणास्त्र, पर्वतास्त्र, महान् पराक्रमी सूर्यास्त्र, कालकाल, महानल, महेश्वरास्त्र, यमदण्डास्त्र, सम्मोहनास्त्र तथा समर्थ दिव्य अस्त्र और अन्यान्य सैकड़ों दिव्यास्त्र धारण किये हुए थीं। करोड़ों योगिनियाँ तथा डाकिनियाँ उनके साथ थीं। फिर भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, राक्षस, यक्ष और किंनर आदिसे घिरे हुए स्कन्दने पिताके पास आकर उन चन्द्रशेखरको प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे पार्श्वभागमें स्थित होकर सहायकका स्थान ग्रहण किया। तदनन्तर रुद्ररूपधारी शम्भु अपनी सारी सेनाको एकत्रित करके शङ्खचूडके साथ लोहा लेनेके लिये निर्भयतापूर्वक आगे बढ़े और देवताओंका उद्धार करनेके लिये चन्द्रभागा नदीके तटपर मनोहर वटवृक्षके नीचे खड़े हो गये।

व्यासजी! उधर जब शिवदूत चला गया, तब प्रतापी शङ्खचूडने महलके भीतर जाकर तुलसीसे वह सारी वार्ता कह सुनायी।

शङ्खचूडने कहा—'देवि! शम्भुके

दूतके मुखसे (रणनिमन्त्रण सुनकर) मैं युद्धके लिये उद्यत हुआ हूँ और उनसे जूझनेके लिये मैं निश्चय ही जाऊँगा। तुम इसके लिये मुझे आज्ञा दो।' यों कहकर उस ज्ञानीने अपनी प्रियाको नाना प्रकारसे समझाया। फिर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्रातःकृत्य समाप्त किया और पहले नित्यकर्म पूरा करके बहुत-सा दान दिया। तत्पश्चात् अपने पुत्रको सम्पूर्ण दानवोंके राज्यपर अभिषिक्त करके उसे अपनी भार्या, राज्य और सारी सम्पत्ति समर्पित कर दी। पुनः जब उसकी प्रिया तुलसी रोती हुई उसकी रणयात्राका निषेध करने लगी, तब राजा शङ्खचूडने नाना प्रकारकी कथाएँ कहकर उसे ढाढ़स बँधाया। तदनन्तर उस समादृत दानवराजने कवच धारण करके युद्ध करनेके लिये उद्यत हो अपने वीर सेनापतिको बुलाकर उसे आदेश देते हुए कहा।

शङ्खचूड बोला—सेनापते! मेरे सभी वीर, जो सम्पूर्ण कार्योंमें कुशल और समरमें शोभा पानेवाले हैं, आज कवच धारण करके युद्धके लिये प्रस्थान करें। शूरवीर दानवों और दैत्योंकी छियासी टुकड़ियाँ तथा बलशाली कङ्कोंकी निर्भीक सेनाएँ अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर नगरसे बाहर निकलें। करोड़ों प्रकारसे पराक्रम प्रकट करनेवाले जो असुरोंके पचास कुल हैं, वे भी देवोंके पक्षपाती शम्भुसे युद्ध करनेके लिये प्रस्थित हों, मेरी आज्ञासे धौम्रोंके सौ कुल भी कवचसे विभूषित हो शम्भुके साथ लोहा लेनेके लिये शीघ्र ही निकलें। कालकेयों, मौर्यों, दौर्हृदों तथा कालकोंको भी मेरी यह आज्ञा सुना दो कि वे रुद्रके साथ संग्राम करनेके लिये रण-सामग्रीसे सुसज्जित हो चलें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! सेनापतिको यों आदेश देकर असुरोंका राजा महाबली दानवेन्द्र शङ्खचूड सहस्रों प्रकारकी बहुत बड़ी सेनाओंसे घिरा हुआ नगरसे बाहर निकला। उसका सेनापति भी युद्धशास्त्रमें निपुण, महारथी, महान् शूरवीर और रणभूमिमें रथियोंमें अग्रगण्य था। इस प्रकार युद्धस्थलमें वीरोंको भयभीत कर देनेवाला वह दानवराज तीन लाख अक्षौहिणी सेनाओंपर शासन करता हुआ शिविरसे बाहर निकला और उत्तमोत्तम रत्नोंद्वारा निर्मित विमानपर आरूढ़ हो गुरुजनोंको आगे करके युद्धके लिये चल पड़ा। आगे बढ़नेपर वह पुष्पभद्रा नदीके तटपर सिद्धाश्रममें जा पहुँचा। वहाँ एक मनोहर वटवृक्ष विराजमान था। यह सिद्धिक्षेत्र सिद्धोंको उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला था। पुण्यक्षेत्र भारतमें यह कपिलका तपःस्थान कहलाता था। यह भूभाग पश्चिम समुद्रसे पूर्व, मलयपर्वतसे पश्चिम, श्रीशैलसे उत्तर और गन्धमादनसे दक्षिण था। उसकी चौड़ाई पाँच योजन और लंबाई पाँच सौ योजन थी। भारतके उस भागमें उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाली तथा शुद्ध स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे परिपूर्ण पुष्पभद्रा और सरस्वती नामकी दो रमणीय नदियाँ बहती हैं। सदा सौभाग्यसे संयुक्त रहनेवाली लवणसागरकी प्रिया भार्या पुष्पभद्रा सरस्वतीके साथ हिमालयसे निकली है और गोमन्तपर्वतको बायें करके पश्चिम समुद्रमें जा मिली है। वहाँ पहुँचकर शङ्खचूडने शिवजीकी सेनाको देखा।

मुने! उसने पहले शिवजीके पास एक दानवेश्वरको दूतके रूपमें भेजा। उसने शिवजीसे युद्ध न करनेके लिये कहा और शिवजीने उसे देवताओंका राज्य लौटा देनेकी बात कही। अन्तमें महेश्वरने कहा—'दूत! हम किसीका भी पक्ष नहीं लेते; क्योंकि हम तो कभी स्वतन्त्र रहते ही नहीं, सदा भक्तोंके अधीन रहते हैं और उनकी इच्छासे उन्हींका कार्य करते रहते हैं। देखो, पूर्वकालमें ब्रह्माकी प्रार्थनासे पहले-पहल प्रलय-समुद्रमें श्रीहरि और दैत्यश्रेष्ठ मधु-कैटभका भी युद्ध हुआ था। पुनः भक्तोंके हितकारी उन्हीं श्रीविष्णुने देवताओंके प्रार्थना करनेपर प्रह्लादके कारण हिरण्यकशिपुका वध किया था। तुमने यह भी सुना होगा कि पहले जो मैंने त्रिपुरोंके साथ युद्ध करके उन्हें भस्म कर डाला था, वह भी देवोंकी प्रार्थनापर ही हुआ था। पूर्वकालमें सर्वेश्वरी जगज्जननीका जो शुम्भ आदिके साथ युद्ध हुआ था और जिसमें उन्होंने उन दैत्योंका वध कर डाला था, वह भी देवताओंके प्रार्थना करनेपर ही घटित हुआ था। वे ही सभी देवगण आज भी ब्रह्माके शरणापन्न हुए थे। तब वे उन देवताओं और श्रीहरिके साथ मेरी शरणमें आये थे। दूत! इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और देवगणोंकी प्रार्थनाके वशीभूत हो देवोंका अधीश्वर होनेके कारण मैं भी युद्धके लिये आया हूँ। तुम भी तो महात्मा श्रीकृष्णके श्रेष्ठ पार्षद हो। अबतक जो-जो दैत्य मारे गये हैं, उनमेंसे कोई भी तुम्हारी समानता नहीं कर सकता। इसलिये राजन्! देवकार्यकी सिद्धिके लिये तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे कौन-सी बड़ी लज्जा होगी। अर्थात् कुछ नहीं; क्योंकि मैं ईश्वर हूँ और देवताओंने मुझे विनयपूर्वक भेजा है। अतः तुम जाओ और शङ्खचूडसे मेरी बात कह दो। वह जैसा उचित समझेगा, वैसा करेगा। मुझे तो देवताओंका कार्य करना ही है।' यों कहकर कल्याणकर्ता महेश्वर चुप हो गये। तब शङ्खचूडका वह दूत उठा और उसके पास चल दिया।

(अध्याय ३१—३५)

☆

देवताओं और दानवोंका युद्ध, शङ्खचूडके साथ वीरभद्रका संग्राम, पुनः उसके साथ भद्रकालीका भयंकर युद्ध करना और आकाशवाणी सुनकर निवृत्त होना, शिवजीका शङ्खचूडके साथ युद्ध और आकाशवाणी सुनकर युद्धसे निवृत्त हो विष्णुको प्रेरित करना, विष्णुद्वारा शङ्खचूडके कवच और तुलसीके शीलका अपहरण, फिर रुद्रके हाथों त्रिशूलद्वारा शङ्खचूडका वध, शङ्खकी उत्पत्तिका कथन

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! जब उस दूतने शङ्खचूडके पास जाकर विस्तारपूर्वक शिवजीका वचन कह सुनाया तथा तत्त्वतः उनके यथार्थ निश्चयको भी प्रकट किया, तब उसे सुनकर प्रतापी दानवराज शङ्खचूडने भी परम प्रसन्नतापूर्वक युद्धको ही अङ्गीकार किया। फिर तो वह तुरंत ही मन्त्रियोंसहित रथपर जा बैठा और

उसने अपनी सेनाको शंकरके साथ युद्ध करनेके लिये आदेश दिया। इधर अखिलेश्वर शिवजीने भी तत्काल ही अपनी सेनाको तथा देवोंको आगे बढ़नेकी आज्ञा दी और स्वयं भी लीलावश युद्धके लिये संनद्ध हो गये। फिर तो शीघ्र ही युद्ध आरम्भ हो गया। उस समय नाना प्रकारके रणवाद्य बजने लगे। वीरोंके शब्द और कोलाहल चारों ओर गूँज उठे। मुने! इस प्रकार देवताओं और दानवोंका परस्पर युद्ध होने लगा। उस समय वे दोनों सेनाएँ धर्मपूर्वक जूझने लगीं। स्वयं महेन्द्र वृषपर्वाके साथ लड़ने लगे और विप्रचित्तिके साथ सूर्यका धर्मयुद्ध होने लगा। विष्णु दम्भके साथ भीषण संग्राम करने लगे। कालासुरसे काल, गोकर्णसे अग्नि, कालकेयसे कुबेर, मयसे विश्वकर्मा, भयंकरसे मृत्यु, संहारसे यम, कालाम्बिकसे वरुण, चञ्चलसे वायु, घटपृष्ठसे बुध, रक्ताक्षसे शनैश्चर, रत्नसारसे जयन्त, वर्चोगणोंसे वसुगण, दोनों दीप्तिमानोंसे दोनों अश्विनीकुमार, धूम्रसे नलकूबर, धुरंधरसे धर्म, गणकाक्षसे मंगल, शोभाकरसे वैश्वानर, पिपिटसे मन्मथ, गोकामुख, चूर्ण, खड्ग, धूम्र, संहल, प्रतापी विश्व और पलाश नामक असुरोंसे बारहों आदित्य धर्मपूर्वक लोहा लेने लगे। इस प्रकार शिवकी सहायताके लिये आये हुए अमरोंका असुरोंके साथ युद्ध होने लगा। ग्यारहों महारुद्र महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न ग्यारह भयंकर असुर-वीरोंसे भिड़ गये। उग्र और चण्ड आदिके साथ महामणि, राहुके साथ चन्द्रमा और शुक्राचार्यके साथ बृहस्पति धर्मयुद्ध करने लगे। इस प्रकार उस महायुद्धमें नन्दीश्वर आदि सभी शिवगण श्रेष्ठ दानवोंके साथ संग्राम करने लगे। विस्तारभयसे उनका पृथक् वर्णन नहीं किया गया है। मुने! उस समय सारी सेनाएँ निरन्तर युद्धमें व्यस्त थीं और शम्भु कालीसुतके साथ वटवृक्षके नीचे विराजमान थे। उधर शङ्खचूड भी रत्नाभरणोंसे विभूषित हो करोड़ों दानवोंके साथ रमणीय रत्नसिंहासनपर बैठा हुआ था। फिर देवताओं तथा असुरोंमें चिरकालतक अत्यन्त भयानक युद्ध होता रहा। तदनन्तर शङ्खचूड भी आकर उस भीषण संग्राममें जुट गया। इसी बीच महाबली वीर वीरभद्र समरभूमिमें बलशाली शङ्खचूडसे जा भिड़े। उस युद्धमें दानवराज जिन-जिन अस्त्रोंकी वर्षा करता था, उन-उनको वीरभद्र खेल-ही-खेलमें अपने बाणोंसे काट डालते थे।

व्यासजी! इसी समय देवी भद्रकालीने समरभूमिमें जाकर घोर भयंकर सिंहनाद किया। उनके उस शब्दको सुनकर सभी दानव मूर्च्छित हो गये। उस समय देवीने बारंबार अट्टहास किया और मधुपान करके वे रणके मुहानेपर नृत्य करने लगीं। उनके साथ ही उग्रदंष्ट्रा, उग्रदण्डा और कोटवीने भी मधुपान किया तथा अन्यान्य देवियोंने भी खूब मधु पीकर युद्धस्थलमें नाचना आरम्भ किया। उस समय शिवगणों तथा देवोंके दलोंमें महान् कोलाहल मच गया। सारा सुर-समुदाय बहुत प्रकारसे गर्जना करता हुआ हर्षमग्न हो गया। तदनन्तर कालीने शङ्खचूडके ऊपर प्रलयकालीन अग्निकी शिखाके समान उद्दीप्त आग्नेयास्त्र चलाया, परंतु दानवराजने वैष्णवास्त्रसे उसे शीघ्र ही शान्त कर दिया। तब देवी भद्रकालीने उसपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया। वह

अस्त्र दानव-शत्रुको देखकर बढ़ने लगा। तब प्रलयाग्निकी ज्वालाके समान उद्दीप्त होते हुए नारायणास्त्रको देखकर शङ्खचूड़ दण्डकी भाँति भूमिपर लेट गया और बारंबार प्रणाम करने लगा। तब उस दानवको नम्र हुआ देखकर वह अस्त्र निवृत्त हो गया। तत्पश्चात् देवीने उसपर मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र छोड़ा। उस अस्त्रको प्रज्वलित होता हुआ देखकर दानवराजने भूमिपर खड़े होकर उसे प्रणाम किया और ब्रह्मास्त्रसे ही उसका निवारण कर दिया। तदनन्तर वह दानवराज कुपित हो उठा और वेगपूर्वक अपने धनुषको खींचकर देवीके ऊपर मन्त्रपाठ करते हुए दिव्यास्त्रोंकी वर्षा करने लगा। भद्रकाली समरभूमिमें अपने विस्तृत मुखको फैलाकर उन अस्त्रोंको निगल गयीं और अट्टहास-पूर्वक गर्जना करने लगीं, जिससे दानव भयभीत हो गये। तब शङ्खचूड़ने कालीके ऊपर एक सौ योजन लंबी शक्तिसे वार किया; परंतु देवीने अपने दिव्यास्त्रसमूहसे उसके सौ टुकड़े कर दिये। यों उन दोनोंमें चिरकालतक युद्ध होता रहा और सभी देवता तथा दानव दर्शक बनकर उसे देखते रहे। अन्तमें देवीने महान् कोपावेशसे उसपर वेगपूर्वक मुष्टि-प्रहार किया। उसकी चोटसे वह दानवराज चक्कर काटने लगा और उसी क्षण मूर्च्छित हो गया। फिर क्षणभरमें ही उसकी चेतना लौट आयी और वह उठ खड़ा हुआ; परंतु उस प्रतापीने मातृबुद्धि होनेके कारण देवीके साथ बाहुयुद्ध नहीं किया। तब देवीने उस दानवको पकड़कर उसे बारंबार घुमाया और बड़े क्रोधसे वेगपूर्वक ऊपरको उछाल दिया। प्रतापी शङ्खचूड़ वेगसे ऊपरको उछला और पृथ्वीपर गिरकर पुनः उठ खड़ा हुआ। उस महायुद्धमें वह तनिक भी भ्रान्त नहीं हुआ था; बल्कि उसका मन प्रसन्न था। तत्पश्चात् वह भद्रकालीको प्रणाम करके बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित अपने परम मनोहर विमानपर जा बैठा। इधर कालिका भूखसे विह्वल होकर दानवोंका रक्त पान करने लगीं। इसी अवसरपर वहाँ यों आकाश-वाणी हुई—'ईश्वरि! अभी रणभूमिमें सिंहनाद करनेवाले डेढ़ लाख दानवेन्द्र और बचे हैं। ये बड़े उद्धत हैं, अतः तुम इन्हें अपना आहार बना लो। परंतु देवि! संग्राममें दानवराज शङ्खचूड़को मारनेके लिये मन मत दौड़ाओ; क्योंकि यह तुम्हारे लिये अवध्य है—ऐसा निश्चय समझो।' आकाशवाणीद्वारा कहे हुए वचनको सुनकर देवी भद्रकालीने बहुत-से दानवोंका मांस भक्षण करके उनका रक्त पान किया और फिर वे शिवजीके निकट चली गयीं। वहाँ उन्होंने पूर्वापरके क्रमसे सारा युद्ध-वृत्तान्त कह सुनाया।

व्यासजीने पूछा—महाबुद्धिमान् सनत्कुमारजी! कालीका यह कथन सुनकर महेश्वरने उस समय क्या कहा और कौन-सा कार्य किया। उसे आप वर्णन करनेकी कृपा करें; क्योंकि मेरे मनमें उसे सुननेकी प्रबल उत्कण्ठा जाग उठी है।

सनत्कुमारजी बोले—मुने! शम्भु तो जीवोंके कल्याणकर्ता, परमेश्वर और बड़े लीलाविहारी हैं। वे कालीद्वारा कहे हुए वचनको सुनकर उन्हें आश्वासन देते हुए हँसने लगे। तदनन्तर आकाशवाणीको सुनकर तत्त्वज्ञान-विशारद स्वयं शंकर अपने गणोंके साथ समरभूमिकी ओर चले। उस

समय वे महावृषभ नन्दीश्वरपर सवार थे और उन्हींके समान पराक्रमी वीरभद्र, भैरव और क्षेत्रपाल आदि उनके साथ थे। रणभूमिमें पहुँचकर महेश्वरने वीररूप धारण किया। उस समय उन रुद्रकी बड़ी शोभा हो रही थी और वे मूर्तिमान् काल-से दीख रहे थे। जब शङ्खचूडकी दृष्टि शिवजीपर पड़ी, तब वह विमानसे उतर पड़ा और परम भक्तिके साथ दण्डकी भाँति पृथ्वीपर लोटकर उसने सिरके बल उन्हें प्रणाम किया। इस प्रकार नमस्कार करनेके पश्चात् वह तुरंत ही अपने विमानपर जा बैठा और कवच धारण करके उसने धनुष-बाण उठाया। फिर तो दोनों ओरसे बाणोंकी झड़ी लग गयी। यों व्यर्थ ही बाण-वर्षा करनेवाले शिव और शङ्खचूडका वह उग्र युद्ध सैकड़ों वर्षोंतक चलता रहा। अन्तमें युद्धस्थलमें शङ्खचूडका वध करनेके लिये महाबली महेश्वरने सहसा अपना वह त्रिशूल उठाया, जिसका निवारण करना बड़े-बड़े तेजस्वियोंके लिये भी अशक्य है। तब तत्काल ही उसका निषेध करनेके लिये यों आकाशवाणी हुई—"शंकर! मेरी प्रार्थना सुनिये और इस समय इस त्रिशूलको मत चलाइये। ईश! यद्यपि आप क्षणमात्रमें पूरे ब्रह्माण्डका विनाश करनेमें सर्वथा समर्थ हैं, फिर इस अकेले दानव शङ्खचूडकी तो बात ही क्या है, तथापि आप स्वामीके द्वारा देवमर्यादाका विनाश नहीं होना चाहिये। महादेव! आप उस (देवमर्यादा) को सुनिये और उसे सत्य एवं सफल बनाइये। '(वह देवमर्यादा यह है कि) जबतक इस शङ्खचूडके हाथमें श्रीहरिका परम उग्र कवच वर्तमान रहेगा और इसकी पतिव्रता पत्नी (तुलसी) का सतीत्व अखण्डित रहेगा, तबतक इसपर जरा और मृत्यु अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे।' अतः जगदीश्वर शंकर! ब्रह्माके इस वचनको सत्य कीजिये।"

तब सत्पुरुषोंके आश्रयस्वरूप शिवजीने उस आकाशवाणीको सुनकर 'तथास्तु' कहकर उसे स्वीकार कर लिया और विष्णुको उस कार्यके लिये प्रेरित किया। फिर तो शिवजीकी इच्छासे विष्णु वहाँसे चल पड़े। वे तो मायावियोंमें भी श्रेष्ठ मायावी ठहरे। अतः उन्होंने एक वृद्ध ब्राह्मणका वेष धारण किया और शङ्खचूडके निकट जाकर उससे यों कहा।

वृद्ध ब्राह्मण बोले—'दानवेन्द्र! इस समय मैं याचक होकर तुम्हारे पास आया हूँ, तुम मुझे भिक्षा दो। दीनवत्सल! अभी मैं अपने मनोरथको प्रकट नहीं करूँगा। (जब तुम देना स्वीकार कर लोगे, तब) पीछे मैं उसे बताऊँगा और तब तुम उसे पूर्ण करना।' ब्राह्मणकी बात सुनकर राजेन्द्र शङ्खचूडका मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। जब उसने 'ओम्' कहकर उसे स्वीकार कर लिया, तब ब्राह्मणने छलपूर्वक कहा—

'मैं तुम्हारा कवच चाहता हूँ।' यह सुनकर ऐश्वर्यशाली दानवराज शङ्खचूडने, जो ब्राह्मण-भक्त और सत्यवादी था, वह दिव्य कवच जो उसे प्राणके समान था, ब्राह्मणको दे दिया। इस प्रकार श्रीहरिने मायाद्वारा उससे वह कवच ले लिया और फिर शङ्खचूडका रूप धारण करके वे तुलसीके पास पहुँचे। वहाँ जाकर सबके आत्मा एवं तुलसीके नित्य स्वामी श्रीहरिने शङ्खचूडरूपसे उसके शीलका हरण कर लिया।

इसी समय विष्णुभगवान्ने शम्भुसे अपनी सारी बात कह सुनायी। तब शिवजीने शङ्खचूडके वधके निमित्त अपना उद्दीप्त त्रिशूल हाथमें लिया। परमात्मा शंकरका वह विजय नामक त्रिशूल अपनी उत्कृष्ट प्रभा बिखेर रहा था। उससे सारी दिशाएँ, पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो उठे। वह मध्याह्नकालीन करोड़ों सूर्यों तथा प्रलयाग्निकी शिखाके समान चमकीला था। उसका निवारण करना असम्भव था। वह दुर्धर्ष, कभी व्यर्थ न होनेवाला और शत्रुओंका संहारक था। वह तेजोंका अत्यन्त उग्र समूह, सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंका सहायक, भयंकर और सारे देवताओं तथा असुरोंके लिये दुस्सह था। वह एक ही स्थानपर ऐसा दमक रहा था, मानो लीलाका आश्रय लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संहार करनेके लिये उद्यत हो। उसकी लंबाई एक हजार धनुष और चौड़ाई सौ हाथ थी। उस जीव-ब्रह्मस्वरूप शूलका किसीके द्वारा निर्माण नहीं हुआ था। उसका रूप नित्य था। आकाशमें चक्कर काटता हुआ वह त्रिशूल शिवजीकी आज्ञासे शङ्खचूडके ऊपर गिरा और उसने उसी क्षण उसे राखकी ढेरी बना दिया। विप्र! महेश्वरका वह शूल मनके समान वेगशाली था। वह शीघ्र ही अपना कार्य पूर्ण करके शंकरके पास आ पहुँचा और फिर आकाशमार्गसे चला गया। उस समय स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। गन्धर्व और किंनर गान करने लगे। देवों तथा मुनियोंने स्तुति करना आरम्भ किया और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। शिवजीके ऊपर लगातार पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता तथा मुनिगण उनकी प्रशंसा करने लगे। दानवराज शङ्खचूड भी शिवजीकी कृपासे शापमुक्त हो गया और उसे उसके पूर्व (श्रीकृष्ण-पार्षद-) रूपकी प्राप्ति हो गयी। शङ्खचूडकी हड्डियोंसे शङ्ख-जातिका प्रादुर्भाव हुआ, जिस शङ्खका जल शंकरके अतिरिक्त समस्त देवताओंके लिये प्रशस्त माना जाता है। महामुने! श्रीहरि और लक्ष्मीको तथा उनके सम्बन्धियोंको भी शङ्खका जल विशेषरूपसे अत्यन्त प्रिय है; किंतु शिवके लिये नहीं। इस प्रकार शङ्खचूडको मारकर शंकर उमा, स्कन्द और गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक नन्दीश्वरपर सवार हो शिवलोकको चले गये। भगवान् विष्णुने वैकुण्ठके लिये प्रस्थान किया और देवगण परमानन्दमग्न हो अपने-अपने लोकको चले गये। उस समय जगत्‌में चारों ओर परम शान्ति छा गयी। सबको निर्विघ्नरूपसे सुख मिलने लगा। आकाश निर्मल हो गया और सारी पृथ्वीपर उत्तम-उत्तम मङ्गलकार्य होने लगे। मुने! इस प्रकार मैंने तुमसे महेशके जिस चरित्रका वर्णन किया है, वह आनन्ददायक, सर्वदुःखहारी, लक्ष्मीप्रद और सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

(अध्याय ३६—४०)

☆

विष्णुद्वारा तुलसीके शील-हरणका वर्णन, कुपित हुई तुलसीद्वारा विष्णुको शाप, शम्भुद्वारा तुलसी और शालग्राम-शिलाके माहात्म्यका वर्णन

फिर व्यासजीके पूछनेपर सनत्कुमारजीने कहा—महर्षे! रणभूमिमें आकाशवाणीको सुनकर जब देवेश्वर शम्भुने श्रीहरिको प्रेरित किया, तब वे तुरंत ही अपनी मायासे ब्राह्मणका वेष धारण करके शङ्खचूडके पास जा पहुँचे और उन्होंने उससे परमोत्कृष्ट कवच माँग लिया। फिर शङ्खचूडका रूप बनाकर वे तुलसीके घरकी ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने तुलसीके महलके द्वारके निकट नगारा बजाया और जय-जयकारसे सुन्दरी तुलसीको अपने आगमनकी सूचना दी। उसे सुनकर सती-साध्वी तुलसीने बड़े आदरके साथ झरोखेके रास्ते राजमार्गकी ओर झाँका और अपने पतिको आया हुआ जानकर वह परमानन्दमें निमग्न हो गयी। उसने तत्काल ही ब्राह्मणोंको धन-दान करके उनसे मङ्गलाचार कराया और फिर अपना शृङ्गार किया। इधर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मायासे शङ्खचूडका स्वरूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु रथसे उतरकर देवी तुलसीके भवनमें गये। तुलसीने पतिरूपमें आये हुए भगवान्‌का पूजन किया, बहुत-सी बातें कीं, तदनन्तर उनके साथ रमण किया। तब उस साध्वीने सुख, सामर्थ्य और आकर्षणमें व्यतिक्रम देखकर सबपर विचार किया और (संदेह उत्पन्न होनेपर) वह 'तू कौन है?' यों डाँटती हुई बोली।

तुलसीने कहा—दुष्ट! मुझे शीघ्र बतला कि मायाद्वारा मेरा उपभोग करनेवाला तू कौन है? तूने मेरा सतीत्व नष्ट कर दिया है, अतः मैं अभी तुझे शाप देती हूँ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—ब्रह्मन्! तुलसीका वचन सुनकर श्रीहरिने लीलापूर्वक अपनी परम मनोहर मूर्ति धारण कर ली। तब उस रूपको देखकर तुलसीने लक्षणोंसे पहचान लिया कि ये साक्षात् विष्णु हैं। परंतु उसका पातिव्रत्य नष्ट हो चुका था, इसलिये वह कुपित होकर विष्णुसे कहने लगी।

तुलसीने कहा—हे विष्णो! तुम्हारा मन पत्थरके सदृश कठोर है। तुममें दयाका लेशमात्र भी नहीं है। मेरे पतिधर्मके भङ्ग हो जानेसे निश्चय ही मेरे स्वामी मारे गये। चूँकि तुम पाषाण-सदृश कठोर, दयारहित और दुष्ट हो, इसलिये अब तुम मेरे शापसे पाषाण-स्वरूप ही हो जाओ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! यों कहकर शङ्खचूडकी वह सती-साध्वी पत्नी तुलसी फूट-फूटकर रोने लगी और शोकार्त होकर बहुत तरहसे विलाप करने लगी। इतनेमें वहाँ भक्तवत्सल भगवान् शंकर प्रकट हो गये और उन्होंने समझाकर कहा—'देवि! अब तुम दुःखको दूर करनेवाली मेरी बात सुनो और श्रीहरि भी स्वस्थ मनसे उसे श्रवण करें; क्योंकि तुम दोनोंके लिये जो सुखकारक होगा, वही मैं कहूँगा। भद्रे! तुमने (जिस मनोरथको लेकर) तप किया था, यह उसी तपस्याका फल है। भला, वह अन्यथा कैसे हो सकता है? इसीलिये तुम्हें उसके अनुरूप ही फल प्राप्त हुआ है। अब तुम इस शरीरको

त्यागकर दिव्य देह धारण कर लो और लक्ष्मीके समान होकर नित्य श्रीहरिके साथ (वैकुण्ठमें) विहार करती रहो। तुम्हारा यह शरीर, जिसे तुम छोड़ दोगी, नदीके रूपमें परिवर्तित हो जायगा। वह नदी भारतवर्षमें पुण्यरूपा गण्डकीके नामसे प्रसिद्ध होगी। महादेवि! कुछ कालके पश्चात् मेरे वरके प्रभावसे देवपूजन-सामग्रीमें तुलसीका प्रधान स्थान हो जायगा। सुन्दरी! तुम स्वर्गलोकमें, मृत्युलोकमें तथा पातालमें सदा श्रीहरिके निकट ही निवास करोगी और पुष्पोंमें श्रेष्ठ तुलसीका वृक्ष हो जाओगी। तुम वैकुण्ठमें दिव्यरूपधारिणी वृक्षाधिष्ठात्री देवी बनकर सदा एकान्तमें श्रीहरिके साथ क्रीडा करोगी। उधर भारतवर्षमें जो नदियोंकी अधिष्ठात्री देवी होगी, वह परम पुण्य प्रदान करनेवाली होगी और श्रीहरिके अंशभूत लवणसागरकी पत्नी बनेगी। तथा श्रीहरि भी तुम्हारे शापवश पत्थरका रूप धारण करके भारतमें गण्डकी नदीके जलके निकट निवास करेंगे। वहाँ तीखी दाढ़ोंवाले करोड़ों भयंकर कीड़े उस पत्थरको काटकर उसके मध्यमें चक्रका आकार बनायेंगे। उसके भेदसे वह अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाली शालग्रामशिला कहलायेगी और चक्रके भेदसे उसका लक्ष्मीनारायण आदि भी नाम होगा। विष्णुकी शालग्रामशिला और वृक्षस्वरूपिणी तुलसीका समागम सदा अनुकूल तथा बहुत प्रकारके पुण्योंकी वृद्धि करनेवाला होगा। भद्रे! जो शालग्रामशिलाके ऊपरसे तुलसीपत्रको दूर करेगा, उसे जन्मान्तरमें स्त्रीवियोगकी प्राप्ति होगी तथा जो शङ्खको दूर करके तुलसीपत्रको हटायेगा, वह भी भार्याहीन होगा और सात जन्मोंतक रोगी बना रहेगा। जो महाज्ञानी पुरुष शालग्रामशिला, तुलसी और शङ्खको एकत्र रखकर उनकी रक्षा करता है, वह श्रीहरिका प्यारा होता है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! इस प्रकार कहकर शंकरजीने उस समय शालग्रामशिला और तुलसीके परम पुण्य-दायक माहात्म्यका वर्णन किया। तत्पश्चात् वे श्रीहरिको तथा तुलसीको आनन्दित करके अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार सदा सत्पुरुषोंका कल्याण करनेवाले शम्भु अपने स्थानको चले गये। इधर शम्भुका कथन सुनकर तुलसीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने उस शरीरका परित्याग करके दिव्य रूप धारण कर लिया। तब कमलापति विष्णु उसे साथ लेकर वैकुण्ठको चले गये। उसके छोड़े हुए शरीरसे गण्डकी नदी प्रकट हो गयी और भगवान् अच्युत भी उसके तटपर मनुष्योंको पुण्यप्रदान करनेवाली शिलाके रूपमें परिणत हो गये। मुने! उसमें कीड़े अनेक प्रकारके छिद्र बनाते रहते हैं। उनमें जो शिलाएँ गण्डकीके जलमें गिरती हैं, वे परम पुण्यप्रद होती हैं और जो स्थलपर ही रह जाती हैं, उन्हें पिङ्गला कहा जाता है और वे प्राणियोंके लिये संतापकारक होती हैं। व्यासजी! इस प्रकार तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने शम्भुका सारा चरित, जो पुण्यप्रदान तथा मनुष्योंकी सारी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, तुम्हें सुना दिया। यह पुण्य आख्यान, जो विष्णुके माहात्म्यसे संयुक्त तथा भोग और मोक्षका प्रदाता है, तुमसे वर्णन कर दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ४१)

उमाद्वारा शम्भुके नेत्र मूँद लिये जानेपर अन्धकारमें शम्भुके पसीनेसे अन्धकासुरकी उत्पत्ति, हिरण्याक्षकी पुत्रार्थ तपस्या और शिवका उसे पुत्ररूपमें अन्धकको देना, हिरण्याक्षका त्रिलोकीको जीतकर पृथ्वीको रसातलमें ले जाना और वराहरूपधारी विष्णुद्वारा उसका वध

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! अब जिस प्रकार अन्धकासुरने परमात्मा शम्भुके गणाध्यक्ष-पदको प्राप्त किया था, महेश्वरके उस मङ्गलमय चरितको श्रवण करो। मुनीश्वर! अन्धकासुरने पहले शिवजीके साथ बड़ा घोर संग्राम किया था, परंतु पीछे बारंबार सात्त्विक भावके उद्रेकसे उसने शम्भुको प्रसन्न कर लिया; क्योंकि नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले शम्भु शरणागतरक्षक तथा परम भक्तवत्सल हैं। उनका माहात्म्य परम अद्भुत है।

व्यासजीने पूछा—ऐश्वर्यशाली मुनिवर! वह अन्धक कौन था और भूतलपर किस वीर्यवान्‌के कुलमें उत्पन्न हुआ था? दैत्योंमें प्रधान तथा महामनस्वी उस बलवान् अन्धकका स्वरूप कैसा था और वह किसका पुत्र था? उसने परम तेजस्वी शम्भुकी गणाध्यक्षताको कैसे प्राप्त किया? यदि अन्धक गणेश्वर हो गया तब तो वह परम धन्यवादका पात्र है।

सनत्कुमारजीने कहा—मुने! पूर्वकालकी बात है, एक समय भक्तोंपर कृपा करनेवाले तथा देवताओंके चक्रवर्ती सम्राट् भगवान् शंकरको विहार करनेकी इच्छा हुई। तब वे पार्वती और गणोंको साथ ले अपने निवासभूत कैलास पर्वतसे चलकर काशीपुरीमें आये। वहाँ उन्होंने उस पुरीको अपनी राजधानी बनाया और भैरव नामक वीरको उसका रक्षक नियुक्त किया। फिर पार्वतीजीके साथ रहते हुए वे भक्तजनोंको सुख देनेवाली अनेक प्रकारकी लीलाएँ करने लगे। एक समय वे उसके वरदानके प्रभाववश अनेकों वीराग्रगण्य गणेश्वरों और शिवाके साथ मन्दराचलपर गये और वहाँ भी तरह-तरहकी क्रीडाएँ करने लगे। एक दिन जब प्रचण्ड पराक्रमी कपर्दी शिव मन्दराचलकी पूर्व दिशामें बैठे थे, उसी समय गिरिजाने नर्मक्रीडावश उनके नेत्र बंद कर दिये। इस प्रकार जब पार्वतीने मूँगे, सुवर्ण और कमलकी प्रभावाले अपने करकमलोंसे हरके नेत्र बंद कर दिये, तब उनके नेत्रोंके मुँद जानेके कारण वहाँ क्षणभरमें ही घोर अन्धकार फैल गया। पार्वतीके हाथोंका महेश्वरके शरीरसे स्पर्श होनेके कारण शम्भुके ललाटमें स्थित अग्निसे संतप्त होकर मद-जल प्रकट हो गया और जलकी बहुत-सी बूँदें टपक पड़ीं। तदनन्तर उन बूँदोंने एक गर्भका रूप धारण कर लिया। उससे एक ऐसा जीव प्रकट हुआ, जिसका मुख विकराल था। वह अत्यन्त भयंकर, क्रोधी, कृतघ्न, अंधा, कुरूप, जटाधारी, काले रंगका, मनुष्यसे भिन्न, बेडौल और सुन्दर बालोंवाला था। उसके कण्ठसे घोर घर-घर शब्द निकल रहा था। वह कभी गाता, कभी हँसता और कभी रोने लगता था तथा जबड़ोंको चाटते हुए नाच रहा था। उस अद्भुत दृश्यवाले जीवके प्रकट होनेपर शिवजी

मुसकराकर पार्वतीजीसे बोले।

श्रीमहेश्वरने कहा—'प्रिये! मेरे नेत्रोंको मूँदकर तुमने ही तो यह कर्म किया है, फिर तुम उससे भय क्यों कर रही हो?' शंकरजीके उस वचनको सुनकर गौरी हँस पड़ीं और उनके नेत्रोंपरसे उन्होंने अपने हाथ हटा लिये। फिर तो वहाँ प्रकाश छा गया, परंतु उस प्राणीका रूप भयंकर ही बना रहा और अन्धकारसे उत्पन्न होनेके कारण उसके नेत्र भी अंधे थे। तब वैसे प्राणीको प्रकट हुआ देखकर गौरीने महेश्वरसे पूछा।

गौरीने कहा—भगवन्! मुझे सच-सच बताइये कि हमलोगोंके सामने प्रकट हुआ यह बेडौल प्राणी कौन है। यह तो अत्यन्त भयंकर है। किस निमित्तको लेकर किसने इसकी सृष्टि की है और यह किसका पुत्र है?

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! उस लीला रचनेवाली तथा तीनों लोकोंकी जननी गौरीने सृष्टिकर्ताकी उस अंधीसृष्टिके विषयमें यों प्रश्न किया, तब लीला-विहारी भगवान् शंकर अपनी प्रियाके उस वचनको सुनकर कुछ मुस्कराये और इस प्रकार बोले।

महेश्वरने कहा—अद्भुत चरित्र रचनेवाली अम्बिके! सुनो। जब तुमने मेरे नेत्र मूँद लिये थे, उसी समय यह अद्भुत एवं प्रचण्ड पराक्रमी प्राणी मेरे पसीनेसे प्रकट हुआ। इसका नाम अन्धक है। तुम्हीं इसको उत्पन्न करनेवाली हो, अतः सखियोंसहित तुम्हें करुणापूर्वक इसकी गणोंसे यथायोग्य रक्षा करते रहना चाहिये। आर्ये! इस प्रकार बुद्धिपूर्वक विचार करके ही तुम्हें सब कार्य करना चाहिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! अपने स्वामीके ऐसे वचन सुनकर गौरीका हृदय करुणार्द्र हो गया। वे अपनी सखियोंसहित अन्धककी अपने पुत्रकी भाँति नाना प्रकारके उपायोंद्वारा रक्षा करने लगीं। तदनन्तर शिशिर-ऋतु आनेपर दैत्य हिरण्याक्ष पुत्रकी कामनासे उसी वनमें आया; क्योंकि उसकी पत्नीने उसके ज्येष्ठ बन्धुकी संतान-परम्पराको देखकर उसे संतानार्थ तपश्चर्याके लिये प्रेरित किया था। वहाँ वह कश्यपनन्दन हिरण्याक्ष वनका आश्रय ले पुत्र-प्राप्तिके लिये घोर तप करने लगा। उसके मनमें महेश्वरके दर्शनकी इच्छा थी, अतः वह क्रोध आदि दोषोंको अपने काबूमें करके ठूँठकी भाँति निश्चल होकर समाधिस्थ हो गया। द्विजेन्द्र! तब जिसकी ध्वजामें वृषका चिह्न वर्तमान है तथा जो पिनाक धारण करनेवाले हैं, वे महेश उसकी तपस्यासे पूर्णतया प्रसन्न होकर उसे वर प्रदान करनेके लिये चले और उस स्थानपर पहुँचकर दैत्यप्रवर हिरण्याक्षसे बोले।

महेशने कहा—दैत्यनाथ! अब तू अपनी इन्द्रियोंका विनाश मत कर। किसलिये तूने इस व्रतका आश्रय लिया है? तू अपना मनोरथ तो प्रकट कर। मैं वरदाता शंकर हूँ; अतः तेरी जो अभिलाषा होगी, वह सब मैं तुझे प्रदान करूँगा।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! महेश्वरके उस सरस वचनको सुनकर दैत्यराज हिरण्याक्ष परम प्रसन्न हुआ। उसने गिरीशके चरणोंमें नमस्कार करके अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की; फिर वह अञ्जलि बाँधे सिर झुकाकर कहने लगा।

हिरण्याक्षने कहा—चन्द्रभाल! मेरे

उत्तम पराक्रमसम्पन्न तथा दैत्यकुलके अनुरूप कोई पुत्र नहीं है, इसीलिये मैंने इस व्रतका अनुष्ठान किया है। देवेश ! मुझे परम बलशाली पुत्र दीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! दैत्यराजके उस वचनको सुनकर कृपालु शंकर प्रसन्न हो गये और उससे बोले—'दैत्याधिप ! तेरे भाग्यमें तेरे वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र तो नहीं लिखा है, किंतु मैं तुझे एक पुत्र देता हूँ। मेरा एक पुत्र है, जिसका नाम अन्धक है। वह तेरे ही समान पराक्रमी और अजेय है। तू सम्पूर्ण दुःखोंको त्यागकर उसीको पुत्ररूपसे वरण कर ले और इस प्रकार पुत्र प्राप्त कर ले।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे ! उससे यों कहकर गौरीके साथ विराजमान उन महात्मा भूतनाथ त्रिपुरारि शंकरने प्रसन्न होकर हिरण्याक्षको वह पुत्र दे दिया। इस

प्रकार शिवजीसे पुत्र प्राप्त करके वह महामनस्वी दैत्य परम प्रसन्न हुआ। उसने अनेकों स्तोत्रोंद्वारा रुद्रकी पूजा करके प्रदक्षिणा की और फिर वह अपने राज्यको चला गया। गिरीशसे पुत्र प्राप्त कर लेनेके बाद वह प्रचण्ड पराक्रमी दैत्य सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर इस पृथ्वीको अपने देश रसातलमें उठा ले गया। तब देवताओं, मुनियों और सिद्धोंने अनन्त पराक्रमी विष्णुकी आराधना की। फिर तो भगवान् विष्णु सर्वात्मक यज्ञमय विकराल वाराह-शरीर धारणकर थूथुनके अनेकों प्रहारोंसे पृथ्वीको विदीर्ण करके पाताल-लोकमें जा घुसे। वहाँ उन्होंने कभी न टूटनेवाले अपनी अगली दाढ़ोंसे तथा थूथुनसे सैकड़ों दैत्योंका कचूमर निकालकर अपने वज्र-सदृश कठोर पाद-प्रहारोंसे निशाचरोंकी सेनाको मथ डाला। तत्पश्चात् अद्भुत एवं प्रचण्ड तेजस्वी विष्णुने करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान सुदर्शन-चक्रसे हिरण्याक्षके प्रज्वलित सिरको काट लिया और दुष्ट दैत्योंको जलाकर भस्म कर दिया। यह देखकर देवराज इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उस असुर-राज्यपर अन्धकको अभिषिक्त कर दिया। फिर महात्मा इन्द्र विष्णुको अपनी दाढ़ोंद्वारा पाताललोकसे पृथ्वीको लाते हुए देखकर परम प्रसन्न हुए और अपने स्थानपर आकर पूर्ववत् स्वर्ग और भूतलकी रक्षा करने लगे। इधर वाराहरूप धारण करके उत्तम कार्य करनेवाले उग्ररूपधारी श्रीहरि प्रसन्नचित्त हुए समस्त देवों, मुनियों और पद्मयोनि ब्रह्माद्वारा प्रशंसित होकर अपने लोकको

चले गये। इस प्रकार वाराहरूपधारी विष्णुद्वारा असुरराज हिरण्याक्षके मारे जानेपर समस्त देव, मुनि तथा अन्यान्य सभी जीव सुखी हो गये। (अध्याय ४२)

☆

हिरण्यकशिपुकी तपस्या और ब्रह्मासे वरदान पाकर उसका अत्याचार, नृसिंहद्वारा उसका वध और प्रह्लादको राज्यप्राप्ति

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! इधर वराहरूपधारी श्रीहरिके द्वारा इस प्रकार भाईके मारे जानेपर हिरण्यकशिपु शोक और क्रोधसे संतप्त हो उठा। श्रीहरिके साथ वैर करना तो उसे रुचता ही था, अतः उसने संहारप्रेमी वीर असुरोंको प्रजाका विनाश करनेके लिये आज्ञा दे दी। तब वे संहारप्रिय असुर स्वामीकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर देवताओं और प्रजाओंका विनाश करने लगे। इस प्रकार जब उन दुष्ट-चित्तवाले असुरोंद्वारा सारा देवलोक तहस-नहस कर दिया गया, तब देवता स्वर्गको छोड़कर गुप्तरूपसे भूतलपर विचरने लगे। उधर भाईकी मृत्युसे दुःखी हुए हिरण्यकशिपुने भाईको जलाञ्जलि देकर उसकी स्त्री आदिको ढाढ़स बँधाया। तत्पश्चात् उस दैत्यराजने अपने लिये विचार किया कि 'मैं अजेय, अजर और अमर हो जाऊँ। मेरा ही एकच्छत्र साम्राज्य रहे और मेरा प्रतिद्वन्द्वी कोई न रह जाय।' यों धारणा बनाकर वह मन्दराचलपर गया और वहाँ एक गुफामें अत्यन्त घोर तपस्या करने लगा। उस समय वह पैरके अँगूठेके बल खड़ा था। उसकी भुजाएँ ऊपरको उठी थीं और दृष्टि आकाशकी ओर लगी थी। उसकी तपस्यासे संतप्त होकर देवताओंका मुख विकृत हो उठा। वे स्वर्गको छोड़कर ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे और उन्होंने ब्रह्मासे अपना दुखड़ा कह सुनाया। व्यासजी! उन देवताओंके इस प्रकार कहनेपर स्वयम्भू ब्रह्मा भृगु, दक्ष आदिके साथ उस दैत्येश्वरके आश्रमपर गये। तब जिसने अपने तपसे सम्पूर्ण लोकोंको संतप्त कर दिया था, उस हिरण्यकशिपुने वर देनेके लिये आये हुए पद्मयोनि ब्रह्माको अपने सामने उपस्थित देखा। उधर पितामहने भी उससे कहा—'वर माँग।' तब जिसकी बुद्धि मोहित नहीं हुई थी, उस असुरने विधाताकी उस मधुर वाणीको सुनकर इस प्रकार कहा।

हिरण्यकशिपु बोला—ऐश्वर्यशाली प्रजापति! पितामह! मैं चाहता हूँ कि स्वर्गमें, भूतलपर, दिनमें, रातमें, ऊपर अथवा नीचे—कहीं भी शस्त्र, अस्त्र, पाश, वज्र, शुष्क वृक्ष, पर्वत, जल, अग्निके रूपमें शत्रुके प्रहारसे, देवता, दैत्य, मुनि, सिद्ध किंबहुना आपद्वारा रचे हुए जीवोंके हाथों मुझे कभी भी मृत्युका भय न हो।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! हिरण्यकशिपुके वैसे वचन सुनकर पद्मयोनि ब्रह्माके मनमें दयाका भाव जाग्रत् हो उठा। उन्होंने मन-ही-मन विष्णुको प्रणाम करके उससे कहा—'दैत्येन्द्र! मैं तुझपर प्रसन्न हूँ,

अतः तुझे सारी वस्तुएँ प्राप्त होंगी। तूने छियानबे हजार वर्षोंतक तप किया है, अब तेरी कामना पूर्ण हो चुकी है; अतः तपसे विरत होकर उठ और दानवोंके राज्यका उपभोग कर।' ब्रह्माकी वाणी सुनकर हिरण्यकशिपुका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। इस प्रकार जब पितामहने उसे दानव-राज्यपर अभिषिक्त कर दिया, तब वह उन्मत्त हो उठा और त्रिलोकीको नष्ट करनेका विचार करने लगा। फिर तो उसने सम्पूर्ण धर्मोंका उच्छेद करके संग्राममें समस्त देवताओंको भी जीत लिया। तब देवता भागकर विष्णुके पास पहुँचे। वहाँ श्रीहरिने देवताओं और मुनियोंकी दुःखगाथा सुनकर उन्हें आश्वासन दिया और शीघ्र ही उस दैत्यके वध करनेका वचन दिया। तब देवता अपने स्थानको लौट गये। तदनन्तर महात्मा विष्णुने ऐसा रूप धारण किया, जो आधा सिंह और आधा मनुष्यका था। वह अत्यन्त भयंकर तथा विकराल दीख रहा था। उसका मुख खूब फैला हुआ था, नासिका बड़ी सुन्दर थी और नख तीखे थे। गर्दनपर सटाएँ लहरा रही थीं। दाढ़े ही आयुध थे। उससे करोड़ों सूर्योंके समान प्रभा छिटक रही थी और उसका प्रभाव प्रलयकालीन अग्निके सदृश था। अधिक कहाँतक कहा जाय, वह रूप जगन्मय था। इसी रूपसे वे भगवान् भास्करके अस्ताचलकी शरण लेनेपर असुरोंकी नगरीमें प्रविष्ट हुए। उन अतुल प्रभावशाली नृसिंहको देखकर सभी दैत्य एक साथ उनपर टूट पड़े। तब उन अद्‌भुत पराक्रमी नृसिंहने महाबली दैत्योंके साथ युद्ध करके बहुतोंको मार डाला और बहुतोंको पकड़कर तोड़-मरोड़ दिया। फिर वे उस नगरमें घूमने लगे। तब उन सर्वमय सिंहको देखकर दैत्यराजके पुत्र प्रह्लादने राजासे कहा—'यह मृगेन्द्र तो जगन्मय दीख रहा है। यह यहाँ किसलिये आया है।'

प्रह्लादने पुनः कहा—पिताजी! मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ये भगवान् अनन्त हैं और नृसिंहका रूप धारण करके आपके नगरमें प्रविष्ट हुए हैं; क्योंकि मुझे इनकी मूर्ति बड़ी विकराल दीख रही है। अतः आप युद्धसे हटकर इनकी शरणमें जाइये। इनसे बढ़कर त्रिलोकीमें दूसरा कोई योद्धा नहीं है, इसलिये आप इन मृगेन्द्रके सामने झुककर अपने राज्यका उपभोग कीजिये। अपने पुत्रकी बात सुनकर उस दुरात्माने उससे कहा—'बेटा! क्या तू भयभीत हो गया?' अपने पुत्रसे यों कहकर दैत्योंके अधिपति राजा हिरण्यकशिपुने महाबली दैत्योंको आज्ञा देते हुए कहा—'वीरो! तुमलोग इस बेडौल भृकुटि और नेत्रवाले सिंहको पकड़ लो।' तब स्वामीकी आज्ञासे उन मृगेन्द्रको पकड़नेकी इच्छासे वे सभी बड़े-बड़े दैत्य रणभूमिमें घुसे; परंतु जैसे रूपकी अभिलाषासे अग्निमें प्रवेश करनेवाले पतिंगे जल-भुन जाते हैं, उसी तरह वे सब-के-सब क्षणभरमें ही जलकर भस्म हो गये। दैत्योंके दग्ध हो जानेपर भी वह दैत्यराज सम्पूर्ण

शस्त्र, अस्त्र, शक्ति, ऋष्टि, पाश, अङ्कुश और पावक आदिसे उन मृगेन्द्रके साथ लोहा लेता ही रहा। इस प्रकार बहुत कालतक भयानक युद्ध हुआ। अन्तमें उन नृसिंहने वज्रके समान कठोर अपनी अनेकों भुजाओंसे उस दैत्यको पकड़ लिया और उसे अपने जानुओंपर लिटाकर दानवोंके मर्मको विदीर्ण करनेवाले नखाङ्कुरोंसे उसकी छाती चीर डाली तथा खूनसे लथपथ हुए उसके हृदय-कमलको निकाल लिया। फिर तो उसी क्षण उसके प्राणपखेरू उड़ गये। तब भगवान् नृसिंहने बारंबारके आघातसे जिसके सारे अङ्ग चूर-चूर हो गये थे, उस काष्ठभूत दैत्यको छोड़ दिया। उस समय उस देवशत्रुके मारे जानेपर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी अवसरपर प्रह्लादने आकर उनके चरणोंमें सिर झुकाया। तब अद्भुत पराक्रमी विष्णुने प्रह्लादको बुलाकर उन्हें दैत्योंके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं अतर्कित गतिको प्राप्त हो गये अर्थात् अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर पितामह आदि समस्त सुरेश्वर परम प्रसन्न हो अपना कार्य सिद्ध करनेवाले पूजनीय भगवान् विष्णुको उसी दिशामें प्रणाम करके अपने-अपने धामको चले गये। विप्रवर ! प्रसङ्गवश मैंने रुद्रसे अन्धककी उत्पत्ति, वराहसे हिरण्याक्षकी मृत्यु, नृसिंहके हाथों उसके भाईका विनाश और प्रह्लादकी राज्य-प्राप्तिका वर्णन कर दिया। द्विजश्रेष्ठ ! अब मैं शिवकी कृपासे प्राप्त हुए अन्धकके प्रधानका, शंकरजीके साथ उसके युद्धका और पीछे जिस प्रकार उसे महेशके गणाध्यक्ष-पदकी प्राप्ति हुई, उस कथाका वर्णन करता हूँ, सुनो। (अध्याय ४३)

☆

भाइयोंके उपालम्भसे अन्धकका तप करना और वर पाकर त्रिलोकीको जीतकर स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त होना, उसके मन्त्रियोंद्वारा शिव-परिवारका वर्णन, पार्वतीके सौन्दर्यपर मोहित होकर अन्धकका वहाँ जाना और नन्दीश्वरके साथ युद्ध, अन्धकके प्रहारसे नन्दीश्वरकी मूर्च्छा, पार्वतीके आवाहनसे देवियोंका प्रकट होकर युद्ध करना, शिवका आगमन और युद्ध, शिवद्वारा शुक्राचार्यका निगला जाना, शिवकी प्रेरणासे विष्णुका कालीरूप धारण करके दानवोंके रक्तका पान करना, शिवका अन्धकको अपने त्रिशूलमें पिरोना और युद्धकी समाप्ति

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर ! एक समय हिरण्याक्षका पुत्र अन्धक अपने

भाइयोंके साथ विहारमें संलग्न था। उसी समय उसके कामासक्त मदान्ध भाइयोंने उससे कहा—'अरे अन्धे! तुम्हें तो अब राज्यसे क्या प्रयोजन है? हिरण्याक्ष तो मूर्ख था, जो उसने घोर तपद्वारा शंकरजीको प्रसन्न करके भी तुम-जैसे कुरूप, बेडौल, कलिप्रिय और नेत्रहीनको प्राप्त किया! ऐसे तुम राज्यके भागी तो हो नहीं सकते; क्योंकि भला, तुम्हीं विचार करो कि कहीं दूसरेसे उत्पन्न हुआ पुत्र भी राज्य पाता है? सच पूछो तो निश्चय ही इस राज्यके भागी हमींलोग हैं।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! उन लोगोंकी वह बात सुनकर अन्धक दीन हो गया। फिर उसने स्वयं ही बुद्धिपूर्वक विचार करके तरह-तरहकी बातोंसे उन्हें शान्त किया और रातके समय वह निर्जन वनमें चला गया। वहाँ उसने हजारों वर्षोंतक घोर तप करके अपने शरीरको सुखा डाला और अन्तमें उस शरीरको अग्निमें होम देना चाहा। तब ब्रह्माजीने उसे वैसा करनेसे रोककर कहा—'दानव! अब तू वर माँग ले। सारे संसारमें जिस दुर्लभ वस्तुको प्राप्त करनेकी तेरी अभिलाषा हो, उसे तू मुझसे ले ले।' पद्मयोनि ब्रह्माके वचनको सुनकर वह दैत्य दीनता एवं नम्रतापूर्वक कहने लगा—'भगवन्! जिन निष्ठुरोंने मेरा राज्य छीन लिया है, वे सब दैत्य आदि मेरे भृत्य हो जायँ, मुझ अंधेको दिव्य चक्षु प्राप्त हो जाय, इन्द्र आदि देवता मुझे कर दिया करें और देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, नाग, मनुष्य, दैत्योंके शत्रु नारायण, सर्वमय शंकर तथा अन्यान्य किन्हीं भी प्राणियोंसे मेरी मृत्यु न हो।' उसके उस अत्यन्त दारुण वचनको सुनकर ब्रह्माजी सशङ्कित हो उठे और उससे बोले।

ब्रह्माजीने कहा—दैत्येन्द्र! ये सारी बातें तो हो जायँगी, किन्तु तू अपने विनाशका कोई कारण भी तो स्वीकार कर ले; क्योंकि जगत्में कोई ऐसा प्राणी न हुआ है और न आगे होगा ही, जो कालके गालमें न गया हो। फिर तुझ-जैसे सत्पुरुषोंको तो अत्यन्त लंबे जीवनका विचार त्याग ही देना चाहिये। ब्रह्माके इस अनुनयभरे वचनको सुनकर वह दैत्य पुनः बोला।

अन्धकने कहा—प्रभो! तीनों कालोंमें जो उत्तम, मध्यम और नीच नारियाँ होती हैं, उन्हीं नारियोंमें कोई रत्नभूता नारी मेरी भी जननी होगी। वह मनुष्यलोकके लिये दुर्लभ तथा शरीर, मन और वचनसे भी अगम्य है। उसमें राक्षस-भावके कारण जब मेरी काम-भावना उत्पन्न हो जाय, तभी मेरा नाश हो। उसकी बात सुनकर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माको महान् आश्चर्य हुआ। वे शंकरजीके चरणकमलोंका स्मरण करने लगे। तब शम्भुकी आज्ञा पाकर वे उस अन्धकसे बोले।

ब्रह्माजीने कहा—दैत्यवर! तू जो कुछ चाहता है, तेरे वे सभी सकाम वचन पूर्ण होंगे। दैत्येन्द्र! अब तू उठ, अपना अभीष्ट

प्राप्त कर और सदा वीरोंके साथ युद्ध करता रह। मुनीश! हिरण्याक्षपुत्र अन्धकके शरीरमें नसें और हड्डियाँ ही शेष रह गयी थीं। वह ब्रह्माके ऐसे वचनको सुनकर शीघ्र ही भक्तिपूर्वक उन लोकेश्वरके चरणोंमें लोट गया और इस प्रकार बोला।

अन्धकने कहा—विभो! जब मेरे शरीरमें नसें और हड्डियाँमात्र ही शेष रह गयी हैं, तब भला इस देहसे शत्रुसेनामें प्रवेश करके मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा; अतः अब आप अपने पवित्र हाथसे मेरा स्पर्श करके इस शरीरको मांसल बना दीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! अन्धककी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजीने अपने हाथसे उसके शरीरका स्पर्श किया और फिर वे मुनिगणों तथा सिद्धसमूहोंसे भलीभाँति पूजित हो देवताओंके साथ अपने धामको चले गये। ब्रह्माके स्पर्श करते ही उस दैत्यराजका शरीर भरा-पूरा हो गया, जिससे उसमें बलका संचार हो आया तथा नेत्रोंके प्राप्त हो जानेसे वह सुन्दर दीखने लगा। तब उसने प्रसन्नतापूर्वक अपने नगरमें प्रवेश किया। उस समय प्रह्लाद आदि श्रेष्ठ दानवोंने जब उसे वरदान प्राप्त करके आया हुआ जाना, तब वे सारा राज्य उसे समर्पित करके उसके वशवर्ती भृत्य हो गये। तदनन्तर अन्धक सेना और भृत्यवर्गको साथ ले स्वर्गको जीतनेके लिये गया। वहाँ संग्राममें समस्त देवताओंको पराजित करके उसने वज्रधारी इन्द्रको अपना करद बना लिया। उसने यत्र-तत्र बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़कर नागों, सुपर्णों, श्रेष्ठ राक्षसों, गन्धर्वों, यक्षों, मनुष्यों, बड़े-बड़े पर्वतों, वृक्षों और सिंह आदि समस्त चौपायोंको भी जीत लिया। यहाँतक कि उसने चराचर त्रिलोकीको अपने वशमें कर लिया। तदनन्तर वह रसातलमें, भूतलपर तथा स्वर्गमें जितनी सुन्दर रूपवाली नारियाँ थीं, उनमेंसे हजारोंको, जो अत्यन्त दर्शनीय तथा अपने अनुकूल थीं, साथ लेकर विभिन्न पर्वतोंपर तथा नदियोंके रमणीय तटोंपर विहार करने लगा। दैत्यराज अन्धक सदा दुष्टोंका ही सङ्ग करता था। उसकी बुद्धि मदसे अंधी हो गयी थी, जिससे उस मूढ़को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं रह गया कि परलोकमें आत्माको सुख देनेवाला भी कोई कर्म करना चाहिये। इस प्रकार वह महामनस्वी दैत्य उन्मत्त हो और अपने सारे प्रधान-प्रधान पुत्रोंको कुतर्कवादसे पराजित करके दैत्योंसहित सम्पूर्ण वैदिक धर्मोंका विनाश करता हुआ विचरण करने लगा। वह धनके मदसे अभिभूत हो वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरु आदि किसीको भी नहीं मानता था। प्रारब्धवश उसकी आयु समाप्त हो चुकी थी, इसीसे वह स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त हो व्यर्थमें ही अपनी आयुके शेष दिन गँवाता हुआ रमण कर रहा था। उस दानवश्रेष्ठके तीन मन्त्री थे, जिनका नाम था—दुर्योधन, वैधस और हस्ती। एक समय उन तीनोंने उस पर्वतके किसी रमणीय

स्थानपर एक परम रूपवती नारीको देखा। उसे देखकर वे शीघ्रगामी श्रेष्ठ दैत्य हर्षमग्न हो तुरंत ही महादैत्यपति वीरवर अन्धकके पास पहुँचे और बड़े प्रेमसे उस देखी हुई घटनाका वर्णन करने लगे।

मन्त्रियोंने कहा—दैत्येन्द्र! यहाँ एक गुफाके भीतर हमने एक मुनिको देखा है। ध्यानस्थ होनेके कारण उसके नेत्र बंद हैं। वह बड़ा रूपवान् है। उसके मस्तकपर अर्धचन्द्रकी कला अपनी छटा बिखेर रही है और कमरमें गजेन्द्रकी खाल बँधी हुई है। बड़े-बड़े नाग उसके सारे शरीरमें लिपटे हुए हैं। खोपड़ियोंकी माला ही उस जटाधारीका आभूषण है। उसके हाथमें त्रिशूल है तथा एक विशाल धनुष, बाण और तूणीर भी वह धारण किये हुए है। उसका अक्षसूत्र स्पष्ट दीख रहा है। उसके चार भुजाएँ तथा लंबी-लंबी जटाएँ हैं। वह खड्ग, त्रिशूल और लकुट धारण किये हुए है। उसकी आकृति अत्यन्त गौर है और उसपर भस्मका अनुलेप लगा हुआ है। वह अपने उत्कृष्ट तेजसे सुशोभित हो रहा है। इस प्रकार उस श्रेष्ठ तपस्वीका सारा वेष ही अद्भुत है। उससे थोड़ी ही दूरपर हमने एक और पुरुषको देखा है, जो विकराल वानर-सा है। उसका मुख बड़ा भयंकर है। वह सभी आयुध धारण किये हुए है, परंतु उसका हाथ रूक्ष है। वह उस तपस्वीकी रक्षामें तत्पर है। उसके पास ही एक बूढ़ा सफेद रंगका बैल भी बैठा है। उस बैठे हुए तपस्वीके पार्श्वभागमें हमने एक शुभलक्षणसम्पन्ना नारीको भी देखा है। वह भूतलपर रत्नस्वरूपा है। उसका रूप बड़ा मनोरम है और तरुणी होनेके नाते वह मनको मोहे लेती है। मूँगे, मोती, मणि, सुवर्ण, रत्न और उत्तम वस्त्रोंसे वह सुसज्जित है। उसके गलेमें सुन्दर मालाएँ लटक रही हैं। (कहाँतक कहें, वह इतनी सुन्दरी है कि) जिसने उसे एक बार देख लिया, उसीका नेत्र धारण करना सफल है। उसे फिर इस लोकमें अन्य वस्तुओंके देखनेसे क्या प्रयोजन। वह दिव्य नारी पुण्यात्मा मुनिवर महेशकी मान्या एवं प्रियतमा भार्या है। दैत्येन्द्र! आप तो उत्तमोत्तम रत्नोंका उपभोग करनेवाले हैं। अतः उसे यहाँ बुलवाकर देखिये। वह आपके भी देखनेयोग्य है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! मन्त्रियोंके उन वचनोंको सुनकर दैत्यराज अन्धक कामातुर हो उठा। उसके सारे शरीरमें कम्प छा गया। फिर तो उसने तुरंत ही दुर्योधन आदिको उस मुनिके पास भेजा। मन्त्रियोंने वहाँ जाकर मुनीश्वरको प्रणाम करके उनसे अन्धकासुरका संदेश कहा तथा बदलेमें शिवजीका उत्तर सुनकर वे लौटकर अन्धकसे बोले।

मन्त्रियोंने कहा—राजन्! आप तो सम्पूर्ण दैत्योंके स्वामी हैं, फिर भी उस महान् पराक्रमी वीरवर तपस्वी मुनिने अपनी बुद्धिसे त्रिलोकीको तृणके समान समझकर हँसते हुए आपके लिये ऐसी बातें कही हैं—'उस निशाचरका शौर्य और धैर्य अस्थिर है। वह दानव कृपण, सत्त्वहीन,

क्रूर, कृतघ्न और सदा ही पापकर्म करनेवाला है। क्या उसे सूर्यपुत्र यमका भय नहीं है ? कहाँ तो मैं, मेरे दारुण शस्त्र और मृत्युको भी संत्रस्त कर देनेवाला युद्ध और कहाँ वह वानरका-सा मुखवाला डरपोक निशाचर, जिसके सारे अङ्ग बुढ़ापेसे जर्जर हो गये हैं ! कहाँ मेरा यह स्वरूप और कहाँ तेरी मन्दभाग्यता ! तेरी सेना भी तो नहींके बराबर ही है। फिर भी यदि तुझमें कुछ सामर्थ्य हो तो युद्धके लिये तैयार हो जा और आकर कुछ अपनी करतूत दिखा। मेरे पास तुझ-जैसे पापियोंका विनाश करनेवाला वज्र-सरीखा भयंकर शस्त्र है और तेरा शरीर तो कमलके समान कोमल है। ऐसी दशामें विचार करके तुझे जो रुचिकर प्रतीत हो, वह कर।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर ! मन्त्रियोंकी बात सुनकर (माता) पार्वतीपर मोहित हुआ वह कामान्ध राक्षस विशाल सेना लेकर चल दिया और वहाँ पहुँचकर नन्दीश्वरसे युद्ध करने लगा। बड़ा भयानक युद्ध हुआ। उस समय युद्धस्थलमें चर्बी, मज्जा, मांस और रक्तकी कीच मच गयी। वहाँ सिर कटे हुए धड़ नाच रहे थे और कच्चा मांस खानेवाले जानवर चारों ओर व्याप्त हो गये थे, जिससे यह बड़ा भयंकर लग रहा था। थोड़ी ही देरमें दैत्य भाग खड़े हुए। तब पिनाकधारी भगवान् शंकर दक्ष-कन्या सतीको भलीभाँति धीरज बँधाते हुए बोले—'प्रिये ! मैंने जो पहले अत्यन्त भयंकर महान् पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान किया था, उसमें रात-दिन तुम्हारे प्रसंगवश जो हमारी सेनाका विनाश हुआ है, यह विघ्न-सा आ पड़ा है। देवि ! मरणधर्मा प्राणियोंका जो अमरोंपर आक्रमण हुआ है, यह मानो पुण्यका विनाश करनेवाला कोई ग्रह प्रकट हो गया है। अतः अब मैं पुनः किसी निर्जन वनमें जाकर उस परम अद्भुत दिव्य व्रतकी दीक्षा लूँगा और उस कठिन व्रतका अनुष्ठान करूँगा। सुन्दरि ! तुम्हारा शोक और भय दूर हो जाना चाहिये।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने ! इतना कहकर उस प्रभाशाली महात्मा शंकर धीरेसे अपना सिंगा बजाकर एक अत्यन्त भयंकर पावन वनमें चले गये। वहाँ वे एक हजार वर्षोंके लिये पाशुपत-व्रतके अनुष्ठानमें तत्पर हो गये। इस व्रतका निभाना देवों और असुरोंकी शक्तिके बाहर है। इधर शीलगुणसे सम्पन्न पतिव्रता देवी पार्वती मन्दराचलपर ही रहकर शिवजीके आगमनकी प्रतीक्षा करती रहती थीं। यद्यपि पुत्रस्थानीय वीरकगण उनकी सुरक्षामें तत्पर थे, तथापि उस गुहाके भीतर अकेली रहनेके कारण वे सदा भयभीत रहती थीं, जिससे उन्हें बड़ा दुःख होता था। इसी बीच वरदानके प्रभावसे उन्मत्त हुआ वह दैत्य अन्धक, जिसका धैर्य कामदेवके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो गया था, अपने मुख्य-मुख्य योधाओंको साथ ले पुनः उस गुफापर चढ़ आया। वहाँ सैनिकोंसहित उसने वीरकगणके साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध किया। उस समय सभी वीरोंने अन्न, जल और नींदका परित्याग कर दिया था। इस प्रकार वह युद्ध लगातार पाँच सौ पाँच

दिन-राततक चलता रहा। अन्तमें दैत्योंकी भुजाओंसे छूटे हुए आयुधोंके प्रहारसे नन्दीश्वरका शरीर घायल हो गया, जिससे वे गुहाद्वारपर ही गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये। उनके गिरनेसे गुहाका सारा दरवाजा ही ढक गया, जिससे उसका खोला जाना असम्भव था। फिर दैत्योंने दो ही घड़ीमें सारे वीरकगणको अपने अस्त्रसमूहोंसे आच्छादित कर दिया। तब पार्वतीने भगवान् विष्णु और ब्रह्माजीका स्मरण किया। स्मरण करते ही ब्राह्मी, नारायणी, ऐन्द्री, वैश्वानरी, याम्या, नैर्ऋति, वारुणी, वायवी, कौबेरी, यक्षेश्वरी, गारुडी आदि देवियोंके रूपमें समस्त देवता, यक्ष, सिद्ध, गुह्यक आदि शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो पार्वतीके पास आ पहुँचे और राक्षसोंके साथ भिड़ गये। कुछ समय बाद भगवान् शिव भी आ गये। फिर तो घोर युद्ध हुआ। तदनन्तर शुक्राचार्यको संजीवनी विद्याके द्वारा दैत्योंको जीवित करते देखकर भूतनाथ शिवजी उनको निगल गये। इससे दैत्य ढीले पड़ गये।

व्यासजी! अन्धक महान् पराक्रमी, वीर और त्रिपुरहन्ता शिवके समान बुद्धिमान् था। सैकड़ों वरदान मिलनेके कारण वह उन्मादके वशीभूत हो रहा था। यद्यपि बहुसंख्यक शस्त्रास्त्रोंकी चोटसे उसका शरीर जर्जर हो गया था, फिर भी शिवजीपर विजय पानेके लिये उसने दूसरी माया रची। जब प्रलयकालीन अग्निके समान शरीर धारण करनेवाले भूतनाथ त्रिपुरारि शंकरने अपने त्रिशूलसे उसे बुरी तरह छेद डाला, तब भूतलपर गिरे हुए उसके रक्तकणोंसे यूथ-के-यूथ अन्धक प्रकट हो गये। उनसे सारी रणभूमि व्याप्त हो गयी। वे विकृत मुखवाले भयंकर राक्षस अन्धकके सदृश ही पराक्रमी थे। इस प्रकार जब पशुपतिद्वारा मारे गये सैनिकोंके घावोंसे निकले हुए अत्यन्त गरम-गरम रक्तबिन्दुओंसे दूसरे सैनिक उत्पन्न होने लगे, तब बहुत-सी भुजारूपी लताओं-द्वारा आक्रान्त होनेके कारण कुपित हुए बुद्धिमान् भगवान् विष्णुने प्रमथनाथ शिवको बुलाकर योगबलसे एक ऐसा अजेय स्त्रीरूप धारण किया, जिसका मुख विकृत था और रूप उग्र, विकराल और कङ्कालमात्र था। वह स्त्रीरूप शम्भुके कानसे निकला था। जब उन देवीने रणभूमिमें उपस्थित हो अपने युगल चरणोंसे पृथ्वीको अलंकृत किया, तब सभी देवता उनकी स्तुति करने लगे। तत्पश्चात् भगवान्‌ने उनकी बुद्धिको प्रेरित किया। फिर तो वे क्षुधार्त होकर रणके मुहानेपर उन सैनिकोंके तथा दैत्यराजके शरीरसे निकले हुए अत्यन्त गरम-गरम रुधिरका पान करने लगीं। (जिससे राक्षसोंका उत्पन्न होना बंद हो गया)। तदनन्तर एकमात्र अन्धक ही बच रहा। यद्यपि उसके शरीरका रक्त सूख गया था, तथापि वह अपने कुलोचित सनातन क्षात्र-धर्मका स्मरण करके अविनाशी भगवान् शंकरके साथ भयंकर थप्पड़ोंसे, वज्र-सदृश जानुओं और चरणोंसे, वज्राकार नखोंसे, मुख, भुजा और सिरोंसे संग्राम करता रहा। तब प्रमथनाथ शिवने रणभूमिमें उसका हृदय विदीर्ण करके उसे शान्त कर दिया। फिर त्रिशूल भोंककर उसे स्थाणुके समान ऊपरको उठा लिया। उसका जर्जर शरीर नीचेको लटक रहा था। सूर्यकी किरणोंने उसे सुखा दिया। पवनके झोंकोंसे युक्त

मेघोंने मूसलाधार जल बरसाकर उसे गीला कर दिया। हिमखण्डके समान शीतल चन्द्रमाकी किरणोंने उसे विशीर्ण कर दिया। फिर भी उस दैत्यराजने अपने प्राणोंका परित्याग नहीं किया। उसने विशेषरूपसे शिवजीका स्तवन किया। तब करुणाके अगाध सागर शम्भु प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसे प्रेमपूर्वक गणाध्यक्षका पद प्रदान कर दिया। तत्पश्चात् युद्धके समाप्त हो जानेपर लोकपालोंने नाना प्रकारके सारगर्भित स्तोत्रोंद्वारा विधिपूर्वक शिवजीकी अर्चना की और हर्षित हुए ब्रह्मा, विष्णु आदि देवोंने गर्दन झुकाकर उत्तमोत्तम स्तुतियोंद्वारा उनका स्तवन किया। फिर जय-जयकार करते हुए वे आनन्द मनाने लगे। तदनन्तर शिवजी उन सबको साथ लेकर आनन्दपूर्वक गिरिराजकी गुफाको लौट आये। वहाँ उन्होंने अपने ही अंशभूत पूजनीय देवताओंको नाना प्रकारकी भेंट समर्पित करके उन्हें विदा किया और स्वयं प्रमुदित हुई गिरिराजकुमारीके साथ उत्तमोत्तम लीलाएँ करने लगे।

(अध्याय ४४—४९)

☆

नन्दीश्वरद्वारा शुक्राचार्यका अपहरण और शिवद्वारा उनका निगला जाना, सौ वर्षके बाद शुक्रका शिवलिङ्गके रास्ते बाहर निकलना, शिवद्वारा उनका 'शुक्र' नाम रखा जाना, शुक्रद्वारा जपे गये मृत्युञ्जय-मन्त्र और शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रका वर्णन, शिवद्वारा अन्धकको वर-प्रदान

व्यासजीने पूछा—महाबुद्धिमान् सनत्कुमारजी! जब वह महान् भयंकर एवं रोमाञ्चकारी संग्राम चल रहा था, उस समय त्रिपुरारि शंकरने दैत्यगुरु विद्वान् शुक्राचार्यको निगल लिया था—यह घटना मैंने संक्षेपमें ही सुनी थी। अब आप उसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। पिनाकधारी शिवके उदरमें जाकर उन महायोगी शुक्राचार्यने क्या किया था? शम्भुकी जठराग्निने उन्हें जलाया क्यों नहीं? भृगुनन्दन बुद्धिमान् शुक्र भी तो कल्पान्तकालीन अग्निके समान उग्र तेजस्वी थे। वे शम्भुके जठर-पञ्जरसे कैसे निकले? उन्होंने कैसे और कितने कालतक आराधना की थी? तात! उन्हें जो मृत्युका शमन करनेवाली पराविद्या प्राप्त हुई थी, वह विद्या कौन-सी है, जिससे मृत्युका निवारण हो जाता है? मुने! लीलाविहारी देवाधिदेव भगवान् शंकरके त्रिशूलसे छूटे हुए अन्धकको गणाध्यक्षताकी प्राप्ति कैसे हुई? तात! मुझे शिवलीलामृत श्रवण करनेकी विशेष लालसा है, अतः आप मुझपर कृपा करके वह सारा वृत्तान्त पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—अमिततेजस्वी व्यासजीके इन वचनोंको सुनकर सनत्कुमार शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके कहने लगे।

सनत्कुमारजीने कहा—मुनिवर! भगवान् शंकरके प्रमथोंकी जब अत्यन्त विजय होने लगी, तब अन्धक घबराकर शुक्राचार्यजीकी शरणमें गया और उसने

गिड़गिड़ाकर मृतसंजीवनी विद्याके द्वारा मरे हुए असुरोंको जीवित करनेकी प्रार्थना की। इसपर शुक्राचार्यने शरणागतधर्मकी रक्षा करना उचित समझा। फिर तो वे युद्धस्थलमें गये और आदरपूर्वक विद्याके स्वामी शंकरका स्मरण करके एक-एक दैत्यपर मृतसंजीवनी विद्याका प्रयोग करने लगे। उस विद्याका प्रयोग होते ही वे सभी दैत्य-दानव वीर एक साथ ही हथियार लिये हुए इस प्रकार उठ खड़े हुए मानो अभी सोकर उठे हों। जैसे पूर्णतया अभ्यस्त किया हुआ वेद, समरभूमिमें बादल और श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको दिया हुआ धन आपत्तिके समय तुरंत प्रकट हो जाता है, उसी प्रकार वे उठ खड़े हुए। शुक्राचार्यके संजीवनी-प्रयोगसे जब बड़े-बड़े दानव जीवित होकर प्रमथोंको बुरी तरह मारने लगे, तब प्रमथोंने जाकर प्रमथेश्वरेश शिवको यह समाचार सुनाया। तब शिवजीने कहा—'नन्दिन्! तुम अभी तुरंत ही जाओ और दैत्योंके बीचसे द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्यको उसी प्रकार उठा लाओ जैसे बाज लवाको उठा ले जाता है।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! वृषभध्वजके यों कहनेपर नन्दी साँड़के समान बड़े जोरसे गरजे और तुरंत ही सेनाको लाँघकर उस स्थानपर जा पहुँचे जहाँ भृगुवंशके दीपक शुक्राचार्य विराजमान थे। वहाँ समस्त दैत्य हाथोंमें पाश, खड्ग, वृक्ष, पत्थर और पर्वतखण्ड लिये हुए उनकी रक्षा कर रहे थे। यह देखकर बलशाली नन्दीने उन दैत्योंको विक्षुब्ध करके शुक्राचार्यका उसी प्रकार अपहरण कर लिया, जैसे शरभ हाथीको उठा ले जाता है। महाबली नन्दीद्वारा पकड़े जानेपर शुक्राचार्यके वस्त्र खिसक गये। उनके आभूषण गिरने लगे और केश खुल गये। तब देवशत्रु दानव उन्हें छुड़ानेके लिये सिंहनाद करते हुए नन्दीके पीछे दौड़े और जैसे मेघ जलकी वर्षा करते हैं, उसी तरह नन्दीश्वरके ऊपर वज्र, त्रिशूल, तलवार, फरसा, बरेंठी और गोफन आदि अस्त्रोंकी उग्र वृष्टि करने लगे। तब उस देवासुर-संग्रामके विकराल रूप धारण करनेपर गणाधिराज नन्दीने अपने मुखकी आगसे सैकड़ों शस्त्रोंको भस्म कर दिया और उन भृगुनन्दनको दबोचकर शत्रुदलको व्यथित करते हुए वे शिवजीके समीप आ पहुँचे तथा शीघ्र ही उन्हें निवेदित करते हुए बोले—'भगवन्! ये शुक्राचार्य उपस्थित हैं।' तब भूतनाथ देवाधिदेव शंकरने पवित्र पुरुषद्वारा प्रदान किये हुए उपहारकी भाँति शुक्राचार्यको पकड़ लिया और बिना कुछ कहे उन्हें फलकी तरह मुखमें डाल लिया। उस समय समस्त असुर उच्चस्वरसे हाहाकार करने लगे।

व्यासजी! जब गिरिजेश्वरने शुक्राचार्यको निगल लिया, तब दैत्योंकी विजयकी आशा जाती रही। उस समय उनकी दशा सूँड़रहित गजराज, सींगहीन साँड़, मस्तकविहीन देह, अध्ययनरहित ब्राह्मण, उद्यमहीन प्राणी, भाग्यहीनके उद्यम, पतिरहित स्त्री, फलवर्जित बाण, पुण्यहीनोंकी आयु, व्रतरहित वेदाध्ययन, एकमात्र वैभवशक्तिके बिना निष्फल हुए कर्मसमूह, शूरताहीन क्षत्रिय और सत्यके बिना धर्मसमुदायकी भाँति शोचनीय हो गयी। दैत्योंका सारा उत्साह जाता रहा। तब अन्धकने महान् दुःख प्रकट करते हुए अपने शूरवीरोंको बहुत उत्साहित किया और

कहा—'वीरो! जो रणाङ्गण छोड़कर भाग जाते हैं, उनकी ख्याति अपयशरूपी कालिमासे मलिन हो जाती है और उन्हें इस लोकमें तथा परलोकमें—कहीं भी सुख नहीं मिलता। यदि पुनर्जन्मरूपी मलका अपहरण करनेवाले धरातीर्थ—रणतीर्थमें अवगाहन कर लिया जाय तो अन्य तीर्थोंमें स्नान, दान और तपकी क्या आवश्यकता है अर्थात् इनका फल रणभूमिमें प्राणत्याग करनेसे ही प्राप्त हो जाता है।' दैत्यराजके इस वचनको पूर्णरूपसे धारण करके वे दैत्य तथा दानव रणभेरी बजाकर रणभूमिमें प्रमथगणोंपर टूट पड़े और उन्हें मथने लगे तथा बाण, खड्ग, वज्र-सरीखे कठोर पत्थर, भुशुण्डी, भिन्दिपाल, शक्ति, भाले, फरसे, खट्वाङ्ग, पट्टिश, त्रिशूल, लकुट और मुसलोंद्वारा परस्पर प्रहार करते हुए भयंकर मार-काट मचाने लगे। इस प्रकार अत्यन्त घमासान युद्ध हुआ। इसी बीच विनायक, स्कन्द, नन्दी, सोमनन्दी, वीर नैगमेय और महाबली वैशाख आदि उग्र गणोंने त्रिशूल, शक्ति और बाणसमूहोंकी धारावाहिक वर्षा करके अन्धकको अंधा बना दिया। फिर तो प्रमथों तथा असुरोंकी सेनाओंमें महान् कोलाहल मच गया। उस घोर शब्दको सुनकर शम्भुके उदरमें स्थित शुक्राचार्य आश्रयरहित वायुकी भाँति निकलनेका मार्ग ढूँढ़ते हुए चक्कर काटने लगे। उस समय उन्हें रुद्रके उदरमें पातालसहित सातों लोक, ब्रह्मा, नारायण, इन्द्र, आदित्य और अप्सराओंके विचित्र भुवन तथा यह प्रमथासुर-संग्राम भी दीख पड़ा। इस प्रकार वे सौ वर्षोंतक शिवजीकी कुक्षिमें चारों ओर भ्रमण करते रहे; परंतु उन्हें उसी प्रकार कोई छिद्र नहीं दीख पड़ा, जैसे दुष्टकी दृष्टि सदाचारीके छिद्रको नहीं देख पाती। तब भृगुनन्दनने शैवयोगका आश्रय ले एक मन्त्रका जप किया। उस मन्त्रके प्रभावसे वे शम्भुके जठरपञ्जरसे शुक्ररूपमें लिङ्गमार्गसे बाहर निकले। तब उन्होंने शिवजीको प्रणाम किया। गौरीने उन्हें पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया और विघ्नरहित बना दिया। तदनन्तर करुणासागर महेश्वर भृगुनन्दन शुक्राचार्यको वीर्यके रास्ते निकला हुआ देखकर मुसकराते हुए बोले।

महेश्वरने कहा—भृगुनन्दन! चूँकि तुम मेरे लिङ्गमार्गसे शुक्रकी तरह निकले हो, इसलिये अब तुम शुक्र कहलाओगे। जाओ, अब तुम मेरे पुत्र हो गये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर! देवेश्वर शंकरके यों कहनेपर सूर्यके सदृश कान्तिमान् शुक्रने पुनः शिवजीको प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

शुक्रने कहा—भगवन्! आपके पैर, सिर, नेत्र, हाथ और भुजाएँ अनन्त हैं। आपकी मूर्तियोंकी भी गणना नहीं हो सकती। ऐसी दशामें मैं आप स्तुत्यकी सिर झुकाकर किस प्रकार स्तुति करूँ। आपकी आठ मूर्तियाँ बतायी जाती हैं और आप अनन्तमूर्ति भी हैं। आप सम्पूर्ण सुरों और असुरोंकी कामना पूर्ण करनेवाले हैं तथा अनिष्ट-दृष्टिसे देखनेपर आप संहार भी कर डालते हैं। ऐसे स्तवनके योग्य आपकी मैं किस प्रकार स्तुति करूँ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार शुक्रने शिवजीकी स्तुति करके उन्हें नमस्कार किया और उनकी आज्ञासे वे पुनः

दानवोंकी सेनामें प्रविष्ट हुए, ठीक उसी तरह जैसे चन्द्रमा मेघोंकी घटामें प्रवेश करते हैं। व्यासजी! इस प्रकार रणभूमिमें शंकरने जिस तरह शुक्रको निगल लिया था, वह वृत्तान्त तो तुम्हें सुना दिया। अब शम्भुके उदरमें शुक्रने जिस मन्त्रका जप किया था, उसका वर्णन सुनो।

महर्षे! वह मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ नमस्ते देवेशाय सुरासुरनमस्कृताय भूतभव्यमहादेवाय हरितपिङ्गललोचनाय बलाय बुद्धिरूपिणे वैयाघ्रवसनच्छदायारणेयाय त्रैलोक्यप्रभवे ईश्वराय हराय हरिनेत्राय युगान्तकरणायानलाय गणेशाय लोकपालाय महाभुजाय महाहस्ताय शूलिने महादंष्ट्रिणे कालाय महेश्वराय अव्ययाय कालरूपिणे नीलग्रीवाय महोदराय गणाध्यक्षाय सर्वात्मने सर्वभावनाय सर्वगाय मृत्युहन्त्रे पारियात्रसुव्रताय ब्रह्मचारिणे वेदान्तगाय तपोऽन्तगाय पशुपतये व्यङ्गाय शूलपाणये वृषकेतवे हरये जटिने शिखण्डिने लकुटिने महायशसे भूतेश्वराय गुहावासिने वीणापणवतालवते अमराय दर्शनीयाय बालसूर्यनिभाय श्मशानवासिने भगवते उमापतये अरिन्दमाय भगस्याक्षिपातिने पूष्णो दशननाशनाय क्रूरकर्तकाय पाशहस्ताय प्रलयकालाय उल्कामुखायाग्निकेतवे मुनये दीप्ताय विशाम्पतये उन्नयते जनकाय चतुर्थकाय लोकसत्तमाय वामदेवाय वाग्दाक्षिण्याय वामतो भिक्षवे भिक्षुरूपिणे जटिने स्वयं जटिलाय शक्रहस्तप्रतिस्तम्भकाय वसूनां स्तम्भकाय क्रतवे क्रतुकराय कालाय मेधाविने मधुकराय चलाय वानस्पत्याय वाजसनेतिसमाश्रमपूजिताय जगद्धात्रे जगत्कर्त्रे पुरुषाय शाश्वताय ध्रुवाय धर्माध्यक्षाय त्रिवर्त्मने भूतभावनाय त्रिनेत्राय बहुरूपाय सूर्यायुतसमप्रभाय देवाय सर्वतूर्यनिनादिने सर्वबाधाविमोचनाय बन्धनाय सर्वधारिणे धर्मोत्तमाय पुष्पदन्तायाविभागाय मुखाय सर्वहराय हिरण्यश्रवसे द्वारिणे भीमाय भीमपराक्रमाय ॐ नमो नमः।*

इसी श्रेष्ठ मन्त्रका जप करके शुक्र

---

* ॐ जो देवताओंके स्वामी, सुर-असुरद्वारा वन्दित, भूत और भविष्यके महान् देवता, हरे और पीले नेत्रोंसे युक्त, महाबली, बुद्धिस्वरूप, बाघंबर धारण करनेवाले, अग्निस्वरूप, त्रिलोकीके उत्पत्तिस्थान, ईश्वर, हर, हरिनेत्र, प्रलयकारी, अग्निस्वरूप, गणेश, लोकपाल, महाभुज, महाहस्त, त्रिशूल धारण करनेवाले, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले, कालस्वरूप, महेश्वर, अविनाशी, कालरूपी, नीलकण्ठ, महोदर, गणाध्यक्ष, सर्वात्मा, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापी, मृत्युको हटानेवाले, पारियात्र पर्वतपर उत्तम व्रत धारण करनेवाले, ब्रह्मचारी, वेदान्तप्रतिपाद्य, तपकी अन्तिम सीमातक पहुँचनेवाले, पशुपति, विशिष्ट अङ्गोंवाले, शूलपाणि, वृषध्वज, पापापहारी, जटाधारी, शिखण्ड धारण करनेवाले, दण्डधारी, महायशस्वी, भूतेश्वर, गुहामें निवास करनेवाले, वीणा और पणवपर ताल लगानेवाले, अमर, दर्शनीय, बालसूर्य-सरीखे रूपवाले, श्मशानवासी, ऐश्वर्यशाली, उमापति, शत्रुदमन, भगके नेत्रोंको नष्ट कर देनेवाले, पूषाके दाँतोंके विनाशक, क्रूरतापूर्वक संहार करनेवाले, पाशधारी, प्रलयकालरूप, उल्कामुख, अग्निकेतु, मननशील, प्रकाशमान, प्रजापति, ऊपर उठानेवाले, जीवोंको उत्पन्न करनेवाले, तुरीयतत्त्वरूप, लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ, वामदेव, वाणीकी चतुरतारूप, वाममार्गमें भिक्षुरूप, भिक्षुक, जटाधारी, जटिल—दुराराध्य, इन्द्रके हाथको स्तम्भित करनेवाले, वसुओंको विजड़ित कर देनेवाले,

शम्भुके जठर-पञ्जरसे लिङ्गके रास्ते उत्कट वीर्यकी तरह निकले थे। उस समय गौरीने उन्हें पुत्ररूपसे अपनाया और जगदीश्वर शिवने अजर-अमर बना दिया। तब वे दूसरे शंकरके सदृश शोभा पाने लगे। तीन हजार वर्ष व्यतीत होनेके पश्चात् वे ही वेदनिधि मुनिवर शुक्र पुनः इस भूतलपर महेश्वरसे उत्पन्न हुए। उस समय उन्होंने धैर्यशाली एवं तपस्वी दानवराज अन्धकको देखा। उसका शरीर सूख गया था और वह त्रिशूलपर लटका हुआ परमेश्वर शिवका ध्यान कर रहा था। (वह शिवजीके १०८ नामोंका इस प्रकार स्मरण कर रहा था—)

महादेव—देवताओंमें महान्, विरूपाक्ष—विकराल नेत्रोंवाले, चन्द्रार्धकृतशेखर—मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण करनेवाले, अमृत—अमृतस्वरूप, शाश्वत—सनातन, स्थाणु—समाधिस्थ होनेपर ठूँठके समान स्थिर, नीलकण्ठ—गलेमें नील चिह्न धारण करनेवाले, पिनाकी—पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, वृषभाक्ष—वृषभके नेत्र-सरीखे विशाल नेत्रोंवाले, महाज्ञेय—'महान्' रूपसे जाननेयोग्य, पुरुष—अन्तर्यामी, सर्वकामद—सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, कामारि—कामदेवके शत्रु, कामदहन—कामदेवको दग्ध कर देनेवाले, कामरूप—इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, कपर्दी—विशाल जटाओंवाले, विरूप—विकराल रूपधारी, गिरिश—गिरिवर कैलासपर शयन करनेवाले, भीम—भयंकर रूपवाले, स्रुक्की—बड़े-बड़े जबड़ोंवाले, रक्तवासा—लाल वस्त्रधारी, योगी—योगके ज्ञाता, कालदहन—कालको भस्म कर देनेवाले, त्रिपुरघ्न—त्रिपुरोंके संहारकर्ता, कपाली—कपाल धारण करनेवाले, गूढव्रत—जिनका व्रत प्रकट नहीं होता, गुप्तमन्त्र—गोपनीय मन्त्रोंवाले, गम्भीर—गम्भीर स्वभाववाले, भावगोचर—भक्तोंकी भावनाके अनुसार प्रकट होनेवाले, अणिमादिगुणाधार—अणिमा आदि सिद्धियोंके अधिष्ठान, त्रिलोकैश्वर्यदायक—त्रिलोकीका ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, वीर—बलशाली, वीरहन्ता—शत्रुवीरोंको मारनेवाले, घोर—दुष्टोंके लिये भयंकर, विरूप—विकट रूप धारण करनेवाले, मांसल—मोटे-ताजे शरीरवाले, पटु—निपुण, महामांसाद—श्रेष्ठ फलका गूदा खानेवाले, उन्मत्त—मतवाले, भैरव—कालभैरवस्वरूप, महेश्वर—देवेश्वरोंमें भी श्रेष्ठ, त्रैलोक्यद्रावण—त्रिलोकीका विनाश करनेवाले, लुब्ध—स्वजनोंके लोभी,

---

यज्ञस्वरूप, यज्ञकर्ता, काल, मेधावी, मधुकर, चलने-फिरनेवाले, वनस्पतिका आश्रय लेनेवाले, वाजसन नामसे सम्पूर्ण आश्रमोंद्वारा पूजित, जगद्धाता, जगत्कर्ता, सर्वान्तर्यामी, सनातन, ध्रुव, धर्माध्यक्ष, भूः-भुवः-स्वः—इन तीनों लोकोंमें विचरनेवाले, भूतभावन, त्रिनेत्र, बहुरूप, दस हजार सूर्योंके समान प्रभाशाली, महादेव, सब तरहके बाजे बजानेवाले, सम्पूर्ण बाधाओंसे विमुक्त करनेवाले, बन्धनस्वरूप, सबको धारण करनेवाले, उत्तम धर्मरूप, पुष्पदन्त, विभागरहित, मुख्यरूप, सबका हरण करनेवाले, सुवर्णके समान दीप्त कीर्तिवाले, मुक्तिके द्वारस्वरूप, भीम तथा भीमपराक्रमी हैं, उन्हें नमस्कार है, नमस्कार है।

रुरुभक—महाव्याघ्रस्वरूप, यज्ञसूदन—दक्ष-यज्ञके विनाशक, कृत्तिकासुतयुक्त—कृत्तिकाओंके पुत्र (स्वामिकार्तिक) से युक्त, उन्मत्त—उन्मत्तका-सा वेष धारण करनेवाले, कृत्तिवासा—गजासुरके चमड़ेको ही वस्त्ररूपमें धारण करनेवाले, गजकृत्तिपरीधान—हाथीका चर्म लपेटनेवाले, क्षुब्ध—भक्तोंका कष्ट देखकर क्षुब्ध हो जानेवाले, भुजगभूषण—सर्पोंको भूषणरूपमें धारण करनेवाले, दत्तालम्ब—भक्तोंके अवलम्बदाता, वेताल—वेतालस्वरूप, घोर—घोर, शाकिनीपूजित—शाकिनियोंद्वारा समाराधित, अघोर—अघोर-पथके प्रवर्तक, घोरदैत्यघ्न—भयंकर दैत्योंके संहारक, घोरघोष—भीषण शब्द करनेवाले, वनस्पति—वनस्पति-स्वरूप, भस्माङ्ग—शरीरमें भस्म रमानेवाले, जटिल—जटाधारी, शुद्ध—परम पावन, भेरुण्डशतसेवित—सैकड़ों भेरुण्डनामक पक्षियोंद्वारा सेवित, भूतेश्वर—भूतोंके अधिपति, भूतनाथ—भूतगणोंके स्वामी, पञ्चभूताश्रित—पञ्चभूतोंको आश्रय देनेवाले, खग—गगन-विहारी, क्रोधित—क्रोधयुक्त, निष्ठुर—दुष्टोंपर कठोर व्यवहार करनेवाले, चण्ड—प्रचण्ड पराक्रमी, चण्डीश—चण्डीके प्राणनाथ, चण्डिकाप्रिय—चण्डिकाके प्रियतम, चण्डतुण्ड—अत्यन्त कुपित मुखवाले, गरुत्मान्—गरुडस्वरूप, निस्त्रिंश—खड्गस्वरूप, शवभोजन—शवका भोग लगानेवाले, लेलिहान—क्रुद्ध होनेपर जीभ लपलपानेवाले, महारौद्र—अत्यन्त भयंकर, मृत्यु—मृत्युस्वरूप, मृत्योरगोचर—मृत्युकी भी पहुँचसे परे, मृत्योर्मृत्यु—मृत्युके भी काल, महासेन—विशाल सेनावाले कार्तिकेय-स्वरूप, श्मशानारण्यवासी—श्मशान एवं अरण्यमें विचरनेवाले, राग—प्रेमस्वरूप, विराग—आसक्तिरहित, रागान्ध—प्रेममें मग्न रहनेवाले, वीतराग—वैरागी, शतार्चि—तेजकी असंख्य चिनगारियोंसे युक्त, सत्त्व—सत्त्वगुणरूप, रजः—रजोगुणरूप, तमः—तमोगुणरूप, धर्म—धर्मस्वरूप, अधर्म—अधर्मरूप, वासवानुज—इन्द्रके छोटे भाई उपेन्द्रस्वरूप, सत्य—सत्यरूप, असत्य—सत्यसे भी परे, सद्रूप—उत्तम रूपवाले, असद्रूप—बीभत्स रूपधारी, अहेतुक—हेतुरहित, अर्धनारीश्वर—आधा पुरुष और आधा स्त्रीका रूप धारण करनेवाले, भानु—सूर्यस्वरूप, भानुकोटिशतप्रभ—कोटिशत सूर्योंके समान प्रभाशाली, यज्ञ—यज्ञस्वरूप, यज्ञपति—यज्ञेश्वर, रुद्र—संहारकर्ता, ईशान—ईश्वर, वरद—वरदाता, शिव—कल्याणस्वरूप। परमात्मा शिवकी इन १०८ मूर्तियोंका ध्यान करनेसे वह दानव उस महान् भयसे मुक्त हो गया *। उस

---

* महादेवं विरूपाक्षं चन्द्रार्धकृतशेखरम्। अमृतं शाश्वतं स्थाणुं नीलकण्ठं पिनाकिनम्॥
वृषभाक्षं महाज्ञेयं पुरुषं सर्वकामदम्। कामारिं कामदहनं कामरूपं कपर्दिनम्॥
विरूपं गिरिशं भीमं स्रुक्किणं रक्तवाससम्। योगिनं कालदहनं त्रिपुरघ्नं कपालिनम्॥
गूढव्रतं गुप्तमन्त्रं गम्भीरं भावगोचरम्। अणिमादिगुणाधारं त्रिलोकैश्वर्यदायकम्॥
वीरं वीरहणं घोरं विरूपं मांसलं पटुम्। महामांसादमुन्मत्तं गौरवं वै महेश्वरम्॥

समय प्रसन्न हुए जटाधारी शंकरने उसे मुक्त करके उस त्रिशूलके अग्रभागसे उतार लिया और दिव्य अमृतकी वर्षासे अभिषिक्त कर दिया। तत्पश्चात् महात्मा महेश्वर उसने जो कुछ किया था, उस सबका सान्त्वनापूर्वक वर्णन करते हुए उस महादैत्य अन्धकसे बोले।

ईश्वरने कहा—हे दैत्येन्द्र! मैं तेरे इन्द्रिय-निग्रह, नियम, शौर्य और धैर्यसे प्रसन्न हो गया हूँ; अतः सुव्रत! अब तू कोई वर माँग ले। दैत्योंके राजाधिराज! तूने निरन्तर मेरी आराधना की है, इससे तेरा सारा कल्मष धुल गया और अब तू वर पानेके योग्य हो गया है। इसीलिये मैं तुझे वर देनेके लिये आया हूँ; क्योंकि तीन हजार वर्षोंतक बिना खाये-पीये प्राण धारण किये रहनेसे तूने जो पुण्य कमाया है, उसके फलस्वरूप तुझे सुखकी प्राप्ति होनी चाहिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! यह सुनकर अन्धकने भूमिपर अपने घुटने टेक दिये और फिर वह हाथ जोड़कर काँपता हुआ भगवान् उमापतिसे बोला।

अन्धकने कहा—भगवन्! आपकी महिमा जाने बिना मैंने पहले रणाङ्गणमें हर्षगद्गद वाणीसे आपको जो दीन, हीन तथा नीच-से-नीच कहा है और मूर्खतावश लोकमें जो-जो निन्दित कर्म किया है, प्रभो! उस सबको आप अपने मनमें स्थान न दें अर्थात् उसे भूल जायँ। महादेव! मैं अत्यन्त ओछा और दुःखी हूँ। मैंने कामदोषवश पार्वतीके विषयमें भी जो दूषित भावना कर ली थी, उसे आप क्षमा कर दें। आपको तो अपने कृपण, दुःखी एवं दीन भक्तपर सदा ही विशेष दया करनी चाहिये। मैं उसी तरहका एक दीन भक्त हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ। देखिये, मैंने आपके सामने अञ्जलि बाँध रखी है। अब आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये। ये जगज्जननी पार्वतीदेवी भी मुझपर प्रसन्न हो जायँ और सारे क्रोधको त्यागकर मुझे कृपादृष्टिसे देखें। चन्द्रशेखर! कहाँ तो इनका भयंकर क्रोध और कहाँ मैं तुच्छ दैत्य? चन्द्रमौलि! मैं किसी प्रकार उसको सहन नहीं कर सकता। शम्भो! कहाँ तो परम उदार आप और कहाँ बुढ़ापा, मृत्यु तथा काम-क्रोध आदि दोषोंके वशीभूत

त्रैलोक्यप्रभवं शुभ्रं शुभ्रकं मखसूदनम्। कृत्तिकानां सुतैर्युक्तमुन्मत्तं कृत्तिवाससम्॥
गजकृत्तिपरीधानं शुभ्रं भुजगभूषणम्। दन्तालम्बं च वेतालं घोरं शाकिनिपूजितम्॥
अघोरं घोरदैत्यघ्नं घोरघोषं वनस्पतिम्। भस्माङ्गं जटिलं शुद्धं भेरुण्डशतसेवितम्॥
भूतेश्वरं भूतनाथं पञ्चभूताश्रितं खगम्। क्रोधितं निष्ठुरं चण्डं चण्डीशं चण्डिकाप्रियम्॥
चण्डतुण्डं गरुत्मन्तं निस्त्रिंशं शवभोजनम्। लेलिहानं महारौद्रं मृत्युं मृत्योरगोचरम्॥
मृत्योर्मृत्युं महासेनं श्मशानारण्यवासिनम्। रागं विरागं रागान्धं वीतरागं शतार्चिषम्॥
सत्त्वं रजस्तमोधर्ममधर्मं वासवानुजम्। सत्यं त्वसत्यं सद्रूपमसद्रूपमहेतुकम्॥
अर्धनारीश्वरं भानुं भानुकोटिशतप्रभम्। यज्ञं यज्ञपतिं रुद्रमीशानं वरदं शिवम्॥
अष्टोत्तरशतं ह्येतन्मूर्तीनां परमात्मनः। शिवस्य दानवो ध्यायन् मुक्तस्तस्मान्महाभयात्॥

(शि० पु० रु० सं० युद्धखण्ड ४९। ५—१८)

मैं ? (अर्थात् मेरी आपके साथ क्या तुलना है ?) महेश्वर ! आपके ये युद्धकला-निपुण महाबली वीर पुत्र मेरी कृपणतापर विचार करके अब क्रोधके वशीभूत मत हों ! तुषार, हार, चन्द्रकिरण, शङ्ख, कुन्दपुष्प और चन्द्रमाके-से वर्णवाले शिव ! मैं इन पार्वतीको गुरुताके गौरववश नित्य मातृ-दृष्टिसे देखूँ ! मैं नित्य आप दोनोंका भक्त बना रहूँ। देवताओंके साथ होनेवाला मेरा वैर दूर हो जाय तथा मैं शान्तचित्त हो योग-चिन्तन करता हुआ गणोंके साथ निवास करूँ। महेशान ! आपकी कृपासे मैं उत्पन्न हुए इस विरोधी दानवभावका पुनः कभी स्मरण न करूँ, यही उत्तम वर मुझे प्रदान कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिसत्तम ! इतनी बात कहकर वह दैत्यराज माता पार्वतीकी ओर देखकर त्रिनयन शंकरका ध्यान करता हुआ मौन हो गया। तब रुद्रने उसकी ओर कृपादृष्टिसे देखा। उनकी दृष्टि पड़ते ही उसे अपने पूर्ववृत्तान्त तथा अद्भुत जन्मका स्मरण हो आया। उस घटनाका स्मरण होते ही उसका मनोरथ पूर्ण हो गया। फिर तो माता-पिता (उमा-महेश्वर) को प्रणाम करके वह कृतकृत्य हो गया। उस समय पार्वती तथा बुद्धिमान् शंकरने उसका मस्तक सूँघकर प्यार किया। इस प्रकार अन्धकने प्रसन्न हुए चन्द्रशेखरसे अपना सारा मनोरथ प्राप्त कर लिया। मुने ! महादेवजीकी कृपासे अन्धकको जिस प्रकार परम सुखद गणाध्यक्ष-पद प्राप्त हुआ था, वह सारा-का-सारा पुरातन वृत्तान्त मैंने सुना दिया और मृत्युञ्जय-मन्त्रका भी वर्णन कर दिया। यह मन्त्र मृत्युका विनाशक और सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। इसे प्रयत्नपूर्वक जपना चाहिये।

(अध्याय ४७—४९)

☆

शुक्राचार्यकी घोर तपस्या और इनका शिवजीको चित्तरत्न अर्पण करना तथा अष्टमूर्त्यष्टक-स्तोत्रद्वारा उनका स्तवन करना, शिवजीका प्रसन्न होकर उन्हें मृतसञ्जीवनी विद्या तथा अन्यान्य वर प्रदान करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! मुनिवर शुक्राचार्यको शिवसे मृत्युञ्जय नामक मृत्युका प्रशमन करनेवाली परा विद्या किस प्रकार प्राप्त हुई थी, अब उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। पूर्वकालकी बात है, इन भृगुनन्दनने वाराणसीपुरीमें जाकर प्रभावशाली विश्वनाथका ध्यान करते हुए बहुत कालतक घोर तप किया था। वेदव्यासजी ! उस समय उन्होंने वहीं एक शिवलिङ्गकी स्थापना की और उसके सामने ही एक परम रमणीय कूप तैयार कराया। फिर प्रयत्नपूर्वक उन देवेश्वरको एक लाख बार द्रोणभर पञ्चामृतसे तथा बहुत-से सुगन्धित द्रव्योंसे स्नान कराया। फिर एक हजार बार परम प्रीतिपूर्वक चन्दन, यक्षकर्दम * और सुगन्धित उबटनका उस लिङ्गपर अनुलेप किया। तत्पश्चात् सावधानीके साथ परम प्रेमपूर्वक राजचम्पक

*एक प्रकारका अङ्ग-लेप, जो कपूर, अगुरु, कस्तूरी और कङ्कोलको मिलाकर बनाया जाता है।

(अमलतास), धतूर, कनेर, कमल, मालती, कर्णिकार, कदम्ब, मौलसिरी, उत्पल, मल्लिका (चमेली), शतपत्री, सिन्धुवार, ढाक, बन्धूकपुष्प (गुलदुपहरी), पुंनाग, नागकेसर, केसर, नवमल्लिका (बेलमोगरा), चिबिल्लिक (रक्तदला), कुन्द (माघपुष्प), मुचुकुन्द (मोतिया), मन्दार, बिल्वपत्र, गूमा, मरुवृक (मरुआ), वृक (धूप), गैंठिवन, दौना, अत्यन्त सुन्दर आमके पल्लव, तुलसी, देवजवासा, बृहत्पत्री, कुशाङ्कुर, नन्द्यावर्त (नाँदरूख), अगस्त्य, साल, देवदारु, कचनार, कुरबक (गुलखेरा), दुर्वाङ्कुर, कुरंटक (कटसैला)—इनमेंसे प्रत्येकके पुष्पों और अन्य पल्लवोंसे तथा नाना प्रकारके रमणीय पत्रों और सुन्दर कमलोंसे शंकरजीकी विधिवत् अर्चना की। उन्हें बहुत-से उपहार समर्पित किये। तथा शिवलिङ्गके आगे नाचते हुए शिवसहस्रनाम एवं अन्यान्य स्तोत्रोंका गान करके शंकरजीका स्तवन किया। इस प्रकार शुक्राचार्य पाँच हजार वर्षोंतक नाना प्रकारके विधि-विधानसे महेश्वरका पूजन करते रहे; परंतु जब उन्हें थोड़ा-सा भी वर देनेके लिये उद्यत होते नहीं देखा, तब उन्होंने एक-दूसरे अत्यन्त दुस्सह एवं घोर नियमका आश्रय लिया। उस समय शुक्रने इन्द्रियोंसहित मनके अत्यन्त चञ्चलतारूपी महान् दोषको बारंबार भावनारूपी जलसे प्रक्षालित किया। इस प्रकार चित्तरत्नको निर्मल करके उसे पिनाकधारी शिवके अर्पण कर दिया और स्वयं धूमकणका पान करते हुए तप करने लगे। इस प्रकार उनके एक सहस्र वर्ष और बीत गये। तब भृगुनन्दन शुक्रको यों दृढ़चित्तसे घोर तप करते देखकर महेश्वर उनपर प्रसन्न हो गये। फिर तो दक्षकन्या पार्वतीके स्वामी साक्षात् विरूपाक्ष शंकर, जिनके शरीरकी कान्ति सहस्रों सूर्योंसे भी बढ़कर थी, उस लिङ्गसे निकलकर शुक्रसे बोले।

महेश्वरने कहा—महाभाग भृगुनन्दन! तुम तो तपस्याकी निधि हो। महामुने! मैं तुम्हारे इस अविच्छिन्न तपसे विशेष प्रसन्न हूँ। भार्गव! तुम अपना सारा मनोवाञ्छित वर माँग लो। मैं प्रीतिपूर्वक तुम्हारा सारा मनोरथ पूर्ण कर दूँगा। अब मेरे पास तुम्हारे लिये कोई वस्तु अदेय नहीं रह गयी है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! शम्भुके इस परम सुखदायक एवं उत्कृष्ट वचनको सुनकर शुक्र प्रसन्न हो आनन्द-समुद्रमें निमग्न हो गये। उन कमलनयन द्विजवर शुक्रका शरीर परमानन्द-जनित रोमाञ्चके कारण पुलकायमान हो गया। तब उन्होंने हर्षपूर्वक शम्भुके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय उनके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे। फिर वे मस्तकपर अञ्जलि रखकर जय-जयकार करते हुए अष्टमूर्तिधारी* वरदायक शिवकी स्तुति करने लगे।

भार्गवने कहा—सूर्यस्वरूप भगवन्! आप त्रिलोकीका हित करनेके लिये आकाशमें प्रकाशित होते हैं और अपनी इन किरणोंसे समस्त अन्धकारको अभिभूत

* पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, चन्द्रमा और सूर्य—इन आठोंमें अधिष्ठित शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान—ये अष्टमूर्तियोंके नाम हैं।

करके रातमें विचरनेवाले असुरोंका मनोरथ नष्ट कर देते हैं। जगदीश्वर! आपको नमस्कार है। घोर अन्धकारके लिये चन्द्रस्वरूप शंकर! आप अमृतके प्रवाहसे परिपूर्ण तथा जगत्‌के सभी प्राणियोंके नेत्र हैं। आप अपनी अमर्याद तेजोमय किरणोंसे आकाशमें और भूतलपर अपार प्रकाश फैलाते हैं, जिससे सारा अंधकार दूर हो जाता है; आपको प्रणाम है। सर्वव्यापिन्! आप पावन पथ—योगमार्गका आश्रय लेनेवालोंकी सदा गति तथा उपास्यदेव हैं। भुवन-जीवन! आपके बिना भला, इस लोकमें कौन जीवित रह सकता है। सर्पकुलके संतोषदाता! आप निश्चल वायुरूपसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी वृद्धि करनेवाले हैं, आपको अभिवादन है। विश्वके एकमात्र पावनकर्ता! आप शरणागतरक्षक और अग्निकी एकमात्र शक्ति हैं। पावक आपका ही स्वरूप है। आपके बिना मृतकोंका वास्तविक दिव्य कार्य दाह आदि नहीं हो सकता। जगत्‌के अन्तरात्मा! आप प्राण-शक्तिके दाता, जगत्स्वरूप और पद-पदपर शान्ति प्रदान करनेवाले हैं; आपके चरणोंमें मैं सिर झुकाता हूँ। जलस्वरूप परमेश्वर! आप निश्चय ही जगत्‌के पवित्रकर्ता और चित्र-विचित्र सुन्दर चरित्र करनेवाले हैं। विश्वनाथ! जलमें अवगाहन करनेसे आप विश्वको निर्मल एवं पवित्र बना देते हैं, इसलिये आपको नमस्कार है। आकाशरूप ईश्वर! आपसे अवकाश प्राप्त करनेके कारण यह विश्व बाहर और भीतर विकसित होकर सदा स्वभाववश श्वास लेता है अर्थात् इसकी परम्परा चलती रहती है तथा आपके द्वारा यह संकुचित भी होता है अर्थात् नष्ट हो जाता है; इसलिये दयालु भगवन्! मैं आपके आगे नतमस्तक होता हूँ। विश्वम्भरात्मक! आप ही इस विश्वका भरण-पोषण करते हैं। सर्वव्यापिन्! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन अज्ञानान्धकारको दूर करनेमें समर्थ हो सकता है। अतः विश्वनाथ! आप मेरे अज्ञानरूपी तमका विनाश कर दीजिये। नागभूषण! आप स्तवनीय पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। इसलिये आप परात्पर प्रभुको मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ। आत्मस्वरूप शंकर! आप समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मामें निवास करनेवाले, प्रत्येक रूपमें व्याप्त हैं और मैं आप परमात्माका जन हूँ। अष्टमूर्ते! आपकी इन रूप-परम्पराओंसे यह चराचर विश्व विस्तारको प्राप्त हुआ है, अतः मैं श्रद्धासे आपको नमस्कार करता हूँ। मुक्तपुरुषोंके बन्धो! आप विश्वके समस्त प्राणियोंके स्वरूप, प्रणतजनोंके सम्पूर्ण योगक्षेमका निर्वाह करनेवाले और परमार्थ-स्वरूप हैं। आप अपनी इन अष्टमूर्तियोंसे युक्त होकर इस फैले हुए विश्वको भलीभाँति विस्तृत करते हैं, अतः आपको मेरा अभिवादन है।*

---

* त्वं भाभिराभिरभिभूय तमस्समस्तमस्तं नयस्यभिमतानि निशाचराणाम्।
देदीप्यसे दिवमणे गगने हिताय लोकत्रयस्य जगदीश्वर तन्नमस्ते॥
लोकेऽतिवेलमतिवेलमहामहोभिर्निर्भासि कौ च गगनेऽखिललोकनेत्रः।
विद्राविताखिलतमास्सुतमो हिमांशो पीयूषपूरपरिपूरित तन्नमस्ते॥

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर! भृगुनन्दन शुक्रने इस प्रकार अष्टमूर्त्यष्टक-स्तोत्रद्वारा शिवजीका स्तवन करके भूमिपर मस्तक रखकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया। जब अमित तेजस्वी भार्गवने महादेवकी इस प्रकार स्तुति की, तब शिवजीने चरणोंमें पड़े हुए उन द्विजवरको अपनी दोनों भुजाओंसे पकड़कर उठा लिया और परम प्रेमपूर्वक मेघगर्जनकी-सी गम्भीर एवं मधुर वाणीमें कहा। उस समय शंकरजीके दाँतोंकी चमकसे सारी दिशाएँ प्रकाशित हो उठी थीं।

महादेवजी बोले—विप्रवर कवे! तुम मेरे पावन भक्त हो। तात! तुम्हारे इस उग्र तपसे, उत्तम आचरणसे, लिङ्गस्थापनजन्य पुण्यसे, लिङ्गकी आराधना करनेसे, चित्तका उपहार प्रदान करनेसे, पवित्र अटल भावसे, अविमुक्त महाक्षेत्र काशीमें पावन आचरण करनेसे मैं तुम्हें पुत्ररूपसे देखता हूँ; अतः तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है। तुम अपने इसी शरीरसे मेरी उदरदरीमें प्रवेश करोगे और मेरे श्रेष्ठ इन्द्रियमार्गसे निकलकर पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण करोगे। महाशुचे! मेरे पास जो मृतसञ्जीवनी नामकी निर्मल विद्या है, जिसका मैंने ही अपने महान् तपोबलसे निर्माण किया है, उस महामन्त्ररूपा विद्याको आज मैं तुम्हें प्रदान करूँगा; क्योंकि तुम पवित्र तपकी निधि हो, अतः तुममें उस विद्याको धारण करनेकी योग्यता वर्तमान है। तुम नियमपूर्वक जिस-जिसके उद्देश्यसे विश्वेश्वरकी इस श्रेष्ठ विद्याका प्रयोग करोगे, वह निश्चय ही जीवित हो जायगा—यह सर्वथा सत्य है। तुम आकाशमें अत्यन्त दीप्तिमान् तारारूपसे स्थित होओगे। तुम्हारा तेज सूर्य और अग्निके तेजका भी अतिक्रमण कर जायगा। तुम ग्रहोंमें प्रधान माने जाओगे। जो स्त्री अथवा पुरुष तुम्हारे सम्मुख रहनेपर यात्रा करेंगे, उनका सारा कार्य तुम्हारी दृष्टि

त्वं पावने पथि सदा गतिरप्युपास्यः कस्त्वां विना भुवनजीवन जीवतीह।
　　स्तब्धप्रभञ्जनविवर्धितसर्वजन्तो संतोषिताहिकुल सर्वग वै नमस्ते॥
विश्वैकपावक नतावक पावकैक शक्ते ऋते मृतवतामृतदिव्यकार्यम्।
　　प्राणित्यदो जगदहो जगदन्तरात्मंस्त्वं पावकः प्रतिपदं शमदो नमस्ते॥
पानीयरूप परमेश जगत्पवित्र चित्रातिचित्रसुचरित्रकरोऽसि नूनम्।
　　विश्वं पवित्रममलं किल विश्वनाथ पानीयगाहनत एतदतो नतोऽस्मि॥
आकाशरूपबहिरन्तरुतावकाशदानाद् विकस्वरमिहेश्वर विश्वमेतत्।
　　त्वत्तस्सदा सदय संश्वसिति स्वभावात् संकोचमेति भवतोऽस्मि नतस्ततस्त्वाम्॥
विश्वम्भरात्मक बिभर्षि विभोऽत्र विश्वं को विश्वनाथ भवतोऽन्यतमस्तमोऽरिः।
　　स त्वं विनाशय तमो मम चाहिभूष स्तव्यात्परः परपरं प्रणतस्ततस्त्वाम्॥
　　आत्मस्वरूप तव रूपपरम्पराभिराभिस्ततं हर चराचररूपमेतत्।
　　सर्वान्तरात्मनिलय प्रतिरूपरूप नित्यं नतोऽस्मि परमात्मजनोऽष्टमूर्ते॥
　　इत्यष्टमूर्तिभिरिमाभिरबन्धबन्धो युक्तः करोषि खलु विश्वजनीनमूर्ते।
　　एतत्ततं सुविततं प्रणतप्रणीत सर्वार्थसार्थपरमार्थ ततो नतोऽस्मि॥

(शि॰ पु॰ रु॰ सं॰ युद्धखण्ड ५०। २४—३२)

पकनेसे नष्ट हो जायगा। सुव्रत! तुम्हारे उदय होनेपर जगत्में मनुष्योंके विवाह आदि समस्त धर्मकार्य सफल होंगे। सभी नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) तिथियाँ तुम्हारे संयोगसे शुभ हो जायँगी और तुम्हारे भक्त वीर्यसम्पन्न तथा बहुत-सी संतानवाले होंगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित किया हुआ यह शिवलिङ्ग 'शुक्रेश' के नामसे विख्यात होगा। जो मनुष्य इस लिङ्गकी अर्चना करेंगे, उन्हें सिद्धि प्राप्त हो जायगी। जो लोग वर्षपर्यन्त नक्तव्रतपरायण होकर शुक्रवारके दिन शुक्रकूपके जलसे सारी क्रियाएँ सम्पन्न करके शुक्रेशकी अर्चना करेंगे, उन्हें जिस फलकी प्राप्ति होगी, वह मुझसे श्रवण करो। उन मनुष्योंमें वीर्यकी अधिकता होगी, उनका वीर्य कभी निष्फल नहीं होगा; वे पुत्रवान् तथा पुरुषत्वके सौभाग्यसे सम्पन्न होंगे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। वे सभी मनुष्य बहुत-सी विद्याओंके ज्ञाता और सुखके भागी होंगे। यों वरदान देकर महादेव उसी लिङ्गमें समा गये। तब भृगुनन्दन शुक्र भी प्रसन्नमनसे अपने धामको चले गये। व्यासजी! यों शुक्राचार्यको जिस प्रकार अपने तपोबलसे मृत्युञ्जय नामक विद्याकी प्राप्ति हुई थी, वह वृत्तान्त मैंने तुमसे वर्णन कर दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ५०)

☆

बाणासुरकी तपस्या और उसे शिवद्वारा वर-प्राप्ति, शिवका गणों और पुत्रोंसहित उसके नगरमें निवास करना, बाणपुत्री ऊषाका रातके समय स्वप्नमें अनिरुद्धके साथ मिलन, चित्रलेखाद्वारा अनिरुद्धका द्वारकासे अपहरण, बाणका अनिरुद्धको नागपाशमें बाँधना, दुर्गाके स्तवनसे अनिरुद्धका बन्धन-मुक्त होना, नारदद्वारा समाचार पाकर श्रीकृष्णकी शोणितपुरपर चढ़ाई, शिवके साथ उनका घोर युद्ध, शिवकी आज्ञासे श्रीकृष्णका उन्हें जृम्भणास्त्रसे मोहित करके बाणकी सेनाका संहार करना

व्यासजी बोले—सर्वज्ञ सनत्कुमारजी! आपने अनुग्रह करके प्रेमपूर्वक ऐसी अद्भुत और सुन्दर कथा सुनायी है, जो शंकरकी कृपासे ओतप्रोत है। अब मुझे शशिमौलिके उस उत्तम चरित्रके श्रवण करनेकी इच्छा है, जिसमें उन्होंने प्रसन्न होकर बाणासुरको गणाध्यक्ष-पद प्रदान किया था।

सनत्कुमारजीने कहा—व्यासजी! परमात्मा शम्भुकी उस कथाको, जिसमें उन्होंने प्रसन्न होकर बाणासुरको गणनायक बनाया था, आदरपूर्वक श्रवण करो। इसी प्रसङ्गमें महाप्रभु शंकरका वह सुन्दर चरित्र भी आयेगा, जिसमें उन्होंने बाणासुरपर अनुग्रह करके श्रीकृष्णके साथ संग्राम किया था। व्यासजी! दक्षप्रजापतिकी तेरह

कन्याएँ कश्यप मुनिकी पत्नियाँ थीं। वे सब-की-सब पतिव्रता तथा सुशीला थीं। उनमें दिति सबसे बड़ी थी, जिसके लड़के दैत्य कहलाते हैं। अन्य पत्नियोंसे भी देवता तथा चराचरसहित समस्त प्राणी पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे। ज्येष्ठ पत्नी दितिके गर्भसे सर्वप्रथम दो महाबली पुत्र पैदा हुए, उनमें हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ था और उसके छोटे भाईका नाम हिरण्याक्ष था। हिरण्यकशिपुके चार पुत्र हुए। उन दैत्यश्रेष्ठोंका क्रमशः ह्राद, अनुह्राद, संह्राद और प्रह्लाद नाम था। उनमें प्रह्लाद जितेन्द्रिय तथा महान् विष्णुभक्त हुए। उनका नाश करनेके लिये कोई भी दैत्य समर्थ न हो सका। प्रह्लादका पुत्र विरोचन हुआ, वह दानियोंमें सर्वश्रेष्ठ था। उसने विप्ररूपसे याचना करनेवाले इन्द्रको अपना सिर ही दे डाला था। उसका पुत्र बलि हुआ। यह महादानी और शिवभक्त था। इसने वामनरूपधारी विष्णुको सारी पृथ्वी दान कर दी थी। बलिका औरस पुत्र बाण हुआ। वह शिवभक्त, मानी, उदार, बुद्धिमान्, सत्यप्रतिज्ञ और सहस्रोंका दान करनेवाला था। उस असुरराजने पूर्वकालमें त्रिलोकीको तथा त्रिलोकाधिपतियोंको बलपूर्वक जीतकर शोणितपुरमें अपनी राजधानी बनाया और वहीं रहकर राज्य करने लगा। उस समय देवगण शंकरकी कृपासे उस शिवभक्त बाणासुरके किंकरके समान हो गये थे। उसके राज्यमें देवताओंके अतिरिक्त और कोई प्रजा दुःखी नहीं थी। शत्रुधर्मका बर्ताव करनेवाले देवता शत्रुतावश ही कष्ट झेल रहे थे। एक समय वह महासुर अपनी सहस्रों भुजाओंसे ताली बजाता हुआ ताण्डवनृत्य करके महेश्वर शिवको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगा। उसके उस नृत्यसे भक्तवत्सल शंकर संतुष्ट हो गये। फिर उन्होंने परम प्रसन्न हो उसकी ओर कृपादृष्टिसे देखा। भगवान् शंकर तो सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी, शरणागतवत्सल और भक्तवाञ्छाकल्पतरु ही ठहरे। उन्होंने बलिनन्दन महासुर बाणको वर देनेकी इच्छा प्रकट की।

मुने! बलिनन्दन महादैत्य बाण शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ और परम बुद्धिमान् था। उसने परमेश्वर शंकरको प्रणाम करके उनकी स्तुति की (और कहा)।

बाणासुर बोला—प्रभो! आप मेरे रक्षक हो जाइये और पुत्रों तथा गणोंसहित मेरे नगरके अध्यक्ष बनकर सर्वथा प्रीतिका निर्वाह करते हुए मेरे पास ही निवास कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! वह बलिपुत्र बाण निश्चय ही शिवजीकी मायासे मोहमें पड़ गया था, इसीलिये उसने मुक्ति प्रदान करनेवाले दुराराध्य महेश्वरको पाकर भी ऐसा वर माँगा। तब ऐश्वर्यशाली भक्तवत्सल शम्भु उसे यह वर देकर पुत्रों और गणोंके साथ प्रेमपूर्वक वहीं निवास करने लगे। एक बार बाणासुरको बड़ा ही गर्व हो गया। उसने ताण्डवनृत्य करके शंकरको संतुष्ट किया। जब बाणासुरको यह ज्ञात हो गया कि पार्वतीवल्लभ शिव प्रसन्न हो गये हैं, तब वह हाथ जोड़कर सिर झुकाये हुए बोला।

बाणासुरने कहा—देवाधिदेव महादेव! आप समस्त देवताओंके शिरोमणि हैं। आपकी ही कृपासे मैं बली हुआ हूँ। अब आप मेरा उत्तम वचन सुनिये। देव! आपने

जो मुझे एक हजार भुजाएँ प्रदान की हैं, वे तो अब मुझे महान् भारस्वरूप लग रही हैं; क्योंकि इस त्रिलोकीमें मुझे आपके अतिरिक्त अपनी जोड़का और कोई योद्धा ही नहीं मिला। इसलिये वृषध्वज! युद्धके बिना इन पर्वत-सरीखी सहस्रों भुजाओंको लेकर मैं क्या करूँ। मैं अपनी इन परिपुष्ट भुजाओंकी खुजली मिटानेके लिये युद्धकी लालसासे नगरों तथा पर्वतोंको चूर्ण करता हुआ दिग्गजोंके पास गया; परंतु वे भी भयभीत होकर भाग खड़े हुए। मैंने यमको योद्धा, अग्निको महान् कार्य करनेवाला, वरुणको गौओंका पालनकर्ता गोपाल, कुबेरको गजाध्यक्ष, निर्ऋतिको सैरन्ध्री और इन्द्रको जीतकर सदाके लिये करद बना लिया है। महेश्वर! अब मुझे किसी ऐसे युद्धके प्राप्त होनेकी बात बताइये, जिसमें मेरी ये भुजाएँ या तो शत्रुओंके हाथोंसे छूटे हुए शस्त्रास्त्रोंसे जर्जर होकर गिर जायँ अथवा हजारों प्रकारसे शत्रुकी भुजाओंको ही गिरायें। यही मेरी अभिलाषा है, इसे पूर्ण करनेकी कृपा करें।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! उसकी बात सुनकर भक्तबाधापहारी तथा महामन्युस्वरूप रुद्रको कुछ क्रोध आ गया। तब वे महान् अद्भुत अट्टहास करके बोले।

रुद्रने कहा—'अरे अभिमानी! सम्पूर्ण दैत्योंके कुलमें नीच! तुझे सर्वथा धिक्कार है, धिक्कार है। तू बलिका पुत्र और मेरा भक्त है। तेरे लिये ऐसी बात कहना उचित नहीं है। अब तेरा दर्प चूर्ण होगा। तुझे शीघ्र ही मेरे समान बलवान्के साथ अकस्मात् महान् भीषण युद्ध प्राप्त होगा। उस संग्राममें तेरी ये पर्वत-सरीखी भुजाएँ जलौनी लकड़ीकी तरह शस्त्रास्त्रोंसे छिन्न-भिन्न होकर भूमिपर गिरेंगी। दुरात्मन्! तेरे आयुधागारपर स्थापित तेरा जो यह मनुष्यके सिरवाला मयूरध्वज फहरा रहा है, इसका जब वायु-भयके बिना ही पतन हो जायगा, तब तू अपने चित्तमें समझ लेना कि वह महान् भयानक युद्ध आ पहुँचा है। उस समय तू घोर संग्रामका निश्चय करके अपनी सारी सेनाके साथ वहाँ आना। इस समय तू अपने महलको लौट जा; क्योंकि इसीमें तेरा कल्याण है। दुर्मते! वहाँ तुझे प्रसिद्ध बड़े-बड़े उत्पात दिखायी देंगे।' यों कहकर गर्वहारी भक्तवत्सल भगवान् शंकर चुप हो गये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! यह सुनकर बाणासुरने दिव्य पुष्पोंकी कलियोंसे अञ्जलि भरकर रुद्रकी अभ्यर्चना की और फिर उन महादेवको प्रणाम करके वह अपने घरको लौट गया। तदनन्तर किसी समय दैववश उसका वह ध्वज अपने-आप टूटकर गिर गया। यह देखकर बाणासुर हर्षित हो युद्धके लिये उद्यत हो गया। वह अपने हृदयमें विचार करने लगा कि कौन-सा युद्धप्रेमी योद्धा किस देशसे आयेगा, जो नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंका पारगामी विद्वान् होगा और मेरी सहस्रों भुजाओंको ईंधनकी तरह काट डालेगा तथा मैं भी अपने अत्यन्त तीखे शस्त्रोंसे उसके सैकड़ों टुकड़े कर डालूँगा। इसी समय शंकरकी प्रेरणासे वह काल आ गया। एक दिन बाणासुरकी कन्या ऊषा वैशाख मासमें माधवकी पूजा करके माङ्गलिक शृङ्गारसे सुसज्जित हो रातके समय अपने गुप्त अन्तःपुरमें सो रही थी, उसी समय वह स्त्रीभाव-(कामभाव-)

प्राप्त हो गयी। तब देवी पार्वतीकी शक्तिसे ऊषाको स्वप्नमें श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धका मिलन प्राप्त हुआ। जागनेपर वह व्याकुल हो गयी और उसने अपनी सखी चित्रलेखासे स्वप्नमें मिले हुए उस पुरुषको ला देनेके लिये कहा।

तब चित्रलेखाने कहा—'देवि! तुमने स्वप्नमें जिस पुरुषको देखा है, उसे भला, मैं कैसे ला सकती हूँ, जब कि मैं उसे जानती ही नहीं।' उसके यों कहनेपर दैत्यकन्या ऊषा प्रेमान्ध होकर मरनेपर उतारू हो गयी, तब उस दिन उसकी उस सखीने उसे बचाया। मुनिश्रेष्ठ! कुष्माण्डकी पुत्री चित्रलेखा बड़ी बुद्धिमती थी, वह बाणतनया ऊषासे पुनः बोली।

चित्रलेखाने कहा—सखी! जिस पुरुषने तुम्हारे मनका अपहरण किया है, उसे बताओ तो सही। वह यदि त्रिलोकीमें कहीं भी होगा तो मैं उसे लाऊँगी और तुम्हारा कष्ट दूर करूँगी।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महर्षे! यों कहकर चित्रलेखाने वस्त्रके परदेपर देवताओं, दैत्यों, दानवों, गन्धर्वों, सिद्धों, नागों और यक्ष आदिके चित्र अङ्कित किये। फिर वह मनुष्योंका चित्र बनाने लगी। उनमें वृष्णिवंशियोंका प्रकरण आरम्भ होनेपर उसने शूर, वसुदेव, राम, कृष्ण और नरश्रेष्ठ प्रद्युम्नका चित्र बनाया। फिर जब उसने प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धका चित्र खींचा, तब उसे देखकर ऊषा लज्जित हो गयी। उसका मुख अवनत हो गया और हृदय हर्षसे परिपूर्ण हो गया।

ऊषाने कहा—'सखी! रातमें जो मेरे पास आया था और जिसने शीघ्र ही मेरे चित्तरूपी रत्नको चुरा लिया है, वह चोर पुरुष यही है।' तदनन्तर ऊषाके अनुरोध करनेपर चित्रलेखा ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीको तीसरे पहर द्वारकापुरी पहुँचकर क्षणमात्रमें ही पलंगपर बैठे हुए अनिरुद्धको महलमेंसे उठा लायी। वह दिव्य योगिनी थी। ऊषा अपने प्रियतमको पाकर प्रसन्न हो गयी। इधर अन्तःपुरके द्वारकी रक्षा करनेवाले बेंतधारी पहरेदारोंने चेष्टाओंसे तथा अनुमानसे इस बातको लक्ष्य कर लिया। उन्होंने एक दिव्य शरीरधारी, दर्शनीय, साहसी तथा समरप्रिय नवयुवकको कन्याके साथ दुःशीलताका आचरण करते हुए देख भी लिया। उसे देखकर कन्याके अन्तःपुरकी रक्षा करनेवाले उन महाबली पुरुषोंने बलिपुत्र बाणासुरके पास जाकर सारी बातें निवेदन करते हुए कहा।

द्वारपाल बोले—देव! पता नहीं, आपके अन्तःपुरमें बलपूर्वक प्रवेश करके कौन पुरुष छिपा हुआ है। वह इन्द्र तो नहीं है, जो वेष बदलकर आपकी कन्याका उपभोग कर रहा है? महाबाहु दानवराज! उसे यहाँ देखिये, देखिये और जैसा उचित समझिये वैसा कीजिये। इसमें हमलोगोंका कोई दोष नहीं है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! द्वारपालोंका वह वचन तथा कन्याके दूषित होनेका कथन सुनकर महाबली दानवराज बाण आश्चर्यचकित हो गया। तदनन्तर वह कुपित होकर अन्तःपुरमें जा पहुँचा। वहाँ उसने प्रथम अवस्थामें वर्तमान दिव्य शरीरधारी अनिरुद्धको देखा। उसे महान् आश्चर्य हुआ। फिर उसने उसका बल देखनेके लिये दस हजार सैनिकोंको भेजकर

आज्ञा दी कि इसे मार डालो। सेनाने अनिरुद्धपर आक्रमण किया। तब अनिरुद्धने बात-की-बातमें दस हजार सैनिकोंको कालके हवाले कर दिया। फिर तो असंख्य सेना-पर-सेना आने लगी और अनिरुद्ध उन्हें कालका ग्रास बनाने लगे। तदनन्तर उन्होंने बाणासुरका वध करनेके लिये एक शक्ति हाथमें ली, जो कालाग्निके समान भयंकर थी। फिर उसीसे रथकी बैठकमें बैठे हुए बाणासुरपर प्रहार किया। उसकी गहरी चोट खाकर वीरवर बाण उसी क्षण घोड़ोंसहित वहीं अन्तर्धान हो गया। फिर महावीर बलिपुत्र बाणासुरने, जो महान् बलसम्पन्न तथा शिवभक्त था, छलपूर्वक नागपाशसे अनिरुद्धको बाँध लिया। इस प्रकार उन्हें बाँधकर और पिंजरेमें कैद करके वह युद्धसे उपराम हो गया। तत्पश्चात् बाण कुपित होकर महाबली सूतपुत्रसे बोला।

बाणासुरने कहा—सूतपुत्र! घास-फूससे ढके हुए अगाध कुएँमें ढकेलकर इस पापीको मार डाल। अधिक क्या कहूँ, इसे सर्वथा मार ही डालना चाहिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! उसकी यह बात सुनकर उत्तम मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ धर्मबुद्धि निशाचर कुम्भाण्डने बाणासुरसे कहा।

कुम्भाण्ड बोला—देव! थोड़ा विचार तो कीजिये। मेरी समझसे तो यह कर्म करना उचित नहीं प्रतीत होता; क्योंकि इसके मारे जानेपर अपना आत्मा ही आहत हो जायगा। पराक्रममें तो यह विष्णुके समान दीख रहा है। जान पड़ता है, आपपर कुपित होकर चन्द्रचूडने अपने उत्तम तेजसे इसे बढ़ा दिया है। साहसमें यह शशिमौलिकी समानता कर रहा है; क्योंकि इस अवस्थाको पहुँच जानेपर भी यह पुरुषार्थपर ही डटा हुआ है। यह ऐसा बली है कि यद्यपि नाग इसे बलपूर्वक डँस रहे हैं, तथापि यह हमलोगोंको तृणवत् ही समझ रहा है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! दानव कुम्भाण्ड राजनीतिके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ था। वह बाणसे ऐसा कहकर फिर अनिरुद्धसे कहने लगा।

कुम्भाण्डने कहा—'नराधम! अब तू वीरवर दैत्यराजकी स्तुति कर और दीन वाणीसे 'मैं हार गया' यों बारंबार कहकर उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार कर। ऐसा करनेपर ही तू मुक्त हो सकता है, अन्यथा तुझे बन्धन आदिका कष्ट भोगना पड़ेगा।' उसकी बात सुनकर अनिरुद्ध उत्तर देते हुए बोले।

अनिरुद्धने कहा—दुराचारी निशाचर! तुझे क्षत्रिय-धर्मका ज्ञान नहीं है। अरे! शूरवीरके लिये दीनता दिखाना और युद्धसे मुख मोड़कर भागना मरणसे भी बढ़कर कष्टदायक होता है। मेरे विचारसे तो विरुद्धाचरण काँटेकी तरह चुभनेवाला होता है। वीरमानी क्षत्रियके लिये रणभूमिमें सदा सम्मुख लड़ते हुए मरना ही श्रेयस्कर है, भूमिपर पड़कर हाथ जोड़े हुए दीनकी तरह मरना कदापि नहीं *।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! इस

---

* क्षत्रियस्य रणे श्रेयो मरणं सम्मुखे सदा। न वीरमानिनो भूमौ दीनस्येव कृताञ्जलेः॥

(शि० पु० रु० सं० युद्धखण्ड ५३। ३५)

प्रकार अनिरुद्धने बहुत-सी वीरताकी बातें कहीं, जिन्हें सुनकर बाणासुरको महान् विस्मय हुआ और उसे क्रोध भी आया। उसी समय समस्त वीरोंके, अनिरुद्धके और मन्त्री कुम्भाण्डके सुनते-सुनते बाणासुरके आश्वासनार्थ आकाशवाणी हुई।

आकाशवाणीने कहा—महाबली बाण ! तुम बलिके पुत्र हो, अतः थोड़ा विचार तो करो। परम बुद्धिमान् शिवभक्त ! तुम्हारे लिये क्रोध करना उचित नहीं है। शिव समस्त प्राणियोंके ईश्वर, कर्मोंके साक्षी और परमेश्वर हैं। यह सारा चराचर जगत् उन्हींके अधीन है। वे ही सदा रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणका आश्रय लेकर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूपसे लोकोंकी सृष्टि, भरण-पोषण और संहार करते हैं। वे सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वर, सबके प्रेरक, सर्वश्रेष्ठ, विकाररहित, अविनाशी, नित्य और मायाधीश होनेपर भी निर्गुण हैं। बलिके श्रेष्ठ पुत्र ! उनकी इच्छासे निर्बलको भी बलवान् समझना चाहिये। महामते ! मनमें यों विचारकर स्वस्थ हो जाओ। नाना प्रकारकी लीलाओंके रचनेमें निपुण भक्तवत्सल भगवान् शंकर गर्वको मिटा देनेवाले हैं। वे इस समय तुम्हारे गर्वको चूर कर देंगे।

सनत्कुमारजी कहते हैं—महामुने ! इतना कहकर आकाशवाणी बंद हो गयी। तब उसके वचनको मानकर बाणासुरने अनिरुद्धका वध करनेका विचार छोड़ दिया। तदनन्तर विषैले नागोंके पाशसे बँधे हुए अनिरुद्ध उसी क्षण दुर्गाका स्मरण करने लगे।

अनिरुद्धने कहा—शरणागतवत्सले ! आप यश प्रदान करनेवाली हैं, आपका रोष बड़ा उग्र होता है। देवि ! मैं नागपाशसे बँधा हुआ हूँ और नागोंकी विषज्वालासे संतप्त हो रहा हूँ; अतः शीघ्र पधारिये और मेरी रक्षा कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनीश्वर ! जब अनिरुद्धने पिसे हुए काले कोयलेके समान कृष्णवर्णवाली कालीको इस प्रकार संतुष्ट किया, तब ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीकी महारात्रिमें वहाँ प्रकट हुईं। उन्होंने उन सर्परूपी भयानक बाणोंको भस्मसात् करके अपने बलिष्ठ मुक्कोंके आघातसे उस नाग-पञ्जरको विदीर्ण कर दिया। इस प्रकार दुर्गाने अनिरुद्धको बन्धनमुक्त करके उन्हें पुनः अन्तःपुरमें पहुँचा दिया और स्वयं वहीं अन्तर्धान हो गयीं। इस प्रकार शिवकी शक्तिस्वरूपा देवीकी कृपासे अनिरुद्ध कष्टसे छूट गये, उनकी सारी व्यथा मिट गयी और वे सुखी हो गये। तदनन्तर प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्ध शिवशक्तिके प्रतापसे विजयी हो अपनी प्रिया बाणतनयाको पाकर परम हर्षित हुए और अपनी प्रियतमा उस ऊषाके साथ पूर्ववत् सुखपूर्वक विहार करने लगे। इधर पौत्र अनिरुद्धके अदृश्य हो जाने तथा नारदजीके मुखसे उसके बाणासुरके द्वारा नागपाशसे बाँधे जानेका समाचार सुनकर बारह अक्षौहिणी सेनाके साथ प्रद्युम्न आदि वीरोंको साथ ले भगवान् श्रीकृष्णने शोणितपुरपर चढ़ाई कर दी। उधर भगवान् श्रीरुद्र भी अपने भक्तके पक्षमें सज-धजकर आ डटे। फिर तो श्रीकृष्ण और श्रीशिवका बड़ा भयानक युद्ध हुआ। दोनों ओरसे ज्वर छोड़े गये। अन्तमें श्रीकृष्णने स्वयं श्रीरुद्रके पास आकर उनका स्तवन करके कहा—

'सर्वव्यापी शंकर! आप गुणोंसे निर्लिप्त होकर भी गुणोंसे ही गुणोंको प्रकाशित करते हैं। गिरिशायी भूमन्! आप स्वप्रकाश हैं। जिनकी बुद्धि आपकी मायासे मोहित हो गयी है, वे स्त्री, पुत्र, गृह आदि विषयोंमें आसक्त होकर दुःखसागरमें डूबते-उतराते हैं। जो अजितेन्द्रिय पुरुष प्रारब्धवश इस मनुष्य-जन्मको पाकर भी आपके चरणोंमें प्रेम नहीं करता, वह शोचनीय तथा आत्मवञ्चक है। भगवन्! आप गर्वहारी हैं, आपने ही तो इस गर्वीले बाणको शाप दिया था; अतः आपकी ही आज्ञासे मैं बाणासुरकी भुजाओंका छेदन करनेके लिये यहाँ आया हूँ। इसलिये महादेव! आप इस युद्धसे निवृत्त हो जाइये। प्रभो! मुझे बाणकी भुजाओंको काटनेके लिये आज्ञा प्रदान कीजिये, जिससे आपका शाप व्यर्थ न हो।'

महेश्वरने कहा—तात! आपने ठीक ही कहा है कि मैंने ही इस दैत्यराजको शाप दिया है और मेरी ही आज्ञासे आप बाणासुरकी भुजाएँ काटनेके लिये यहाँ पधारे हैं; किन्तु रमानाथ! हरे! क्या करूँ, मैं तो सदा भक्तोंके ही अधीन रहता हूँ। ऐसी दशामें वीर! मेरे देखते बाणकी भुजाएँ कैसे काटी जा सकती हैं? इसलिये मेरी आज्ञासे आप पहले जृम्भणास्त्रद्वारा मुझे जृम्भित कर दीजिये, तत्पश्चात् अपना अभीष्ट कार्य सम्पन्न कीजिये और सुखी होइये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनीश्वर! शंकरजीके यों कहनेपर शार्ङ्गपाणि श्रीहरिको महान् विस्मय हुआ। वे अपने युद्ध-स्थानपर आकर परम आनन्दित हुए। व्यासजी! तदनन्तर नाना प्रकारके अस्त्रोंके संचालनमें निपुण श्रीहरिने तुरंत ही अपने धनुषपर जृम्भणास्त्रका संधान करके उसे पिनाक-पाणि शंकरपर छोड़ दिया। इस प्रकार श्रीकृष्ण जृम्भणास्त्रद्वारा जृम्भित हुए शंकरको मोहमें डालकर खड्ग, गदा और ऋष्टि आदिसे बाणकी सेनाका संहार करने लगे।

(अध्याय ५१—५४)

श्रीकृष्णद्वारा बाणकी भुजाओंका काटा जाना, सिर काटनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णको शिवका रोकना और उन्हें समझाना, श्रीकृष्णका परिवारसमेत द्वारकाको लौट जाना, बाणका ताण्डव नृत्यद्वारा शिवको प्रसन्न करना, शिवद्वारा उसे अन्यान्य वरदानोंके साथ महाकालत्वकी प्राप्ति

सनत्कुमारजी कहते हैं—महाप्राज्ञ व्यासजी! लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले श्रीकृष्ण और शंकरकी उस परम अद्भुत कथाको श्रवण करो। तात! जब भगवान् रुद्र लीलावश पुत्रों तथा गणोंसहित सो गये, तब दैत्यराज बाण श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेके लिये प्रस्थित हुआ। उस समय कुम्भाण्ड उसके अश्वोंकी बागडोर सँभाले हुए था और वह नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित था। फिर वह महाबली बलिपुत्र

भीषण युद्ध करने लगा। इस प्रकार उन दोनोंमें चिरकालतक बड़ा घोर संग्राम होता रहा; क्योंकि विष्णुके अवतार श्रीकृष्ण शिवरूप ही थे और उधर बलवान् बाणासुर उत्तम शिवभक्त था। मुनीश्वर! तदनन्तर वीर्यवान् श्रीकृष्ण, जिन्हें शिवकी आज्ञासे बल प्राप्त हो चुका था, चिरकालतक बाणके साथ यों युद्ध करके अत्यन्त कुपित हो उठे। तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने शम्भुके आदेशसे शीघ्र ही सुदर्शन चक्रद्वारा बाणकी बहुत-सी भुजाओंको काट डाला। अन्तमें उसकी अत्यन्त सुन्दर चार भुजाएँ ही अवशेष रह गयीं और शंकरकी कृपासे शीघ्र ही उसकी व्यथा भी मिट गयी। जब बाणकी स्मृति लुप्त हो गयी और वीरभावको प्राप्त हुए श्रीकृष्ण उसका सिर काट लेनेके लिये उद्यत हुए, तब शंकरजी मोहनिद्राको त्यागकर उठ खड़े हुए और बोले।

रुद्रने कहा—देवकीनन्दन! आप तो सदासे मेरी आज्ञाका पालन करते आये हैं। भगवन्! मैंने पहले आपको जिस कामके लिये आज्ञा दी थी, वह तो आपने पूरा कर दिया। अब बाणका शिरश्छेदन मत कीजिये और सुदर्शन चक्रको लौटा लीजिये। मेरी आज्ञासे यह चक्र सदा मेरे भक्तोंपर अमोघ रहा है। गोविन्द! मैंने पहले ही आपको युद्धमें अनिवार्य चक्र और जय प्रदान की थी, अब आप इस युद्धसे निवृत्त हो जाइये। लक्ष्मीश! पूर्वकालमें भी तो आपने मेरी आज्ञाके बिना दधीच, वीरवर रावण और तारकाक्ष आदिके पुरोंपर चक्रका प्रयोग नहीं किया था। जनार्दन! आप तो योगीश्वर, साक्षात् परमात्मा और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाले हैं। आप स्वयं ही अपने मनसे विचार कीजिये। मैंने इसे वर दे रखा है कि तुझे मृत्युका भय नहीं होगा। मेरा यह वचन सदा सत्य होना चाहिये। मैं आपपर परम प्रसन्न हूँ। हरे! बहुत दिन पूर्व यह गर्वसे भरकर उन्मत्त हो उठा और अपने-आपको भूल गया था। तब अपनी भुजाएँ खुजलाता हुआ यह मेरे पास पहुँचा और बोला—'मेरे साथ युद्ध कीजिये।' तब मैंने इसे शाप देते हुए कहा—'थोड़े ही समयमें तेरी भुजाओंका छेदन करनेवाला आयेगा। तब तेरा सारा गर्व गल जायगा।' (बाणकी ओर देखकर) कहा—'मेरी ही आज्ञासे तेरी भुजाओंको काटनेवाले ये श्रीहरि आये हैं।' (फिर श्रीकृष्णसे) 'अब आप युद्ध बंद कर दीजिये और वर-वधूको साथ ले अपने

घरको लौट जाइये।' यों कहकर महेश्वरने उन दोनोंमें मित्रता करा दी और उनकी आज्ञा ले वे पुत्रों और गणोंके साथ अपने निवासस्थानको चले गये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! शम्भुका कथन सुनकर अक्षत शरीरवाले

श्रीकृष्णने सुदर्शनको लौटा लिया और विजयश्रीसे सुशोभित हो वे बाणासुरके अन्तःपुरमें पधारे। वहाँ उन्होंने ऊषासहित अनिरुद्धको आश्वासन दिया और बाणद्वारा दिये गये अनेक प्रकारके रत्नसमूहोंको ग्रहण किया। ऊषाकी सखी परम योगिनी चित्रलेखाको पाकर तो श्रीकृष्णको महान् हर्ष हुआ। इस प्रकार शिवके आदेशानुसार जब उनका सारा कार्य पूर्ण हो गया, तब वे श्रीहरि हृदयसे शंकरको प्रणाम कर और बलिपुत्र बाणासुरकी आज्ञा ले परिवारसमेत अपनी पुरीको लौट गये। द्वारकामें पहुँचकर उन्होंने गरुडको विदा कर दिया। फिर हर्षपूर्वक मित्रोंसे मिले और स्वेच्छानुसार आचरण करने लगे।

इधर नन्दीश्वरने बाणासुरको समझाकर यह कहा—'भक्तशार्दूल! तुम बारंबार शिवजीका स्मरण करो। वे भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं, अतः उन आदिगुरु शंकरमें मन समाहित करके नित्य उनका महोत्सव करो।' तब द्वेषरहित हुआ महामनस्वी बाण नन्दीके कहनेसे धैर्य धारण करके तुरंत ही शिवस्थानको गया। वहाँ पहुँचकर उसने नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा शिवजीकी स्तुति की और उन्हें प्रणाम किया। फिर वह पादोंसे ठुमकी लगाते हुए और हाथोंको घुमाते हुए नाना प्रकारके आलीढ और प्रत्यालीढ आदि प्रमुख स्थानकोंद्वारा सुशोभित नृत्योंमें प्रधान ताण्डवनृत्य करने लगा। उस समय वह हजारों प्रकारसे मुखद्वारा बाजा बजा रहा था और बीच-बीचमें भौंहोंको मटकाकर तथा सिरको कँपाकर सहस्रों प्रकारके भाव भी प्रकट करता जाता था। इस प्रकार नृत्यमें मस्त हुए महाभक्त बाणासुरने महान् नृत्य करके नतमस्तक हो त्रिशूलधारी चन्द्रशेखर भगवान् रुद्रको प्रसन्न कर लिया। तब नाच-गानके प्रेमी भक्तवत्सल भगवान् हर हर्षित होकर बाणसे बोले।

रुद्रने कहा—बलिपुत्र प्यारे बाण! तेरे नृत्यसे मैं संतुष्ट हो गया हूँ, अतः दैत्येन्द्र! तेरे मनमें जो अभिलाषा हो, उसके अनुरूप वर माँग ले।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! शम्भुकी बात सुनकर दैत्यराज बाणने इस प्रकार वर माँगा—'मेरे घाव भर जायँ, बाहुयुद्धकी क्षमता बनी रहे, मुझे अक्षय गणनायकत्व प्राप्त हो, शोणितपुरमें ऊषापुत्र अर्थात् मेरे दौहित्रका राज्य हो, देवताओंसे तथा विशेष करके विष्णुसे मेरा वैरभाव मिट जाय, मुझमें रजोगुण और तमोगुणसे युक्त दूषित दैत्यभावका पुनः उदय न हो, मुझमें सदा निर्विकार शम्भु-भक्ति बनी रहे और शिव-भक्तोंपर मेरा स्नेह और समस्त प्राणियोंपर दयाभाव रहे।' यों शम्भुसे वरदान माँगकर बलिपुत्र महासुर बाण अञ्जलि बाँधे रुद्रकी स्तुति करने लगा। उस समय उसके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये थे। तदनन्तर जिसके सारे अङ्ग प्रेमसे प्रफुल्लित हो उठे थे, वह बलिनन्दन बाणासुर महेश्वरको प्रणाम करके मौन हो गया। अपने भक्त बाणकी प्रार्थना सुनकर भगवान् शंकर 'तुझे सब कुछ प्राप्त हो जायगा' यों कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये।

तब शम्भुकी कृपासे महाकालत्वको प्राप्त हुआ रुद्रका अनुचर बाण परमानन्दमें निमग्न हो गया। व्यासजी! इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण भुवनोंमें नित्य क्रीडा करनेवाले समस्त गुरुजनोंके भी सद्गुरु शूलपाणि भगवान् शंकरका बाणविषयक चरित, जो परमोत्तम है, कर्णप्रिय मधुर वचनोंद्वारा तुमसे वर्णन कर दिया। (अध्याय ५५-५६)

☆

गजासुरकी तपस्या, वर-प्राप्ति और उसका अत्याचार, शिवद्वारा उसका वध, उसकी प्रार्थनासे शिवका उसका चर्म धारण करना और 'कृत्तिवासा' नामसे विख्यात होना तथा कृत्तिवासेश्वर-लिङ्गकी स्थापना करना

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! अब परम प्रेमपूर्वक शशिमौलि शिवके उस चरित्रको श्रवण करो, जिसमें उन्होंने त्रिशूलद्वारा दानवराज गजासुरका वध किया था। गजासुर महिषासुरका पुत्र था। जब उसने सुना कि देवताओंसे प्रेरित होकर देवीने मेरे पिताको मार दिया था, तब उसका बदला लेनेकी भावनासे उसने घोर तप किया। उसके तपकी ज्वालासे सब जलने लगे। देवताओंने जाकर ब्रह्माजीसे अपना दुःख कहा, तब ब्रह्माजीने उसके सामने प्रकट होकर उसके प्रार्थनानुसार उसे वरदान दे दिया कि वह कामके वश होनेवाले किसी भी स्त्री या पुरुषसे नहीं मरेगा, महाबली और सबसे अजेय होगा।

वर पाकर वह गर्वमें भर गया। सब दिशाओं तथा सब लोकपालोंके स्थानोंपर उसने अधिकार कर लिया। अन्तमें भगवान् शंकरकी राजधानी आनन्दवन काशीमें जाकर वह सबको सताने लगा। देवताओंने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की। शंकर कामविजयी हैं ही। उन्होंने घोर युद्धमें उसे हराकर त्रिशूलमें पिरो लिया। तब उसने भगवान् शंकरका स्तवन किया। शंकरने उसपर प्रसन्न होकर इच्छित वर माँगनेको कहा।

तब गजासुरने कहा—दिगम्बरस्वरूप महेशान! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपने त्रिशूलकी अग्निसे पवित्र हुए मेरे इस चर्मको आप सदा धारण किये रहें। विभो! मैं पुण्य गन्धोंकी निधि हूँ, इसीलिये मेरा यह चर्म चिरकालतक उग्र तपरूपी अग्निकी ज्वालामें पड़कर भी दग्ध नहीं हुआ है। दिगम्बर! यदि मेरा यह चर्म पुण्यवान् न होता तो रणाङ्गणमें इसे आपके अङ्गोंका सङ्ग कैसे प्राप्त होता। शंकर! यदि आप तुष्ट हैं तो मुझे एक दूसरा वर और दीजिये। (वह यह कि) आजसे आपका नाम 'कृत्तिवासा' विख्यात हो जाय।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! गजासुरकी बात सुनकर भक्तवत्सल शंकरने परम प्रसन्नतापूर्वक महिषासुरनन्दन गजसे कहा—'तथास्तु'—अच्छा, ऐसा ही होगा। तदनन्तर प्रसन्नात्मा भक्तप्रिय महेशान उस दानवराज गजसे, जिसका मन भक्तिके कारण निर्मल हो गया था, पुनः बोले।

ईश्वरने कहा—दानवराज! तेरा यह पावन शरीर मेरे इस मुक्तिसाधक क्षेत्र

काशीमें मेरे लिङ्गके रूपमें स्थित हो जाय ! इसका नाम कृत्तिवासेश्वर होगा ! यह समस्त प्राणियोंके लिये मुक्तिदाता, महान् पातकोंका विनाशक, सम्पूर्ण लिङ्गोंमें शिरोमणि और मोक्षप्रद होगा। यों कहकर देवेश्वर दिगम्बर शिवने गजासुरके उस विशाल चर्मको लेकर ओढ़ लिया। मुनीश्वर ! उस दिन बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया। काशीनिवासी सारी जनता तथा प्रमथगण हर्षमग्न हो गये। विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंका मन हर्षसे परिपूर्ण हो गया। वे हाथ जोड़कर महेश्वरको नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगे।

(अध्याय ५७)

☆

दुन्दुभिनिर्ह्राद नामक दैत्यका व्याघ्ररूपसे शिवभक्तपर आक्रमण करनेका विचार और शिवद्वारा उसका वध

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! अब मैं चन्द्रमौलिके उस चरित्रका वर्णन करूँगा, जिसमें शंकरजीने दुन्दुभिनिर्ह्राद नामक दैत्यको मारा था। तुम सावधान होकर श्रवण करो। दितिपुत्र महाबली हिरण्याक्षके विष्णुद्वारा मारे जानेपर दितिको बहुत दुःख हुआ। तब देवशत्रु दुन्दुभिनिर्ह्रादने उसको आश्वासन देकर यह निश्चय किया कि 'देवताओंके बल ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण नष्ट हो जायँगे तो यज्ञ नहीं होंगे, यज्ञ न होनेपर देवता आहार न पानेसे निर्बल हो जायँगे। तब मैं उनपर सहज ही विजय पा लूँगा।' यों विचारकर वह ब्राह्मणोंको मारने लगा। ब्राह्मणोंका प्रधान स्थान वाराणसी है, यह सोचकर वह काशी पहुँचा और वनमें वनचर बनकर समिधा लेते हुए, जलमें जलचर बनकर स्नान करते हुए और रातमें व्याघ्र बनकर सोते हुए ब्राह्मणोंको खाने लगा।

एक बार शिवरात्रिके अवसरपर एक भक्त अपनी पर्णशालामें देवाधिदेव शंकरका पूजन करके ध्यानस्थ बैठा था। बलाभिमानी दैत्यराज दुन्दुभिनिर्ह्रादने व्याघ्रका रूप धारण करके उसे खा जानेका विचार किया; परंतु वह भक्त दृढ़चित्तसे शिवदर्शनकी लालसा लेकर ध्यानमें तल्लीन हो रहा था, इसके लिये उसने पहलेसे ही मन्त्ररूपी अस्त्रका विन्यास कर लिया था। इस कारण वह दैत्य उसपर आक्रमण करनेमें समर्थ न हो सका। इधर सर्वव्यापी भगवान् शम्भुको उस दुष्ट रूपवाले दैत्यके अभिप्रायका पता लग गया। तब शंकरने उसे मार डालनेका विचार किया। इतनेमें, ज्यों ही उस दैत्यने व्याघ्ररूपसे उस भक्तको अपना ग्रास बनाना चाहा, त्यों ही जगत्की रक्षाके लिये मणिस्वरूप तथा भक्तरक्षणमें कुशल बुद्धिवाले त्रिलोचन भगवान् शंकर वहाँ प्रकट हो गये और उसे बगलमें दबोचकर उसके सिरपर वज्रसे भी कठोर घूँसेसे प्रहार किया। उस मुष्टि-प्रहारसे तथा काँखमें दबोचनेसे वह व्याघ्र अत्यन्त व्यथित हो गया और अपनी दहाड़से पृथ्वी तथा आकाशको कँपाता हुआ मृत्युका ग्रास बन गया। उस भयंकर शब्दको सुनकर तपस्वियोंका हृदय काँप उठा। वे रातमें ही उस शब्दका अनुसरण करते हुए उस

स्थानपर आ पहुँचे। वहाँ परमेश्वर शिवको बगलमें उस पापीको दबाये हुए देखकर सब लोग उनके चरणोंमें पड़ गये और जय-जयकार करते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

तदनन्तर महेश्वरने कहा—जो मनुष्य यहाँ आकर श्रद्धापूर्वक मेरे इस रूपका दर्शन करेगा, निस्संदेह मैं उसके सारे उपद्रवोंको नष्ट कर दूँगा। जो मानव मेरे इस चरित्रको सुनकर और हृदयमें मेरे इस लिङ्गका स्मरण करके संग्राममें प्रवेश करेगा, उसे अवश्य विजयकी प्राप्ति होगी।

मुने! जो मनुष्य व्याघ्रेश्वरके प्राकट्यसे सम्बन्ध रखनेवाले इस परमोत्तम चरित्रको सुनेगा अथवा दूसरेको सुनायेगा, पढ़ेगा या पढ़ायेगा, वह अपनी समस्त मनोवाञ्छित वस्तुओंको प्राप्त कर लेगा और अन्तमें सम्पूर्ण दुःखोंसे रहित होकर मोक्षका भागी होगा। शिवलीलासम्बन्धी अमृतमय अक्षरोंसे परिपूर्ण यह अनुपम आख्यान स्वर्ग, यश और आयुका देनेवाला तथा पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला है।

(अध्याय ५८)

☆

विदल और उत्पल नामक दैत्योंका पार्वतीपर मोहित होना और पार्वतीका कन्दुक-प्रहारद्वारा उनका काम तमाम करना, कन्दुकेश्वरकी स्थापना और उनकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! जिस प्रकार परमेश्वर शिवने संकेतसे दैत्यको लक्ष्य कराकर अपनी प्रियाद्वारा उसका वध कराया था, उनके उस चरित्रको तुम परम प्रेमपूर्वक श्रवण करो। विदल और उत्पल नामक दो महादैत्य थे। उन्होंने ब्रह्माजीसे किसी पुरुषके हाथसे न मरनेका वर प्राप्त करके सब देवताओंको जीत लिया था। तब देवताओंने ब्रह्माजीके पास जाकर अपना दुःख सुनाया। उनकी कष्ट-कहानी सुनकर ब्रह्माने उनसे कहा—'तुमलोग शिवासहित शिवका आदरपूर्वक स्मरण करके धैर्य धारण करो। ये दोनों दैत्य निश्चय ही देवीके हाथों मारे जायँगे। शिवासहित शिव परमेश्वर, कल्याणकर्ता और भक्तवत्सल हैं। वे शीघ्र ही तुमलोगोंका कल्याण करेंगे।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने! देवोंसे यों कहकर ब्रह्माजी शिवका स्मरण करते हुए मौन हो गये। तब देवगण भी आनन्दित होकर अपने-अपने धामको लौट गये। एक समय नारदजीके द्वारा पार्वतीके सौन्दर्यकी प्रशंसा सुनकर वे दोनों दैत्य उनका अपहरण करनेकी बात सोचने लगे और पार्वतीजी जहाँ गेंद उछाल रही थीं, वहीं वे जाकर आकाशमें विचरने लगे। वे दोनों घोर दुराचारी थे। उनका मन अत्यन्त चञ्चल हो रहा था। वे गणोंका रूप धारण करके अम्बिकाके निकट आये। तब दुष्टोंका संहार करनेवाले शिवने अवहेलनापूर्वक उनकी ओर देखकर उनके नेत्रोंसे प्रकट हुई चञ्चलताके कारण तुरंत उन्हें पहचान लिया। फिर तो सर्वस्वरूपी महादेवने दुर्गतिनाशिनी दुर्गाको कटाक्षद्वारा सूचित कर दिया कि ये दोनों दैत्य हैं, गण नहीं। तात! तब पार्वती

अपने स्वामी महाकौतुकी परमेश्वर शंकरके उस नेत्रसंकेतको समझ गयीं। तदनन्तर सर्वज्ञ शिवकी अर्धाङ्गिनी पार्वतीने उस संकेतको समझकर उसी गेंदसे एक साथ ही उन दोनोंपर चोट की। तब महादेवीकी गेंदसे आहत होकर वे दोनों महाबली दुष्ट दैत्य चक्कर काटते हुए उसी प्रकार भूतलपर गिर पड़े, जैसे वायुके झोंकेसे चञ्चल होकर दो पके हुए ताड़के फल अपनी डंठलसे टूटकर गिर पड़ते हैं अथवा जैसे वज्रके आघातसे महागिरिके दो शिखर ढह जाते हैं। इस प्रकार अकार्य करनेके लिये उद्यत उन दोनों महादैत्योंको धराशायी करके वह गेंद लिङ्गरूपमें परिणत हो गया। समस्त दुष्टोंका निवारण करनेवाला वह लिङ्ग कन्दुकेश्वरके नामसे विख्यात हुआ और ज्येष्ठेश्वरके समीप स्थित हो गया। काशीमें स्थित कन्दुकेश्वर-लिङ्ग दुष्टोंका विनाशक, भोग-मोक्षका प्रदाता और सर्वदा सत्पुरुषों-की समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। जो मनुष्य इस अनुपम आख्यानको हर्षपूर्वक सुनता, सुनाता अथवा पढ़ता है, उसे भयका दुःख कहाँ। वह इस लोकमें नाना प्रकारके सम्पूर्ण उत्तमोत्तम सुखोंको भोगकर अन्तमें देवदुर्लभ दिव्य गतिको प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुनिसत्तम! मैंने तुमसे रुद्रसंहिताके अन्तर्गत इस युद्धखण्डका वर्णन कर दिया। यह खण्ड सम्पूर्ण मनोरथोंका फल प्रदान करनेवाला है। इस प्रकार मैंने पूरी-की-पूरी रुद्रसंहिताका वर्णन कर दिया। यह शिवजीको सदा परम प्रिय है और भुक्ति-मुक्तिरूप फल प्रदान करनेवाली है।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार शिवानुगामी ब्रह्मपुत्र नारद शंकरके उत्तम यशको तथा शिव-शतनामको सुनकर कृतार्थ हो गये। यों मैंने सम्पूर्ण चरित्रोंमें प्रधान तथा कल्याणकारक यह ब्रह्मा और नारदका संवाद पूर्णरूपसे कह दिया, अब तुम्हारी और क्या सुननेकी इच्छा है?

(अध्याय ५९)

☆

॥ रुद्रसंहिताका युद्धखण्ड सम्पूर्ण ॥

☆

॥ रुद्रसंहिता समाप्त ॥

☆